नवयुग प्रवर्तक

श्री गुरुजी

(मूल मराठी से अनुवादित)

चं. प. भिशिकर

लोकहित प्रकाशन, लखनऊ

www.golwalkarguruji.org

- प्रकाशक

लोकहित प्रकाशन

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर,

लखनऊ – 226004

- **तृतीय संस्करण**

कार्तिक पूर्णिमा,

संवत् 2060

8 नवम्बर 2003

- मूल्यः रु. 100.00

मुद्रकः

नूतन आफसेट मुद्रण केन्द्र

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर,

लखनऊ – 226004

प्रस्तावना

हिन्दी भाषी पाठकों के लिए मूल मराठी पुस्तक श्री गुरुजी का हिन्दी में अनुवादित चरित्र प्रस्तुत करते हुए विषेश आनंद हो रहा है। पू. गुरुजी की 51 वीं वर्षगाँठ मनाते समय 1956 ईस्वी में एक संक्षिप्त सा चरित्र व्यक्ति और कार्य के नाम से निकाला गया था। पू. गुरुजी अपने विषय में किसी भी प्रकार का प्रचार-प्रसार अनुचित समझते थे। इसलिए उनके जीवनकाल में कोई विस्तृत चरित्र नहीं लिखा जा सका। उनके निधन के पश्चात उनके विषय की समस्त सामग्री इकठ्ठा करने का जो काम किया गया उसी से सात खण्डों का ग्रंथ - श्री गुरुजी समग्र दर्शन तैय्यार हुआ। इन खण्डों में पू. गुरुजी की जीवनविषयक बातें बहुत कम हैं और वह भी सात खण्डों में बिखरी पडी हैं। पू. गुरुजी का चरित्र जानने के लिए इतने विस्तृत ग्रंथ का पढना स्वयंसेवक के लिए कठिन है। पू. डॉक्टर जी पर केशवः संघ निर्माता नामक ग्रंथ लिखकर प्रसिध्दि प्राप्त किए हुए श्री चं. प. भिशिकर ने

पू. बालासाहेब के प्रोत्साहन से गुरुजी के जीवन पर 1982 ईस्वी में ग्रंथ प्रकाशित किया था। बाद में उपलब्ध सामग्री को जोडकर श्री भिशिकर जी ने मराठी में पू. गुरुजी का एक समग्र चरित्र छापा है। हिन्दी पाठकों की संख्या उसके पढने से वंचित रह जाती अगर नागपुर के कुछ बन्धुओं व्दारा उसका अनुवाद हिन्दी में न किया गया होता। शेष कठिन कार्य लखनऊ में स्थित लोकहित प्रकाशन ने किया है।

अपने सभी नये और पुराने स्वयंसेवक एवम् राष्ट्रहितचिंतक इस जीवनी को पढेंगे तो उन्हें पू. गुरुजी के जीवन से न केवल प्रेरणा मिलेगी अपितु आज की देश की जटिल परिस्थितीयों में भारत के अपने कर्तव्य का भी दर्शन हो सकेगा।

ऐसे उत्तम ग्रंथ को लिखने अनुवादित करने और प्रकाशित करने वालों को अनेकानेक धन्यवाद।

- राजेंद्र सिंह

सरसंघचालक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

प्रकाशकीय

सुविख्यात लेखक श्री चं. प. उपाख्य बापूराव भिशिकर के द्वारा मराठी भाषा में लिखित एवं भारतीय विचार साधना, पुणे के सहयोग से प्रकाशित श्री गुरुजी की जीवनी (द्वितिय संस्करण) का यह हिन्दी अनुवाद पाठकों के लिए प्रस्तुत करने में हमें अपार हर्ष और सन्तोष हो रहा है। हिन्दी भाषा पाठकों के लिए श्री गुरुजी की जीवनी प्रकाशित करने की आवश्यकता श्री शेषाद्रि जी आदि ज्येष्ठ अधिकारियों ने प्रकट की थी। तदनुसार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितिय सरसंघचालक श्री गुरुजी की जीवनी हिन्दी भाषा में प्रकाशित करने का सुअवसर लोकहित प्रकाशन को प्राप्त हुआ इसलिए प्रकाशन स्वयं को गौरवान्वित अनुभव कर रहा है।

श्री गुरुजी का जीवन अनेकविध पहलुओं से सुसमृद्ध था। आध्यात्मिक क्षेत्र के वे श्रेष्ठ ज्ञाता थे। संघ कार्यकर्ताओं के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम स्वयंसेवक थे। हिन्दू राष्ट्र के प्रति उनका जीवन पूर्णतः समर्पित था। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण और उर्जा का प्रत्येक कण एकमात्र संघकार्य हेतू ही बीता। कला-विज्ञान की अनेक शाखा-उपशाखाओं के वे मर्मज्ञ थे। उनके जीवन की अनेक प्रेरक घटनाएँ और कार्यकर्ताओं तथा जनता के लिए उनके द्वारा समय-समय किया गया उद्-बोधन इस जीवनी में प्रभावी ढंग से प्रकट हुआ है।

उनके जीवनी की अनेक प्रेरक घटनाओं की इसमें अभिव्यक्ति है। 1948-49 की प्रथम संघबंदी भारतीय शासन के द्वारा बिना शर्त हटायी जानेका सफल प्रयास, विद्यार्थी क्षेत्र, श्रमिक क्षेत्र, वनवासी-गिरिवासी, उपेक्षित बन्धुओं का क्षेत्र, राजनिति और अर्थनिति का क्षेत्र सेवा कार्य आदि अनेक समाज जीवन के क्षेत्रों में संघ के मौलिक विचार, व्यवहार का प्रभाव निर्माण करने का श्री गुरुजी ने सफल प्रयास किया। गोवध बंदी के बारे में जनजागरण और आन्दोलन, संघ निर्माता के नागपुर स्थित स्मृति मन्दिर की निर्मिति, देश-विदेश के हिन्दूओं के लिए सुप्रतिष्ठित आधार हेतु विश्व हिन्दू परिषद् की स्थापना, अधिकांश धर्माचार्यों को, जो अपने मठ-मंदिरों में व्यस्त थे, समाज प्रबोधन हेतु जनता से व्यापक सम्पर्क के लिए प्रवृत्त करना आदि बातें उन्हीं के कार्यकाल में हुई। चीन के आक्रमण की सूचना अनेक वर्ष पूर्व देकर भारतीय शासन को सजगता बरतने हेतु उन्होंने प्रेरित किया, 1962,1965 और 1971 के युद्ध प्रसंग में शासन से पूर्ण सहयोग किया, पाकिस्तानी और बंगलादेशी घुसपैठियों की भारत विरोधी कार्यवाही के बारे में शासन को सतर्क किया, कश्मिर का भारत में विधिवत् विलय करने में सरदार पटेल को महत्वपूर्ण सहयोग किया और चीन के आक्रमण के पश्चात नेपाल का भारतीय गणराज्य से धार्मिक एवं सांस्कृतिक आधार पर संबंध सुदृढ करने का प्रयास किया।

प्रेरक घटनाओं के साथ-साथ समय-समय पर समस्याग्रस्त कठिण परिस्थितियों में श्री गुरुजी ने कार्यकर्ताओं का जो बहुमूल्य प्रबोधन किया था उसका वर्णन भी ग्रंथ में है। 1942 के भारत छोडो आन्दोलन व 1947 के मातृभूमि विभाजन के दुर्धर प्रसंगों पर जहां उन्होंने समयोचित मार्गदर्शन किया था वहीं श्रद्धेय महात्मा जी की हत्या के उपरान्त संघकार्य पर मरणान्तक आघात करने के कांग्रेसी सत्ताधारी और उनके सहप्रवासियों के प्रयासों को निष्फल बनाने हेतु भी सफल नेतृत्व प्रदान किया था। उसी प्रकार 1949 में नागपुर और जौनपुर में, 1954 में सिंदी (विदर्भ) में, 1960 में इंदौर में और 1972 में ठाणें (महाराष्ट्र) में भारत के सभी कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन किया था।

हमें विश्वास है कि अनेक प्रेरक जीवनप्रसंग, समयोचित उद्-बोधक मार्गदर्शन और प्रत्यक्ष संपर्क के द्वारा लोगों को संघकार्य में प्रवृत्त करने का उनका अपूर्व कौशल, इस पावन त्रिवेणी संगम में मुक्त अवगाहन करने का सुअवसर इस जीवनी के द्वारा पाठकों को प्राप्त होगा। श्री गुरुजी के आध्यात्मिक जीवन के संबंध में उनके ज्येष्ठ गुरुभाई श्री अमिताभ महाराज से उपलब्ध जानकारी स्व. श्री बाबुराव चौथाईवाले ने लिपिबद्ध की थी। की जीवनी के संदर्भ में अन्य साहित्य परिश्रमपूर्वक एकत्र कर, उनका यथोचित उपयोग करने के लिए श्री बापूराव भिशीकर को उपलब्ध करा देनेवाले सर्वश्री बापूराव वराडपांडे, राम बोंडाले, कौशलेंद्र जी आदि कार्यकर्ताओं के प्रति हम कृतज्ञ है। मूल मराठी ग्रंथ का हिन्दी में धाराप्रवाह सरल भाषांतर नागपुर के श्री बालासाहेब सकदेव, श्री पद्माकर भाटे और श्री मधुकर हुद्दार ने किया है। पत्रकारिता को जीवनवृत्ति के रुप में स्वीकारने वाले श्री पद्माकर भाटे अनेक वर्षो तक नागपुर के दैनिक युगधर्म के प्रमुख संपादक रहे तथा राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय सामयिक प्रश्नों पर विपुल लेखन कार्य किया है। वर्तमान में विश्व संवाद केन्द्र नागपुर के प्रमुख के नाते कार्य कर रहे है।

श्री प्र. मु. बालासाहेब सकदेव अनेक वर्ष उ. प्र. व बंगाल में संघ के प्रचारक रहकर कुछ दिन राष्ट्रशक्ती व युगधर्म के सम्पादन से जुडे रहे और बाद में नागपुर के धरमपेठ महाविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक के रुप में सेवानिवृत्त हुए। प. पू. श्री गुरुजी समग्र-दर्शन के खण्डों के सम्पादन में भी उनका योगदान रहा।

मराठी व अंग्रेजी में स्नातकोत्तर श्री मधुकर जयदेव हुद्दार नागपुर के धरमपेठ उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में शिक्षक रहे तथा संघ का पंजाब पर्व नाम की पुस्तक लिखी। वर्तमान में विश्व संवाद केन्द्र नागपुर में कार्यरत है।

उपर्युक्त तिनों सुहृदों के प्रति ऋण-निर्देश तथा हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं।

कृतज्ञता दैनिक स्वदेश के पूर्व सम्पादक श्री माणकचंद्र बाजपेयी के प्रति भी है जिन्होंने पूरी पुस्तक को बारीकीसे पढ़कर ग्रन्थ की भाषा को परिमार्जित किया। ऐतिहासिक घटनाओं के तिथिक्रम एवं तथ्यात्मकता की दृष्टि से बहुमूल्य सुझावों के द्वारा हमें उपकृत करने वाले श्री देवेन्द्रस्वरुप अग्रवाल भी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

पूज्य श्री गुरुजी के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आये सहस्त्रावधि व्यक्ति आज भी हमारे बीच विद्यमान हैं। इस जीवनी का अवगाहन करते हुए यदि कोई महत्वपूर्ण तथ्य उनके ध्यान में आते हैं जिन्हें सम्मिलित कर लेने से श्री गुरुजी के व्यक्तित्व के किसी अनछुए पहलू पर प्रकाश पड़ता हो तो उन्हें भिजवाने का कष्ट करें जिससे अगले संस्करण में सम्मिलित कर पुस्तक की गरिमा को बढ़ाया जा सके।

- लोकहित प्रकाशन, लखनऊ

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना ३

प्रकाशकीय १

१ पृष्ठभूमि १०

२ शिक्षा और संस्कार १४

२.१ माता की गोद में १४

२.२ जन्मजात प्रतिभा १५

२.३ एक मार्मिक प्रसंग १७

३ काशी में अध्ययन एवं अध्यापन १९

३.१ असीम ज्ञान-पिपासा १९

३.२ शारीरिक साधना २०

४ जीवन की दिशा २३

४.१ 'हिमालय' की पुकार' २४

४.२ संघ में पदार्पण २७

५ सारागाछी आश्रम में ३०

५.१ गुरु की खोज में ३१

५.२ दीक्षा ग्रहण ३४

५.३ कुछ सुखद संस्मरण ३८

५.४ कर्मक्षेत्र में पदार्पण ४१

६ जीवन कार्य का निर्धारण ४३

६.१ संघ-संस्थापक ४३

६.२ एक अनुपम कार्य-पद्धति का विकास ४५

६.३ श्री गुरुजी – जीवन कार्य का निश्चय ४६

६.४ डाक्टर जी का व्यापक आकलन ४९

६.५ मज्जागत-सेवाभाव ५२

७ सरसंघचालक की दायित्व की स्वीकृति ५४

७.१ उत्तराधिकारी का चयन ५४

७.२ डाक्टर जी की विरासत ५७

७.३ जीवन कार्य के अनुरूप व्यक्तित्व परिवर्तन ६१
८ रक्तरंजित देश विभाजन ६४
८.१ परिस्थिति का आहवान ६५
८.२ '१९४२' ६७
८.३ श्री गुरुजी की व्यापक सोच ६९
८.४ राष्ट्र के संकट की घड़ी में ७१
८.५ देश विभाजन के कगार पर ७३
८.६ स्वयंसेवकों की ऐतिहासिक भूमिका ७५
८.७ श्री गुरुजी का तेजस्वी उदाहरण ७७
८.८ एक वरिष्ठ सहकारी का विश्लेषण ७९
८.९ अन्तिम सत्य नहीं : श्री गुरुजी ८०
८.१० श्री गुरुजी की सतर्कता ८०
९ गांधीजी की हत्या: संघ विरोधी अभियान ८४
९.१ अमृतभरा हृदय ८४
९.२ राष्ट्रीय सामंजस्य की आवाज ८८
९.३ अग्नि परीक्षा का प्रारंभ ९०
९.४ कारागार बना ध्यान मंदिर ९३
९.५ 'विस्तृत कारागार' ९५
९.६ न्याय की माँग ९७
९.७ सरकार की अत्याचारी नीति १०१
१० सत्याग्रह-पर्व की सार्थक फलश्रुति १०४
१०.१ 'अधर्म से धर्म' का संघर्ष १०४
१०.२ सरकार की आँखें खुलने लगीं १०६
१०.३ प्रतिबन्ध अचानक क्यों हटाया गया? १११
१०.४ सरकार ने भी स्वीकारा ११४
१०.५ गृहमंत्री ने भी स्वीकारा ११५
११ स्वागत पर्व: अचूक मार्गदर्शन ११७
११.१ प्रखर राष्ट्रीय दृष्टि १२०
११.२ भीषण घड़ी में शांति की मूर्ति १२२

११.३ लक्ष्य पर सतत दृष्टि १२४
१२ आपदग्रस्तों के आशा स्तंभ १२९
१२.१ जनशक्ति को आवाहन १२९
१२.२ असम में भूकम्प १३३
१२.३ विभिन्न परिस्थितियों में १३४
१२.४ भारतीय जनसंघ का उदय १३५
१२.५ चुनावी कोलाहल से दूर १३६
१२.६ चुनाव परिणामों के परिप्रेक्ष्य में १३८
१२.७ हमारा वोट किसे ? १३९
१२.८ वापस न बुला सकने का दुष्प्रभाव १३९
१२.९ दो अर्द्ध-सत्य १४०
१२.१० एकदलीय तन्त्र किसी भी आवरण में स्वीकार्य नहीं १४१
१२.११ हिन्दू-विरोधी थैली के चट्टे-बट्टे 142
१२.१२ उचित चयन के लिए 142
१३ स्वदेशी और गो-रक्षा अभियान 144
१३.१ स्वदेशी भाव जागरण 144
१३.२ क्रान्तिकारियों के प्रति 148
१३.३ साधुओं के समक्ष 149
१३.४ ऐतिहासिक हस्ताक्षर संग्रह 151
१४ सजग राष्ट्र प्रहरी 162
१४.१ चुनावी जय-पराजय के परे 162
१४.२ भाषावार राज्य-रचना 167
१४.३ पंजाब के संदर्भ में 169
१४.४ गोवा मुक्ति के समय 172
१४.५ कश्मीर विलयन 175
१४.६ डॉ.मुखर्जी का बलिदान 178
१४.७ ईशान्य भारत 179
१४.८ राजनीतिक क्षेत्र में समन्वय 181
१४.९ पितृ-वियोग 183

१५ व्यक्ति से बड़ा कार्य 185
१५.१ ५१वें जन्मदिन का अपूर्व संदेश 185
१५.२ डॉ. अंबेडकर द्वारा बौद्ध मत की दीक्षा 191
१५.३ ब्रह्मदेश के प्रमुख से 194
१५.४ अमेरिका से अपेक्षा 196
१६ युद्ध कालीन दिशा-दर्शन 200
१६.१ प्रेरणास्थान का निर्माण 200
१६.२ एक अपूर्व मधुर मिलन केन्द्र 203
१६.३ चीन के आक्रमण के सन्दर्भ में 206
१६.४ महाराजा का प्रेरक सन्देश 215
१६.५ सरकारी निर्णय की पत्रों में प्रतिक्रिया 217
१६.६ आक्रामक भूमिका हो 217
१७ राष्ट्रीय पुनर्जागरण के विभिन्न कार्यों के लिए मार्गदर्शन 223
१७.१ श्रमिक क्षेत्र में 231
१७.२ कुछ प्रश्न व उत्तर 233
१७.३ राजनीतिक क्षेत्र के कार्यकर्ताओं के लिए 235
१७.४ शिक्षा क्षेत्र के बारे में 237
१७.५ वैश्विक हिन्दुमंच का शुभारंभ 243
१७.६ परिषद् के प्रमुख सूत्र 248
१७.७ श्री गुरुजी ने भी जयघोष किया 251
१८ कैंसर की अशुभ छाया 256
१८.१ शल्यक्रिया 260
१८.२ नित्यक्रम फिर से प्रारम्भ 264
१८.३ पूर्वी पाकिस्तान में अत्याचार के समय 271
१९ अंतिम अभ्यास वर्ग 276
१९.१ व्यापक चिंतन मंथन 278
२० महाप्रयाण 287
२१ बादलों से घिरा सूर्य 299
२१.१ हिन्दुत्व का जागतिक दर्शन 299

२१.२ सामाजिक विवादों से परे 301
२१.३ सर्वसमावेशक दृष्टि 302
२१.४ समग्र हिन्दू जीवन-दृष्टि 304
२१.५ चुनावों के बारे में चेतावनी ३०७
२१.६ विरोधियों के प्रति भी सद्-भाव ३०९
२१.७ सद्-गुणों की उपासना करें ३१२
२२ राष्ट्र की श्रद्धांजलि ३१४
२२.१ नेताओं के श्रद्धासुमन ३१५
२२.२ समाचार पत्रों की श्रद्धाञ्जलि ३१७
२३ स्नेहिल मार्गदर्शक ३२३
२३.१ समाज के साथ एकरस, एकरूप ३२३
२३.२ मतभेद होने पर भी मनभेद नहीं ३२६
२३.३ परिवार का ही भाव ३२७
२३.४ अदम्य आत्मचेतना ३३०
२३.५ आत्मविश्लेषण की दृष्टि ३३१
२३.६ संघ नेतृत्व की अभंग धारा ३३२
२३.७ कार्यमग्नता ही जीवन ३३४
२३.८ वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ३३५
२३.९ नित्य-नियमित संस्कार पर जोर ३३६
२३.१० जगन्मित्र ३३८
२३.११ गांधी जी का श्रद्धापूर्वक स्मरण ३३८
२३.१२ बहुमुखी प्रतिभा ३४०
२३.१३ मूल कार्य पर एकाग्र दृष्टि ३४३
परम पूजनीय श्री गुरुजी का जीवनपट ३४४
श्री गुरुजी की जन्मपत्रिका ३४८
२४ परिशिष्ट-१ .... ३४९
२५ परिशिष्ट-२ .... ३५१
२५.१ गुरुजी मेरे मरीज थे ३५१
२५.२ उत्कृष्ट हिन्दी ३५२

२५.३ दैदीप्यमान गुणावली ३५३

२५.४ राजनैतिक दर्शनकार.. ३५४

१ पृष्ठभूमि

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के जनक स्व. डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार ने निरन्तर 15 वर्षों तक अविराम परिश्रम करके संघ को अखिल भारतीय स्वरुप दिया। 1940 के संघ शिक्षा वर्ग में भाग लेने हेतु आये कार्यकर्ताओं के समक्ष अपना अंतिम भाषण देते हुए डॉक्टर जी के उद्-गार थे कि मैं यहां हिन्दू राष्ट्र का लघु रुप देख रहा हूं। बाद में 21 जून 1940 को डाक्टर जी ने श्री माधव सदाशिव गोलवलकर उपाख्य श्री गुरुजी के कंधों पर संघ का सारा दायित्व सौंपकर इहलोक की अपनी यात्रा समाप्त कर सबसे बिदा ली।

डाक्टर जी के बाद श्री गुरुजी संघ के द्वितिय सरसंघचालक बने और उन्होंने यह दायित्व 1973 की 5 जून तक अर्थात लगभग 33 वर्षों तक संभाला। ये 33 वर्ष संघ और राष्ट्र के जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण रहे। 1942 का भारत छोडो आंदोलन, 1947 में देश का विभाजन तथा खण्डित भारत को मिली राजनीतिक स्वाधीनता, विभाजन के पूर्व और विभाजन के बाद हुआ भीषण रक्तपात, हिन्दू विस्थापितों का विशाल संख्या में हिन्दुस्थान आगमन, कश्मीर पर पाकिस्तान का आक्रमण, 1948 की 30 जनवरी को गांधीजी की हत्या, उसके बाद संघ-विरोधी विष-वमन, हिंसाचार की आंधी और संघ पर प्रतिबन्ध का लगाया जाना, भारत के संविधान का निर्माण और भारत के प्रशासन का स्वरूप व नितियों का निर्धारण, भाषावार प्रांत रचना, 1962 में भारत पर चीन का आक्रमण, पंडित नेहरू का निधन, 1965 में भारत-पाक युद्ध, 1971 में भारत व पाकिस्तान के बिच दूसरा युद्ध और बंगलादेश का जन्म, हिंदुओं के अहिंदूकरण की गतिविधियाँ और राष्ट्रीय जीवन में वैचारिक मंथन आदि अनेकविध घटनाओं से व्याप्त यह कालखण्ड रहा। इस कालखण्ड में परम पूजनीय श्री गुरुजी ने संघ का पोषण और संवर्धन किया। भारत भर अखंड भ्रमण कर सर्वत्र कार्य को गतिमान किया और स्थान-स्थान पर व्यक्ति- व्यक्ति को जोड़कर सम्पूर्ण भारत में संघकार्य का जाल बिछाया। डाक्टर जी ने सूत्ररुप में संघ की विचार-प्रणाली बतायी थी। उसके समग्र स्वरुप को अत्यंत प्रभावी ढंग से श्री गुरुजी ने उद् घाटित किया। विपुल पठन-अध्ययन, गहन चिंतन, आध्यात्मिक साधना व गुरुकृपा, मातृभूमि के प्रति निस्वार्थ समर्पणशीलता, समाज के प्रति असीम आत्मीयता, व्यक्तियों को जोडने की अनुपम कुशलता आदि गुणों के कारण उन्होंने सर्वत्र संगठन को तो मजबूत बनाया ही, साथ ही हर क्षेत्र में देश का परिरक्व वैचारिक मार्गदर्शन भी किया। भारत का राष्ट्र-स्वरुप, उसका सुनिश्चित जीवन-कार्य और आधुनिक काल में उसके पुनरुत्थान की वास्तविक दिशा के सम्बन्ध में उनके ठोस व तथ्यपरक विचार तो इस देश के लिए महान विचार-धन ही सिद्ध हुए हैं। इस प्रकार उनका जीवन अलौकिक एवं

ऋषितुल्य था। अध्यात्मिक दृष्टी के महान् योगी किन्तु समष्टिरुप भगवान की पावन अर्चना के लिए जनसामान्य के बीच रहकर उनके हितों की चिंता करनेवाला यह महापुरुष एकांत-प्रिय तथा मुक्त होने पर भी अपने दायित्व और कर्तव्य-बोध से राष्ट्र और समाज-जीवन में अत्यंत सक्रियता का परिचय देनेवाला विलक्षण प्रतिभा का धनी था। राष्ट्र- जीवन के अंगोपांग की आदर्शवादी स्थिति की टोह लेनेवाला वह व्यक्तित्व था। संघ के विशुद्ध और प्रेरक विचारों से राष्ट्रजीवन के अंगोपांगों को अभिभूत किये बिना सशक्त, आत्मविश्वास से परिपूर्ण और सुनिश्चित जीवन कार्य पूरा करने के लिए सक्षम भारत का खड़ा होना असंभव है, इस जिद और लगन से उन्होंने अनेक कार्यक्षेत्रों को प्रेरित किया। विश्व हिंदू परिषद्, विवेकानंद शिला स्मारक, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, भारतीय मजदूर संघ, वनवासी कल्याण आश्रम, शिशु मंदिरों आदि विविध सेवा संस्थाओं के पीछे श्री गुरुजी की ही प्रेरणा रही है। राजनीतिक क्षेत्र में भी डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी को उन्होंने पं. दिनदयाल उपाध्याय जैसा अनमोल हीरा सौंपा। तात्कालिक संकटों के निवारणार्थ समय-समय पर भिन्न-भिन्न समितियों का गठन कर उन्हें कार्य-प्रवृत्त किया। स्वयं को किसी भी आसक्ति अथवा ईषणा का कभी कोई स्पर्श तक नहीं होने दिया। इसीलिए श्री गुरुजी के वैचारिक मार्गदर्शन की राष्ट्रजीवन पर एक व्यापक एवं अमिट छाप पड़ी है। राष्ट्रीय विचार, जीवन दृष्टी और जीवन निष्ठा का कल्याणकारी वरदान जिन लोगों ने श्री गुरुजी के कार्यकाल में ग्रहण किया ऐसे सहस्त्रावधि लोग आज देश भर में कार्यरत हैं। अराष्ट्रीय और दोषपूर्ण विचार प्रणाली से पूर्वकाल में प्रभावित लोग अपने भ्रमों का निवारण होने के कारण संघ की विचारधारा से जुड़ते जा रहे हैं। उच्चतम शासकीय स्तर से संघ के विरुद्ध लगाये गये आरोप भी मिथ्या और निराधार साबित हुए हैं। वैसे ही स्वार्थी सत्तारूढ़ राजनीतिज्ञों द्वारा संघ को बदनाम करने हेतु किया जानेवाला अपप्रचार भी निष्प्रभावी होकर शिथिल पड़ता गया है। यही नहीं अपप्रचार करनेवाले लोग ही जनता की निगाह से उतरते गये और अपनी विश्वासार्हता खो बैठे।

किन्तु श्री गुरुजी विरोधों की जरा भी परवाह न करते हुए निर्भयता से अपने अति प्राचीन सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का विचार जनता के बीच प्रस्तुत करते रहे। श्री गुरुजी ने केवल कहा ही नहीं बल्कि विशुद्ध राष्ट्रनिष्ठा रखने वाले सहस्त्रों व्यक्ति खड़े किये, यही उनकी विशेषता थी। अपप्रचार के कारण श्री गुरुजी अनेक बार विवाद का विषय बने। उनके द्वारा प्रतिपादित अनेक मतों को विकृत रूप में प्रचारित कर राजनीतिक लाभ उठाने का भी विरोधियों द्वारा प्रयास किया गया। किंतु घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनः चन्दनं चारु गंधम् के न्याय से श्री गुरुजी कभी विचलित या प्रक्षुब्ध नहीं हुए। उन्होंने अपना स्तर बनाये रखा। उनके निर्मल मन में कभी द्वेषभावना प्रवेश नहीं कर सकी। उन्होंने कभी किसी का बुरा नहीं चाहा। हिन्दू जीवन-विचार और उस विचार के मूर्त प्रतीक

स्वरूप हिन्दुराष्ट्र के पुनरुत्थान के उद्देश्य से वे कभी डिगे नहीं। व्यवहार में अत्यंत स्नेहशील श्री गुरुजी सिद्धान्तों के मामलों में अत्यन्त आग्रही थे। आत्मविस्मृति अथवा आत्म-वंचना की ओर ले जोनेवाला अथवा राष्ट्र की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाने वाला कोई समझौता उन्हें स्वीकार नहीं हुआ।

ऐसे व्यक्तित्व के प्रति लोगों में जिज्ञासा पैदा हो, यह स्वाभाविक ही है। श्री गुरुजी को कर्करोग से जर्जर अपना शरीर त्यागे लगभग 24 वर्ष हो रहे है, फिर भी संघ स्वयंसेवकों के अंतःकरण में श्री गुरुजी की अनेक प्रेरक स्मृतियाँ आज भी ताजा हैं। इतना ही नहीं, तो पूजनीय श्री गुरुजी द्वारा समय-समय पर एक द्रष्टा के रूप में जो विचार व्यक्त किये गये उनका भी उत्कटता ले स्मरण कराने वाली परिस्थिति आज देश में निर्माण हो रही है। प्रत्येक देश का समाज और उसकी गुणवत्ता ही राष्ट्रीय गौरव का आधार माने जाते है। केवल शासन सत्ता में परिवर्तन से यह गुणवत्ता निर्माण नहीं होती। सातत्य से चारित्र्य निर्माण करनेवाले गुणों का संस्कार करानेवाली व्यवस्था का होना अत्यावश्यक है, यह विचार श्री गुरुजी आग्रहपूर्वक रखते थे। इसकी अनुभूति हमें आपातकाल के बाद के कालखंड में हुई। सभी कार्यों और परिवर्तन का केन्द्रबिन्दु व्यक्ति ही है। व्यक्ति यदि अच्छा नहीं रहा तो अच्छी योजना व व्यवस्था भी वह बर्बाद कर डालता है। भारत के संविधान के विषय में जो विवाद उठ खड़ा हुआ है, उस संदर्भ में श्री गुरुजी द्वारा मानवी गुणवत्ता पर बल दिये जाने का विचार ही अत्यंत सार्थक प्रतीत होता है। डाक्टर हेडगेवार और श्री गुरुजी, इन दो कर्तृत्ववान तथा ध्येयसमर्पित महापुरुषों के उत्तराधिकारी के रूप में सरसंघचालक पूजनीय बालासाहेब देवरस ने भी संघ को सम्पूर्ण समाज के साथ समरस बनाने की दिशा में सेवाकार्यों पर अधिक बल देकर उल्लेखनीय कार्य किया है। संघ के विरोधियों ने इन तीनों में वैचारिक भिन्नता का आभास निर्माण कर भ्रम फैलाने का प्रयास किया किंतु स्वयं बालासाहेब ने इस भ्रामक प्रचार का अनेक प्रसंगों पर स्पष्ट शब्दों में निराकरण किया। वे कहा करते कि श्री गुरुजी का चयन डाक्टर जी ने स्वयं किया था और उसी तरह श्री गुरुजी ने मेरा चयन किया है, बस यही एक तथ्य हमारे बीच वैचारिक भिन्नता का भ्रम फैलानेवालों को पूर्ण और सशक्त उत्तर है।

श्री गुरुजी का समग्र चरित्र लिखना हो तो वह एक बहुत बडा ग्रंथ हो जायेगा। उनके विचारों का संकलन ही करना हो अथवा उनके चुने हुए पत्रों को ही प्रकाशित करना हो तो सैकड़ों पृष्ठ भी कम पड़ेंगे। वैसे देखा जाए तो श्री गुरुजी के संघजीवन में उनका निजी अथवा वैयक्तिक कुछ था ही नहीं। जिस तरह डाक्टर जी ने व्यक्तिगत घर-गृहस्थी बसाने का कोई विचार नहीं किया, उसी प्रकार श्री गुरुजी ने भी अपनी व्यक्तिगत गृहस्थी नहीं बसायी। संघ को, पर्याय से राष्ट्र को अपना परिवार माना।

उनके ईश्वर-निष्ठ जीवन में विराट् समाजपुरुष उनका आराध्य देव बना और जीवन भर वे उसी की निष्काम सेवा भक्तिभाव से करते रहे। गीता के कर्मयोग को अपने जीवन में उतारा। संघविचार और अपनी मातृभूमि को गौररव प्राप्त कराने के लिए प्रभावी प्रयत्नों की पराकाष्ठा ही उनके 67 वर्षीय जीवन का अभिन्न अंग रहा। जिस देह से यह सेवा नहीं हो सकती उस देह के प्रति मोह उनके मन को कभी स्पर्श नहीं कर पाया। कर्क रोग अपना काम करेगा, किंतु मुझे अपना अंगीकृत कार्य करते रहना चाहिये। ऐसा वे हँसकर कहा करते थे। श्री गुरुजी का जीवन विरागी किन्तु कर्तव्यप्रवण था। ऐसे राष्ट्रसमर्पित महान् कर्मयोगी जीवन के बारे में जिज्ञासुओं का समाधान करने तथा राष्ट्र की नयी पीढ़ी को व्यक्तिगत तथा समाज जीवन के हर क्षेत्र में चिरंतन प्रेरणा स्त्रोत के रूप में विद्दमान एक महान् आदर्श जीवन का परिचय कराने के उद्देश्य से ही यह एक प्रयास है।

*

२ शिक्षा और संस्कार

कई लोग ऐसे होते है जिन्हें धनी और किर्तिमान परिवार में जन्म लेने के कारण जन्मतः महानता का परिवेश प्राप्त होता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पिछले तीनों सरसंघचालकों के घरानों को इस प्रकार की महानता की पृष्ठभूमि प्राप्त नहीं थी। श्री गुरुजी का जन्म अत्यंत सामान्य स्थितिवाले परिवार में हुआ। श्री गुरुजी मूलतया कोंकण के गोलवली नामक गाँव के पाध्ये घराने के थे। पाध्ये अर्थात् पुरोहित व्यवसाय से सम्बद्ध। यह घराना कोंकण से प्रथम पैठण आया और बाद में नागपुर स्थानांतरित हुआ। पूजनीय श्री गुरुजी के पितामह श्री बालकृष्ण पंत नागपुर आये। इस स्थानांतरण से उनका पुरोहिती-व्यवसाय से सम्बन्ध टुट गया इसलिये गोलवलकर पाध्ये से केवल गोलवलकर उपनाम ही शेष रहा। श्री गुरुजी के पिता श्री सदाशिवराव को बचपन से ही पितृ-वियोग का आघात सहन करना पडा। अतः शिक्षा अधूरी छोडकर आजीविका चलाने के लिए उन्हें बाध्य होना जड़ा। अनेक वर्षों तक दरिद्रता में गृहस्थी चलाने की यातना का उन्हें सामना करना पड़ा। नागपुर के कामठी में ही श्री गुरुजी के पिता श्री सदाशिवराव को डाक-तार विभाग में नौकरी मिली। श्री गुरुजी की माताजी नागपुर के ही रायकर घराने की थीं, नाम था लक्ष्मीबाई। व्यवहार में श्री सदाशिवराव भाऊजी और श्रीमती लक्ष्मीबाई ताई नाम से सम्बोधित किये जाते थे। ताई- भाऊजी दम्पत्ती को कुल चार पुत्र-रत्न प्राप्त हुए। किन्तु प्रथम दो पुत्र एक-एक वर्ष की आयु में ही काल के ग्रास बने। जब तीसरा पुत्र हुआ तो उसका नाम अमृत रखा गया। किंतु अमृत भी आयु के पन्द्रहवें साल में सन्निपात का शिकार होकर काल का ग्रास बना।

२.१ माता की गोद में

श्री गुरुजी अपने माता-पिता की चौथी संतान के रूप में जन्मे। उनका जन्म माघ कृष्ण एकादशी (विजया एकादशी) (दक्षिण में अमान्त मास होते है) विक्रम संवत् 1962 तथा आंग्ल तिथि 19 फरवरी 1906 को तड़के साढ़े चार बजे नागपुर के ही श्री रायकर के घर में हुआ। उनका नाम माधव रखा गया। परनेतु परिवार के सारे लोग उन्हें मधु नाम से ही सम्बोधित करते थे। बचपन में उनका यही नाम प्रचलित था। ताई-भाऊजी की कुल 9 संतानें हुई थीं। उनमें से केवल मधु ही बचा रहा और अपने माता-पिता की आशा का केन्द्र बना। मधु जब केवल 2 वर्ष का था तभी उनके पिता श्री सदाशिवराव ने डाक-तार विभाग की नौकरी छोड़कर शिक्षक का पेशा अपनाया। अध्यापक की यह नौकरी उन्हें छत्तीसगढ़ में सरायपाली नामक देहात में मिली। सरायपाली ग्राम रायपुर से 90 मील और रायगढ़ से 60 मील की दूरी पर है। उन

दिनों यातायात का कोई साधन न होने से ऐसे स्थानों पर जाने के लिये या तो पैदल चलकर या फिर घोड़े पर जाना होता था। आज की परिभाषा में हम जिसे अत्यंत पिछड़ा और आधुनिकता से कटा क्षेत्र कहते हैं, ऐसे क्षेत्र में मधु को बचपन बिताना पड़ा। किंतु यदि किसी का जीवन उत्तम बनाना हो तो प्रतिकुलता पर मात करनेवाली कुछ अनुकूलता भी ईश्वर उसे प्रदान करता है। हाँ, उसे धारण करने की क्षमता उस व्यक्ति में होनी चाहिए। यह क्षमता श्री गुरुजी में बचपन से ही थी। और इसीलिए माता-पिता द्वारा किये गये सुसंस्कारों को वे शीघ्रता से ग्रहण करते गये। भाऊजी जहाँ स्वाभिमानी, ज्ञानदान में आस्था रखनेवाले एक सच्चरित्र शिक्षक थे, वहीं ताईजी एक अत्यंत धर्मपरायण सुगृहिणी और आदर्श माता थी। मधु जब 2 वर्ष का था तभी से उसकी शिक्षा प्रारंभ हो गई। भाउजी पढ़ाते और मधु उसे आसानी से कंठस्थ कराता जाता। ताईजी की शालेय शिक्षा नहीं हो पाई थी किंतु संस्कारक्षम कथाओं का विपुल भंडार उनके पास था। उस सारे ज्ञान- भंडार का लाभ उत्कृष्ट स्मरणशक्तिवाले मधु ने उठाया। बचपन में किस प्रकार के सुसंस्कार उन्हें प्राप्त हुए इसका उल्लेख आगे चलकर सरसंघचालक के नाते पुणें में दिये अपने एक भाषण में उन्होंने किया था। उस भाषण में उन्होंने कहा था – "बचपन का स्मरण होते ही मेरा मन अनेक मधुर स्मृतियों से भर उठता है। वे सारी घटनाएँ मनः चक्षुओं के सामने एक-एक करके उभरने लगती हैं। सुबह तड़के मुझे नींद से जगाया जाता। उसी समय मेरी माँ एक ओर अपने हाथों से घर का कामकाज करती थीं और अपने मुँह से कोई न कोई स्तोत्र गान करती हुई ईश्वर का नामस्मरण भी करती थीं। ताई के मधुर मंगल स्वर मेरे कानों में गूँजते। प्रभात के शांत और प्रसन्न क्षणों में मधुर स्वरों के कानों में गूँजने से मेरे बाल मन पर कितनी गहरी और पवित्र छाप पड़ी होगी ? "

२.२ जन्मजात प्रतिभा

माधव के बाल्यकाल की अनेकविध घटनाएँ इस बात का विश्वास दिलाती हैं कि माधव में कुशाग्र बुद्धि, ज्ञान की लालसा, असामान्य स्मरण शक्ति, अन्यों के दु:ख दर्दों के निवारणार्थ जूझने की वृत्ति, सहनशिलता की पराकाष्ठा, निरहंकारिता और मन की निर्मलता जैसे गुणों का समुच्चय बचपन से ही विकसित हो रहा था। प्रत्येक गुण का आकर्षण व सीखने की तीव्र अभिरुचि भी माधव में दिखलाई पड़ती थी। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक पद का दायित्व श्री गुरुजी पर आया तब लोगों को उनकी अमुल्य गुण-सम्पदा की पहचान विशेष रूप से हुई। किंतु इन सारे गुणों का विकास और संवर्धन उनके छात्र-जीवन में ही हुआ था, यह बात उनके जीवन चरित्र से स्पष्ट होती है। उदारणार्थ पठन-पाठन, अद्-भुत स्मरण शक्ति और कंठस्थ करने की कला, हिंदी व अंग्रेजी भाषाओं पर समान प्रभुत्व जैसे गुणों का बिजारोपण उनके

बाल्यकाल में ही हो चुका था। प्राथमिक शिक्षाकाल में ही उनके पठन-पाठन का दायरा काफी विस्तार पाने लगा था। विविध प्रकार की पुस्तकों को पढ़ने के प्रति उनका काफी लगाव था। जब वे माध्यमिक शिक्षा ग्रहण कर रहे थे तभी उनका आंग्ल नाटककार शेक्सपीयर के सारे नाटकों का पठन हो चुका था। अपने सहपाठियों को वे इन नाटकों की कथाएँ अत्यंत रोचक ढ़ंग से सुनाया करते थे। कक्षा में जब शिक्षक पाठ्य पुस्तक पढ़ा रहे होते तब गुरुजी कोई दूसरी ही पुस्तक पढ़ रहे होते किंतु कक्षा में क्या चल रहा है इसकी ओर भी उनका ध्यान रहता। कक्षा में माधव के हाथों में अन्य पुस्तक देखकर शिक्षक ने सोचा कि उसका ध्यान पढ़ाई की ओर नहीं है। अतः एक दिन कक्षा में माधव को सबक सिखाने के इरादे से शिक्षक ने पाठ्य पुस्तक का पाठ पढ़ रहे छात्र को बीच में रोक कर आगे का हिस्सा पढ़ने का आदेश माधव को दिया। माधव ने बिना हिचक पाठ्य पुस्तक हाथ में ले ली और अपने वर्गबंधु ने जहाँ से पढ़ना बन्द किया था ठीक उस वाक्य से अगला हिस्सा पढ़ना शुरू कर दिया। यह देखकर कक्षा के छात्र और शिक्षक चकित रह गये। माधव को सबक सिखाने का शिक्षक का दांव विफल हो चुका था।

प्राथमिक शाला मे ही भाऊजी अपने माधव को अंग्रेजी भी सिखाने लगे थे। माधव ने इस विषय में भी इतनी शीघ्रता से प्रगति की कि जब प्राथमिक की चौथी कक्षा में थे तभी वे अपने नागपुर स्थित मामा को अंग्रेजी में पत्र लिखा करते थे। पिताजी की नौकरी हिंदीभाषी प्रदेश में थी और बार-बार स्थानांतरण के कारण रायपुर, दुर्ग, खंडवा आदि अनेक स्थानों का पानी माधव को पीने को मिला। इस अवधि में वे हिंदी भाषा से अच्छी तरह परिचित हो गये। मातृभाषा के नाते मराठी का ज्ञान तो उन्हें था ही। अनेक स्थानों पर वास्तव्य का एक परिणाम यह भी हुआ कि भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी लोगों के सम्पर्क में वे आये। मन में संकुचितता नहीं रही और यह मानसिकता बनी कि सभी भारतीय भाषाएँ अपनी ही हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक के नाते श्री गुरुजी को जीवन भर अनगिनत, असंख्य भाषण देने पड़े। उनका वक्तृत्व अत्यंत ओजस्वी और स्फूर्तिदायक रहा करता था। इस वक्तृत्व-गुण का विकास भी शालेय जीवन से ही हुआ था। विषय की पूर्ण तैयारी कर वक्तृत्व-स्पर्धा में प्रथम क्रमांक का पुरस्कार पाने का पराक्रम भी उन्हों ने बचपन में कर दिखाया था। खूब खेलना, खूब पढ़ना, मित्रों को यथासंभव मदद करना, नम्रता बरतना, अपने जिम्मे आनेवाले घरेलू काम खुशी से करना, अन्य लोगों के सुख-दुखों से समरस होना, इस प्रकार शालेय जीवन का काल उन्होंने सार्थक कर दिखाया। भावी कर्तृत्वसम्पन्न जीवन की नींव इसी कालखंड में रखी गई।

श्री गुरुजी के पिताजी ने एक बार कहा था कि माधव एक बड़ा कर्तृत्वशाली व्यक्ति बनेगा, यह तो उसके शालेय जीवन में प्रस्र उसकी गुणवत्ता से ही अनुभव होता था। किन्तु वह इतना महान् बनेगा, यह कल्पना हमने नहीं की थी। संतानों में अकेला माधव ही बचा इसका भी अब मुझे कोई दुःख नहीं रहा, क्योंकि संघ स्वयंसेवकों के रूप में हजारों बच्चे ही मानों हमें पुत्र-रूप में प्राप्त हुए हैं। यह कहते समय श्री भाऊजी के चेहरे पर अपने अलौकिक पुत्र के बारे में अभिमान प्रकट होता और नेत्र धन्यता के आँसुओं से भर आते। किन्तु यह भी ध्यान में रखना होगा कि निस्पृहता, कर्तव्यनिष्ठा, धर्मनिष्ठा, परिश्रमशीलता और ज्ञान की उपासना आदि सारे गुण जो गुरुजी में प्रकट हुए वे उनके आदर्श माता-पिता के द्वारा उन पर किये गये सुसंस्कारों के कारण ही संभव हुए थे। इसका कृतज्ञतापूर्वक उल्लेख श्री गुरुजी ने अनेक बार किया है। श्री भाऊजी की लगन और दृढ़निश्चयी वृत्ति की कल्पना एक घटना से आ सकती है। अध्यापन का व्यवसाय अपनाते समय भाऊजी ने केवल मैट्रिक की परीक्षा ही उत्तीर्ण की थी। बीच में काफी कालखंड बीत चुका था। किंतु उन्होंने स्नातक बनने की ठानी। मैट्रिक होने ते बीस साल बाद इंटरमीडिएट की परीक्षा में वे उत्तीर्ण हुए और स्नातक की उपाधि ग्रहण करने के लिए उन्हें और सात वर्ष लगे। शिक्षक की नौकरी तो उन्होंने पूर्ण जिम्मेदारी के साथ निभायी किंतु बाकी बचे समय में वे ज्ञान-दान का कार्य अविरत करते रहे। माताजी ताईजी तो निश्चय की इतनी पक्की थीं कि 1934 में उन्होंने श्री बाबाजी महाराज नामक एक सत्पुरुष के साथ प्रयाग से आलंदी तक लगभग 1 हजार मील की पदयात्रा की और त्रिवेणी संगम के पवित्र गंगाजल से संत ज्ञानेश्वर की समाधि का अभिषेक कराया। इस प्रवास में एक दुर्घटना में उनकी सारी पीठ जल जाने से दाह वेदना होती रही परन्तु उसे सहन करते हुए भी वे चलती रहीं।

२.३ एक मार्मिक प्रसंग

पिताजी का जैसे-जैसे स्थानांतरण होता था वैसे-वैसे शालाएँ भी बदलती जाती थीं। माधव ने 1922 में चांदा (अब चंद्रपुर) के जुबिली हाईस्कुल से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। भाऊजी की इच्छा थी कि माधव मेडिकल कालेज में प्रवेश लेकर डाक्टर बने। इसीलिए भारी आर्थिक तनाव को सहन करते हुए उन्होंने माधवराव को पुणे स्थित फर्ग्युसन कॉलेज की विज्ञान शाखा में अध्ययन हेतु प्रवेश दिलाया। इंटर साइंस के बाद ही मेडिकल कॉलेज में प्रवेश मिल सकता था। किंतु इसी बीच मुम्बई सरकार ने एक आदेश निकालकर केवल मुबंई राज्य के निवासी-छात्रों के लिये ही कॉलेजों में प्रवेश सीमित करने की घोषणा की। मध्यप्रदेश और बेरार उन दिनों मुबंई राज्य का घटक नहीं था। इसीलिए तीन माह में ही माधवराव को अधूरी शिक्षा छोड़कर पुणे से नागपुर लौटना पड़ा। माधवराव को डाक्टर बनाने का भाऊजी का सपना साकार नहीं

हो सका। नागपुर लौटने पर ईसाई मिशनरी द्वारा संचालित हिस्लॉप कॉलेज की विज्ञान शाखा में उन्होंने प्रवेश लिया और 1924 में इंटर की परीक्षा विशेष प्राविण्य प्राप्त कर उत्तीर्ण की। कॉलेज जीवन के इन प्रथम 2 वर्षों में एक उत्कृष्ट खिलाड़ी और मेधावी छात्र के रूप में उन्होंने ख्याति अर्जित की। इस काल की एक संस्मरणीय घटना है। प्राचार्य गार्डिनर ने पढ़ाते समय बाईबिल के एक प्रसंग का संदर्भ प्रस्तुत किया। यह कॉलेज चूँकि ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित था, अतः वहाँ बाईबिल का अध्ययन अनिवार्य था। माधवराव ने बाईबिल का बड़े ध्यानपूर्वक गहराई से अध्ययन किया था। उनकी स्मरण शक्ति भी काफी तेज़ थी। सरसंघचालक बनने के बाद भी वे अपने भाषणों तथा वार्तालाप में बाईबिल के अनेक सन्दर्भ तथा ईसा मसीह के जीवन की अनेक घटनाओं और वचनों को उद्-धृत किया करते थे। कक्षा में प्राचार्य गार्डिनर द्वारा दिया गया सन्दर्भ गलत है ऐसा प्रतीत होते ही माधवराव ने उठकर उन्हें टोका और कहा, महाशय आप गलत सन्दर्भ दे रहे हैं। वहाँ जिस सन्दर्भ की आवश्यकता थी उसे मुँहजबानी उद्-धृत कर सुनाया तो प्राचार्य महोदय हक्का-बक्का रह गये। किन्तु बाईबिल का मुझसे अधिक ज्ञान इस विद्यार्थी को है, यह बात प्राचार्य महोदय को कैसे मंजूर होती ? सो उन्होंने तुरन्त बाईबिल की पुस्तक मंगवायी और स्वयं उस सन्दर्भ की छान-बीन की। उन्हें यह जानने में देर नहीं लगी कि छात्र माधवराव ने जो कहा था वही ठीक था। पुस्तक में मूल सन्दर्भ में हू-ब-हू वही निकला जैसे माधवराव ने उद्-धृत किया था। अपनी भूल को खिलाड़ी-वृत्ति से स्वीकार कर प्राचार्य महोदय ने माधवराव की पीठ थपथपायी। इन दो वर्षों के कॉलेज जीवन में अनेक बार कक्षा से अनुपस्थित रहकर भी माधवराव अन्य पुस्तकों का पठन किया करते थे। शाला हो या कॉलेज, केवल परीक्षा उत्तीर्ण होने के लिए ही अध्ययन करने की उनकी मनोवृत्ति नहीं थी। ज्ञानार्जन की भूख मिटाने के लिए उनका पठनकार्य अहोरात्र चलता रहता था, किन्तु इसके बावजूद शालेय अथवा कॉलेज के अध्ययन की उपेक्षा भी उन्होंने कभी नहीं की। सुविख्यात अंध वंशीवादक श्री सावलाराम के साथ उनकी गाढ़ी मित्रता थी। अतः इसी कालखंड में वंशीवादन की कला भी उन्होंने हस्तगत कर ली थी।

इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद माधवराव जी के जीवन में एक नये और दूरगामी परिणाम वाले अध्याय का प्रारंभ हुआ। यह अध्याय बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में प्रवेश के साथ शुरू हुआ।

*

३ काशी में अध्ययन एवं अध्यापन

बनारस में महामना पं. मदनमोहन मालवीय द्वारा स्थापित तथा उनके अनुपम कर्तृत्व ता प्रतीक हिन्दू विश्वविद्यालय उन दिनों देशभर के युवकों को अपनी ओर आकर्षित करनेवाला एक अनोखा प्रकल्प था। 1916 में इस विश्वविद्यालय की स्थापना हुई और ज्ञानार्जन की भावना से सभी प्रांतों और विभिन्न भाषा-भाषी हजारों छात्रों ने उसमें प्रवेश लिया। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि मालवीयजी ने प्राचीन गुरुकुल पद्धति के आधार पर ही शिक्षा का यह आधुनिक आश्रम खड़ा किया था। मालवीयजी का इस शिक्षा संस्थान की स्थापना के पीछे मूल उद्देश्य हिन्दू दर्शन, विद्या और कला की ज्योति पुनः प्रकाशित करने और उसका लाभ नयी पीढ़ी को निरन्तर उपलब्ध कराने का ही था। यह विश्वविद्यालय सर्वांग परिपूर्ण हो, इस दृष्टि से मालवीयजी ने काफी परिश्रम किया। श्री माधवराव गोलवलकर ने बी. एस-सी. के छात्र के रुप में इस विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। एक लाख ग्रंथों के संग्रह से युक्त ग्रंथालय, रम्य वनश्री से आच्छादित परिवेश, गंगा का पवित्र तट, वातावरण की निर्मलता और स्वास्थ्यप्रदता, सुसज्जित प्रयोगशाला, विशाल क्रिडांगण, उत्कृष्ट व्यायामशाला आदि से युक्त सम्पूर्ण परिसर माधवराव जी को खूब भाया। 1926 में उन्होंने बी. एस-सी. की और 1928 में प्राणिशास्त्र विषय में एम. एस-सी. की परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। विश्वविद्यालयीन चार वर्षों का कालखंड उन्होंने किस तरह व्यतीत किया इसे अगर एक वाक्य में बताना हो तो यही कहा जा सकता है कि इन चार वर्षों में माधवराव ने मनःपूर्वक अध्ययन तो किया ही, किन्तु साथ ही अपनी अन्तःप्रवृत्ति के अनुसार वे आध्यात्मिक जीवन की ओर अधिक झुके। इस कालखंड में विश्वविद्यालय के ग्रंथालय का जितना उपयोग माधवराव ने किया उतना शायद ही किसी अन्य छात्र ने किया हो। उन्होंने संस्कृत महाकाव्यों, पाश्चात्य दर्शन, श्री रामकृष्ण परमहंस व स्वामी विवेकानंद की ओजःपूर्ण एवं प्रेरक विचार-संपदा, भिन्न-भिन्न उपासना पंथों के प्रमुख ग्रंथों तथा शास्त्रीय विषयों के अनेक ग्रंथों का आस्थापूर्वक पठन किया।

३.१ असीम ज्ञान-पिपासा

पुस्तकें पढ़ने के प्रति उनका लगाव इतना जबरदस्त था कि बी. एस-सी. के अन्तिम वर्ष में एक लम्बी बीमारी की अवस्था में भी उनके हाथ में सदा कोई न कोई पुस्तक बनी रहती थी। शरीर में तेज बुखार रहते समय भी उनका पढ़ना जारी रहता था। उनकी पढ़ने की गति भी काफी तेज होती थी। बड़े-बड़े ग्रंथ भी एक दिन में वे पूरा पढ़ लेते थे। पढ़ने के लिए देर रात तक जागना तो उनकी आदत बन गई थी। अनेक

बार तो यह देखा गया कि सायंकाल खेल के मैदान से लौटने पर भोजन ग्रहण करने के पश्चात् वे पढ़ने के लिए बैठते तो सुबह होते तक पढ़ते रहते। फिर थोड़ा सा विश्राम लेकर दूसरे दिन के सारे क्रियाकलापों के लिए वे प्रसन्नचित्त उत्साह के साथ तैयार हो उठते। उनके कमरे में यत्र-तत्र पुस्तकें बिखरी पड़ी दिखाई देतीं। उनका झुकाव आध्यात्मिक जीवन की ओर था, इसलिये नागपुर में हिस्लॉप कॉलेज में पढ़ते समय ही वे हिन्दू शास्त्रग्रंथों का अध्ययन करने नील सिटी हाईस्कूल के मुख्याध्यापक श्री मुले के यहाँ जाया करते थे। काशी में अध्यात्म चर्चा, वेदान्त ग्रंथों का पठन-चिंतन-मनन और मालवीय जी के सहवास का उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। थोड़ी-बहुत पूजा-अर्चना, ध्यान-धारणा, आसन, प्राणायाम, व्यक्तिगत ऐहिक जीवन के प्रति उदासीनता, समष्टि के सुख-दुःखों का आत्मीयतापूर्ण विचार आदि के रूप में यह प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा। यह भी संभव है कि इसी कालखंड में अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में उनके मन में विचार उठने लगे हों। विश्वविद्यालयीन छात्र-जीवन का यह कालखंड अत्यंत आर्थिक संकटों का सामना करते हुए उन्होंने व्यतीत किया किन्तु उनके चेहरे पर कभी व्यग्रता या चिंता के भाव किसी ने नहीं देखे।

३.२ शारीरिक साधना

श्री गुरुजी के संघमय उत्तरायुष्य का ही केवल जिन्हें परिचय है उन्हें उनके पूर्वायुष्य की कुछ बातें बहुत आश्चर्यजनक प्रतित होंगी। यह सभी को विदित है कि श्री गुरुजी का आहार अत्यंत अल्प था। वह कितना अल्प था इसकी हम कल्पना नहीं कर सकते। एक घटना से इसका अनुमान लगा सकते हैं। कलकत्ता का प्रसंग है। वहाँ के एक सुप्रसिद्ध डॉक्टर से श्री गुरुजी का वैद्यकीय परीक्षण कराया गया। डॉक्टर को अनुभव हुवा कि सामान्यतः स्वस्थ होने पर भी रक्तचाप बहुत कम था। इसलिए डाक्टर ने आहार के बारे में पूछताछ की। आहार के विवरण पर उन्होंने कैलरीज़ का हिसाब लगाया और उन्हें आश्चर्य का धक्का लगा। वे एकदम कह उठे, “यह कैसे संभव है ? इतनी कम कैलरीज पर आप कैसे जीवित रह सकते है ? I can’t believe you are a living man! ” इस पर गुरुजी व सभी हँस पड़े। “श्री गुरुजी व्यंग से बोले,परन्तु मैं हूँ यह तो सत्य है ना ? ” जीने के लिए जितना आवश्यक है उतना ही वे अन्न सेवन करते थे। बिलकुल सामान्य जनों के समान वे सीधा-सादा जीवन बिताते थे। वे मिताहारी भी थे। मंगलूर के एक आयुर्वेद पंडित के अनुसार, जो स्वयं भी एक माने हुए योगसाधक थे, “श्री गुरुजी के शरीर की यौगिक स्थिति ऐसी थी कि उसे आहार की आवश्यकता ही कम लगती थी।”

परन्तु किशोरावस्था और तरुणाई में श्री गुरुजी ने भरपूर व्यायाम किया था। उनका आहार भी अच्छा रहता था। जब उनका काशी में वास्तव्य था तब तैरकर गंगा पार करना उनका अत्यंत प्रिय खेल था। व्यायाम शाला में जाकर लाठी-काठी, दण्ड-बैठकें आदि व्यायाम करते थे। मलखंभ पर किये जानेवाले व्यायामों का उन्होंने अभ्यास कि या था और उसमें उन्होंने प्रविणता प्राप्त की थी। एक बार व्यायामशाला में उन्होंने एक बंगाली पुवक को मलखम्भ की ओर देखते हुए खड़ा पाया। गुरुजी ने उससे पूछा, " क्या देख रहे हो ? मलखम्भ सीखना है क्या ? " और लंगोट कसने को कह कर उसे मलखम्भ के पाठ सिखाये। कॉलेज में पढ़ानेवाले शिक्षक का यह कौशल्य देखकर वह लड़का आश्चर्यचकित हो गया। व्यायाम से श्री गुरुजी का शरीर सुदृढ़ बन गया था। आगे संघ-कार्य के लिए जो अनियमित जीवन उन्हें जीना पड़ा, उसमें पूर्व आयुष्य के इन अभ्यासों और बाद की योगसाधना का उन्हें अपने आपको कार्यक्षम रखने के लिए बहुत उपयोग हुआ।

एक समय उनका आहार भरपूर था और कभी-कभी वे बाजी लगाकर भी खाना खाते थे, यह किसी को बताया तो उस पर कोई विश्वास नहीं करेगा। एक बार भरपेट भोजन करने के पश्चात् फिर से उतना ही भोजन करने की वे हिम्मत रखते थे। नागपुर के निकट के काटोल स्थान की घटना है। वहाँ के एक मित्र के यहाँ श्री गुरुजी गये थे। भोजन करके ही वे बाहर निकले थे। जिस मित्र के यहाँ गये थे उनके यहाँ भोजन का समय था। मित्र और उनकी पत्नी ने बहुत आग्रह किया तब वे भोजन के पत्तल पर बैठ गये और सम्पूर्ण तैयार भोजन समाप्त कर डाला। ज़ब मित्र की पत्नी फिर से रोटी बनाने के लिए आटा माँड़ने लगी तब 'अब नहीं चाहिये' कह कर हाथ धोने के लिए उठ खड़े हुए। यह कहने की जरूरत नहीं कि यह घटना एक अपवाद ही थी।

श्री गुरुजी विद्यार्थिकाल में ज्ञान के भोक्ता थे। विद्यार्थियों या शिक्षकों द्वारा 'कुंजी' का उपयोग किया जाना उन्हें बिलकुल पसन्द नहीं था। एक बार एक शिक्षक ने 'कुंजी' का उपयोग कर जो अर्थ बतलाया वह गलत था। श्री गुरुजी उठ खड़े हुए और उन्होंने शिक्षक के ध्यान में ला दिया कि उन्होंने गलत अर्थ बतलाया है। शिक्षक ने कुंजी का आधार लेकर अपने को सही ठहराने का प्रयत्न किया। परन्तु श्री गुरुजी ने जोर देकर बतलाया कि, " ऐसा हो तो 'कुंजी' में दिया हुआ अर्थ भी अशुद्ध है। " इतना कहकर ही वे रुके नहीं, अपितु आगे कहा, 'कुंजी' से पढ़कर सिखानेवाले शिक्षक के हाथ के निचे पढ़ने की मेरी बिलकुल इच्छा नहीं। " यह प्रकरण मुख्याध्यापक के पास ले जाया गया। अर्थ गलत बताया गया है यह उनके ध्यान में आया। उन्होंने उस शिक्षक के

पास से वह विषय हटा लिया पर श्री गुरुजी को बतलाया कि “कक्षा में शिक्षक का ऐसा अपमान नहीं करना चाहिए। ”

४ जीवन की दिशा

एम.एस-सी. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् श्री माधवराव ने शोध-प्रबन्ध लिखने हेतु 'मत्स्य-जीवन' का विषय चुना और इस विषय के विशेष अध्ययन हेतु वे मद्रास के मत्स्य संग्रहालय में जाकर रहे। किंतु उनका यह शोध-कार्य पूरा नहीं हो पाया क्योंकि उसी समय उनके पिता भाऊजी सेवानिवृत्त हुए। अपने इस पुत्र को मद्रास वास्तव्य के खर्च हेतु पैसा भेजना उनके लिए असंभव हो गया। इसलिए अपना शोध कार्य अधूरा छोड़कर एक वर्ष में ही उन्हें नागपुर लौटना पड़ा। अध्ययन का सवाल एक ओर रख दें तो भी माधवराव के मन में उस समय जो विचार उफन रहे थे उनका संदेश मद्रास के वास्तव्य में किये गये उनके पत्र-व्यवहार से मिलता है। उसमें काशी में चार वर्षों के वास्तव्य में हुए संस्कार, देश की घटनाओं का तरुण मन पर होनेवाला स्वाभाविक परिणाम, जीवन की सार्थकता के लिए किसी निश्चित मार्ग का चयन हेतु मन में चल रहा संघर्ष आदि बातों का प्रकटीकरण हुआ है। माधवराव के जीवन का यह महत्वपूर्ण अध्याय था। इस कावखंड में उनके मन में उठ रहे वैचारिक कोलाहल को उनके भावी जीवन को मिली दिशा का आकलन करने की दृष्टी से समझना होगा। इसमें एक मौलिक महत्व की बात यह है कि एक विशेष शोध-कार्य में लगे, शिक्षणोत्तर व्यावहारिक जीवन की देहलीज पर खड़े इस युवक के मन में व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा अथवा सुख-सुविधाओं से भरा जीवन बिताने की भावना यत्किंचित भी प्रवेश नहीं कर पायी। सामान्यतः यह आयु नौकरी, पैसा, घर-गृहस्थी बसाने के सपनों में रममाण होने की मानी जाती है। किन्तु माधवराव ने अपने मित्रों के नाम जो विस्तृत पत्र इस कालखंड में लिखे, जो सामान्यतः 14-15 पृष्ठों वाले होते थे, उनमें अपने स्वयं की व्यक्तिगत आशा-आकांक्षाओं के सम्बन्ध में जरा सा भी उल्लेख नहीं होता था। पत्रों की विषयवस्तु मुख्यतः सैद्धान्तिक विचार और जीवन की सार्थकता के सही मार्ग सम्बन्धी मन में उठनेवाले विचारों के विश्लेषण से संबंधित होती थी। माधवराव के मन में चल रहे वैचारिक संघर्ष और विचारों की दिशा जानने के लिए उन पत्रों के कुछ अंश यहाँ उद्-घृत करना उचित होगा।

भगतसिंग, सुखदेव और राजगुरु ने अत्याचारी सांडर्स की हत्या कर दी। इस समाचार पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए माधवराव जनवरी 1929 के प्रथम सप्ताह में अपने मित्र बाबूराव तेलंग को सम्बोधित पत्र में लिखते हैं- "लाहौर का विस्फोट सुना। अतीव धन्यता अनुभव हुई। आंशिक रुप में क्यों न हो, उन्मत्त विदेशी शासकों द्वारा किये गये राष्ट्रीय अपमान का परिमार्जन हुआ। यह संतोष की बात है। मैंने आपके साथ अनेक बार विश्वबंधुत्व, समता, शांति आदि विषयों पर चर्चा की है। मार-काट, उपद्रव, विद्वेष, बदला लेने की दुर्भावना आदि का निषेध कर आपको दोषी ठहराया है,

आपसे झगड़ा किया है। वही मैं इस प्रकार का पत्र लिख रहा हूँ, यह देखकर आपको आश्चर्य होगा। एक ओर बदला लेने की कामना और तरुणाई का जोश तो दूसरी ओर वेदान्त का शांत किन्तु अचल सूत्र। इन दोनों के बीच उस समय इतना भीषण संघर्ष मन में चल रहा था कि मैं विचलित हो उठा। मन अशांत हो गया। इसी अवस्था में कापई दिन गुजरे और दो-तीन बार शरीर में ज्वर चढ़ आया, खांसी ने जोर पकड़ा, काफी दुर्बलता महसूस हुई, आँखें खिंची-खिंची रहने लगीं। मेरी शारीरिक व्याधियाँ लोगों को नजर आने लगीं तो मत्स्यालय के निरीक्षक ने जबरन मुझे डाक्टर के सामने इलाज हेतु प्रस्तुत कर दिया। आगर सावधानी नहीं बरती तो रोग गंभीर रूप धारण कर सकता है, यह चेतावनी मुझे डाक्टर ने दी। मैं घबराया तो नहीं, पर इन्जेक्शन्स आदि इलाज तुरन्त शुरू कर दिये।"

यह बिमारी दो माह तक चली। किंतु उससे मुक्त होते ही माधवराव के मन की बेचैनी भी शांत हो चुकी थी। अब उन्हें अपने जीवन-कार्य का स्पष्ट बोध हो चुका था। उसी पत्र में उन्होंने लिखा है- " लोगों में राष्ट्रीय चेतना जगानी होगी। हिंदू और मुसलमान के बीच वास्तविक सम्बन्धों का ज्ञान करना होगा। ब्राह्मण-अब्राह्मण के बीच के वाद को खत्म करना होगा। मैं कोई बड़ा नेता अथवा कार्यकर्ता नहीं हूँ। किंतु हरेक को इस काम में सहयोग देना ही चाहिये। "

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से सम्पर्क स्थापित होने से पूर्व श्री माधवराव गोलवलकर जी के मन को स्वतंत्र रूप से दिशाबोध हुआ था। परिस्थिति के निरिक्षण और चिंतन से एक निःस्वार्थ, निरपेक्ष, जिज्ञासु व्यासंगी, निर्मलचित्त, अध्यात्मप्रवण, सैकड़ों ग्रथों को पढ़कर आधुनिक व प्राचीन शास्त्रों के तुलनात्मक अध्येता, महाविद्यालयीन देहलीज को पारकर निकले इस जागृत युवक को हुआ यह कर्त्तव्य-बोध था। लगभग 11 वर्षों बाद यही युवक डाक्टर हेडगेवार जी द्वारा प्रारंभ राष्ट्रीय चेतना जगाने के कार्य की धुरा अपने कंधों पर लेकर 33 वर्षों तक अखंड-अव्याहत कुशलतापूर्वक संभालता है; इसमें आश्चर्य क्यों होना चाहिए ? उसकी मनोभूमिका पूर्व से ही तदनुकूल थी।

४.१ 'हिमालय' की पुकार'

ऐसा दिखाई देता है कि महाविद्यालयीन देहलीज को पार करने के बाद भी 5-6 वर्षों तक माधवराव के मन में उठा तूफान पूरी तरह शांत नहीं हो पाया था। शांत व अविचल हिमालय का आकर्षण उन्हें इस समस्याग्रस्त जीवन से दूर एकांत में जाकर मोक्ष की साधना करने के लिए बार-बार प्रेरित कर रहा था। विवाहबद्ध होकर अन्य

लोगों के समान गार्हस्थ जीवन बिताने की कल्पना तक उनके मन को स्पर्श नहीं कर पाई। वन में केवल यही दुविधा थी कि एकांत में रहकर मोक्ष साधना की जाए अथवा सामान्य जनों के बीच रहकर उनकी समस्याओं का समाधान किया जाए। अपने भीतर परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाली वृत्तियों का यह खेल माधवराव एक संशोधक की अलिप्त भूमिका से देख सकते थे, उसका विश्लेषण कर सकते थे।

उनका विवेक पूर्णतया जागृत था। अपने मित्र श्री तेलंग को दि. 20 मार्च 1929 को विखे एक पत्र में वे कहते हैं- " भौतिक मानवी-जीवन के तार के साथ अपना तार मिलाने की मुझे तनिक भी इच्छा नहीं है। मैं तो चाहता हूँ कि उससे भी अधिक शुद्ध स्वर में विलीन करने के लिए जितना हो सके उतना उसे तान दूँ। इसके लिए तनाव तो सहना ही पड़ेगा। इसका अर्थ यही है कि सर्वसामान्य जगत् से अलग रहना पड़े तो भी उसमें कोई आपत्ति नहीं, किन्तु जीवन का तार उस स्वर्गीय संगीत से बेसुरा न हो। "

यह जानते हुए भी कि सुख की ओर ले जाने वाला यह मार्ग कंटकाकीर्ण और बीहड़ है, वे डटे रहे। असफलता की आशंका से आरंभ में हिम्मत हार जानेवाला लचर मन उनका नहीं था। इसी पत्र में वे आगे लिखते हैं- " इस अनिश्चित और खतरनाक राह के सिवा अन्य कोई मार्ग नहीं है। रंभा को मात देकर कोई विजयी शुक ब्रह्मपद प्राप्त कर लेता है और उसी राह पर चलनेवाला एकाध विश्वामित्र मेनका से हारकर अधःपतित हो जाता है। यह मामला ऐसा ही है। किन्तु केवल इतने मात्र से इस मार्ग को छोड़कर यह कहना कि मैं जनसाधारण के कीचड़भरे मार्ग से ही चलूँगा, भीरुता होगी। अंतिम सुख की साधना करते समय उसके साथ अनिवार्य रूप से अपने हिस्से में आनेवाले दुःखों का सामना करने और उन पर विजय पाने के लिए कम से कम आग्रहपूर्वक उसके साथ दो-दो हाथ करने के लिए भी सिद्ध रहना चाहिए। कोई दूसरा कम खतरे वाला मार्ग है ही नहीं। "

ऐहिक बातों से चित्तवृत्तियों को हचा लेने के प्रयास में बार-बार उनके मन में सभी बंधन तोड़कर सीधे हिमालय की ओर चले जाने का विचार आता था। परंतु दुसरों के दुःख से व्याकुल होनेवाला उनका मन उन्हें इस बात के लिए धिक्कारता हुआ कहता था कि "अकेले अपने सुख के लिए सब को छोड़कर तुम कहाँ जा रहे हो ? " किंतु यह संघर्ष भी धीरे-धीरे शांत हो गया। दि. 28 फरवरी 1929 को श्री तेलंग को लिखे अपने एक पत्र में वे कहते हैं, " मैं संन्यास की दिक्षा तो ले चुका हूँ, परन्तु वह अभी पूर्ण नहीं हुई है। हिमालय चले जाने का मेरा पहले का विचार कदाचित शुद्ध नहीं था। इस

संसार में रहकर ही दुनियादारी के व्याघातों को सहते हुए तथा उसके सभी कर्तव्य-कर्मों को व्यवस्थित रूप से निभाते हुए मैं अब अपने रोम-रोम में नित्य संन्यस्त वृत्ति को व्याप्त करने का प्रयास कर रहा हूँ। अब मैं हिमालय नहीं जाऊँगा, हिमालय ही स्वयं मेरे पास आयेगा, उसकी शांत निरवता मेरे ही भीतर रहेगी। उसे प्राप्त करने के लिए अब और कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है।"

उनके जीवन विषयक विचारों ने यह जो निश्चित मोड़ प्राप्त किया उसी के अनुसार उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन संघ-मय व्यतीत किया। ऐसा नहीं है कि अन्तर्द्वन्द्व के प्रसंग फिर कभी आये ही नहीं। किन्तु उन्होंने जो मार्ग अंगीकृत किया उससे वे कभी डिगे नहीं। मद्रास में गवेषणा कार्य परिस्थितिवश अधूरा छोड़कर वे नागपुर आये और संयोग ऐसा रहा कि जिस काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में उन्होंने चार वर्षों तक शिक्षा ग्रहण की थी, वहीं उन्हें प्राणिशास्त्र के प्राध्यापक के रूप में सेवा प्रदान करने का अवसर मिला। 1930 में श्री माधवराव गोलवलकर अपनी पसन्द के विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के नाते नियुक्त हुए। यहाँ बिताये तीन वर्ष का कालखंड माधवराव जी के जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण और भावी जीवन की दिशा निर्धारित करने वाला रहा। प्रथम उल्लेखनीय बात याने जिस 'गुरुजी' नाम से वे आगे जीवन भर जाने गये वह नाम अथवा उपाधि उन्हें काशी में प्राध्यापक के नाते अध्यापन करते समय उनकी लोकप्रियता के कारण छोत्रों ने उन्हें प्रदान की। युवा माधवराव यद्यपि प्राणिशास्त्र के प्राध्यापक थे तथापि आवश्यकता पड़ने पर अपने छात्रों तथा मित्रों को अंग्रेजी, अर्थशास्त्र, गणित, दर्शन जैसे अन्य विषय भी पढ़ाने को तत्पर रहते थे। ऊँची कक्षा में ये विषय पढ़ाने के लिए उन्हें स्वतः इनका अध्ययन करना पड़ता था; किन्तु इस कारण वे इसे न झंझट समझते थे और न कभी टालमटोल ही करते थे अपितु किसी भी भांति पुस्तकें उपलब्ध कर, यदि पुस्तकालय में नहीं मिलीं तो उन्हें खरीदकर, उनका विधिपूर्वक अध्ययन करते थे। इसके अतिरिक्त अपने होनहार छात्र-मित्रों की बकाया फीस भर देने अथवा उनकी पुस्तकें खरीद देने में उनके वेतन का बहुतांश व्यय हो जाता था। उनके इस मिलनसार, सहायतार्थ सदा तत्पर रहने की वृत्ति के कारण मित्रों तथा छोत्रों में वे अत्यंत लोकप्रिय और आदर के पात्र बने थे। इस स्नेहादर के कारण ही उन्हें 'गुरुजी' संबोधन प्राप्त हुआ था। यही नाम संघ-जीवन में रूढ़ हुआ और आगे चलकर देश भर में मान्यता प्राप्त कर गया। उनकी दाढ़ी और जटा की कहानी अलग और बाद के कालखंड की है।

४.२ संघ में पदार्पण

दूसरी प्रमुख बात याने तीन वर्षों के काल में श्री गुरुजी को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त हुआ। संघ के स्वयंसेवकों ने उनके साथ निकट सम्बन्ध बनाने का प्रयास किया। 1929 में नागपुर से काशी अध्ययनार्थ गये श्री भैय्याजी दाणी जैसे युवकों ने वहाँ शीघ्र ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा खोली। प्राध्यापक के नाते श्री माधवराव गोलवलकर के गुणों से अधिकाधिक लाभ प्राप्त करने का भैयाजी दाणी ने प्रयास किया। परिणामस्वरूप श्री माधवराव भी यदा-कदा शाखा में आने लगे। ये लोग अध्ययन में माधवराव की मदद लेते थे और संघस्थान पर उनके भाषणों का आयोजन भी करते थे। श्री माधवराव के साथ इन स्वयंसेवकों का बर्ताव ऐसा था मानों वे काशी विश्वविद्यालय में खुली इस संघ शाखा के पालक और चालक हों। भैयाजी दाणी के साथ श्री गुरुजी के अत्यंत घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गये। भैयाजी दाणी विश्वविद्यालय की अपनी शिक्षा पूरी कर सके इसका अधिकांश श्रेय श्री गुरुजी को ही दिया जा सकता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में माधवराव का 'गुरुजी' नाम रूढ़ करने में श्री भैयाजी दाणी का बड़ा योगदान रहा है। श्री गुरुजी जब संघ के सरसंघचालक बने तब श्री भैयाजी दाणी कुछ वर्षों तक संघ के सरकार्यवाह थे। काशी में श्री गुरुजी का संघ-परिचय केवल सतही था। किन्तु संघ के स्वयंसेवकों की ध्येयनिष्ठा और लगन देखकर वे दंग रह जाते। संघ के अनुशासन से भी वे प्रभावित हुए। महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी की श्री गुरुजी पर विशेष कृपा थी। श्री गुरुजी भी अनेक बार स्वयंसेवकों को मालवीय जी से भेंट कराने अपने साथ ले जाते और उन्हें मालवीय जी का आशीर्वाद प्राप्त होता। मालवीय जी के मन में संघकार्य के प्रति सद्-भावना होने के कारण ही उन्होंने विश्वविद्यालय के परिसर में शाखा के लिए आगे चलकर जगह और कार्यालय हेतु एक छोटा भवन भी उपलब्ध करा दिया था। जब श्री गुरुजी काशी में प्राध्यापक थे उन्हीं दिनों 1932 में डाक्टर हेडगेवार जी ने उन्हें तथा एक अन्य संघप्रेमी प्राध्यापक श्री सद्-गोपाल को नागपुर संघ शाखा का विजयादशमी महोत्सव देखने के लिए आमंत्रित किया। इन अतिथियों का पुष्पहार पहिनाकर स्वागत भी किया तथा नागपुर के आसपास की संघ शाखाओं को दिखाने की व्यवस्था भी की। उनके इस वास्तव्य में डाक्टर जी अपने व्यक्तिगत सहवास में उन्हें संघकार्य की सुस्पष्ट कल्पना करा दी। नागपुर से काशी लौटने पर श्री गुरुजी काशी स्थित संघशाखा की ओर अधिक आस्थापूर्वक ध्यान देने लगे।

काशी विश्वविद्यालय में अध्यापन का कार्य करते समय ही श्री गुरुजी को संघकार्य का प्राथमिक परिचय हुआ और हिन्दू संगठन के कार्य के प्रति उनके मन में आस्था पैदा हुई। इधर संघ के क्षेत्र में कार्यकर्ताओं के मन में यह विचार उठने लगे कि यदि ऐसा

व्यक्ति संघ से जुड़ जाए तो उसे एक श्रेष्ठ गुणवत्ता वाला कार्यकर्ता उपलब्ध हो सकेगा। विद्वान् और विपुल ग्रंथों के अध्येता होने के नाते उनकी ख्याति थी ही, किन्तु संघठन खड़ा करने के लिए चारित्र्य, निःस्वार्थता, व्यक्तियों को अपनी ओर सहज आकर्षित करने की शैली, सहनशीलता, मन की निर्मलता, दूसरों के सुख-दुःखों से समरस होने की वृत्ति, सिद्धांतों के प्रति दृढ़ निष्ठा, मूलगामी चिन्तन आदि जिन गुणों की आवश्‍्यकता होती दै उन सारे गुणों का आविष्कार भी उनके दैनंदिन जीवन में दुखलाई पड़ता था। अध्यात्म चिंतन, ध्यान-धारणा व्यक्तिगत सुखसाधन के प्रति उदासीनता और सादा भोजनऔर रहन- सहन तो उनके जीवन के विशेष पहलू थे ही। हाथों में लिये गये कार्य के प्रति एकाग्रता तो उन्होंने छात्र-जीवन में ही हस्तगत कर ली थी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की ही एक घटना है- एक बार पढ़ई करते समय उनके पैर को बिच्छू ने काट लिया तो गुरुजी ने शांत चित्त से दंश किये हिस्से में चीरा लगाकर खून बहने दिया और बाद में पपोटेशियम परमैंगनेट मिश्रित जल में पैर रखकर पुनः अपनी पपढ़ई में मग्न हो गये ! मित्रों ने उनसे पूछा कि 'तुम्हें बिच्छू ने काट लिया है फिर भी तुम कैसे पढ़े जा रहे हो ?' इस पर श्री गुरुजी ने मजाक में उत्तर दिया- 'बिच्छू ने पैर को काटा है, सिर को तो नहीं ! तब पढ़ाई में बाधा आने का क्या कारण है ?'

कभी-कभी तो वे मन में ठान लेते कि भोजन नहीं करूँगा तो लगातार अनेक दिनों तक वे अन्न स्पर्श तक नहीं करते थे। फिर भी उनके नित्यकर्मों में कोई अंतर नहीं आता था। पढ़ाई करते हुए रात्रि में देर रात तक जागरण का भी उनके स्वास्थ्य पर कोई असर दिखाई नहीं पड़ता था। एक तरह से उन्होंने अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली थी। आगे चलकर जब वे संघ के सरसंघचालक बने तब अनेक बार शरीर में ज्वर होने पर भी नियोजित कार्यक्रमों में वे प्रसन्नता से सहभागी होते थे। अन्य सहयोगियों को अपनी अस्वस्थता की जरा भी कल्पना न होने पाये इसलिए उत्साह और प्रसन्नता से वे कार्यक्रमों में भाग लेकर उन्हें पूर्ण दायित्व के साथ निभाते थे। आत्मबन के अभ्यासपूर्वक विकास से ही उन्होंने यह वृत्ति आत्मसात की थी। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वे अपने शरीर स्वास्थ्य की उपेक्षा करते थे। शरीर से इष्ट कार्य करवाने के प्रति वे सदैव तत्पर रहते थे। इन्द्रियों के दास बनने की बजाय स्वामी बनकर कैसे जिया जा सकता है, इसका ज्वलन्त उदाहरण उन्होंने स्वयं अपने जीवन में प्रस्तुत कर दिखाया। डॉक्टर हेडगेवार जी ने भी इसी सूत्र को अपनाकर अपने शरीर के कण-कण को संघकार्य के लिए विसर्जित किया था।

काशी विश्वविद्यालय के कालखंड में श्री गुरुजी ने स्वाभाविकतया विशाल मित्र परिवार निर्माण किया और इनमें से किसी भी मित्र को वे कभी भूले नहीं। संघकार्य के निमित्त

भारत-भ्रमण के दौरान जब कभी कोई पुराना मित्र मिलता था तो श्री गुरुजी उसके साथ पुरानी स्मृतियों की चर्चा में मग्न हो जाते थे। वह मित्र स्वयं श्री गुरुजी की स्मरण शक्ति, सौजन्य और स्नेहपूर्ण व्यवहार को देखकर दंग रह जाता। नियमपालन तथा अनुशासन के प्रति निर्भय आग्रह भी उनके प्रति आदर भाव को बढ़ाता था। जब श्री गुरुजी शोध-कार्य के निमित्त मद्रेस में थे, तब एक बार हैदराबाद का निजामशाह मत्स्यालय देखने के लिए आया। नियमानुसार शुल्क दिये बिना उन्हें प्रवेश देने से श्री गुरुजी ने इंकार कर दिया। काशी में भी एक कार्यक्रम में नियम तोड़कर अन्य मार्ग से भीतर प्रवेश करनेवाले एक अहंकारी प्राध्यापक को रोकनेवाले स्वयंसेवकों का भी श्री गुरुजी ने ही साथ दिया था। ये सारे गुण संघकार्य में उपयोगी सिद्ध होनेवाले थे। श्री गुरुजी की ओर डाक्टर हेडगेवार जी का ध्यान आकर्षित हुआ और संघकार्य की बढ़ती जिम्मेदारियों को संभालने की दृष्टि से श्री गुरुजी को तैयार करने के प्रयास उन्होंने शुरू कर दिये। डाक्टर जी की व्यक्ति की परख कितनी योग्य थी यह भावी काल ने सिद्ध कर दिखाया।

श्री गुरुजी केवल तीन वर्ष के लिए ही प्रध्यापक नियुक्त किये गये थे। ये महत्वपूर्ण तीन वर्ष बीतते देर न लगी और काशी छोड़कर 1933 में वे पुनः नागपुर लौट आये।

*

५ सारागाछी आश्रम में

प्राध्यापक माधवराव गोलवलकर उपाख्य श्री गुरुजी की काशी से नागपुर वापसी के बाद ५ वर्षों के कालखंड मानों दो महान् व्यक्तियों के बीच कभी परस्पर अनुकूल तो कभी प्रतिकूल दिशा में खींचनेवाली उनकी इच्छा शक्तियों का, मन को हैरान कर देनेवाले चढ़ाव-उतार का एक विलक्षण खेल था। एक व्यक्तित्व राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के साथ अन्तर्बाह्य एकरूप बना हुआ डॉ. हेडगेवार जी का था, तो दूसरा व्यक्तित्व प्रकांड पंडित, अध्यात्म प्रवण, अपने मतों पर दृढ़ रहनेवाले तथा अपनी स्वतंत्र बुद्धि से विचार करने की प्रवृत्तिवाले श्री गुरुजी का था। डाक्टर जी और श्री गुरुजी के बीच परिचय होकर २ वर्ष का काल बित चुका था। अनेक असामान्य गुणों के धनी श्री गुरुजी की परख डाक्टर जी ने कर ली थी और उन्हें संघरूप बनते देखने के लिए डाक्टर जी आतुर थे। एक स्वच्छन्द कलकल निनाद करने वाले वन्य निर्झर को अनुशासनबद्ध करने और तटों में बाँधकर राष्ट्रपुरुष की सेवा में लगाने का यह संकलित प्रयास था। श्री गुरुजी के शब्दों में ही कहना हो तो- "उस महापुरुष के अन्तःकरण में राष्ट्र की दुर्दशा को देखकर होनेवाली तीव्र व्यथा और उनकी पूर्ण समर्पणशीलता ने ही मुझे झुकने के लिए विवश किया। और मेरी यह शरणागति अत्यंत सुखद थी।"

नागपुर लौटने के बाद श्री गुरुजी अपने मामा श्री रायकर के यहाँ रहते थे। उन दिनों ताईजी और भाउजी नागपुर से २५ मील दूर रामटेक में रहते थे। सेवा-निवृत्ति के पश्चात् भाउजी ने रामटेक में ही एक मकान खरीद लिया था। अतः श्री गुरुजी माता-पिता से मिलने अक्सर रामटेक आया जाया करते थे। घर की आर्थिक स्थिति सामान्य थी। अतः आर्थिक निर्भरता के लिए श्री गुरुजी अपने मामा की कोचिंग क्लास में छात्रों को पढ़ाने का काम करने लगे। इसी समय उन्होंने वकालत की परीक्षा पास करने हेतु लॉ कॉलेज में प्रवेश लिया। श्री गुरुजी पर संघ-कार्य का अधिकाधिक दायित्व सौंपकर उन्हें संघ के अधिक निकट लाने का डाक्टर जी का प्रयास यथाक्रम चलता रहा।

उन दिनों नागपुर के तुलसीबाग में संघ की प्रमुख शाखा लगती थी। १९३४ में श्री गुरुजी को शाखा का कार्यवाह नियुक्त किया गया। इसी वर्ष संघकार्य के प्रचारार्थ डाक्टर जी ने श्री गुरुजी को मुंबई भेजा। १९४० के पूर्व अकोला में केवल एक बार सम्पन्न १९३५ के संघ शिक्षा वर्ग के सर्वाधिकारी का दायित्व भी उन पर सौंपा गया। श्री गुरुजी ने इस दायित्व का अत्यंत कुशलता से निर्वाह किया। वर्ग के तेजस्वी वातावरण को देखकर डाक्टर जी बहुत आनन्दित हुए। नागपुर में श्री गुरुजी हमेशा

डाक्टर जी के पास जाया करते थे और उनकी बैठकों में भाग लेते थे। १९३५ में उन्होंने वकालत की परीक्षा उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण की और कुछ दिनों तक 'मा.स. गोलवलकर वकील' इस नाम की पट्टिका भी एक मकान को सुशोभित करती रही।

इन दो वर्षों के कार्यकाल में उनके वृद्ध माता-पिता ने अपने इकलौते पुत्र को विवाह के लिए अनेक बार मनाना चाहा। विवाह का प्रश्न उपस्थित होते ही श्री गुरुजी उसे हँसी में टाल देते। किंतु एक दिन पिता भाउजी को उन्होंने कहा कि " विवाह करने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। घर-गृहस्थी से मुझे सुख मिलेगा ऐसा मुझे नहीं लगता। फिर भी यदि आपका आदेश हो तो मैं विवाह करने के लिएतैयार हूँ।" श्री गुरुजी के इस उत्तर पर भाउजी ने अपने पुत्र की मानसिकता को ध्यान में रखते हुए फिर कभी विवाह का आग्रह नहीं किया। किँतु माता ताईजी की मनःस्थिति अत्यंत नाजुक थी। 'मधु' के विवाह पर ही वंश परम्परा का आगे जारी रहना संभव था। ताईजी यह नहीं चाहती थीं वंश यही खंडित हो जाए। स्वाभिकतया विवाह सम्बन्धी उनका आग्रह बना रहा। एक दिन ऐसा ही आग्रह किये जाने पर गोलवलकर वंश के इस एकमात्र 'दीप' ने अत्यंत स्पष्ट शब्दों में अपने मन की बात कह कर उन्हें निरुत्तर कर दिया। श्री गुरुजी ने कहा कि- "ताई, तू मुझसे वंश खंडित होने की बात मत कह। यदी मुझ जैसे अनेकों के वंश नष्ट होकर भी समाज का कुछ भला होता हो तो वह आज की परिस्थिति में आवश्यक ही है। वंश नष्ट होने की मुझे जरा भी चिंता नहीं है।" इस उत्तर को सुनकर पुत्र-वत्सल माँ स्तब्ध रह गई और फिर कभी माता-पिता ने श्री गुरुजी से विवाह की बात नहीं छेड़ी।

५.१ गुरु की खोज में

इसी कालखंड में श्री गुरुजी के जीवन में एक नया मोड़ आ रहा था और उसका परिणाम सभी के लिए चिन्ता उत्पन्न करनेवाला था। डाक्टर जी से सम्पर्क बढ़ रहा था और संघकार्य में अधिकाधिक सहभाग भी वे ले रहे थे परन्तु श्री गुरुजी अभी संघकार्य से पूर्णतया समरस नहीं हो पाये थे। उनका अधिक रुझान नागपुर के धन्तोली स्थित रामकृष्ण आश्रम की ओर था। इस आश्रम के प्रमुख स्वामी भास्करेश्वरानंद के साथ श्री गुरुजी का काफी निकटता का सम्बन्ध प्रस्थापित हुआ था। दैनंदिन जीवन के अत्यावश्यक कार्य निबटाने के बाद का अधिकांश समय उनका आश्रम में ही बीतता। आश्रम में अध्यात्म-चिंतन और ध्यान धारणा के प्रति उनका आकर्षण दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। आत्मसाक्षात्कार के लिए वे तड़पने लगे। डाक्टर जी भी उनकी यह मनःस्थिति देखकर चिंतित थे। उनकी चिंता का कारण यह था कि

एक ओर जहाँ राष्ट्र को मुक्त करने की चुनौती है और सारा समाज गुलामी की दुरवस्था से गुजर रहा हैं वहीं दूसरी ओर श्री गुरुजी जैसा मेघावी तरुण व्यक्तिगत मोक्ष-सुख की कामना कर रहा है। डाक्टर जी ने स्वयं अपना सारा जीवन मातृभूमि की सेवा में न्योछावर कर दिया था और उन्हें ऐसी ही धारणा वाले बुद्धिमान, कर्मवीर तरुण चाहिए थे। तरुणों के समक्ष उन्होंने अपना जीता-जागता उदाहरण प्रस्तुत किया था। किन्तु वे श्री गुरुजी को मना नहीं सके थे। इस सम्बन्ध में यही कहा जा सरता है कि कुछ महान व्यक्तियों के जीवन की इस प्रकार की उथल-पुथल में भी शायद नियति का ही कोई सूत्र रहता हो! भारतीय ऋषि-मुनियों, रामकृष्ण-विवेकानन्द जैसे आधुनिक द्रष्टाओं, महाराष्ट्र की संत परम्परा अथवा योगी अरविन्द, रमण महर्षि जैसे सिद्ध पुरुषों ने परमोच्च सुख प्राप्ति की एक अवस्था बतलायी है। स्वानुभव से उन्होंने बताया है कि इस अवस्था में मन की सारी अशांति, खिंचाव-तनाव, "किम् कर्म किमकर्मेति" सम्बन्धी सन्देह हमेशा के लिए दूर होकर किसी भी बाह्य परिस्थिति पर न रहने वाले शाश्वत, स्वयंपूर्ण सुख का अमृतमय अखंड आनंद व्यक्ति प्राप्त कर सकता है। इस अवस्था की अनुभूति कर लेने के पश्चात् ही श्री गुरुजी का योगी-व्यक्तित्व संघकार्य में पूर्णतया समर्पित हो, यही नियति की योजना रही होगी।

इतना सच है कि किसी अनुभूति सम्पन्न सद्गुरु के चरणों में बैठकर, उनके सान्निध्य में रहकर उनकी सेवा में आनंदमय आत्मसाक्षात्कार हेतु एकाग्र साधना करने की ओर श्री गुरुजी का रुझान अत्यंत तीव्र हो चुका था और इसीलिए एक दिन अपने माता-पिता, मामा के परिवार, मित्रों, डाक्टर जी और संघ कार्यर्ताओं तथा नागपुर में वकालत करनेवाले सभी सहयोगी मित्रों को बिना बताये वे सद्गुरु का कृपा-प्रसाद पाने के लिए चल दिये। यह घटना १९३६ के शरदकाल की है।

श्री गुरुजी ने जिन सत्पुरुष की ओर प्रस्थान किया उनका नाम था स्वामी अखंडानंद। श्री रामकृष्ण परमहंस ने जिन इने-गिने तरुणों को अपने साथ लेकर उनसे कठोर साधना करवाई थी तथा एक महान् जीवनकार्य का उन्हें बोध कराया था उनमें स्वामी अखंडानंद भी थे। स्वामी विवेकानन्द भी इन्हीं के साथी थे। भारत के आध्यात्मिक जीवनादर्श की पुनः प्रस्थापना करना और चारों ओर फैले दरिद्रनारायणों की भौतिक क्षेत्र में सेवावृत्ति उपासना करना यही उनका अंगीकृत कार्य था। इस भगीरथ प्रयास को भारत के राष्ट्रीय स्वरूप की अनुभूति और उसके नियत जीवनकार्य के साक्षात्कार का सुदृढ़ अधिष्ठान प्राप्त था। ऐसा बताया जाता है कि एक बार स्वामी अखंडानंद जब हिमालय की प्रवास पर निकले तब मार्ग में मुर्शिदाबाद जिले में भीषण अकाल के कारण वहाँ के लोगों की दुर्दशा उनसे देखी नहीं गई। उनका मन करुणा से भर गया और उनके कदम वहीं पर रुक गये। उन्होंने सारगाछी में ही अपना डेरा जमाया और

सेवा कार्य प्रारंभ किया। इस सेवाकार्य के चलते ही वहाँ आश्रम का निर्माण हुआ। सारगाछी का शाब्दिक अर्थ है- हरे-भरे-घने वृक्षों की लम्बी पंक्तियाँ। इस नाम को सार्थक करनेवाला ही यह स्थान था। प्राकृतिक सौन्दर्य से सम्पन्न इस परिसर में ही पहले 'विनोद कुटी' बनी जिसमें स्वामी जी का वास्तव्य था। धीरे-धीरे इस आश्रम का विस्तार होकर सेवा केन्द्र, पाठशाला, औषधालय, उपासना स्थली आदि निर्मित होते गये। भगवत्-स्वरूप अपने समाज वांधवों- 'दरिद्रनारायण' की सेवा करने की प्रेरणा से बने इस आश्रम में श्री गुरुजी पहुँचे। रामकृष्ण आश्रम, नागपुर में 'दीक्षा' प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले साधकों को, जिनमें श्री गुरुजी भी एक थे, स्वामी अखंडानंद जी ने 'सारगाछी आश्रम' में आने के लिये कहा था। नागपुर के आश्रम में स्वामी अमूर्तानंद, जिन्हें अमिताभ महाराज के नाम से जाना जाता था, श्री गुरुजी के व्यक्तित्व से काफी प्रभावित थे। उनके ही शब्दों में, "श्री गुरुजी को देखकर मुझे ऐसा लगा मानों मेरे सामने एक अग्निपुंज खड़ा है जिस पर केवल कुछ राख जमी है। वह राख छँटते ही उनके व्यक्तित्व का तेज अधिक प्रखरता से प्रकट होगा।"

उन्होंने श्री गुरुजी को सारगाछी आश्रम जाने की प्रेरणा दी। नागपुर आश्रम के प्रमुख स्वामी भास्करेश्वरानंद ने भी अनुकुलता दर्शायी। सारगाछी आश्रम के स्वामी अखंडानंदजी से पत्र-व्यवहार कर उनकी सम्मति भी प्राप्त कर ली गई। फिर क्या था, एक दिन अचानक श्री गुरुजी आत्मसाक्षात्कार के दैवी आकर्षण से सारगाछी की ओर रवाना हो गये। इसकी जानकारी उनके केवल दो-तीन लिकटस्थ मित्रों को ही थी। बाकी सारे अनभिज्ञ थे। नागपुर में चर्चा चल पड़ी कि श्री गुरुजी कहाँ गये होंगे? श्री गुरुजी के इस प्रकार अकस्मात् चले जाने से डाक्टर जी को धक्का लगना स्वाभाविक ही था। उनका मानस श्री गुरुजी को संघकार्य से जोड़ना चाहता था। श्री गुरुजी के इस अकस्मात् प्रस्थान के बारे में उनके सहयोगी वकील मित्र श्री दत्तोपंत देशपांडे को ही मात्र जानकारी थी। अपने इस योजना के बारे में जो विस्तृत पत्र श्री गुरुजी ने अपने माता-पिता के नाम लिखकर रखा था, वह भी श्री देशपांडे के माध्यम से ही उन तक पहुँचाने की व्यवस्था की गई थी। तभी श्री गुरुजी के सारगाछी चले जाने का खुलासा लोगों को हुआ। किंतु तब तक काफी देर हो चुकी थी। श्री गुरुजी सारगाछी पहुँच चुके थे। अब इसके बाद वे कैसा मार्ग अपनाते हैं इसकी प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं था।

डाक्टर जी भी देशपांडे जी से जब कभी मिलते तो पूछते- 'कहिये, आपके मित्र सारगाछी से कब लौटने वाले हैं ?' लगता है, डाक्टर जी का मन कहता था कि श्री गुरुजी नागपुर अवश्य लौटकर आयेंगे। डाक्टर जी के घर में नित्य चलनेवाली बैठकों में भी बीच-बीच में श्री गुरुजी का विषय अवश्य निकला करता और गुरुजी की विद्वत्ता

और गुणवत्ता की प्रशंसा डाक्टर जी के मुख से सुनी जाती। उनके प्रति उपहास अथवा आलोचना का एक शब्द भी डाक्टर जी के मुख से कभी नहीं निकला। उनका दृढ़ विश्वास था कि श्री गुरुजी अवश्य लौटेंगे और संघकार्य में जुटेंगे।

५.२ दीक्षा ग्रहण

उधर श्री गुरुजी ने आश्रम में प्रवेश किया और बाहर की सारी दुनिया को वे भूल गये। गुरु की सेवा और एकाग्र साधना ही उनका जीवन बन गया। भारत की आध्यात्मिक परम्परा में गुरु-शिष्य सम्बन्ध बड़ा विलक्षण होता है। सभी संतों ने सदा सद्-गुरु की महिमा गायी है। श्री गुरुजी ने तन-मन से गुरु सेवा प्रारंभ की। आश्रम की साफ-सफाई से लेकर स्वामीजी के कपड़े धोने, बर्तन माँजने आदि किसी भी प्रकार के काम को उन्होंने कभी कम नहीं आँका। मनुष्य में जरा भी अहंकार की भावना हो तो वह इस प्रकार की सेवा से दूर हो जाता है। गुरु की कृपा से ही जीवन में सार्थकता है। गुरु भी अपने शिष्य को हर कसौटी पर कसकर परखता है। आश्रम के वास्तव्य में श्री गुरुजी हर कसौटी पर थरे उतरे। श्री गुरुजी के जीवन का यह अध्याय जितना आकस्मिक था उतना ही रहस्यमय भी था। आगे चलकर श्री गुरुजी संघकार्य से एकरूप हो गये और उन्होंने अपनी गुरुसेवा, साधना और आत्मानुभूति के बारे में कभी कोई चर्चा नहीं की। इसलिए उनके आश्रम-जीवन के बारे में जो कुछ भी थोड़ी-बहुत डानकारी मिल पायी वह उनके गुरुबंधु स्वामी अमिताभ महाराज के द्वारा ही समय-समय पर हुई चर्चा के दौरान मिली।

सन् १९४९ में श्री गुरुजी मैसूर के रामकृष्ण मिशन तथा विद्यामंदिर को देखने गये थे। उस समय स्वामी अमिताभ महाराज ने गुरुजी के स्वागतार्थ भाषण में कहा- “श्री गुरुजी ने अत्यंत परिश्रम और ध्येयपूर्क सारगाछी आश्रम में रहकर साधना की थी। उस समय उनके सहवास के आधार पर ही मैं कह सकता हूँ कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने ‘नरेन्द्र’ को ही नेता के रूप में प्राप्त किया है।” स्वामी अमिताभ महाराज ने मध्यप्रदेश में नर्मदा के किनारे मोहीपुरा में आश्रम स्थापित कर वनवासी बन्धुओं की सेवा के कार्य हाथों में लिया। वहाँ संघ की शाखा भी लगती है। श्री गुरुजी के साथ उनके सम्बन्ध अत्यंत आत्मीयता के रहे। दोनों के बीच पत्र-व्यवहार भी हुआ करता था। श्री गुरुजी द्वारा स्वामीजी को लिखे पत्र की भाषा और भाव में अलौकिकता दिखाई देती है। दि. ३० सितन्बर १९६० को अमिताभ महाराज के नाम लिखे पत्र की यह पंक्ति देखिये- “कल रात बोलते-बोलते सारगाछी आश्रम के वास्तव्यकाल की अमृतमय स्मृतियाँ ताजी हो उठीं। मन की क्या अवस्था हुई, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं

कर पा रहा हूँ। वह असीम भाग्य मुझे आपके कारण ही प्राप्त हो सका। उसका स्मरण होते ही कृतज्ञता से अन्तःकरण भर जाता है। किन्तु यह विषय कोई कोरे शब्दों में व्यक्त करने योग्य नहीं होने के कारण कुछ लिख नहीं पा रहा हूँ। इन शब्दों में उस महान भाव-जगत् की केवल कल्पना ही की जा सकती है।"

उपलब्ध जानकारी से यही ज्ञात होता है कि सारगाछी में पहुँचने के बाद श्री गुरुजी ने स्वयं को गुरु की सेवा में झोंक दिया। उनका अधिकाधिक समय गुरु के साथ ही बीतता और इस बीच उनके कपड़े धोना, उन्हें नहलाना, चाय बनाकर पिलाना, भोजन की व्यवस्था करना, उनका बिस्तर ठीक करना आदि सब प्रकार के काम श्री गुरुजी किया करते। स्वामी अखंडानंद जी वयोवृद्ध थे और श्री गुरुजी द्वारा निरलस भाव से की जानेवाली सेवाओं से अत्यंत प्रसन्न थे। सेवा करने और उनके अनुभवों को सुनने का अवसर उन्हें मिलता। वृद्धावस्था के कारण स्वामीजी प्रायः अस्वस्थ हो जाते और तब गुरुजी रात-रात भर उनके सिरहाने बैठकर जागते रहते। इस समय अपने इस प्रिय शिष्य के साथ स्वामीजी का मुक्त संवाद चलता। आश्रम में रहते समय श्री गुरुजी ने दाढ़ी बढ़ा ली थी और सिर के केश भी कटवाये नहीं थे। दाढ़ी और जटा उनके मुखकमल की शोभा बढ़ाते थे। ऐसे ही एक दिन स्वामीजी ने उनके बिखरे हुए मुलायम बालों पर अपना स्नेहपूर्ण हाथ फेरते हुए कहा, "ये बाल खूब फबते है। देखना, इन्हें कभी कटाना नहीं।" अपने गुरु की इस इच्छा का श्री गुरुजी ने आजीवन पालन किया। उनकी दाढ़ी और जटा का रहस्य सारगाछी के महात्मा के इस इस आशिर्वाद में है। सारगाछी आश्रम में गुरु की अहोरात्र सेवा में ५-६ मास बीत गये। गुरुकृपा के जिस आनंदमय क्षण की श्री गुरुजी बाट जोह रहे थे वह क्षण अभी तक नहीं आ पाया था। स्वामी जी का स्वास्थ्य दिनोंदिन बिगड़ता जा रहा था।

इसी समय स्वामी अखंडानंदजी ने स्वामी अमिताभजी को पत्र भेजकर नागपुर से सारगाछी बुलवा लिया। श्री गुरुजी और अमिताभ महाराज द्वारा गुरु की सेवा में एकत्र बिताये दिन उनके जीवन का एक स्मरणीय कालखंड रहा है। दीक्षा ग्रहण करने के लिए श्री गुरुजी के मन की व्यग्रता अमिताभ महाराज से छिपी नहीं थी और इधर स्वामी अखंडानंद जी अक्सर कहते सुने जाते कि 'अब मैं कुछ ही दिनों का मेहमान हूँ।' आखिर एक दिन स्वामी अखंडानंदजी के चरण दबाते समय अमिताभ महाराज ने स्वामीजी से कहा- "गोलवलकर जी के माता-पिता काफी वृद्ध हो चुके हैं, अतः उन्हें शीघ्र मंत्र-दीक्षा देकर वकालत का व्यवसाय करने दिया जाए।"

इस पर स्वामी जी ने जो उत्तर दिया उसमें एक वाक्य उनके द्रष्टा होने का परिचय देता है। स्वामी जी ने कहा- "उसे दीक्षा तो दे दी जाएगी किन्तु यह कौन कह सकता है कि वह वकालत का ही व्यवसाय करेगा ?"

यह सच है कि सारगाछी से लौटने के बाद गुरुजी ने वकालत का पेशा नहीं अपनाया। उनके जीवन को एक नयी दिशा मिल चुकी थी। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि सारगाछी आश्रम में प्राप्त अनुभवों से ही उनका जीवन समृद्ध बना था। गुरु की सेवा और साधना के इस कालखंड में श्री गुरुजी ने स्वयं स्वामी अखंडानंदजी के जीवन में ध्यान, समाधि और साधना का प्रात्यक्षिक देखा था। आश्रम में आने वाले देशी-विदेशी अतिथियों की देखभाल करते समय व्यक्त विविध प्रतिक्रियाओंको सुनने का अवसर भी उन्हें मिला। वेदान्त दर्शन के अनेकविध पहलुओं को अधिकारी पुरुष के मुख से सुनने का मौका मिला और स्वयं को भी वाचन, मनन और चिंतन का अवसर मिला।

एक दिन अमिताभ महाराज ने अपने गुरुदेव से कहा- "अब मुझे आज्ञा दीजिये। नागपुर जाना मेरे लिए आवश्यक है।"

इस पर स्वामी जी बोले- "देखूँ भला तुम कैसे जाते हो ?" फिर कुछ रुककर उन्होंने कहा, "तुम्हें यही रहना होगा। अब मैं अधिक दिन नहीं जी पाऊँगा।"

अमिताभ जा चौंक गये। उन्होंने डरते-डरते ही कहा, "माधवराव को अब दीक्षा दे दी जाए।" तुरंत उत्तर मिला, "ठीक है, ठाकुर जी से (रामकृष्ण परमहंस से) पूछ लेता हूँ।" (अमिताभ महाराज के नाम लिखे जानेवाले पत्रोंमें श्री गुरुजी भी श्री रामकृष्ण परमहंस का उल्लेख ठाकुरजी के नाम से ही किया करते थे।)

इस संवाद के तीन दिन बाद ही स्वामीजी ने स्वयं कहा, "कल गोलवलकर को दीक्षा दी जाएगी।"

नियोजित कार्यक्रमानुसार यह दीक्षा-विधि विनोद कुटी में ही सम्पन्न हुई। दीक्षा प्राप्त करने के बाद श्री गुरुजी को देवदर्शन के लिए भेजा गया। यह प्रभात की वेला थी और अमिताभ महाराज पूजा कर रहे थे। श्री गुरुजी को समाधान मुद्रा में मंदिर में आता देखकर उन्हें संतोष हुआ। अमिताभ जी के अनुसार "श्री गुरुजी उस समय प्रशांत महासागर के समान शांत तथा गंभीर दिखाई दे रहे थे।"

दीक्षा प्राप्त होने के पश्चात् अपने मन में जो भावोर्मियाँ उमड़ पड़ीं उनका श्री गुरुजी ने निम्नलिखित शब्दों में वर्णन किया है, "सुवर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य मेरे जीवन का वह संस्मरणीय दिन था क्योंकि असंख्य जन्मों के पश्चात् प्राप्त होने वाला सौभाग्य मुझ पर प्रसन्न हुआ था। सद्-गुरु की असीम कृपा उस दिन मुझ पर हुई थी। सचमुच उस दिन के अनुभव अत्यंत पवित्र हैं जो शब्दों में व्यक्त कर पाना संभव नहीं है। सद्-गुरु का वह स्पर्श, उनका वह प्रेम, अपना दैवी प्रसाद मुझे देते समय उनका सम्पूर्ण आविर्भाव, इनमें से किसी का भी मुझे विस्मरण होना असंभव है। मेरा सारा शरीर कम्पित हो रहा था। मुझे अनुभव हुआ कि मैं सम्पूर्णतः बदल गया हूँ। एक मिनट पूर्व मैं जो था, वह मैं नहीं रहा हूँ। ("Red letter day for me to be noted down in words of gold! For, did not the fortune of countless millions of births smile upon me and confer upon me the bliss of being graced by the Master? Indeed the experiences of that day are very sacred, too sacred for words. I can never forget the touch, the love, whole bearing of the Master as he conferred upon me this favour of the blessed and all the time I trembled. I feel changed. I am not what I was a minute ago!")

१३ जनवरी १९३७ को मकर संक्रमण के शुभ पर्व पर श्री गुरुजी ने दीक्षा प्राप्त की। बाद में २४ जनवरी की संध्या को पू. बाबा ने सेब मंगवाया और इस विषय में सूचना देने लगे। परंतु बीच में रुक कर बोले, "तुम्हारा सब प्रकार का कल्याण हो। तुझे आत्मदर्शन हो यही मेरी श्रीगुरु महाराज से प्रार्थना है। मुझ में जो अच्छाई है वह मैं तुझे दे रहा हूँ, तुझ में जो बुराई है वह मुझे दे। मुझे सुख की चाह नहीं है। मुझे दुःख चाहिए। मुझे तेरा कभी भी विस्मरण न हो, यही मेरी भगवान से प्रार्थना है। मेरा तुम्हें आशिर्वाद है। आज की संध्या का सदा स्मरण करते रहो। सुख क्या है? देखो, अपने लिए भगवान ने कितने कष्ट सहे हैं। श्रीकृष्ण का जन्म होते ही माँ का दूध न पीते हुये उन्हें माँ को छोड़कर ग्वाले के घर में रहना पड़ा। वहाँ वे बड़े हुए परन्तु वहाँ भी उन्हें सुख नहीं मिला। हमेशा असुरों द्वारा ढाये गये संकटों का सामना करना पड़ा। उनके दुःख के सामने अपने दुःख क्या है! इसलिए मैं दुःख की इच्छा करता हूँ।" व्यक्तिगत सुख की अपेक्षा बिलकुल ही न करते हुए और संकटों से पस्त न होते हुए ईश्वरशरणता से जीवन जीने का यह जो बोध पू. बाबा ने उत्स्फूर्तता से दिया, उसका श्री गुरुजी को कभी भी विस्मरण नहीं हुआ।

दीक्षा प्राप्ति के बाद भी श्री गुरुजी ने सारगाछी आश्रम में ही नियमानुसार गुरुसेवा जारी रखी। इस जीवन से वे पूर्णतया समरस हो गये। व्यक्तिगत सुख सुविधा, कठिणाई आदि का विचार उन्हें स्पर्श तक नहीं कर पाया।

५.३ कुछ सुखद संस्मरण

संयोग से ही श्री गुरुजी के सारगाछी आश्रम के कालखंड के संबंध में दो संस्मरण कलकत्ता के संघचालक डॉ. सुजित धर को प्राप्त हुए। घटना इस प्रकार हुई। कलकत्ता में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् का एक कार्यक्रम आयोजित होने वाला था। उसमें प्रमुख अतिथि के नाते उपस्थित रहने के लिए स्वामी निरामयानन्द जी को आमंत्रित करने डॉ. धर उनके आश्रम में गये थे। उनसे वार्तालाप करते समय स्वामीजी के मुख से सहज उल्लेख हुआ कि वे स्वयं सारगाछी आश्रम में रह चुके हैं। तब डॉ. धर ने कहा, "स्वामीजी, हमारे गुरुजी भी कुछ समय वहाँ रहे थे।"

"कौन गुरुजी ?"

"हमारे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक।"

"वे गोलवलकर ? आजकल उनका वास्तव्य कहाँ है ? मैंने सुना है कि कभी-कभी वे कलकत्ता भी आते हैं। उनसे कहिए कि उन्हें जब फुरसत हो तब मैं साक्षात्कार करने आऊँगा।"

फिर कुछ दिनों के बाद प्रवास में श्री गुरुजी का कलकत्ता आगमन हुआ। तब डॉ. धर ने स्वामी निरामयानन्द की इच्छा उन्हें बतलायी। श्री गुरुजी अपने गुरुबन्धु का उल्लेख सुनते ही तोमांचित हो उठे और बोले, "उन्हें सूचित करो कि वे आने की तकलिफ न उठायें, मैं ही उनके दर्शनार्थ आश्रम में आ रहा हूँ।" डॉ. धर ने श्री गुरुजी का सन्देश स्वामी निरामयानन्दजी को सूचित किया। श्री गुरुजी जल्दी-जल्दी तैयार हुए। गुरुबन्धु के साक्षात्कार का दुर्निवार आकर्षण उनकी हलचल से प्रकट हो रहा था। हम लोग आश्रम की ओर चल पड़े। आश्रम की ओर जानेवाली गली जरा संकरी होने से मोटर आम रस्ते के किनारे खड़ी कर हम लोग पैदल ही आश्रम की ओर जाने लगे। स्वामी निरामयानन्द जी प्रवेश द्वार के बाहर स्वागत के लिए खड़े थे। उनको देखते ही गुरुजी अक्षरशः उनकी ओर दौड़ने लगे। दूसरी ओर से स्वामी जी भी दौड़े। दोनों का साक्षात्कार हुआ और दोनों ने परस्पर आलिंगन दिया। सब लोग आश्रम में पहुँचे। दोनों गुरुबन्धु भाव-विभोर होकर परस्पर बातचीत कर रहे थे, बाबा के संस्मरण कथन कर रहे थे।

स्वामी जी : स्मरण है तुम्हें ? (एक स्थान की ओर अंगुलि निर्देश कर) "यहाँ बाबा (श्री सद्-गुरु स्वामी अखंडानंदजी) लेटे हुए थे। उनका सिर मेरी गोद में था।"

"बाबा का सारा सामान रहाँ है ? घड़ी, कमण्डलु ... "

श्री गुरुजी - सब कुछ है।

स्वामी जी – बाबा का विस्मरण तो नहीं हुआ है? आज तुम जो कुछ हो वह केवल बाबा के कारण हो।

श्री गुरुजी – हाँ, आज मैं जो कुछ हूँ वह केवल बाबा के कारण ही हूँ।

श्री स्वामी जी – तुम बाबा के पास से, उनके पास जो कुछ था वह सारा ग्रहण कर चुके हो!

डॉ. धर चकित होकर सारा रहस्यमय संवाद सुन रहे थे। जो बात श्री गुरुजी ने कभी पूछने नहीं दी, प्रकाश में नहीं आने दी, उस पर अकस्मात थोड़ा-सा प्रकाश पड़ रहा था।

फिर दूसरी मंजिल पर सब लोग गये। स्वामी जी ने कहा, "बाबा की जन्मशती आ रही है। उस समय बाबा के जीवन और कार्य के विषय में जानकारी देनेवाला ग्रंथ तीन खंडों में प्रकाशित करने का संकल्प है, उसमें तुम्हारा एक विस्तृत लेख अवश्य होना चाहिए। इसके साथ ही कुछ धन की भी व्यवस्था करनी पड़ेगी। बेलूर मठ धन देने को तैयार नहीं है।" बाद में डॉ. धर को मालूम हुआ कि उस ग्रंथ के लिए श्री गुरुजी ने टंकलिखित १६ पृष्ठों का एक वास्तृत लेख लिख कर भेज दिया। डॉ. धर ने वह लेख ढूँढने का प्रयास किया, परन्तु श्री गुरुजी का नाम कहीं भी नहीं था। पूछताछ करने पर स्वामी जी ने कहा, "ही हैज केप्ट हिज वर्ड, इससे अधिक कुछ बतलाऊँगा तो वे मेरे लिर पर डंडा मारेंगे।"

* * * *

और एक मार्मिक घटना स्वामीजी से ज्ञात हुई। श्री गुरुजी के आश्रम में प्रविष्ट होने के बाद कुछ समय बीता था। स्वामी अखण्डानंद के चरणों में स्वयं को संपूर्णतः समर्पित कर देने के बाद की यह घटना है।

एक आश्रमवासी को अपने पिता की गंभीर बीमारी का समाचार तार द्वारा प्राप्त हुआ। घर जाने के लिए बाबा से अनुज्ञा लेने का साहस नहीं होने पर भी अन्य आश्रमवासियों के आग्रह के कारण उसने बाबा से घर जाने की अनुमति माँगी। बाबा नाराज हो गये। तब श्री गुरुजी ने, जो बाबा के पैर दबा रहे थे, कहा- "आप को उसे डाँटना नहीँ चाहिए था। बेचारा वह बहुत दुःखी है।" बाबा बिगड़कर बोले- "तू कौन होता है मुझे बताने वाला?" किन्तु गुरुजी ने अपना विनयपूर्ण निवेदन जारी रखा।

उनकी अविचल श्रद्धा एओवं निरलस सेवा का ही परिणाम था कि बाबा ने उस शिष्य को बुलाकर उससे आत्मीयतापूर्वक पूछताछ की और घर जाने के लिए द्रव्यादि की व्यवस्था करवा दी। परंतु वह शिष्य तब तक घर नहीं जाने का निश्चय कर चुका था।

श्री गुरुजी के सारगाछी के वास्तव्य में स्वामी अखंडानंदजी ने उनके सम्बन्ध में एक बार जो उद्-गार व्यक्त किये थे वे किसी भविष्यवाणी के सदृश लगते हैं। एक आश्रमवासी ने बाबा से कहा, "वह जो नया एम.एस-सी. शिष्य आया है ना, उसने सारे पीतल के बर्तन ऐसे माँजे है कि वे सोने के पात्रों के समान चमक रहे हैं।"

बाबा बोले, "हाँ, परन्तु ध्यान रखो वह जिस केम में हाथ डालेगा उसका सोना ही हो जाएगा !"

बाबा की गुरुजी ने जो सेवा की उस विषय में स्वामी जी ने कहा, "सोने के पूर्व बाबा के पैर दबाने पड़ते थे। यह काम गुरुजी नियमपूर्वक करते। बाबा को गहरी नींद लगने पर ही अपना स्थान छोड़ते थे। बाबा प्रातः ४ बजे जागते थे। तत्पूर्व ही गुरुजी उठ चुके होते। बाबा के खड़ऊं वे बाबा के चरणों के निकट रख देते। हम लोगों को आश्चर्य होता था यह व्यक्ति कभी सोता भी है या नहीं ?"

स्वामी अखंडानंद जी स्वास्थ्य दिनोंदिन बिगड़ता ही जा रहा था। मधुमेह और हृदय रोग से वे ग्रस्त थे। और फिर एक दिन देर रात तक स्वामी जी अपने दोनों शिष्यों को अध्यात्म के सारे रहस्य सुनाते रहे। रात के साढ़े तीन बज चुके थे। अमिताभ महाराज ने उन्हें अब विश्राम करने की सलाह दी तो वे कहने लगे, "अब अंतिम समय आता दिखाई दे रहा है। इसके बाद तुम शायद मेरी वाणी नहीं सुन पाओगे।" अमिताभ महाराज ने श्री बाबा से पूछा, 'माधवराव की हिमालय जाने की इच्छा अतिशय प्रबल है।' श्रीमान् बाबा बोले,'यह डाक्टर हेडगेवार के साथ रहकर काम करेगा ऐसा लगता है। शुद्ध भाव से समाज सेवा में। वह हिमालय का दर्शन अवश्य करे, परंतु एकांतवास न करे इसका ध्यान रखना।'

उस दिन के बाद स्वामी   जी का स्वास्थ्य संभल नहीं सका। बीच-बीच में वे मूर्च्छित हो जाते और मूर्च्छा दूर होने पर उठकर बैठ जाते। तब उन्हें कठिनाई से लिटाया जाता। इस बिमारी में गुरुजी ने अपनी भूख-प्यास-विश्राम आदि सब कुछ भूलकर स्वामी जी की सेवा की। कभी-कभी गुरुजी को भोजन करने का अवकाश नहीं

मिलता था तथा कभी-कभी दो-तीन दिन तक दिन-रात जागना पड़ता था। फिर भी वे स्वामी जी की सेवा

में दक्ष रहते थे। आगे चलकर जब श्री गुरुजी डाक्टर जी की बीमारी के समय नासिक से देवलाली में उनके साथ थे, उस समय भी श्री गुरुजी ने ऐसा ही तत्परता और लगन से डाक्टर जी की सेवा की थी। डॉक्टरजी को उस समय डबल निमोनिया हो गया था। संघ शिक्षा वर्ग में भी सामान्य स्वयंसेवक की बीमारी की अवस्था में उसकी सेवा में वे रात-रात भर जागते रहते थे। इस विलक्षण सेवा भाव के कारण लोगों का उनके प्रति अति आदर भाव अधिकाधिक वृद्धिंगत होता गया। समर्पित सेवाभावना का प्रत्यक्ष उदाहरण उन्होंने दुनिया को प्रस्तुत किया था।

५.४ कर्मक्षेत्र में पदार्पण

इस सेवा शुश्रुषा और वैद्यकीय उपचारों के बावजूद स्वामीजी का स्वास्थ्य निरंतर बिगड़ता रहा। उन्हें बड़ी कठिनाई से कलकत्ता लाया गया। वहाँ दि. ७ फरवरी १९३७ को दोपहर ३ बजकर ७ मिनट पर उनका निर्वाण हो गया। स्वामी जी ने अपने इन प्रिय शिष्यों से अन्तिम बिदाई ली। स्वामी अखंडानंद जी के साथ श्री गुरुजी ने आत्मसाक्षात्कार और आध्यात्मिक ज्ञान-पिपासा की तृप्ति के लिए लगभग ५-६ माह व्यतीत किये थे। अब वे महापुरुष तो नहीं रहे किन्तु जाने के पूर्व अपने शिष्य के जीवन को आध्यात्मिकता का शाश्वत अधिष्ठान प्रदान कर गये। स्वामी जी के देहावसान के बाद वे कुछ दिन वहीं रहे। उस समय उनकी मनोदशा की कल्पना नहीं की जा सकती। अब उन्हें भावी मार्ग खोजना था। व्यक्तिगत घर-गृहस्थी बसाने का विचार तो उनके मन में उठने का प्रश्न ही नहीं था किन्तु इस जीवन का क्या करें? यह प्रश्न उनके मन को उद्वेलित कर रहा था। आखिर एक दिन गुरुजी नागपुर लौट आये। यह १९३७ के मार्च माह का प्रसंग है।

श्री अमिताभ महाराज ने श्री गुरुजी के संबंध में बतलाया कि श्रीमान् बाबा के महासमाधिस्थ हो जाने के बाद कलकत्ता में श्री गुरुजी को श्री रामकृष्ण परमहंस के शिष्य अभेदानंद जी, स्वामी विवेकानन्द के मंझले भाई श्री उपेन्द्रनाथ दत्त और श्री रामकृष्ण देव के समय के परिचित सभी के पास वे ले गये। स्वामी अभेदानंद श्री गुरुजी को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और अपने एक चित्र पर हस्ताक्षर कर उन्हें देते हुए कहा, 'तुम त्यागी के समान जीवन-यापन करोगे।' श्री गुरुजी के बचपन के एक सहपाठी ने, जो सारगाछी आश्रम में रहते थे, बेलूर मठ में रहने का निश्चय प्रकट किया। श्री गुरुजी ने भी अपना वही मंतव्य प्रकट किया। तब श्री अमिताभ महाराज ने

उन्हें अलग ले जाकर कहा कि तुम्हें रामकृष्ण मिशन में नहीं रहना है। श्री गुरुजी ने चौंक कर कहा, 'आप सच कह रहे हैं ? आपको कैसे मालूम हुआ ?' श्री अमिताभ महाराज ने अखंडानंद जी से हुआ वार्तालाप बताया। श्री गुरुजी ने कहा, 'मुझे भी गुरुदेव ने यह आदेश दिया है कि जब भी कोई कठिनाई आए, मैं आपसे परामर्श लिया करूँ। अब आपकी मेरे बारे में क्या योजना है ?' श्री अमिताभ महाराज ने कहा, 'मैं तुमको जहाँ से लाया हूँ, वहीं ले जाकर सौंप दूँगा।'

श्री गुरुजी को साथ लेकर श्री अमिताभ महाराज नागपुर लौटे। एक मास रामकृष्ण आश्रम में रहकर स्वामी विवेकानंद के शिकागो व्याख्यान का मराठी अनुवाद कराया मानो परम श्रद्धेय बाबा जी के द्वारा प्राप्त हुई दीक्षा की यह गुरुदक्षिणा थी। तत्पश्चात श्री गुरुजी के मामा श्री रायकर को बुलवाकर उनसे श्री महाराज जी ने कहा कि वे उनको डाक्टर साहब के पास पहुँचा दें। इस तरह डाक्टर साहब को भावी सरसंघचालक की उपलब्धि हो गई।

*

६ जीवन कार्य का निर्धारण

सारगाछी से लौटने के बाद श्री गुरुजी प्रायः उदास रहा करते थे। इस बात में कोई संदेह नहीं लगता कि श्री गुरुजी के मन में अपने कार्यक्षेत्र और कार्य के सम्बन्ध में विचारों का तुफान उठ रहा होगा। डाक्टर हेडगेवार जी के साथ उनका सम्पर्क १९३१ से ही था। संघकार्य भी उन्होंने निकटता से देखा था। डाक्टरजी के साथ चर्चाएँ भी हुई थी। अपना देश, अपना समाज, राष्ट्र के समक्ष उपस्थित चुनौतियाँ तथा उनके निवारण के मार्ग के सम्बन्ध में कुछ दिशा-ज्ञान तो उन्हें पहले ही हो चुका था। उन्हीं के शब्दों में कहना हो तो "डाक्टरजी मेरे तर्क कठोर, गहन, दुर्गम अंतःकरण में कैसे प्रवेश पा गये, इसका मुझे पता तक नहीं चल पाया।" वैसे गुरुजी भले ही अपने आपको तर्क-कठोर बुद्धी का तथा गहन अंतःकरण वाला कहते हों तथापि सामाजिक दुःखों को देखकर द्रवित होनेवाला मक्खन से भी मुलायम अन्तःकरण उन्होंने पाया था। और फिर रामकृष्ण, विवेकानंद, अखंडानंद और रामकृष्ण आश्रम की परम्परा भी व्यक्ति को केवल व्यक्तिगत मोक्ष साधना में ही लगे रहना नहीं सिखाती थी और इस सीख का अमिट छाप गुरुजी के अन्तःकरण पर भी पड़ी थी। स्वामी विवेकानंद ने समाज के दिन-दुःखी दलितों को दरिद्रनारायण मानकर उनकी सेवा में ही जीवन का होम चढ़ाने का आहवान किया था। इसीलिए स्वामी अखंडानंदजी ने सारगाछी में आश्रम की स्थापना की थी। यहाँ प्राप्त संस्कारों ने ही श्री गुरुजी को समाज से न टुटने और समाज के बीच रहकर ही सेवाभावना से कर्ममय जीवन की प्रत्यक्ष प्रेरणा दी हो तो उसे अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। सत्ता की राजनीति में गुरुजी को कभी कोई रुचि नहीं रही। आध्यात्मिक अधिष्ठान को सुरक्षित रखकर अपनी मातृभूमि को समूचे विश्व में गौरवशाली स्थान प्राप्त कराने का जो सूत्र स्वामी विवेकानंद ने प्रतिपादित किया था, उसी ओर श्री गुरुजी का स्वाभाविक रुझान था। इस सूत्र से मेल रखनेवाला समाज को संगठित तथा संस्कार-प्रवण बनाने का कार्य संघ के रूप में खड़ा होता हुआ उन्हें दिखाई दे रहा था। इस कार्य में अपने शरीर को चंदन सा घिसते हुए डाक्टर जी के जीवन को भी वे देख रहे थे।

६.१ संघ-संस्थापक

डाक्टर हेडगेवार जी द्वारा स्थापित और अपना सर्वस्व लगाकर वृद्धिंगत पोषित व संवर्धित राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ वास्तव में देश का कायाकल्प करने का एक दिव्य कार्य है। १९२५में उन्होंने काफी विचारपूर्वक संघ की स्थापना की थी। उसके पूर्व जन-जागरण और राष्ट्र को दासता से मुक्त कराने की दिशा में चल रहे प्रायः सभी कार्यों में

सहभागी हो कर उन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया था। बचपन से ही उनके हृदय में देशभक्ति की प्रखर भावना विद्यमान थी। अपने देश पर विदेशी ब्रिटिशों का चलनेवाला राज उनके अन्तःकरण को सदा व्यथित करता था। स्वाधीनता आन्दोलन सर्वत्र फैल रहा था। बाल्यकाल में स्वाधीनता की ललक कभी नागपुर के सीताबर्डी के किले पर लगा यूनियन जैक उतारकर वहाँ भगवा ध्वज फहराने की विलक्षण कल्पना में तो कभी शाला में 'वन्देमातरम्' के उद्-घोष के रूप में डाक्टरजी के जीवन में अभिव्यक्त हुई थी।

बड़े होने पर स्वाधीनता के लिए चलाये जा रहे विभिन्न आन्दोलनों में उन्होंने खुलकर हिस्सा लिया। मूलरूप में उग्र-स्वभाव के होने के कारण डाक्टरजी सर्वप्रथम सशस्त्र क्रांतिकारी आन्दोलन की ओर आकृष्ट हुए। बंग-भंग के बाद अनेक युवक इस आंदोलन की ओर आकर्षित हुए थे। लोकमान्य तिलक का 'केसरी' और शिवरामपंत परांजपे का 'काल' समाचार पत्र इन तरुणों के स्फूर्ति-केन्द्र थे। बंगाल में कार्यरत क्रांतिकारियों के आंदोलन में सहभागी बनने के उद्येश्य से ही डाक्टर जी ने कलकत्ता नेशनल मेडिकल कालेज में प्रवेश लिया था। तन मन से निःस्वार्थ देश सेवा करना डाक्टर जी का स्थायी भाव था। प्रथम महायुद्ध के समाप्त होने तक वे क्रांतिकारियों के आंदोलन से जुड़े रहे। किन्तु प्रदीर्घ अनुभवों के बाद उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि मुठ्ठी भर लोगों के गुप्त संगठन द्वारा सम्पूर्ण देश में जड़ जमाकर बैठे शक्तिशाली ब्रिटिश शासन को नष्ट किया जा सकना संभव नहीं है। इसके लिए सम्पूर्ण समाज में देशभक्ति प्रखर भावना और स्वाधीनता प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा जागृत करनी होगी। क्रांतिकारी आन्दोलन का दाहक मार्ग समाजशक्ति को जागृत करने में उपयोगी नहीं हो सकता। डॉक्टर जी ने क्रांतिकारी आन्दोलन का अपने जीवन का अध्याय समाप्त किया और कांग्रेस के स्वाधीनता-आन्दोलन में वे कूद पड़े। उस समय वे कांग्रेस में तिलक जी के साथ खड़े रहे। विदर्भ में तिलक-समर्थक नेताओं का उन्होंने साथ दिया। तदर्थ अखबार चलाये, दौरे किये और उत्तेजक भाषण भी दिये। इससे उनका परिचय क्षेत्र बढ़ा। डाक्टर जी ने अपने सामने लोकसंग्रह का लक्ष्य रखा था। डाक्टरी की परीक्षा पास करने के बाद भी न तो उन्होंने वह पेशा अपनाया और न ही घर-गृहस्थी बसाने के चक्कर में वे पड़े।

१९२० की नागपुर कांग्रेस और बाद में महात्माजी के नेतृत्व में प्रारंभ हुआ असहयोग आंदोलन डाक्टर जी के जीवन में हो रहे परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण चरण था। १९२० में नागपुर में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता लोकमान्य तिलक स्वीकार करें, इस दिशा में विदर्भ में व्यापक तैयारियाँ हो चुकी थीं। किन्तु तिलकजी के आकस्मिक देहावसान से सारी परिस्थिति बदल गई। डाक्टर जी ने डा. मुंजे के साथ

पाण्डिचेरी जाकर अरविन्द बाबू को अध्यक्षता करने के लिए मनाने का प्रयास किया। किन्तु अरविन्द बाबू द्वारा अस्वीकार किये जाने से इसमें सफलता नहीं मिल सकी। फिर भी डाक्टर जी ने कांग्रेस अधिवेशन में उत्साह से भाग लिया। स्वयंसेवक दल का दायित्व उन्होंने अच्छी तरह निभाया। इतना ही नहीं तो खिलाफत आंदोलन के संभावित परिणामों की कल्पना से चिन्तित होते हुए भी असहयोग आंदोलन में अग्रणी रहकर हिस्सा लिया। न्यायालय में ओजस्वी बयान दिया और 'राजद्रोह' के आरोप में कारावास की सजा भी काटी। स्वाधीनता प्राप्ति का आंदोलन अपने सारे मतभेदों को दूर रखकर चलाया जाना चाहिए। उनकी यही भूमिका थी। जेल से मुक्त होने पर उन्हें दिखाई दिया कि कांग्रेस द्वारा खिलाफत आंदोलन को अपनाये जाने से मुस्लिम साम्प्रदायिकता को अधिक बढ़ावा ही मिला है। हिन्दू समाज पर उनके आक्रमण बढ़ गये है। मुस्लिमों के अनुनय की कांग्रेस की नीति आत्मघाती सिद्ध हो रही है। असहयोग आंदोलन से प्रत्यक्ष रूप में कोई लाभ तो नहीं मिला, उल्टे हिंसाचार के कारण उसे अकस्मात् वापस लेने की घोषणा कर दी गई। परिणामस्वरूप लोगों में घोर निराशा फैल गई और लोग फिर से राष्ट्र के लिए त्याग की भावना को भूलकर स्वार्थसाधना में मग्न होने लगे।

६.२ एक अनुपम कार्य-पद्धति का विकास

डाक्टर जी को आन्दोलन के दौरान जो विविध प्रकार के अनुभव आये, नेताओं द्वारा सतही विचार करने की जो प्रवृत्ति देखने को मिली और राष्ट्र के सम्बन्ध में गहराई से सर्वांगीण मूलगामी चिंतन के अभाव का अनुभव हुआ- इन सब बातों से उन्होंने कुछ ठोस निष्कर्ष निकाले और उसके आधार पर ही अत्यंत विचारपूर्वक एक नयी पद्धति से राष्ट्रव्यापी संगठन खड़ा करने का उन्होंने संकल्प लिया। उनके निष्कर्ष इतिहास तथा अनुभवों पर आधारित स्पष्ट और असंदिग्ध थे। उनका प्रथम निष्कर्ष था, भारत की पराधीनता के लिए दूसरों को दोष देने की अपेक्षा राष्ट्रीय दुर्बलता को ही जिम्मेदार माना जाए। हम पर आनेवाली समस्त संकट-परम्परा की जड़ में हमारी अपनी दुर्बलता है। अतः समस्याओंके मूल कारण राष्ट्रीय दुर्बलता का परिहार करना आवश्यकता है। इस के लिए समाज में राष्ट्रीय चारित्र्य का अभाव दूर कर उत्कट देशभक्ति के संस्कारों की व्यवस्था करनी होगी। उनका दूसरा निष्कर्ष था, अंग्रेजों की सत्ता का केवल विरोध करना ही देशभक्ति नहीं है। लोगों के मन में इस राष्ट्र के मूलस्वरूप की विधायक कल्पना को अंकित करना होगा और राष्ट्र के प्रति एकात्म-भाव जागृत करना होगा ! इसके अभाव में अंग्रेजों के यहाँ से चले जाने के बाद भी समस्याओं का अंत नहीं हो पायेगा; क्योंकि लोग चारित्र्य, अनुशासन और देशभक्ति के अभाव में स्वार्थ-साधना और परस्पर कलह में ही लगे रहेंगे। इसलिए उनके सामने विधायक आदर्शवाद

प्रस्तुत करना आवश्यक है। तीसरा महत्वपूर्ण विचार ड़ाक्टर जी ने अत्यंत निर्भीकता के साथ लोगों के सामने रखा कि अपना यह राष्ट्र, जिसकी आत्मा हिन्दू संस्कृति है, एक इतिहाससिद्ध प्राचीन हिन्दू राष्ट्र है। इस राष्ट्र में हिन्दू समाज निर्भयता से, गौरव के साथ और अपने सांस्कृतिक आदर्शों का अनुकरण करते हुए स्वाभिमान के साथ रह सके, इतना सामर्थ्यशाली उसे बनाना होगा ताकि कोई भी हिन्दू समाज और हिन्दू राष्ट्र की ओर बुरी नजर से न देख सके। यह सामर्थ्य राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत ध्येयवादी संगठन के द्वारा ही प्राप्त हो सकेगी। वे यह भी अनुभव करते थे कि केवल ओजस्वी, उत्तेजक भाषणों द्वारा अथवा सभाओं में प्रस्ताव पास करने मात्र से ऐसा संगठन खड़ा नहीं किया जा सकेगा। इसलिए दैनंदिन संस्कार देने वाली शाखा पद्धति को उन्होंने अपनाया। यह अभिनव पद्धति तो डाक्टर हेडगेवार जी की प्रतिभा की देश को प्राप्त अमूल्य देन ही मानी जाएगी। शाखा पद्धति के बिना इतना बड़ा संगठन खड़ा होना असंभव ही था। काफी विचारमंथन के बाद डाक्टर जी ने 'संघकार्य को ही जीवन कार्य' के रूप में अपनाकर अपना सर्वस्व लगाकर जीवन का एक-एक क्षण और शक्ति का एक-एक कण संघ कार्य के लिए व्यतीत किया।

६.३ श्री गुरुजी – जीवन कार्य का निश्चय

संक्षेप में संघ की स्थापना और उसके विस्तार की यह पृष्ठभूमि है। इसके प्रेरणा-केन्द्र और संगठनात्मक कार्य के जीवंत आदर्श के रूप में डाक्टर जी का ही व्यक्तित्व सबके सामने था। श्री गुरुजी जब सारगाछी से नागपुर लौटे तब डाक्टर जी ने उन्हें उनके जीवन-कार्य का साक्षात्कार तकाया। डाक्टर जी के निर्मल और ध्येय समर्पित जीवन से सुर मिलते गये और दोनों जीवन एकरूप हो गये। यह देखकर सभी चकित रह गये कि केवल तीन वर्षों की अवधि में ही इतना दूरगामी परिणामकारी चमत्कार कैसे हो गया। गुरुजी जब वापस लौटे तो सर्वाधिक खुशी डाक्टर जी को हुई। गुरुजी ने सारगाछी में निरन्तर ध्यान-धारणा और अपने गुरुदेव से दीक्षा-प्रसाद पाकर जो आत्म-बल अर्जित किया था, वह डाक्टरजी की दृष्टी में कम महत्वपूर्ण अथवा उपेक्षणीय नहीं था। उनकी इच्छा यही थी कि गुरुजी की सारी गुण-सम्पदा, उनका सारा तपोबल, उनके सारे भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान का पूर्ण उपयोग संघ-कार्य के रूप में देश की, राष्ट्र की सेवा में हो। श्री गुरुजी संघकार्य को ही जीवन-कार्य के रूप में अंगीकृत करें। श्री गुरुजी के नागपुर लौटने के बाद डाक्टर जी के साथ उनकी भेंट-वार्ताओं का क्रम शुरू हो गया। इन भेंट-वार्ताओं में डाक्टर जी ने पुनः एक बार श्री गुरुजी के समक्ष यह भूमिका प्रस्तुत की कि आध्यात्मिक जीवन का अनुभव प्राप्त किये हुए ज्ञानी व्यक्ति को केवल व्यक्तिगत सुखानुभूति में ही रमने की बजाय समाज और राष्ट्र की उत्थान में अपनी सारी शक्ति लगानी चाहिए। इस बार डाक्टर जी की यह

भूमिका गुरुजी के अन्तःकरण में पैठ गई। डाक्टर जी का जीवन तो वे स्वयं देख ही रहे थे। संकुचित 'मैं' का लोप होकर समष्टि रूप बना वह विरागी और कर्मयोगी का जीवन था। डाक्टर जी अपने स्वयं के लिए कुछ नहीं चाहते थे। फिर भी कुछ दिनों तक गुरुजी की स्वच्छंदता कायम रही। वे कभी रामकृष्ण आश्रम में जाते, कभी बांसुरी-वादन में रमते और कभी मित्र मण्डली में गप-शप में लगे रहते तो कभी पुस्तकों के ढेर के बीच एकांत में पढ़ने अथवा ध्यान-धारणा में मग्न रहते। इसके बावजूद संघ के साथ उनकी निकटता भी बढ़ती जा रही थी।

इन्हीं दिनों श्री गुरुजी के नाम से 'वी ऑर अवर नेशनहुड डिफाइन्ड', जिसके बारे में स्वातंत्र्यवीर सावरकर के ८० वें जन्मदिवस के उपलक्ष्य में आयोजित सैनिकीकरण सप्ताह में दि. १५ मई १९६३ को बोलते हुए श्री गुरुजी ने कहा था कि "राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में 'वी' या 'आम्ही कोण' पुस्तक का नियमपूर्वक वाचन किया जाता है। श्री बाबाराव सावरकर द्वारा लिखित "राष्ट्रमिमांसा" पुस्तक को संक्षिप्त रूप देते हुए (we) 'वी' पुस्तक मैंने ही लिखी थी। श्री बाबाराव की आज्ञा से मैंने उस पुस्तक का हिंदी भाषांतर* भी किया था और उसे एक गृहस्थ को सौंप दिया था। श्री बाबाराव के इस ऋण को कृतज्ञतापूर्वक प्रगट रूप में स्वीकार करना मुझे उचित लगता है।" गुरुजी को धीरे-धीरे संघकार्य में लगा कर डाक्टर जी ने १९३८ में उन्हें नागपुर के संघ शिक्षा वर्ग का सर्वाधिकारी बनाया।

श्री गुरुजी द्वारा संघकार्य क्यों स्वीकार किया गया, इस विषय पर उन्होंने बिल्कुल ही प्रकाश नहीं डाला ऐसा नहीं हैं। 'वी ऑर अवर नेशनहुड डिफाइन्ड' ग्रंथ के संबंध में १९३९ में पिछली पीढ़ी के सुप्रसिद्ध मराठी लेखक और दैनिक 'तरुण भारत' (नागपुर) के संपादक स्व. ग.त्र्य. माड

खोलकर उपाख्य भाउसाहेब के साथ श्री गुरुजी की प्रदीर्घ चर्चा हुई। इस अवसर पर डॉ. हेडगेवार स्वयं उपस्थित थे। ग्रंथ के विषय में चर्चा पूरी होने पर श्री गुरुजी के अनुमति से भाउसाहेब ने श्री गुरुजी से एक व्यक्तिगत प्रश्न पूछा। श्री गुरुजी के महानिर्वाण के बाद नागपुर के दैनिक तरुण भारत में (दिनांक १६/ ६ / ७३) 'त्रिकोणी संगम' शीर्षक से एक विस्तृत लेख भाऊसाहेब ने लिखा। उसमें इस व्यक्तिगत प्रश्न का और उस पर श्री गुरुजी द्वारा दिये गये उत्तर का उल्लेख है। वह महत्वपूर्ण होने से मूल लेख में से वह हिस्सा ज्यों का त्यों यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

माडखोलकर लिखते हैं, 'मैंने पूछा, ऐसा मैंने सुना है कि आप बीच में संघ का यहाँ का काम छोड़कर बंगाल में रामकृष्ण आश्रम में गये थे और वहाँ आपने स्वामी

विवेकानन्द के गुरुबन्धु से दीक्षा भी ग्रहण की। परन्तु फिर आप रामकृष्ण आश्रम छोड़कर पुनः संघ में कैसे आ पहुँचे ? आपको ऐसा नहीं लगता कि आश्रम कि भूमिका से संघ की भूमिका बिल्कुल भिन्न है ?" मेरा यह प्रश्न सुनते ही श्री गुरुजी एकदम स्तब्ध हो गये। उन्होंने कुछ क्षण अर्धोन्मीलित दृष्टि से विचार भी किया। मानों वे उस उन्मनी अवस्था में पहुँच गये हों। कुछ समय पश्चात उन्होंने धीरे-धीरे बोलना प्रारंभ किया- '

उन्होंने कहा, "आपने यह बिल्कुल अनपेक्षित प्रश्न पूछा है। परंतु आश्रम और संघ की भूमिका में अंतर है या नहीं यह मुझसे अधिक डाक्टर साहब ही अधिक अधिकार से बतला सकेंगे, क्योंकि क्रांतिकारी आन्दोलन के कालखंड में वे कलकत्ता रह चुके हैं और उनके क्रांतिकारियों से घनिष्ठ संबंध भी थे। आपने भगिनी निवेदिता का आक्रामक हिन्दू धर्म - 'Aggressive Hinduism' ग्रंथ पढ़ा भी होगा। उसी प्रकार क्रांतिकारियों से उनका कितना निकट का संबंध था, यह भी आपको मालूम होगा ऐसा मैं समझता हूँ। मेरा रूझान अध्यात्म के समान ही राष्ट्र संघठन के कार्य की ओर भी प्रारंभ से ही है। वह कार्य संघ में रहकर अधिक परिणामकारिता से मैं कर सकूँगा, ऐसा अनुभव बनारस, नागपुर और कलकत्ता के वास्तव्य में मुझे हुआ। इसलिए मैंने संघकार्य में ही स्वयं को समर्पित कर दिया। मुझे लगता है कि स्वामी विवेकानंद के तत्व ज्ञान, उपदेश या कार्य पद्धति से मेरा यह आचरण सुसंगत है। मुझ पर उनका जितना प्रभाव हुआ है उतना दूसरी किसी विभूति के जीवन या उपदेश का नहीं हुआ है। मुझे विशवास है कि संघ में रहकर उन्हीं का कार्य मैं आगे चलाऊँगा।" इस प्रकार तर्क विशद् करते समय श्री गुरुजी की आँखों में जो आत्मविश्वास की चमक खेल रही थी वह मैं कभी भी नहीं भूलूँगा ।" डाक्टर साहब भी बिल्कुल गंभीर हो गये थे। "

भिन्न-भिन्न दिशाओं के बीच झूल रहे जीवन का यह निर्णायक संक्रमण काल था। यह कहना गलत न होगा कि १९३८ का संघ शिक्षा वर्ग ही उनके जीवन की दिशा निर्धारित करनेवाली निर्णायक घटना रही। इस वर्ग के निमित्त श्री गुरुजी की सारी संघानुकूल गुण-संपदा प्रभावी ढंग से स्वयंसेवकों और कार्यकर्ताओं के समक्ष प्रस्तुत हुई । संघ शिक्षा वर्ग में सर्वाधिकारी के नाते अनुशासनप्रियता, स्वयंसेवकों के प्रति वात्सल्य, अनुपम सेवाशीलता, असीम कार्यक्षमता, सदा प्रसन्न वृत्ति, विद्वत्तापूर्ण वक्तृत्व, गहरा अध्ययन व चिंतन आदि गुणों का प्रत्यक्ष दर्शन-अनुभव सभी स्वयंसेवकों एवं कार्यकर्ताओं को प्राप्त हुआ और यह सब डाक्टर जी की अपेक्षानुसार ही हुआ, इसकी उन्हें बहुत खुशी थी। संघ की दृष्टी से श्री गुरुजी को वे जैसा बनता देखना चाहते थे वह इस संघ शिक्षा वर्ग से संभव हुआ। प्रमुख बात तो यह है कि इसके बाद उन्हें डाक्टरजी का अखंड सहवास प्राप्त हुआ। अपने नेता का जीवन वे

अत्यंत निकटता से देखते और तदनुरूप अपने जीवन में परिवर्तन लाते और इस प्रकार स्वयं श्री गुरुजी के जीवन में आवश्यक इष्ट परिवर्तन होता गया। इसका प्रमुख कारण यही था कि भावी जीवन में कौन सा मार्ग अपनाया याए इस सम्बन्ध में अनिश्चितता की स्थिति अब खत्म हो चुकी थी। डाक्टरजी के जीवन को ही आदर्श मानकर वे उसका अनुकरण करने का प्रयास करते । भारत की सारी भौतिक समस्याओं और आत्मिक प्रश्नों का हल एकमेव संघकार्य में ही है, इस प्रकार की श्रद्धा उनकी सुस्थिर हो चुकी थी। मार्ग निश्चित होने पर उस पर आगे बढ़ने की श्री गुरुजी की शक्ति भी विलक्षण थी और इस शक्ति का परिचय उनकी छात्र दशा, प्राध्यापकीय सेवा, सारगाछी आश्रम में साधना- ऐसे अनेक चरणों में मिल चुका था। केवल जीवन-मार्ग के चयन और निर्धारण का ही प्रश्न शेष रहा था- वह भी हमेशा के लिए हल हो गया। परिणामस्वरूप अल्पावधि में ही 'डाक्टर जी के बाद कौन ?' इस प्रश्न का उत्तर भी मन ही मन में सबको मिल गया।

६.४ डाक्टर जी का व्यापक आकलन

इसका प्रथम साक्षात्कार १९३९ के फरवरी माह में डाक्टर जी द्वारा सिंदी में आयोजित कार्यकर्ताओं की महत्वपूर्ण बैठक में हुआ। दस दिनों तक चलनेवाली इस बैठक में डाक्टर जी और उनके प्रमुख सहयोगी कार्यकर्ता उपस्थित थे। संघकार्य की प्रगति, संघशाखा की कार्यपद्धति, आज्ञा और प्रार्थना ओदि अनेक विषयों पर खुलकर चर्चा और सर्वसम्मति से आवश्यक निर्णय लेना ही इस बैठक का उद्देश्य था। डाक्टर जी के दायें हाथ माने जाने वाले श्री अप्पाजी जोशी और श्री बालासाहब देवरस इस विचार-विनिमय में शामिल थे। नये सहयोगी के रूप में श्री गुरुजी को इस बैठक में आमंत्रित किया गया था। बैठक में एक-एक विषय क्रम से लिया जाता जिस पर खुलकर चर्चा होती। बैठक में उपस्थित हर कार्यकर्ता अपनी-अपनी बुद्धि-मति और इच्छानुसार सम्बन्धित विषयों पर अपने-अपने विचार खुलकर रखता और सुझाव देता और अन्त में डाक्टर जी चर्चा का समापन करते हुए क्या ग्राह्य है और क्या अग्राह्य, इस सम्बन्ध में अपना निर्णय सुनाते। प्रतिदिन आठ-आठ घंटों तक चलनेवाली इस बैठक के कामकाज की यही पद्धति थी। इस बैठक की कार्यवाही में श्री गुरुजी ने खुलकर अपने विचार प्रस्तुत किये- अनेक विषयों पर उनके विचार काफी आक्रामक और तीक्ष्ण हुआ करते थे। किन्तु एक बार डाक्टर जी द्वारा समालोचना के बाद जो निर्णय दिया जाता उसे वे तथा अन्य सभी कार्यकर्ता शांत-वृत्ति और मन से स्वीकार करते।

इस बैठक के सम्बन्ध में एक बार चर्चा के दौरान मा. अप्पाजी जोशी ने बताया कि- "संघस्थान पर ध्वज को प्रणाम करने के बाद स्वयंसेवक को और किसे प्रणाम करना चाहिये- इस सम्बन्ध में सुनिश्चित पद्धति निर्धारित करने के विषय में श्री गुरुजी और मेरे विचार एक दूसरे से मेल नहीं खाते थे। श्री गुरुजी ने जहाँ अत्यंत प्रभावी ढंग से संवैधानिक संकेतों के आधार पर अपने विचार प्रस्तुत किये वहीं संघ की पारिवारिक पद्धति की रचनानुसार कौन सी पद्धति ठीक रहेगी, इस पर मैं जोर दे रहा था। आखिर डाक्टर जी ने जो निर्णय दिया वह मेरे विचारों के अनुकूल था। गुरुजी का सुझाव अस्वीकृत कर दिया गया। उस समय मैं बारीक नजर से गुरुजी के चेहरे की ओर देख रहा था किंतु उनके चेहरे पर नाराजी के कोई भी भाव मुझे नजर नहीं आये। बाद में परस्पर वार्ता में भी कभी कोई कटुता का परिचय नहीं मिला। इतना संयम, मन का संतुलन और नेता के प्रति श्रद्धा और विश्वास देखकर हम सभी मुग्ध रह गये। सिंदी के इस वर्ग में डाक्टर जी मुझसे पुछा- 'क्यों अप्पाजी, भावी सरसंघचालक के रूप में श्री गुरुजी आपको कैसे प्रतीत होते हैं ?' तब मैं ने बैठकों में चर्चा के समय अपने निरीक्षण के निष्कर्ष की साक्ष प्रस्तुत करते हुए तुरन्त कहा- 'अति उत्तम,' सर्वथा उचित।"

डाक्टर जी के मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक था कि भावी सरसंघचालक कौन रहे संघ की स्थापना से अब तक किये गये लगातार अविराम परिश्रम के कारण वे थक चुके थे। १९३२ से उनका स्वास्थ्य दिनोंदिन गिरता जा रहा था। केवल दृढ़ इच्छाशक्ति के बल पर ही वे अपने निर्धारित कार्यक्रम सम्पन्न कर पाते थे। कार्य-वृद्धि हेतु अहोरात्र प्रयत्न करते थे, किन्तु बैठकों में किसी को यह महसूस नहीं होने देते कि उन्हें शारीरिक व्यथा के कारण कोई कष्ट हो रहा है। वे हमेशा प्रसन्न और प्रफुल्लित चेहरे से विचरण करते थे। किन्तु स्वयं अपनी शारीरिक-व्याधि से परिचित होने के कारण वे कार्य विस्तार की दृष्टि से भावी व्यवस्था-योजना की उपेक्षा नहीं कर सकते थे। अत्यंत परिश्रमपूर्वक खड़े किये गये इस संगठन को यदि अपने लक्ष्य की ओर बढ़ाना और विस्तारित करना हो तो उसके लिए समर्पित और गुण-सम्पन्न नेतृत्व की परम्परा आवश्यक होती है। व्यक्ति काम खड़े करते हैं किन्तु उसे ध्येयवादी दृष्टिकोण से आगे बढ़ानेवाले लोग नहीं मिले तो वह कार्य अधूरा ही रह जाता है तथा नष्ट हो जाता है। स्थान-स्थान पर डाक्टर जी को यह देखने को मिला था। संघ का ऐसा न होने पाये, इस दृष्टि से उनका चिन्तित होना स्वाभाविक ही था।

श्री गुरुजी ने १९३८ के बाद संघकार्य को ही अपना जीवन-कार्य स्वीकार कर डाक्टर जी के साथ रहते हुए अपना सारा लक्ष्य संघकार्य की वृद्धि पर जब केन्द्रित किया तो डाक्टर जी की चिन्ता दूर हो गई। सिंदी के वर्ग में उनकी संकल्पित योजना को उनके

जेष्ठ अनुभवी सहयोगी तथा संघकार्य के लिए समर्पित श्री अप्पाजी जोशी जैसे कार्यकर्ता से हार्दिक समर्थन भी मिल गया। सिंदी की इस बैठक में संघ की दैनंदिन शाखाओं में लिये जानेवाले कार्यक्रमों के स्वरूप को अखिल भारतीय बनाने की दृष्टि से प्रार्थना से लेकर आज्ञा तक सभी बातों में उचित परिवर्तन किया गया। आज की संघ की संस्कृत प्रार्थना सिंदी की बैठक में ही स्वीकार की गई। सिंदी बैठक में लिये गये दूरगामी महत्व के निर्णयों की इस कड़ी में डाक्टर जी द्वारा भावी सरसंघचालक का मन ही मन चयन भी एक महत्वपूर्ण प्रसंग माना जा सकता है। इसे हम सिंदी बैठक की देन कह सकते है।

सिंदी की बैठक समाप्त होने के बाद डाक्टर जी ने गुरुजी को बंगाल में संघकार्य आरंभ करने हेतु कलकत्ता भेजा। श्री गुरुजी लगभग १ माह तक कलकत्ता में अखंड भ्रमण करते रहे। वाहन खर्च अथवा अन्य व्यय के लिये उनके पास अधिक धन नहीं था, अतः वे रोज २०-२५ मील पैदल ही भ्रमण करते थे। आखिर १९३९ की वर्ष प्रतिपदा को कलकत्ता में संघ की प्रथम शाखा शुरू करने में गुरुजी सफल रहे। गुरुजी कलकत्ता में अधिक दिनों तक वास्तव्य नहीं कर पाये। संघ का ग्रीष्मकालीन शिक्षा-वर्ग निकट था। डाक्टर जी ने अपैल माह में श्री गुरुजी को नागपुर वापस बुलवा लिया और इस वर्ष भी संघ शिक्षा वर्ग के सर्वाधिकारी का दायित्व श्री गुरुजी पर सौंपा गया। १९३५ से पुणे में भी संघ शिक्षा वर्ग का आयोजन प्रारंभ हो चुका था और तब ऐसी योजना बनी थी कि डाक्टर जी पहले पखवाड़े में १५ दिन पुणे के वर्ग में रहेंगे और दूसरे पखवाड़े में नागपुर के वर्ग में उसके समापन तक रहेंगे। परन्तु उनका स्वास्थ्य साथ नहीं दे रहा था और उन्हें विश्राम की अत्याधिक आवश्यकता थी। किंतु नागपुर का संघ शिक्षा वर्ग समाप्त होते ही पुणे में 'भगवा झेंडा' मराठी चित्र-पट के उद्-घाटन हेतु उपस्थित रहना उन्होंने मान्य कर लिया था। अतः यह तय किया गया कि पुणे में उद्-घाटन कार्यक्रम के बाद लौटते समय नासिक के निकट देवलाली में डाक्टर जी कुछ दिनों तक विश्राम करेंगे। इस प्रवास में डाक्टर जी के साथ गुरुजी भी थे। पुणे का कार्यक्रम शानदार ढंग से सम्पन्न हुआ। पुणे से लौटने के पूर्व डाक्टर जी को बिदाई देने के निमित्त कार्यकर्ताओं की एक बैठक आमंत्रित की गई। इस बैठक में डाक्टर जी ने श्री गुरुजी से हिंदी में बोलने के लिए कहा। तत्पश्चात निर्धारित कार्यक्रमानुसार विश्राम लेने के लिए डाक्टर जी गुरुजी के साथ देवलाली गये।

६.५ मज्जागत-सेवाभाव

किंतु देवलाली में उन्हें बुखार आने लगा और ज्वर की तीव्रता कम होने के बजाय बढ़ने लगी। नासिक के विशेषज्ञ डाक्टरों ने उनके स्वास्थ्य की जाँच की- औषधोपचार भी चल रहा था किन्तु सुधार के कोई लक्षण नजर नहीं आने से डाक्टर वर्ग भी चिन्तित हो उठा- वे कुछ प्रमाण में निराश हो चुके थे। किन्तु श्री गुरुजी बिना विचलित हुए डाक्टर जी की सेवा-शुश्रुषा में लगे रहे। उन्होंने डाक्टर जी की सेवा में कोई कसर बाकी नहीं रखी। बुखार तेज होने से डाक्टर जी होश खो बैठते थे- अचेत अवस्था में वे बड़बड़ाते थे। सन्निपात की अवस्था में रोगी प्रायः अंटसंट बड़बड़ाता है। किन्तु इस अवस्था में भी डाक्टर जी के मुख से संघकार्य के अतिरिक्त अन्य किसी विषय का कोई शब्द नहीं निकला। गुरुजी पूरे समय उनके पास बैठे रहते। दो-ढाई वर्ष पूर्व सारगाछी में अपने गुरुदेव स्वामी अखंडानंदजी की जिस तन्मयता से सेवा की थी वैसे ही सेवा वे डाक्टर जी की कर रहे थे।

उनकी सेवा सफल रही और डाक्टर जी के स्वास्थ्य में सुधार होने लगा। खतरा टल गया और डाक्टर जी पर असीम प्रेम करने वाले हजारों स्वयंसेवकों के चेहरों पर से चिंता के बादल छँटकर खुशी की लहर दौड़ पड़ी। श्री गुरुजी की रुग्णसेवा के सम्बन्ध में और भी एक घटना उल्लेखनीय है। नागपुर के धन्तोली भाग के श्री वामनराव वाडेगांवकर नाम के अंध सज्जन से श्री गुरुजी के इतने निकट के संबंध थे कि उन्हें साइकिल के सामने के डंडे पर बिठाकर नागपुर में स्थान-स्थान पर ले जाने हेतु श्री गुरुजी सदा सिद्ध रहते थे। वाडेगांवकर ने एक अंध विद्यालय प्रारंभ किया था। १९३४-३५ के आसपास वामनराव पर एक बहुत बड़ी शल्यक्रिया करवाने की बात आयी। वे स्वयं अन्धे, परावलंबी। ऐसी स्थिति में इतनी बड़ी शल्य क्रिया होने पर अपनी शुश्रूषा कौन करेगा ? इसकी चिंता उनके मन में निर्माण हुई। बिल्कुल निकट के मित्र के नाते उन्होंने श्री गुरुजी को शल्यक्रिया के विषय में सूचित किया। मित्र प्रेम के खातिर शल्यक्रिया के पूर्व ही श्री गुरुजी वामनराव के यहाँ रहने आ गये। मुम्बई में शल्यक्रिया के समय उनके समीप ही रात-दिन रहे। वामनराव गद्-गद् होकर कहा करते, "अजी, इस एम.एस-सी. हुए महापंडित ने मेरी सेवा-शुश्रुषा इतनी मृदुता से की कि आमरण मैं उसे भूल नहीं सकूँगा। विशेष रूप से मल-मूत्र-विसर्जन विधि में भी जब वे मेरी सहायता करने लगते तब तो मैं लज्जा से गड़ जाता। जब मैं हर बार आनाकानी करने लगता तो उनका एक ही उत्तर रहता, "उसमें क्या है ? क्या मैं अपने देह की साफ-सफाई नहीं करता हूँ ? तुम्हारी और मेरी देह में क्या भेद है ?" यह प्रसंग बतलाते समय वामनराव की आँखों से अश्रु का प्रवाह बहने लगता और गला रुंध जाता। वैसे वामनराव को संघ के संबंध में बिल्कुल प्रेम नहीं था। परन्तु श्री

गुरुजी सरसंघचालक हुए तब से 'अपना संघ' ऐसा शब्द प्रयोग अपने आप उनके मुख से सुनाई देने लगा। श्री गुरुजी में प्रारंभ से ही सेवावृत्ति कैसी रोम-रोम में रमी थी, यह निर्देशित करने के लिए इस प्रसंग का यहाँ निवेदन किया है। कितने ही सामान्य स्वयंसेवकों और कार्यकर्ताओं को भी उनकी इस सहज सेवावृत्ति का अनुभव आ चुका है।

श्री गुरुजी को डाक्टर जी की इस बीमारी में उनके ध्येय-समर्पित जीवन की कसौटी पर अन्तर्बाह्य रूप से खरे उतरे डाक्टर जी के दर्शन हुए। श्री गुरुजी ने स्वयं डाक्टर जी के अनोखेपन का वर्णन करते हुए एक बार बताया था कि तेज बुखार में होश गंवाने पर व्यक्ति क्या बड़बड़ायेगा, कहा नहीं जा सकता; किन्तु ऐसी अवस्था में भी डाक्टर जी के मुख से संघकार्य सम्बन्धी चिन्ता प्रकट होती रही। संघकार्य उनके अन्तर्मन में कितना गहरा पैठ चुका था- इसका दर्शन अचेतावस्था में उनके मुख से संघ और राष्ट्र सम्बन्धी उद्-गारों से मिला और डाक्टर जी के प्रति श्रद्धा से उनका मन ओतप्रोत हो गया। परिणामस्वरूप संघ, डाक्टर जी और गुरुजी में तादात्म्य स्थापित हुआ और संघकार्य का अधिकाधिक दायित्व लेने के लिए गुरुजी पूर्ण समर्पित भाव से सन्नद्ध हो गये।

स्वास्थ्य में सुधार होते ही डाक्टर जी गुरुजी के साथ ७ अगस्त को नागपुर लौटे और गुरुजी पर अधिकाधिक दायित्व सौंपने की दिशा में उनकी हलचलें शुरू हो गईं। कार्यकर्ताओं की बैठकों में इसके संकेत भी वे देने लगे और रक्षाबन्धनमहोक्सव पर उन्होंने सरकार्यवाह के पद पर श्री गुरुजी की नियुक्ति की घोषणा भी कर दी। डाक्टर जी का गिरता स्वास्थ्य तथा कार्य का वृद्धिंगत स्वरूप सहन करने में उनकी असमर्थता से यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि अब श्री गुरुजी को ही नेतृत्व का सम्पूर्ण दायित्व संभालना होगा।

*

७ सरसंघचालक की दायित्व की स्वीकृति

वैसे देखा जाए तो सरकार्यवाह के नाते श्री गुरुजी का कार्यकाल काफी छोटा रहा- केवल दस माह ही वे इस दायित्व पर रहे। इस समय कार्य प्रगतिपथ पर था। विदर्भ, मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में तो शाखाओं का विस्तार हो चुका था, किन्तु पंजाब, दिल्ली, कराची पटना, कलकत्ता, लखनऊ आदि दूरस्थ शहरों में भी तरूण कार्यकर्ता किसी न किसी निमित्त पहुँच चुके थे। वहाँ भी संघकार्य आरंभ हो चुका था। संघ को यथार्थ रूप में अखिल भारतीय स्वरूप प्राप्त होने लगा था। स्वयंसेवकों की संख्या भी लाख से ऊपर पहुँच चुकी थी। कार्य को उचित मार्ग पर आगे बढ़ाने, अधिक स्थानों पर विस्तारित करने तथा कार्यकर्ताओं का उत्साह बनाये रखने के लिए डाक्टर जी का सर्वत्र संचार आवश्यक था। किन्तु स्वास्थ्य उनका साथ नहीं दे रहा था। भले ही ऊपर से अपने व्यवहार में वे किसी को इसका अनुभव नहीं होने देते थे, किन्तु निकटवर्ती कार्यकर्ताओं की दृष्टी से उनकी व्यथा छिपी नहीं रह सकी। डाक्टर जी अब अधिक प्रवास नहीं कर सकते थे। एक ओर डाक्टर जी की स्वास्थ्य की चिन्थी तो दूसरी ओर कार्यविस्तार तथा चन रहे कार्य के दृढ़ीकरण की चिन्ता भी थी। इस प्रकार श्री गुरुजी को दुगना उत्तरदायित्व सम्हालना था।

श्री गुरुजी इस सारी परिस्थिति को समझ रहे थे ऐर अपनी सब शक्तियाँ लगाकर चुनौतियों से जूझ रहे थे। कार्यकर्ताओं के साथ उनका प्रत्यक्ष सम्पर्क बढ़ने लगा। इस बढ़ते सम्पर्क में डाक्टर जी की प्रेरक शक्ति कितनी महान् है इसका अधिकाअधिक आकलन उन्हें होने लगा। जैसे-जैसे समय बीतता चला, डाक्टर जी की पीठ का दर्द दुःसह होता गया।

७.१ उत्तराधिकारी का चयन

आखिर कुछ मित्रों ने डाक्टर जी से आग्रह किया कि वे बिहार के राजगीर नामक स्थान पर कुछ दिनों तक वास्तव्य कर वहाँ के रोगनिवारक गरम पानी के झरने में स्नान आदि का उपचार ग्रहण करें। मित्रों के आग्रह पर डाक्टर जी राजगीर गये। वे चाहते थे कि गुरुजी भी उनके साथ चलें; किन्तु नागपुर में बढ़ते हुए कार्य को सम्हालने के लिए श्री गुरुजी का रुकना आवश्यक था। इसलिए वर्धा के जिला संघचालक तथा डाक्टर जी के जेष्ठ सहयोगी मा. अप्पाजी जोशी उनके साथ राजगीर गये। किन्तु राजगीर का इलाज कोई विशेष लाभदायक नहीं रहा।

इस समय द्वितीय महायुद्ध प्रारंभ हो चुका था। देश की स्वाधीनता के लिए छटपटानेवाले डाक्टर जी की आंतरिक अस्वस्थता बढ़ती जा रही थी। रात-रात भर उन्हें नींद नहीं आती थी। तीन वर्ष के कालखंड में शहरी क्षेत्र में तीन प्रतिशत और ग्रमीण क्षेत्र में एक प्रतिशत गणवेशधारी तरूण स्वयंसेवक खड़े करने के कालबद्ध कार्यक्रम का आहवान डाक्टर जी ने इसी राजगीर के अपने वास्तव्य में पत्र लिखकर समस्त कार्यकर्ताओं से किया था। इस प्रतिशत के पिछे उनका क्या मानस था इसका पता चल पाना मुश्किल था, किन्तु आगे चलकर १९४२ में देश में जो परिस्थिति निर्माण हुई उसे देखते हुए यह विचार मन में उठना स्वाभाविक है कि कहीं इस प्रचण्ड युवाशक्ति के माध्यम से डाक्टर जी स्वाधीनता संग्राम के अंतिम स्वर्णिम पृष्ठ लिखने को आतुर तो नहीं थे? डाक्टर जी द्वारा दिये गये कालबद्ध कार्यक्रम के अनुसार कार्यवृद्धि के लिए श्री गुरुजी और डाक्टर जी के अन्य तरूण सहयोगी कार्यकर्तागण कटिबद्ध होकर काम में जुट गये। किन्तु नियति की योजना कुछ और ही थी।

डाक्टर जी ने कार्यवृद्धि के लक्ष्य के संबंध में राजगीर से जो पत्र लिखा था, उसका कारण था चंद्रपुर (विदर्भ) में होनेवाले प्रौढ़ स्वयंसेवकों का शिविर। ऐसे शिविर में डाक्टर जी स्वयं उपस्थित रहकर मार्गदर्शन किया करते थे। इस बार इस प्रथा का पालन नहीं हो पा रहा था। इसलिए उन्होंने शिविर के अधिकारियों को अपनी असमर्थता व्यक्त करने वाला पत्र लिखा : “इस समय मैं उपस्थित नहीं रह रकूँगा, इसका मुझे दुःख है। अप सब लोग उत्साह से कार्य बढ़ा रहे होंगे। परन्तु इस बैठक में संकल्प करें कि अपने प्रांत के ग्रामीण विभाग में एक प्रतिशत और शहरों में तीन प्रतिशत स्वयंसेवकों की संख्या होगी।” यह लक्ष्य तीन वर्षों में पूर्ण हो ऐसी अपेक्षा भी उन्होंने व्यक्त की थी। संघ की कार्यवृद्धी की कल्पना का स्पष्टीकरण देते हुए श्री गुरुजी ने कहा कि एक प्रतिशत और तीन प्रतिशत में गिना जानेवाला स्वयंसेवक नेतृत्व करने में सक्षम हो ऐसी उससे अपेक्षा है। उसकी गुणवत्ता ऐसी हो कि वह ६०-७० लोगों को अपने साथ ले जा सके और मित्र व मार्गदर्शक के नाते उनका विश्वास संपादन कर सके। इससे संघ की योजनानुसार काम करनेवाला अत्यंत विशाल संगठित सामर्थ्य व्यवहारतः खड़ा हो सकेगा और अपने हाथ में पारे सूत्र रखकर लोगों की स्वातंत्र्यकांक्षा को सुनिश्वित मोड़ दे सकेगा। इसीलिए ऐसा कहने की इच्छा होती है कि १९४२ तक यह हो सका होता तो १९४२ में कुछ निर्णायक कदम संघ विश्वासपूर्वक उठा सकता। ऐसी शक्ति न होने कारण ही द्वितीय महायुद्ध के महत्वपूर्ण कालखंड में भी विदेशी सत्ता पर निर्णायक प्रहार करने का कदम सरसंघचालक जी नहीं उठा सके। कार्यवृद्धि के लिए संपूर्ण समय देने वाले कार्यकर्ताओं की बहुत बड़ी “प्रचारक योजना” मात्र इस समय कार्यान्वित हुई।

१९४० का अप्रैल माह आया और डाक्टरजी संघ शिक्षा वर्ग के बारे में सोचने लगे। यह तय हुआ कि प्रतिवर्ष की भाँति १५ दिन पुणे के वर्ग में रहा जाए और इधर नागपुर के वर्ग का दायित्व श्री गुरुजी सम्हालें। डाक्टर जी पुणे के वर्ग में गये और वहाँ के सारे कार्यक्रम ठीक ढंग से सम्पन्न हुए। पुणे वर्ग में आए स्वयंसेवकों से भावपूर्ण विदाई लेकर डाक्टर जी नागपुर लौटे। किन्तु जिस दिन वे नागपुर पहुँचे उसी दिन उन्हें बुखार चढ़ आया – बुखार काफी तेज था। तुरन्त उपचार शुरू हुआ। किन्तु ज्वर उतरने का नाम ही न ले रहा था और स्वास्थ्य दिनोंदिन अधिक बिगड़ता चला गया। श्री गुरुजी संघ शिक्षा वर्ग का सारा दायित्व सम्हालते हुए डाक्टर जी के औषधोपचार और सेवा-सुश्रूषा की ओर भी ध्यान देते थे। उनका एक-एक दिन अत्यंत मानसिक दबाव में दायित्व-वहन की चिन्ता में बीतता। वर्ग की समाप्ति के बाद उनका सारा ध्यान डाक्टर जी के उपचार पर केन्द्रित हो गया। किन्तु इस बार उनकी सेवा और परिश्रम को सफलता प्रदान करना शायद ईश्वर को स्वीकृत नहीं था। डाक्टर जी को पहले मेयो अस्पताल में और बाद में नागपुर के संघचालक श्री बाबासाहब घटाटे के सिविल लाइन्स स्थित प्रासाद में लाया गया। ज्वर की तीव्रता कायम थी। पीठ का दर्द असह्य था। अंत में दि. २० जून को डाक्टरों ने हताश होकर कहा कि 'लम्बर पंक्चर' करना होगा। इस समय तेज बुखार के बावजूद डाक्टर जी सजग थे। वे जान गये थे कि उनकी अन्तिम घड़ी अब आ चुकी है। अपने बाद संघ का दायित्व सरसंघचालक के नाते कौन सम्हालेगा, यह उन्होंने वहाँ उपस्थित सभी कार्यकर्ताओं के समक्ष घोषित कर दिया। उन्होंने श्री गुरुजी को अपने पास बुलाया और कहा, अब आप ही संघ का कार्य सम्हालें। प्रथम यह मान्य कीजिये और फिर मेरे शरीर का जो करना हो कीजिये।

उत्तराधिकार की यह भाषा सुनकर गुरुजी ने अत्यंत दुःखित स्वरों में कहा, "डाक्टर जी यह आप क्या कह रहे हैं? आप इस बीमारी से शीघ्र अच्छे हो जायेंगे।"

इस पर डाक्टर जी ने हँसते हुए कहा- "यह तो ठीक है, परंतु मैंने जो कुछ कहा है उसे अवश्य ध्यान में रखिये।"

उस एक ऐतिहासिक क्षण में डाक्टर जी ने सरसंघचालकत्व का उत्तराधिकार सौंप दिया। उन्होंने श्री गुरुजी के हेथ सब सूत्र दे दिये। ड़ाक्टर जी का लम्बर पंक्चर किया गया। पर बुखार और तेज हो गया और रक्तचाप बढ़ गया। अत्याधिक वेदना के कारण डाक्टर जी अचेत हो गये। उसी अचेतावस्था में दूसरे दिन शुक्रवार दि. २१ जून को

प्रातः ६ बजकर २७ मिनट पर डाक्टरजी की आत्मा उस व्यथा-जर्जर देह को छोड़कर अनंत में विलीन हो गई।

७.२ डाक्टर जी की विरासत

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लिए यह बहुत बड़ा आघात था। संघ का कार्य महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के बाहर दूर-दूर तक फैलता जा रहा था। कार्यवृद्धि की दृष्टि से वातावरण उत्साहवर्धक था। १९४० के संघ शिक्षा वर्ग में आये भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी स्वयंसेवकों को देखकर डाक्टर जी ने अपने ९ जून के अंतिम हृदयस्पर्शी भाषण में ये उद्-गार निकाले थे- "आज अपने सामने मैं हिन्दू राष्ट्र की छोटीसी प्रतिमा देख रहा हूँ। पुणे के संघ शिक्षा वर्ग में मैं पंन्द्रह दिनों तक रहा और वहाँ मैंने प्रत्येक स्वयंसेवक से स्वयं परिचय कर लिया था। मैं समझता था कि यहाँ भी ऐसा ही कर सकूँगा, किन्तु आप जानते ही हैं कि पिछले किछ दिनों से मैं रूग्ण-शय्या पर पड़ा हूँ। इस कारण से मैं आपकी सेवा तनिक भी नहीं कर सका। इसीलिए आप सबके एकत्र दर्शन करने आज मैं यहाँ आया हूँ। मैं यहाँ कुछ अधिक बोल नहीं पाऊँगा। मेरा आपसे इतना ही कहना है कि हममें से प्रत्येक स्वयंसेवक को चाहिए की वह संघ-कार्य को ही अपने जीवन का प्रमुख कार्य समझे और इसी मार्ग पर चलते-चलते अपने हिन्दू समाज को इतना समृद्ध और शक्तिशाली बनाये कि दुनिया की कोई शक्ति हिन्दू समाज की ओर तिरछी नजरों से देखने का साहस न जुटा पाये। 'संघ कार्य ही मेरे जीवन का कार्य है' इस मंत्र को अपने हृदय में अंकित कर सारे कार्यकर्ता अपने-अपने स्थान पर लौटें।"

डाक्टर जी का यह अविस्मरणीय भाषण अपने हृदय में अंकित कर सारे कार्यकर्ता अपने-अपने स्थान पर लौटे ही थे कि केवल दस दिनों बाद डाक्टर जी के देहावसान का दुःखद समाचार उन्हें प्राप्त हुआ। डाक्टर जी ने अब सदा के लिए सबसे बिदाई ले ली थी। डाक्टर जी के महाप्रयाण का समाचार सुनकर देशभर के लाखों स्वयंसेवक स्तब्ध रह गये। उन पर मानो वज्राघात हुआ था।

जिस ध्येयवादी संगठन को डाक्टर जी ने लगातार १५ वर्षों तक अपने खून-पसीने से सींचकर अहोरात्र अथक परिश्रम से खड़ा किया था, उस संगठन का दायित्व आब श्री गुरुजी पर आ पड़ा था। डाक्टर जी ने अत्यंत विश्वास के साथ कार्य का दायित्व उन पर सौंपा था। फिर भी संघ के निर्माता के निधन से हुए वज्राघात से संगठन को सँवारना तथा कार्य को प्रगतिपथ पर आगे बढ़ाना कोई आसान काम नहीं था क्योंकि डाक्टर जी के जीवन की पृष्ठभूमि और श्री गुरुजी के जीवन की पृष्ठभूमि में महद् अंतर

था। डाक्टर जी का सारा जीवन ही सार्वजनिक और राजनीतिक कार्यों में बीता था। संघ के बाहर भी उन्हें चाहनेवाले मित्रों तथा नेता माननेवाले अनुयायियों की संख्या बहुत बड़ी थी। राजनीतिक क्षेत्र में संघ के प्रति ईर्ष्या की भावना निर्माण होती दिखाई दे रही थी। सत्ता की राजनीति में लगे किन्तु हिन्दुतत्ववादी अनेक लोग चाहते थे कि यह संगठन उनकी इच्छानुसार कार्य करे। गुरुजी तो संघ में नये ही थे और वे मूलतया आध्यात्मिक प्रवृत्ति के थे। राजनीति अथवा सार्वजनिक कार्यों के साथ उनका कभी सम्बन्ध नहीं आया था। संघ के बाहर के क्षेत्र में वे अपरिचित ही थे। ऐसी स्थिति में कोई आश्चर्य नहीं था कि संघ की भावी व्यवस्था के सम्बन्ध में बिन माँगे अनाहूत परामर्श देनेवाले आगे आते।

संघ के हितचिंतक समझे जानेवाले अनेक लोगों ने यह आग्रहपूर्वक सुझाव प्रस्तुत किया कि अब डाक्टर जी के बाद संघ का सूत्रसंचालन किसी एक व्यक्ति के हाथों में रखने की बजाय कुछ जेष्ठ लोगों का एक सलाहकार मंडल बनाया जाए। संघ के प्रमुख कार्यकर्ता श्री गुरुजी के नेतृत्व को न स्विकार करेंइसके लिए किस सीमा तक प्रयत्न किये गये इसका एक प्रत्यक्ष अनुभव माननीय श्री अप्पाजी जोशी बताया करते थे। डाक्टर जी के देहावसान के बाद उनके चहेते एक हिन्दुत्ववादी वकील महाशय अप्पाजी के यहाँ आये और डाक्टर जी की मृत्यु पर गहरा शोक व्यक्त करने के बाद अप्पाजी से कहने लगे - “अप्पाजी, आप तो डाक्टर जी के दाहिने हाथ थे। अतः संघकार्य की धुरा अब आपको ही संभालनी चाहिए। यह काम गुरुजी से नहीं हो पायेगा।”

इस पर अप्पाजी ने उन्हें जो उत्तर दिया वह एक ओर जहाँ उनके हृदय की विशालता का दर्शन कराता है वहीं इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि डाक्टर जी ने किस प्रकार का संगठन खड़ा किया था। अप्पाजी ने उस वकील महाशय से कहा, “मैं अगर डाक्टर जी का दाहिना हाथ था तो गुरुजी उनके हृदय थे। डाक्टर जी का चयन सर्वथा उचित है। इस सम्बन्ध में उन्होंने मुझसे भी परामर्श किया था।”

डाक्टर जी की मृत्यु के बाद दस-बारह दिनों में ही श्री गुरुजी की नियुक्ति को विवादास्पद बनाने का यह प्रयास हुआ, उसकी दाल नहीं गल पायी। सभी ने अनुभव किया कि श्री गुरुजी को नये सरसंघचालक के रूप में अधिकृत रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए। इसके पूर्व अकोला में पांच संघचालकों की एक बैठक हुई। जिसमें वर्धा के श्री अप्पाजी जोशी, विदर्भ के श्री बापू साहब सोहनी, नागपुर के श्री बाबासाहब पाध्ये, श्री बाबासाहब घटाटे, महाराष्ट्र प्रांत के संघचालक श्री काशीनाथ पन्त ने भाग

लिया। बैठक में परिस्थिति का आकलन किया गया। डाक्टर जी द्वारा उत्तराधिकारी सम्बन्धी लिया गया निर्णय ही सर्वथा उचित होने तथा प्राध्यापक माधवराव गोलवलकर के रूप में किया हुआ चुनाव सर्वोत्कृष्ट होने की बात सभी ने मान ली।

इस सर्वसम्मत निष्कर्ष के बाद सभी ने श्री गुरुजी के नेतृत्व में अपना विश्वास व्यक्त किया और तय किया गया कि डाक्टर जी की तेरहवीं के दिन श्रद्धंजलि सभा में नये सरसंघचालक के रूप में श्री गुरुजी के नाम की अधिकृत घोषणा की जाए।

निर्धारित कार्यक्रमानुसार रेशीमबाग स्थित डाक्टर जी की पवित्र समाधि की साक्षी में नये सरसंघचालक के नाम की प्रकट घोषणा करने तथा दिवंगत सरसंघचालक डाक्टर जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इस कार्यक्रम में प्रथम नागपुर प्रांत के संघचालक माननीय बाबासाहब पाध्ये ने नूतन सरसंघचालक की नियुक्ति की घोषणा करते हुए भाषण दिया। संघ की एकचालकानुवर्तित्व की पद्धति और २० जून को स्वयं डाक्टर जी द्वारा दी गई संघ की भावी व्यवस्था सम्बन्धी जानकारी प्रस्तुत करते हुए उन्होंने अपने भाषण में कहा कि “आद्य सरसंघचालक की अंतिम इच्छानुसार माननीय माधवरावजी गोलवलकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक नियुक्त किये गये हैं और अब वे ही हम सबके लिए डाक्टर हेडगेवार जी के स्थान पर हैं। मैं अपने नये सरसंघचालक को अपना प्रथम प्रणाम समर्पित करता हूँ।”

डाक्टर जी के वयोवृद्ध चाचा श्री आबाजी हेडगेवार ने अपने संक्षिप्त, भावनापूर्ण किन्तु प्रेरक भाषण में कहा कि “हमारे डाक्टर जी हमें छोड़कर नहीं गये हैं, उन्हें हम माधवराव गोलवलकर के रूप में आज भी देख रहे हैं – उनके प्रत्येक आदेश को डाक्टर जी का ही आदेश मानकर हम सबको उसका पालन करना है।”

इस कार्यक्रम में नये सरसंघचालक के रूप में श्री गुरुजी का भी भाषण हुआ। यह भाषण गुरुजी के आत्मविश्वास, नम्रता और डाक्टर जी के प्रति गहरी श्रद्धा का निदर्शक तथा उत्साहवर्धक था। सरसंघचालक के नाते उनका यह प्रथम भाषण था। अपने दायित्व को विनम्रतापूर्वक स्वीकार करते हुए श्री गुरुजी ने अपने भाषण में कहा कि “डाक्टर जी जैसे महापुरूष के सामने जो नतमस्तक नहीं हो सकता वह जीवन में कुछ भी नहीं कर सकता। ऐसे महान व्यक्ति की पूजा करने में मैं अत्यंत गर्व का अनुभव करता हूँ। चंदन-पूष्प आदि से पूजा करना तो घटिया मार्ग है। जिसकी पूजा करना हो, उसके समान बनने का प्रयत्न करना चाहिये – यही उसकी सच्ची पूजा है।

'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्' – यही हमारे धर्म की विशेषता है। डाक्टर जी ने सरसंघचालकत्व का कठिन दायित्व मुझ पर सौंपा है। किन्तु यह तो विक्रमादित्य का वह सिंहासन है जिस पर यदि गड़रिये का लड़का भी बैठा दिया जाय तो वह भी उचित न्याय ही करेगा। आज इस सिंहासन पर आरूढ़ होने का प्रसंग मुझ जैसे सामान्य व्यक्ति पर आया है। किन्तु डाक्टर जी मुझ जैसे व्यक्ति से भी वे ही बातें कहलाएँगे जो सर्वथा उचित होंगी। हमारे महान् नेता के पुण्य प्रताप के फलस्वरूप मेरे हाथों से उचित बातें ही होंगी। अब हम पूर्ण विश्वास के साथ अपने कार्य में दत्तचित्त हो जायें तथा इस संघकार्य को पहले जैसी निष्ठा तथा दूने उत्साह से आगे बढ़ाएँ।"

यह कोई कोरा अपदेश नहीं था। डाक्टर जी की मृत्यु के बाद सार्वजनिक नेताओं के जो शोकसंदेश आये; स्वयंसेवकों के शोक और चिंता व्यक्त करनेवाले जो पत्र आये – उन सभी का उत्तर भेजते समय श्री गुरुजी ने अत्यंत दृढ़ता और संयम का परिचय दिया। उनके पत्रों का आशय यही होता था कि "यह रोते बैठने का समय नहीं है। डाक्टर जी के अधूरे कार्य को पूर्ण करने के लिए हमें अपने दुःख को निगलकर कार्यवृद्धि में तत्पर रहना होगा।"

संघ के विरोधियों की चालों और मन्सूबों से गुरुजी पूर्णतया सतर्क थे और इसलिये उन्होंने सरसंघचालक के नाते ३ जुलाई के अपने प्रथम भाषण में ही विरोधियों को चेतावनी भी दे डाली। उन्होंने अपने भाषण में कहा- "हमारे डाक्टर जी ने मतभेदों के कोलाहल में डूब जानेवाला पिलपिला संगठन हमारे अधीन नहीं किया है। हमारा संगठन एक अभेद्य किला है। इसकी दीवारों पर चंचु-प्रहार करनेवालों की चोंचें वहीं टुटकर गिर जायें, इतनी दृढ़ और मजबूत परकोटाबंदी स्वयं डाक्टर जी ने कर रखी है।"

इसके बाद २१ जुलाई को डाक्टर जी के मासिक श्राद्ध दिवस पर आयोजित कार्यक्रम में भी श्री गुरुजी का ओजस्वी भाषण हुआ। संघ पर व्यक्ति-पूजक और प्रतिक्रियावादी होने का आरोप लगानेवालों को मुँहतोड़ उत्तर देते हुए अपने भाषण में श्री गुरुजी ने कहा- "कुछ लोग संघ पर यह आरोप लगाते हैं कि हम स्वयंसेवक व्यक्तिपूजक हैं। परंतु इसका हमें दुःख नहीं है। किंतु डाक्टर जी के पश्चात् भी सारे स्वयंसेवक पूर्ववत् कार्य कर रहे हैं, यह इसी बात का प्रमाण है कि डाक्टर जी ने हमें अंधश्रद्धा नहीं अपितु तत्वनिष्ठा और राष्ट्र-निष्ठा सिखाई है। हम पर जितने जोर से आघात होंगे उतनी ही अधिक शक्ति से रबर की गेंद की तरह उछलकर हम लोग ऊपर की ओर उठेंगे। हमारी

शक्ति बाधाओं को चीरकर आगे बढ़ती जायेगी और एक दिन वह समूचे राष्ट्र में छा जायेगी।"

७.३ जीवन कार्य के अनुरूप व्यक्तित्व परिवर्तन

ऐसा रहा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आद्य सरसंघचालक के महाप्रयाण और श्री गुरुजी द्वारा उनके आदेश का स्वीकार किये जाने का अध्याय। भारत के किसी भी संगठन के इतिहास में अनोखा तथा अद्वितीय सिद्ध होनेवाला यह घटना-क्रम था। इस काल में संघ का कोई लिखित संविधान नहीं था और न ही संघ के नये सरसंघचालक की नियुक्ति के संबंध में कोई पद्धति रूढ़ हुई थी। किंतु डाक्टर जी जो करेंगे वह उचित ही होगा और संगठन की अंतिम सफलता के लिए पोषक ही होगा- यह दृढ़ श्रद्धा सभी में थी। डाक्टर जी ने स्वयं १५ वर्षों तक अथक प्रयास से व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा, अहंकार, मतभेद आदि सामान्यतया संगठन की एकता में सुरंग लगानेवाली हीन प्रवृत्तियों को किसी भी प्रकार अपने जीवन में कोई महत्व न देनेवाले ध्येयवादी कार्यकर्ताओं की मजबूत श्रृंखला खड़ी की थी। इसी का आश्चर्यजनक साक्षात्कार शांतिपूर्ण ढंग से हुए संक्रमण के रूप में सभी को मिला। ऐसे संगठन को वृद्धिंगत और प्रभावशाली बनाने का दायित्व श्री गुरुजी के कंधों पर आ पड़ा था। डाक्टर जी का चयन कितना योग्य था और १९४० के बाद देशान्तर्गत बदलती परिस्थिति में संघनौका को योग्य दिशा में सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने की अंगभूत क्षमता श्री गुरुजी में कितनी विलक्षण थी- यह उनके तैंतीस वर्षों के कार्यकाल में क्रमशः निर्णायक रूप में सिद्ध हो गई। यह तो नहीं कहा जा सकता कि सरसंघचालक बनते समय श्री गुरुजी में कोई स्वभावगत दोष नहीं थे अथवा व्यावहारिक दृष्टि से उनमें और डाक्टर जी में किसी भी प्रकार का अंतर नहीं था। किंतु श्री गुरुजी की महानता इसी बात में है कि उन्होंने डाक्टर जी के आदर्श का सतत चिंतन किया और उस आदर्श के अनुरूप अपने दोषों और कमियों को दूर कर अपने जीवन को तदनुरूप ढालने का प्रयत्न किया। उदाहरण के लिए कहना हो तो शुरू-शुरू में श्री गुरुजी की बोल-चाल में कुछ कठोरता परिलक्षित होती थी। उनकी जिहवा में कुछ पैनापन था। कुछ प्रसंगों पर उनके शब्दों में उग्रता झलकती थी। दूसरों के दोष, अक्षमता अथवा काम में ढिलाई को वे सहन नहीं कर पाते थे। किंतु धीरे-धीरे उनमें विनम्रता, मृदुलता और मधुरता आने लगी। भाषा अति मधुर बनी। व्यवहार में उग्रता का स्थान स्नेहार्द्रता और सहिष्णुता ने ले लिया। स्वार्थ तो उन्हें कभी स्पर्श भी नहीं कर पाया था। किन्तु निःस्वार्थता के साथ ही संगठन के लिये आवश्यक गुणों की भी उन्हें पूर्ण कल्पना थी। डाक्टर जी भी मूलतया उग्र स्वभाव के थे। किंतु संघकार्य को ही अपना जीवनकार्य मान लेने के बाद उन्होंने अपने अलौकिक मनोबल से संगठन के लिये आवश्यक गुणों के साथ-साथ

अपने स्वभाव में भी अनुकूल परिवर्तन लाया था। अपने आपको संघमय जीवन के जीवन्त आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया था। ऐसा ही परिवर्तन श्री गुरुजी के जीवन में भी हमें दिखाई देता है। धीरे-धीरे श्री गुरुजी राष्ट्र कल्याण हेतु सभी को उनके गुण-दोषों सहिक आत्मसात् करनेवाले स्नेह के सागर बने। कार्यकर्ताओं को वे अधिकारवाणी से बता सकने योग्य बने कि "मैं जैसा हूँ वैसा ही मुझे स्वीकार करो" (अर्थात् यूज मी ऐज आई एम्) ऐसा कोई कह न सके। दोषों को दूर करना ही होगा तथा समाज को अपने साथ लेने के लिए आवश्यक गुणों को धारण करना होगा। संघ का कार्यकर्ता ऐसा ही गुणसम्पन्न होना चाहिये। कथनी और करनी में अंतर को उन्होंने कभी कोई स्थान नहीं दिया।

सिद्धान्तों के मामले में डाक्टर जी की भाँति गुरुजी भी किसी भी प्रकार का समझौता स्वीकार नहीं करते थे। 'यह अपना हिन्दू राष्ट्र है'- डाक्टर जी सीना तानकर यह घोषणा करते थे। यही विचार संघ की कार्य पद्धति का मूलाधार है। डाक्टर जी ने काफी सतर्कता से इसका पोषण किया। इस मामले में वे किसी के आगे न दबे, न झुके। बाद में श्री गुरुजी के कार्यकाल में अनेक लोगों ने अपने राजनीतिक स्वार्थवश जातिगत-स्वार्थ, आक्रामक राष्ट्रीयता, विद्वेष और ईर्ष्या तथा मानवतावाद की थोथी कल्पना की आड़ लेकर इस स्वयंसिद्ध सत्य को झुठलाने का प्रयास किया और अपप्रचार का सहारा लिया। किंतु ऐसे अपप्रचार और विरोधी वातावरण की जरा भी चिन्ता न करते हुए श्री गुरुजी देश भर में निर्भयता के साथ हिन्दू राष्ट्र का उद्-घोष करते रहे। हरेक मंच से उन्होंने परम वैभवशाली राष्ट्र के लिए आधारभूत इस सत्य का प्रबल समर्थन किया। रूढ़ार्थ में अहिन्दूओं के साथ वार्तालाप में भी उनका समाधान करते समय संघ-विचार का सूत्र उन्होंने अबाधित रखा। उन्होंने सदा इस बात को आग्रहपूर्वक रखा कि विविध क्षेत्र में कार्य करनेवाले संघ स्वयंसेवकों की हिन्दू राष्ट्र के स्वरूप पर अटूट श्रद्धा होनी चाहिए और उसे अधिकाधिक प्रखरता के साथ प्रकट करना चाहिये। इतना ही नहीं, हिन्दू जीवनविचार को उसके सभी अंगोपांगों कहित स्पष्ट करने का महान् कार्य भी श्री गुरुजी ने किया। काल की गति और आवश्यकता का ध्यान भी उन्होंने रखा। परिस्थिति के अनुसार कभी आक्रामक तो कभी धीमे स्वरों में राष्ट्रीय स्व को स्पष्ट और पुष्ट किया. इन सब बातों को ध्यान में रखने पर यह विचार मन में उठता है कि क्या भावी काल के संकेतों को समझकर ही कहीं डाक्टर जी ने श्री गुरुजी जैसे अध्यात्म-प्रवण, भाषा-विद्, विद्वान् और आयु में तरूण का अपने उत्तराधिकारी के रूप में चयन तो नहीं किया था?

श्री गुरुजी के असामान्य वैचारिक तथा संघटनात्मक नेतृत्व में 1940 के जून माह में संघ का प्रवास प्रारम्भ हुआ। यह प्रवास कैसा रहा, यह हम श्री गुरुजी के व्यक्तित्व, संघकार्य की प्रगति और देश की परिस्थिति के सन्दर्भ में अगले अध्यायों में देखेंगे।

*

८ रक्तरंजित देश विभाजन

डाक्टर हेडगेवार की मृत्यु के बाद जब संघ कार्य का दायित्व श्री गुरुजी के कंधों पर आया, तभी भारत ओर सम्पूर्ण विश्व के इतिहास के इतिहास में एक दूरगामी परिणाम करनेवाला दशक प्रारंभ हुआथा। १९३९ में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हो चुका था और महायुद्ध के प्राररंभिक काल में नाजी तानाशाह एडाल्फ हिटलर की चौतरफा विजय हो रही थी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए यह प्राणघातक संकट मानो भारत जैसे गुलामी की श्रृंखला से बँधे देशों के लिए उन बंधनों को तोड़कर स्वतंत्र होने के लिए एक अच्छा अवसर था, इसे भाँपना कोई कठिन बात नहीं थी। डाक्टर जी ने इसे भाँप लिया था और इसीलिये जीवन के अन्तिम काल में इस परिस्थिति का लाभ कैसे उठाया जाए इसका विचार उनके मन को बेचैन किये हुए था। इसीलिये संघशक्ति शीघ्रातिशीघ्र देशव्यापी बने, यह उत्कट इच्छा वे बार-बार व्यक्त किया करते थे। देश में इस परिस्थिति को लेकर व्यापक विचारमंथन चल रहा था। किंतु इंग्लैण्ड की इस संकचग्रस्त अवस्था का लाभ किस प्रकार उठाया जाए, इसे लेकर अलग-अलग रायें व्यक्त की जा रही थी। गांधी, नेहरू, सुभाष- इन सभी के विचारों में भिन्नता थी। यद्यपि यह सभी स्वीकार करते थे कि इंग्लैण्ड की नाक दबाने का यह अत्यंत अच्छा अवसर है, किन्तु कौन सा मार्ग अपनाया जाए इस मामले में सर्वसम्मत राय नहीं बन पा रही थी। सुभाष बाबू ने इस काल में डाक्टर जी से भेंट करने का दो बार प्रयत्न किया किन्तु डाक्टर जी का स्वास्थ्य अत्यंत खराब होने के कारण दुर्भाग्य से यह भेंट न हो सकी। डाक्टर जी यह अच्छी तरह जानते थे कि इस परिस्थिति का निर्णायक लाभ उठाने के लिए जितने शक्तिसम्पन्न और राष्ट्रव्यापी संगठन की आवश्यकता है वैसा स्वरूप संध का अभी बना नहीं है। नये सरसंघचालक श्री गुरुजी को भी इसका ज्ञान था।

संघकार्य का फैलाव महाराष्ट्र के बाहर कुछ अन्य प्रदेशों में भले ही हुआ किन्तु देश के बहुत बड़े भाग में अभी तक संघ का विचार पहुँच नहीं पाया था। न तो वहाँ कार्यकर्ता भेजे जा सके थे और न ही वहाँ संघ की शाखाएँ खड़ी हो सकी थीं। संघकार्य के विस्तार सम्बन्धी डाक्टर जी की उत्कटता और बीमारी की अवस्था में राजगीर से कार्यवृद्धि के कालबद्ध कार्यक्रम का आहवान भी वास्तव में इस अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थ्िति के सन्दर्भ में ही था। इसलिये नये सरसंघचालक के समक्ष संघकार्य का विस्तार और संगठन की मजबूती का काम ही सर्वाधिक महत्व का और आवश्यक था। व्रिटिश साम्राज्यवादी सत्ता की कुछ तिरछी नजरें इस संगठन पर भी पड़ी थी। और इसलिये संघ के गणवेश और समता आदि कार्यक्रमों में परिवर्तन करना आवश्यक हो गया था। पूर्ण स्थिति ता ठीक आकलन कर श्री गुरुजी ने संघकार्य के विस्तार को नई गति

प्रदान की। शासन द्वारा कार्य के बाह्य स्वरूप पर डाले गये प्रतिबन्धों को अस्वीकार कर उन्होंने अनावश्यक संघर्ष को आमंत्रित नहीं किया। प्रतिबन्धों को निरर्थक बनाने की लचीली नीति उन्होंने अपनायी। संघ के समता कार्यक्रम के गणवेश तथा आज्ञाओं में जो परिवर्तन किया गया वह इसी काल में हुआ। नये गणवेश के रूप में सफेद शर्ट, खाकी हाफ पैंट, काली टोपी और सफेद जूतों का प्रचलन प्रारंभ हुआ। पहले समता के लिए संघ में अंग्रेजी आज्ञाओं की उपयोग किया जाता था। उनके स्थान पर संस्कृत आज्ञाओं का प्रचलन होने लगा। स्वयंसेवकों की रचनाओं के लिए गण, वाहिनी, अनीकिनी आदि नये नाम प्रचलित हुए। 'बैंड' का नामकरण घोष हुआ। उसे नया सुर मिला। एक तरह से इस अवसर का लाभ उठाकर गुरुजी ने समता और संचलन कार्यक्रमों का 'भारतीयकरण' कर डाला। प्रतिबन्ध सरकारी कागजातों में धरे रह गये और संघकार्य पर उनका कोई दुष्परिणाम नहीं हो सका। संघ का नेतृत्व स्वीकार किये जाने के बाद कुछ माह के भीतर ही ब्रिटिश सत्ता की वक्रदृष्टि से गुरुजी का नेतृत्व पहली बार कसौटी पर कसा गया जिसमें वे आश्चर्यजनक ढंग से सफल रहे।

८.१ परिस्थिति का आह्वान

श्री गुरुजी को ऐसी ऊपरी कठिनाइयों की कभी कोई चिन्ता नहीं रही। उनके सामने प्रमुख चुनौती तो द्रुतगति ,से कार्य का विस्तार करने की थी। इसके लिए उन्होंने देशव्यापी प्रवास प्रारंभ किया। किंतु स्थान-स्थान पर संघ का कार्य खड़ा हो सके यह किसी अकेले व्यक्ति के प्रवास से कैसे संभव हो पाता? दैनंदिन शाखाएँ कौन चलाता? इसके लिए तो संघ के नित्यकर्म में निष्णात व्यक्तियों को वहाँ भेजकर स्थानीय कार्यकर्ता खड़े करना अत्यावश्यक था। अतः विचारपूर्वक कार्यविस्तार की योजना तैयार की गई। इस योजना के अन्तर्गत बड़े पैमाने पर संघ के प्रचारक देश में सर्वत्र भेजे जाने थे। इसके पूर्व भी संघकार्य हेतु कार्यकर्ता बाहर निकले थे। कार्य का विस्तार भी उन्होंने किया था। किन्तु ये कार्यकर्ता कहीं छात्र के रूप में, कहीं शिक्षक के रूप में तो कहीं अन्य निमित्त से बाहर गये थे। पूर्ण समय देकर काम करनेवाले श्री बाबा साहब आपटे, श्री दादाराव परमार्थ जैसे गिनती के थोड़े ही प्रचारक थे। अब यह जो योजना बनी थी वह विभिन्न प्रांतों में पूरा समय संघ का ही कार्य करनेवाले प्रचारक भेजने की थी। इस योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिए १९४१ में श्री गुरुजी ने स्थान-स्थान पर अपने प्रवास में तरूण स्वयंसेवकों के अंतःकरण को छूनेवाले अत्यंत भावना-प्रधान भाषण दिये। इनके माध्यम से हर स्वयंसेवक के मन में यह बात वे गहराई से पैठाने का प्रयत्न करते कि यह कार्य फुर्सत में करने का नही है- इसके लिए अधिकाधिक समय देना होगा। इस सम्बन्ध में उनके मन की बेचैनी १९४२ में वर्ष प्रतिपदा के दिन किये गये उनके भाषण में व्यक्त उद्‌गारों में प्रकट होती है।

इस समय अपने भाषण में उन्होंने जो आह्वान किया था, संघ के इतिहास में वह एक विशेष महत्व रखता है। अतः भाषण का कुछ अंश यहाँ उद्-घृत करना समीचीन होगा। अपने उस भाषण में श्री गुरुजी ने कहा- “हमारा अहोभाग्य है कि हम आज जैसी संकटपूर्ण परिस्थिति में उत्पन्न हुए हैं। संकटकाल को हमें पर्वकाल ही समझना चाहिए। राष्ट्र के इतिहास में शताब्दीयों के पश्चात आनेवाला यह सुवर्ण-अवसर आज हमारी ओर बढ़ा आ रहा है। इस समय यदि हम सोते रहे तो हम जैसे अभागे दूसरे नहीं होंगे। संसार में उसी का नाम अमर होता है जो संकट काल में कुछ कर दिखाता है। इसलिए प्रसन्न एवं निर्भय होकर संकटों से संघर्ष करना होगा। अपने सर्वश्रेष्ठ सद्-गुणों को प्रकट करने का सर्वोत्तम अवसर यही है।”

“पतित राष्ट्र का पुनरूत्थान अधिक से अधिक एक पीढ़ी में ही हो जाना चाहिए। किन्तु हमारी अवस्था क्या है? पूरे १७ वर्ष तक परिश्रम करने के बाद भी आज हमारा कार्य छोटा है। सत्यवादी होने के कारण हमारा संघ अपनी प्रतिज्ञा अवश्य पूर्ण करेगा। एक बार हमारे मुख से जो शब्द निकल गया उसे हम सत्य करके ही गिखायेंगे, भले ही हमारा व्यक्तिगत जीवन नष्ट हो जाय। उसकी हमें परवाह नहीं। एक वर्ष के लिए अपने व्यक्तिगत जीवन के सारे विचार स्थगित कर दीजिये। इस असिधारा व्रत को अपनाकर एक वर्ष के लिए संन्यासी बन जाइये। अपने प्रति चाहे जितना कठोर बनना पड़े, इसके लिए तैयार हो जाइये। इस समय घर-बार या धन-दौलत की चिन्ता न हो। हमें अपना सारा समय, सारा ध्यान, सारी शक्ति इसी कार्य पर केन्द्रित करना है। अन्य सभी व्यक्तिगत बातों को भुला दीजिये। उनको मन के द्वार के समीप भी मत आने दीजिये। ऐसी दक्षता रखकर हम सभी को अपूर्व परिश्रम तथा कार्य करने के लिए सिद्ध रहना होगा।”

श्री गुरुजी का यह आह्वान स्वयंसेवकों के अंतःकरण को छु गया। इसी समय श्री बालासाहब देवरस ने भी पूर्णकालिक प्रचारक निकालने हेतु प्रयत्नों की पराकाष्ठा की। ‘अभी नहीं तो कभी नहीं’ – (नाऊ ऑर नैवर) यह उनकी घोषणा थी। परिणामस्वरूप स्थान-स्थान पर सैकड़ों तरूण स्वयंसेवक पूर्णकालिक प्रचारक निकलने हेतु आगे आये। राष्ट्र के लिए त्याग करने की भावना का एक दिव्य प्रवाह देखने को मिला। अनेकों ने नौकरी, विवाह, रिश्तेदार आदि का मोह त्यागकर कार्यक्षेत्र में छलांग लगा दी। अनेकों ने अपनी घर-गृहस्थी, बाल-बच्चों का विचार कुछ काल के लिए स्थगित रखा और पूरा समय संघकार्य के लिए देने की तैयारी दर्शायी। मध्यभारत में प्रचारक के रूप में गये श्री भैयाजी दाणी ऐसे ही घर-गृहस्थीवाले थे। १९४२ के जून माह से

भिन्न-भिन्न प्रांतों में प्रचारक भेजने का कार्य प्रारंभ हुआ। इसके साथ ही कार्य की गति भी तेज हो उठी।

इन्हीं दिनों देश में जो घटनाएँ हो रही थीं उनकी ओर श्री गुरुजी का पूरा ध्यान था। ब्रिटिश साम्राज्य पर संकट अधिक गहराया था। यूरोप में जर्मनी ने और पूर्व की ओर जापान ने ब्रिटेन को भारी शिकस्त दी थी। इसी संकट के समय ब्रिटिश सरकार ने सर स्ट्रेफर्ड क्रिप्स को भारत भेजा और भारत को अधिक स्वायत्तता, जिसमें देश विभाजन का प्रस्ताव भी अन्तर्निहित था, प्रदान करने की योजना भारत के राजनीतिक नेताओं के समक्ष रखी। यह योजना काँग्रेस को स्वीकार नहीं हुई और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए देश का वातावरण अधिकाधिक गरम होने लगा। नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने भारत के बाहर से रंगून और सिंगापुर में स्वाधीनता-युद्ध का बिगुल फूँका। आजाद हिंद फौज खड़ी की और 'चलो दिल्ली' का नारा गुँजाया। इधर भारत में गांधी जी ने 'अंगेजो भारत छोड़ो' का नारा बुलन्द किया तथा इस मांग की पूर्ति के लिए आंदोलन शुरू किया। स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए निर्णायक संघर्ष का वातावरण देश भर में तैयार हुआ।

८.२ '१९४२'

किन्तु ऐसे सुनहरे अवसर का लाभ उठाने के लिए जो राष्ट्रव्यापी संगठित शक्ति आवश्यक होती है वह देश में कहीं नहीं थी। कांग्रेस ने गांधीजी के नेतृत्व में आंदोलन की घोषणा तो कर दी किन्तु आंदोलन के स्वरूप और कार्यक्रमों की कोई योजना स्पष्ट नहीं की और नही यह प्रयास किया कि देश भर में बिखरी पड़ी शक्तियों को इस राष्ट्रीय आंदोलन में सहभागी बनाकर एक सूत्र में गूँथा जाय। कहा जाता है कि दि. ९ अगस्त १९४२ को आंदोलन पर विचार करने के लिए कांग्रेसी नेताओं को एकसाथ बैठने मात्र की कल्पना ही गांधी जी ने दी थी। आंदोलन की प्रत्यक्ष सिद्धता के लाए छह माह की अवधि निश्चित करने का उनका विचार था। किन्तु ब्रिटिश सरकार ने गांधी जी को यह अवसर उपलब्ध नहीं होने दिया। अखिल भारतीय कांग्रेस के प्रमुख नेता जैसे ही मुंबई पहुँचे उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। सरकार के इस कृत्य से उत्तेजित जनता ने बिना किसी तैयारी के स्वयंस्फूर्ति से आंदोलन छेड़ दिया। सारे नेता तो जेल में बंद थे और आंदोलन बिना नेतृत्व के चल पड़ा। बिना नेता के दिशाहिन आंदोलन भड़क तो सकता है किन्तु वह अधिक काल तक टिक नहीं पाता और अपने आप बिना किसी ठोस सफलता के समाप्त हो जाता है। इस आंदोलन का भी यही हाल हुआ।

इस बात में कोई संदेह नहीं कि ऐसे आंदोलन में शामिल हुआ जाय या नहीं तथा इसके अच्छे बुरे संभावित परिणाम क्या होंगे इसका विचार श्री गुरुजी ने भी किया था। संघ की अत्यल्प शक्ति, आदोलनकर्ताओं की योजना-विहीनता और दिशाशून्यता तथा आंदोलन में एकसूत्रता के अभाव के कारण राष्ट्रव्यापी संघर्ष के अधिक काल तक चल पाने की संभावना आदि सभी पहलुओं का उन्होंने विचार किया था। किसी भी वर्धिष्णु संगठन का भावना में बहकर कुछ भी कर बैठना और उध्वस्त हो जाना कोई दूरदर्शिता नहीं मानी जा सकती। और यही विचार पक्का हो जाने के कारण संघ ने संगठन के नाते इस आंदोलन में भाग न लेने का निर्णय लिया। इसके लिए उस समय अनेक लोगों ने उसे दोष भी दिया, उसकी खिल्ली भी उड़ाई। किंतु संगठन के सर्वश्रेष्ठ नेता के रूप में श्री गुरुजी का निर्णय कितना सही और उचित था यह बाद की घटनाओं से सिद्ध हो गया। श्री गुरुजी ने डाक्टर जी के सूत्र को अपनाकर संघ स्वयंसेवकों को व्यक्तिशः आंदोलन में भाग लेने की छूट दे दी। तदनुसार अनेक स्वयंसेवकों ने इस आंदोलन में व्यक्तिशः भाग लिया। इतना ही नहीं, स्थान-स्थान पर भूमिगत कार्यकर्ताओं की समुचित देख भाल करने का दायित्व भी संघ के स्वयंसेवकों ने उत्तम ढंग से निभाया। कहीं भी आंदोलन का तेजोभंग अथवा उसका विरोध करने जैसा कोई कार्य संघ के स्वयंसेवकों ने नहीं किया। चिमूर-काण्ड में अग्रणी और फाँसी की सजा प्राप्त करनेवाले क्रांतिवीर संघ के स्वयंसेवक ही थे। जिन अनेक भूमिगत कार्यकर्ताओं को सुरक्षित रखने में संघ के कार्यकर्ताओं ने मदद की उनमें क्रांतिसिंह नाना पाटील, किसनवीर, साने गुरुजी, अरूणा आसफअली, अच्युतराव पटवर्धन, कुंदनलाल गुप्त आदि का समावेश है। ये लोग कोई संघ-विचार को माननेवाले नहीं थे तथा १९४२ के बाद भी उनकी गणना संघ-विरोधियों में ही होती थी। किन्तु उन्हें सुरक्षा प्रदान करते समय वैचारिक मतभेदों की चिंता स्वयंसेवकों ने नहीं की।

संगठनात्मक शक्ति को बढ़ाना और इसके लिए सर्वत्र संघ-शाखाओं का जाल बिछाना, यही कार्य संघ ने महत्वपूर्ण माना और उसी पर सारा ध्यान केन्द्रित किया। उन दिनों एक विशिष्ट ध्येय के लिए काम करनेवाले संघ जैसे संगठन के नेताओं को परिस्थिति का मुल्यांकन कर अत्यंत जिम्मेदारीपूर्ण निर्णय समय-समय पर लेने पड़ते थे। उनकी देशभक्ति की प्रखरता, साहस तथा त्याग की सिद्धता पर संदेह करते रहना अनुचित और निरर्थक है। संघकार्य में अहोरात्र जुझनेवाले हजारों युवक ज्वलन्त देशभक्ति की भावना और समर्पित बुद्धि से ही काम करते थे। किसी विशेष आंदोलन में भाग लेने का निर्णय तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार संघ नेताओं को ही लेना था। लोकशक्ति का जागरण और अनुशासनबद्धता का मूल उद्येश्य आखिर राष्ट्र के गौरव को बढ़ाने के लिए ही था। संघ इसी उद्येश्य से लोकशक्ति के जागरण और अनुशासनबद्धता पर जोर दिया करता था।

८.३ श्री गुरुजी की व्यापक सोच

१९४२ के आन्दोलन के बारे में श्री गुरुजी की क्या सोच थी, इस विषय में विख्यात श्रमिक नेता श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी जी की अपनी कुछ स्मृतियाँ यहाँ देना उपयुक्त रहेगा।

"१९४२ के सितम्बर के अंत में मंगलोर का कार्यक्रम संपन्न कर श्री गुरुजी मद्रास जानेवाले थे। १९४२ के आंदोलन के कारण अनेक स्वयंसेवकों और प्रचारकों के भी मनों में खलबली मची हुई थी। सबके मन में यह प्रश्न था कि ऐसे आपात्काल के समय भी संघ निष्क्रिय रहनेवाला हो तो अब तक संचित शक्ति का उपयोग ही क्या? उन दिनों मैं कालीकट में प्रचारक था। अतः मुझसे कहा गया कि मंगलोर निकट होने से मैं वहाँ जाकर श्री गुरुजी को उन सबके विचारों से अवगत कराऊँ। अतः मैं श्री गुरुजी से मिला।" उस भेंट का ब्यौरा देते हुए दत्तोपंत ठेंगड़ी कहते हैं-

मैंने गुरुजी को उपर्युक्त विचार अवगत कराए। गुरुजी ने जो उत्तर दिये वे साररूप में निम्ननुसार हैं- (१) संघ ने प्रारंभ से ही कुछ परहेज पालन करने का निश्चय किया है। इसीलिए डाक्टर साहब जब सत्याग्रह में भाग लेने के लिए प्रस्तुत हुए तब उन्होंने स्वयंसेवकों को आदेश दिया कि वे बाहर रहकर संघशाखा का काम नियमपूर्वक चलाएँ। संघ को उन्होंने आंदोलन के बाहर रखा।

(२) फिर भी आज की आपात् स्थिति में यदि उन सारे परहेजों को तोड़ने से स्वातंत्र्य प्राप्ति निकट आनेवाली हो तो ये परहेज तोड़ने में भी कोई आपत्ति नहीं क्योंकि संघकार्य और ये परहेज ध्येय के लिए हैं और स्वराज्य अपना निकट का लक्ष्य है।

(3) कांग्रेस ने यह आंदोलन शुरू करने के पूर्व संघ या अन्य संगठनों को विश्वास में लिया होता तो अच्छा होता। परंतु उन्होंने वैसा नहीं किया। उसके कारण क्रोधित होने का कोई कारण नहीं है। यह आंदोलन जिस स्वातंत्र्य के लिए है वह केवल कांग्रेसवालों को ही मिलनेवाला नहीं है, सबका स्वातंत्र्य है। इसलिए इस विषय में संस्थागत अहंकार रखने का कारण नहीं।

(४) परंतु कांग्रेसी नेताओं ने आंदोलन का आदेश देने के पूर्व अपनी दृष्टि से भी जो तैयारी करनी चाहिए थी, वह भी नहीं की यह चिंता की बात है। इसलिये बिना तैयारी की (Unprepared) अवस्था में ही जनता को अंग्रेज सरकार के सामने जाना पड़ा।

कोई भी सुव्यवस्थित योजना नहीं थी। यह भी नहीं कहा जा सकता कि क्रांतिकाल में सब घटनाएँ बिल्कुल पूर्व नियोजित योजना के अनुसार ही होंगी। फिर भी कुछ निश्चित योजना तो होनी ही चाहिये और उसमें परिवर्तन करने कि बारी आई तो वैसा करने की पहल (इनिशिएटिव) भी नेताओं के हाथों में रहनी चाहिए। आज वैसी पहल नेतृत्व के हाथों में नहीं रही है। इसलिये परिस्थिति और आंदोलन का दिशा-निर्देश, जो लोगों की स्वयंस्फूर्ति से मिलता, उसकी शक्ति नेतृत्व में नहीं रही है। क्रांति आंदोलन का इतना योजनाविहीन होना आत्मघाती है।

(५) ऐसा होते हुए भी संघ द्वारा इस प्रसंग पर आंदोलन में कूद पड़ने का निश्चय करने से ध्येय-प्राप्ति होनेवाली हो तो वैसा करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। परन्तु इस बारे में बारीकी से निरीक्षण करने के पश्चात् मेरे ध्यान में ऐसा आया कि हमारे पूर्ण शक्ति से भाग लेने पर भी हम ध्येय के निकट नहीं पहुँच सकेंगे।

(६) संघ की वर्तमान शक्ति के बारे में कुछ लोगों के मन में अतिरंजित कल्पनाएँ हैं। विशेषतः जिन क्षेत्रों में संघ का काम अच्छा है उन लोगों को लगता है कि देश के शेष भाग में भी संघ कार्य की स्थिति उतनी ही अच्छी होगी। परन्तु वैसा नहीं है। आंदोलन की सफलता के लिये अपनी शक्ति के साथ ही अन्य भी कुछ अनुकुल स्थितियाँ आवश्यक हैं जैसे, सर्व साधारण जनता की सहानुभूति, पुलिस, सेना आदि महत्व के विभागों में सरकार के प्रति असंतोष आदि। प्रत्यक्ष कृति का समय आया तो इस बारे में संबंधित लोगों की प्रतिक्रिया क्या रहेगी यह बतलाना कठिन है। फिर भी क्रांति के लिये आवश्यक परिस्थितियाँ अपने अनुकूल रहेंगी ऐसा मान कर चलने पर भी मेरा अनुमान है कि हमने सब शक्ति दाँव पर लगाकर आंदोलन किया होता तो भी यह आंदोलन एक सीमित भाग में ही सफल हो सकता था। बेलगाँव से गोंदिया तक का ही क्षेत्र उसमें आता। परन्तु इतना करने के बाद भी हम ध्येय के निकट नहीं पहुँच सकते।

वस्तुस्थिति यह है कि अपना प्रभाव क्षेत्र केवल देश के मध्य भाग तक सीमित है। क्रान्ति सफल होने पर जो भाग स्वतंत्र होगा उस पर सब ओर से सेना भेजना शत्रु के लिए संभव होगा और ऐसी स्थिति में सरकारी सेना भीतर घुसी तो सर्वसाधारण जनता में उनके अत्याचारों से निराशा भीषण मात्रा में बढ़ेगी। सोचे हुये परिणाम से बिल्कुल विपरीत परिणाम हो सकता हे। स्वतंत्र होनेवाला भाग अगर एक किनारे पर रहा तो एक बाजू से तो निर्भय रह सकते हैं और शत्रु-सेना का प्रतिकार करने के लिए बहुत समय मिल सकता है।

ऐसी अवस्था में संघ के आंदोलन में उतरने से लाभ होनेवाला नहीं ऐसा मुझे लगता है। एक संस्था के नाते हम सुरक्षित रहें यह भावना मेरे मन में नहीं है परंतु रणनीति का विचार करें तो इस समय आंदोलन करने से जनता में निराशा के सिवा कुछ हासिल नहीं होगा।

यहाँ पर ये अंकित करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि प्रारंभ से ही श्री गुरुजी का यह आग्रह रहा है कि राष्ट्रनिर्माण का विचार करनेवाले कार्यकर्ता भू-राजनीति (Geo-politics) विषय को आग्रहपूर्वक पढ़ें और इस दृष्टि से वे 'हंटिंगटन' नामक लेखक का उल्लेख करते थे।

८.४ राष्ट्र के संकट की घड़ी में

१९४२ का आंदोलन खलबली मचा कर चला गया। भारतीय जनता में स्वतंत्रता की आकांक्षा कितनी तीव्र है इसकी जानकारी भी अंग्रेज शासकों को इस आंदोलन से मिली। किंतु फिर भी आंदोलन के ठंडा पड़ने, नेताओं के जेल में बंद रहने और सामने प्रत्यक्ष कोई सुनियोजित कार्यक्रम नहीं रहने से स्वाभाविकतया लोगों में हताशा और निराशा की भावना फैली। इसके अतिरिक्त इस युद्ध का रागरंग भी अब बदलने लगा था और तथाकथित मित्र राष्ट्रों का पलड़ा भारी होने लगा था। सुभाष बाबू को अपनी सेना के साथ भारत में प्रवेश करना और दिल्ली की ओर कूच कर पाना असंभव हो गया था। इस सारी परिस्थिति में लोगों में नयी आशा और उत्साह का संचार करने के लिये संघ का माध्यम से अधिकाधिक शक्ति जुटाने का भगीरथ प्रयास श्री गुरुजी के नेतृत्व में चलता रहा। उनके प्रयासों को जनसमर्थन भी अच्छा मिलने लगा। १९४२ के बाद के काल में प्रान्त-प्रान्त में संघ की शाखाओं का तेजी से विस्तार होता गया। श्री गुरुजी ने स्थान-स्थान पर योग्य कार्यकर्ता संघकार्य के लिये प्राप्त किये। सर्वत्र संघ शाखाओं में स्वयंसेवकों की बाढ़ दिखाई देने लगी। केवल बंगाल, असम, उड़ीसा, तमिलनाडु जैसे कुछ अपवादों को छोड़कर सभी प्रांतों में संघकार्य में विशेष प्रगति हुई। उत्तर भारत में संघ शक्ति का विशेष अनुभव होने लगा। किन्तु इसी समय स्वतंत्रता प्राप्ति के राष्ट्रीय उद्येश्य के अलग-अलग धाराओं में बँटने के संकेत भी मिलने लगे थे।

१९४० से ही मुस्लिम लीग ने भारत में हिन्दू और मुसलमानों को दो अलग-अलग राष्ट्र बताकर मुसलमानों के लिये पृथक् राज्य की माँग उठानी शुरू कर दी थी। बैरिस्टर मोहम्मद अली जिन्ना ने ऐसी भूमिका अपनायी कि कांग्रेस हिन्दुओं की संस्था है, उसे

देश के करोड़ों मुसलमानों की ओर से बोलने का कोई अधिकार नहीं है। १९४५ में महायुद्ध तो थम गया और भले ही तथाकथित मित्र राष्ट्रों की विजय हुई हो फिर भी ब्रिटिशों को भारत में इपनी सत्ता बनाये रखना असंभव प्रतीत होने लगा था। कांग्रेस के नेता पाकिस्तान की माँग को स्विकार करने को बिल्कुल तैयार नहीं थे। इसी मुद्दे पर राजाजी जैसे प्रमुख नेता ने कांग्रेस छोड़ दी थी। फिर भी कांग्रेस अपनी पाकिस्तान-विरोधी भूमिका छोड़ने के लिए तैयार नहीं थी। युद्ध समाप्त होने के बाद कांग्रेसी नेताओं की जेल से रिहाई हो गई और ब्रिटिश सत्ता ने फिर वार्ता का दौर शुरू किया। इन वार्ताओं में कांग्रेस, मुस्लिम लीग और अंग्रेज सरकार के प्रतिनिधि प्रमुख रूप से शामिल किये जाते। कांग्रेस और मुस्लिम लीग में, अर्थात् हिन्दू और मुसलमानों में एकमत न हो पाने के कारण भारतीय जनता को स्वतंत्रता का अधिकार देने सम्बन्धी निर्णय नहीं हो पा रहा था। वैसे इसके पीछे ब्रिटिश शासकों की भारत के विभाजन की कुटिल नीति ही कारणीभूत थी। वे मुस्लिम लीग को कांग्रेस से दूर रखकर अलग राष्ट्र की मांग के लिये उकसा रहे थे।

राष्ट्र की भविष्य सम्बन्धी इस खींचतान में श्री गुरुजी ने अत्यंत स्पष्ट और दृढ भूमिका अपनायी। अपने भाषण में वे स्पष्ट तौर पर कहते कि मातृभूमि अखंड बनीं रहनी चाहिए तथा यह कोई सौदेबाजी का विषय नहीं हो सकता। १९४५-४६ में श्री गुरुजी का भाषण सुनने के लिए सभाओं में प्रचण्ड भीड़ जमा होती। शाखाओं का जाल भी तेजी से फैलता जा रहा था। शुरू-शुरू में तो अनेक नेता पाकिस्तान निर्माण के सवाल को मज़ाक में उड़ा देते और उसकी खिल्ली उड़ाते थे। किंतु बाद में अंग्रेज शासकों और मुस्तिम लीग के बीच मेल बढ़ने के कारण लोग गंभीरता से सोचने के लिये विवश हुए कि कहीं देश के विभाजन का खतरा तो मोल नहीं लेना पड़ेगा?

इस समय तक श्री गुरुजी की प्रेरणा और मार्गदर्शन में हजारो कार्यकर्ताओं के अथक परिश्रम से देश में संघ की शखाएं फलने-फूलने लगी थीं। प्रचण्ड मात्रा में तरूण वर्ग संघ की ओर आकर्षित हुआ। पूरे देश में मुसलमानों के उपद्रव शुरू हुए। देश-विभाजन की चर्चा से खलबली मची हुई थी। देश की जनता संघशक्ति को ऐसी समर्थ, सुसंगठित शक्ति के रूप में देखने लगी थी जो राष्ट्र की अखंडता को बनाए रखते हुए उसे स्वाधीनता प्राप्त कराएगी और बाद में देश को सही मार्ग पर आगे बढ़ा सकेगी। मुस्लिम दहशतवाद का निर्णायक उत्तर राष्ट्रीय भावना का जागरण व राष्ट्रभक्तों का प्रबल प्रभावी संगठन ही हो सकता है, अनुनय अथवा तात्कालिक समझौते से कुछ भी साध्य नहीं होगा – यह बात राष्ट्रीय हिन्दू समाज के मानस में पैठने में श्री गुरुजी के सुस्पष्ट, निर्भय तथा भावोत्कट प्रतिपादन ने अपूर्व सफलता प्राप्त की थी। ध्येयवाद और प्रयत्नवाद का वायुमंडल सर्वत्र निर्माण हो गया था। किन्तु अनेक वर्षों के

कारावास से मुक्त होकर अब चर्चा के दौर में फँसे, संघर्ष का भरोसा खो बैठे, थके राजनीतिक नेता येनकेन प्रकारेण सत्ता हथियाने के लिये अधीर हो बैठे थे। फिर भी कांग्रेस अब तक देश की अखंडता का आग्रह रखे हुए थी। १९४५ के कांग्रेस-अधिवेशन ने विभाजन की कल्पना को ठुकरा दिया था। देश की अखंडता बनाये रखने के लिये आवश्यक हुआ तो प्राण-न्यौछावर करने का आश्वासन गांधी जी ने अपने भाषण में दिया था। उनके इस आश्वासन पर लोगों को भरोसा था।

इसलिये अपने देशव्यापी प्रवास में श्री गुरुजी अपने भाषणों में कहा करते थे कि दहशतवाद, गुंडागर्दी, छोटे-बड़े अत्याचार, दंगे आदि कराने की धमकियों अथवा प्रयासों से किसी को विचलित नहीं होना चाहिए। आत्मरक्षा का आधिकार सभी को कानूनन प्राप्त है। १९४६ में नागपुर के विजयादशमी महोत्सव में श्री गुरुजी ने जो भाषण दिया उसमें चारों ओर की संघर्षमय परिस्थिति के सन्दर्भ में उन्होंने कहा था "प्रतिकार न करने की भाषा मेरी दृष्टी में कोई पराक्रमी वृत्ति की द्योतक नहीं है। आज के संघर्षमय काल में क्या प्रतिकार न करने से देश का कोई कल्याण होगा? मुझे तो संघर्ष अनिवार्य दिखाई देता है। आप भले ही प्रतिकार न करें, परन्तु उतने से ही आप पर आक्रमण करने के लिए तैयार बैठे लोग अपनी काली-करतूतों से बाज थोड़े ही आनेवाले हैं? यह कभी न भूलिये कि काली मंदिर में बलि के लिए ले जाया जानेवाला अजापुत्र (बकरा) भी अप्रतिकार की ही साक्षात् मूर्ति होता है। हमें कोई बलि के बकरे नहीं बनना है। आत्मरक्षा प्रत्येक व्यक्ति और समाज का प्रकृतिसिद्ध अधिकार है। अतः यह कहना कि सुरक्षा का दायित्व सरकार का होने से कोई भी कानून को अपने हाथों में न ले, मूलतः अवैध है।"

८.५ देश विभाजन के कगार पर

इस प्रकार की प्रेरणा का परिणाम यह हुआ कि समाज में अत्याचारों का साहस के साथ सामना करने की मानसिक सिद्धता होने लगी। ब्रिटिश शासकों के उकसाने से विघटनकारी शक्तियाँ भी इस समय सिर उठाने लगी थीं। युद्ध में विजय के बाद इंग्लैण्ड में सत्ता-परिवर्तन हो चुका था। भारत को स्वतंत्रता प्रदान करने के लिए अनुकूल श्रमिक दल (लेबर पार्टी) श्री एटली के नेतृत्व में सत्तारूढ़ हुआ था। १९४६ में चुनाव की घोषणा हो चुकी थी। कांग्रेस अखंड भारत के समर्थन में और मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान निर्माण के समर्थन में ये चुनाव लड़े। उस समय केवल मुस्लिमों के लिये ही सुरक्षित सीटें रखी गई थीं। इनमें से अधिकांश सीटें मुस्लिम लीग ने जीतीं। देश भर के मुसलसानों ने पाकिस्तान के समर्थन में मतदान किया। हिंदू मतदाता पूरी

तरह कांग्रेस के साथ रहे। केवल वायव्य सीमा प्रांत ही अपवाद रहा। यहाँ यह ध्यान में रखना होगा कि भारत के भीतरी भागों में भी मुसलमानों ने पाकिस्तान का प्रचण्ड समर्थन किया था। जिन प्रदेशों को पाकिस्तान में शामिल करने की मुस्लिम लीग मांग कर रही थी उनमें उत्तर प्रदेश, बिहार, केरल अथवा मद्रास प्रेसीडेन्सी का समावेश नहीं था। किन्तु इन प्रदेशों के मुसलमानों ने भी लीग का ही सर्वाधिक समर्थन किया, जब कि सीमावर्ती वायव्य प्रांत में लीग को पराजय सहनी पड़ी। वहाँ मुस्लिम मतदाताओं ने कांग्रेस को समर्थन दिया था। ब्रिटेन की सत्तारूढ श्रमिक दल की सरकार ने स्वतंत्रता प्रदान करने का कार्यक्रम सुनिश्चित करने के लिये भारत में केबिनेट मिशन भेजा। इस मिशन की योजना के संदर्भ में कांग्रेस तथा लीग की व्याख्याओं में मूलभूत अंतर उभरने से लीग ने इसे ठुकराया। केन्द्र की अंतरिम सरकार में लीगी मंत्रियों ने हर कदम पर कांग्रेस मंत्रियों के समक्ष बाधाएँ खड़ी कीं। लेबर पार्टी की सरकार भी भारत को अखंड बनाए रखने की इच्छुक नहीं थी।

बैरिस्टर जिन्ना ने पाकिस्तान के निर्माण हेतु दबाव बढ़ाने तथा विभाजन-विरोधियों को भयभित करने के उद्येश्य से दि. १६ अगस्त १९४६ को सीधी कार्यवाही (डायरेक्ट एक्शन) दिवस के रूप में घोषित किया। इस दिन स्थान –स्थान पर दंगे भड़काये गये। बंगाल में कलकत्ता, ढाका, नोआखाली आदि स्थानों पर सीधी कार्यवाही के नाम पर जो नृशंस हत्याकाण्ड हुए इसके कारण कहीं घबराहट की तो कहीं प्रक्षोभ की प्रतिक्रियायें निर्माण हुई। बिहार का प्रक्षोभ कांग्रेसी नेताओं ने बलपूर्वक दबा दिया। सर्वत्र अत्याधिक आतंक और दहशत फैल गयी। गृह-युद्ध और भीषण रक्तपात को आमंत्रित करने की बजाय पाकिस्तान दे दिया जाए और इस मुसीबत से बचा जाए, यह विचार कांग्रेस के नेताओं के मन में उठने लगा। जहाँ-जहाँ मुस्लिम बहुसंख्या में थे वहाँ-वहाँ हिन्दुओं पर अत्याचार और आक्रमण बढ़ने लगे। सौभाग्य से इस समय पंजाब में संघ की शक्ति अच्छी थी। श्री गुरुजी पाकिस्तान निर्माण के विरूद्ध न केवल बोलते थे बल्कि उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रों में जाकर जनता का धीरज भी बँधाते रहे। इन उपद्रवों के दिनों में श्री गुरुजी ने पंजाब और सिंध प्रदेश का बार-बार दौरा किया। इस प्रवास में उनकी सभाओं में प्रचण्ड संख्या में जनता उपस्थित रहती थी। उनका यही प्रयास रहता था कि पाकिस्तान बनने न पाये और लोग घबराकर अपना घर-बार छोड़कर अन्यत्र न भागें। इस समय तक तो गांधी जी ने भी पाकिस्तान के निर्माण और देश के विभाजन के लिए अपनी सहमति नहीं दर्शायी थी। कांग्रेसी नेताओं को गुरुजी यही सलाह देते रहे कि किसी भी हालत में विभाजन को स्वीकार न किया जाए। मुस्लिम गुंडागिरी का सफलता से मुकाबला करने के लिये हिन्दू जनता समर्थ है। थोड़ा कष्ट सहन करना पड़ेगा किन्तु विभाजन को निश्चित रूप से टाला जा सकता है। गांधी जी अपने वचन से डिगेंगे नहीं यह विश्वास असंख्य लोगों को था। किंतु

आखिर ३ जून १९४७ को विभाजन की प्रत्यक्ष घोषणा हो गई। इसके कुछ ही दिनों पूर्व गुरुजी ने पंजाब में अपने एक भाषण में कहा था- "हम पाकिस्तान को नहीं जानते, न ही हमें वह स्वीकार है। हमें तो संगठित रूप से आत्मविश्वासपूर्वक खड़े रहकर आवश्यक संघर्ष करते हुए अपने-अपने स्थान पर डटे रहना चाहिये। यदि हम संघर्ष से डरकर अपनी मातृभूमि को त्याग देंगे तो इतिहास हमारे बारे में यह लिखने से नहीं हिचकेगा कि 'इन लोगों को विभाजन का, अपनी प्रियतम मातृभूमि के अंगविच्छेद का कोई दुःख नहीं हुआ। इन लोगों ने अपने प्राणों को अपनी मातृभूमि तथा उज्ज्वल, पराक्रमी परंपरा से बढ़कर समझा।' यदि ऐसा हुआ तो निश्चय जानिए कि हमारे समाज में यह मनोदुर्बलता सदा के लिये छा जायेगी। इसलिये जी जान से प्रतिकार करते हुए हमें अंत तक अपने-अपने स्थानों पर ही डटे रहने का प्रयत्न करना चाहिए।"

८.६ स्वयंसेवकों की ऐतिहासिक भूमिका

श्री गुरुजी ने संघ के हजारों स्वयंसेवकों को ढाल के रूप में प्रस्तुत कर सभी में सुरक्षा की भावना और धैर्य बढ़ाने का प्रयास किया। जिसका परिणाम निश्चित रूप से समाज का मनोबल बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ। किन्तु लॉर्ड वेवल को हटाकर लाये गये लॉर्ड माउंटबेटन ने 'फूट डालो और तोड़ो' की अपनी सरकार की परम्परागत नीति अपनाकर मुस्लिम लीग का पक्ष लिया और बाद में विभाजन को स्वीकार करने के लिए कांग्रेसी नेताओं पर दबाव डालते रहे। विभाजन स्वीकार करने से खंडित भारत की ही क्यों न हो, स्वतंत्रता आँखों के सामने खड़ी दिखाई दे रही थी पर विभाजन को ठुकराने से न जाने और कितने समय तक संघर्ष करना पड़ता इसका कोई भरोसा नेताओं को दिखाई नहीं दे रहा था। धीरज खो बैठे नेताओं ने संघर्ष टालने की मानसिकता में विभाजन का विकल्प मंजूर कर लिया। श्री गुरुजी अत्यंत दुःखी हुए। नेहरूजी ने डॉ. अम्बेडकर की यह सलाह नहीं मानी कि विभाजन के साथ ही अल्पसंख्यकों की अदला-बदली भी की जाए। यह आभास भी निर्माण किया गया कि पाकिस्तान में हिन्दू सुरक्षित रह सकेंगे। वैसे विभाजन की घोषणा के पूर्व ही रावलपिंडी, अमृतसर, लाहौर आदि स्थानों पर मार्च माह में हिन्दुओं पर होनेवाले अत्याचारों ने उग्र रूप धारण कर लिया था। किंतु हिंदुओं ने न केवल इस आघात को सहन किया वरन् अनेक स्थानों पर आक्रमण का मुंहतोड़ जवाब भी दिया। संघ के नेतृत्व में स्थान-स्थान पर सुरक्षा दल खड़े किये गये। जहाँ हिन्दुओं की संख्या केवल २० या ३० प्रतिशत थी वहाँ पर भी हिन्दुओं ने बड़ी तेजस्विता दिखाई।

ऐसी दोलायमान परिस्थिति में भी पंजाब के फगवाडा और संगरूर में नियमानुसार संघ के अधिकारी शिक्षा वर्ग १९४७ में जुलाई के तीसरे सप्ताह में प्रारंभ हुए। श्री गुरुजी दोनों ही वर्गों में गये और वहाँ की परिस्थिति पर कार्यकर्ताओं से उन्होंने चर्चा की। दोनों वर्गों में कुल मिलाकर ३७०० कार्यकर्ता आये थे। चलते वर्गों में संघर्ष और अत्याचारों की खबरें भी मिलती रहीं। दिनांक ३ जून की घोषणा के पूर्व जो परिस्थिति थी उसमें अब एकदम परिवर्तन हो चुका था। इसलिए स्वयंसेवकों को जो मार्गदर्शन पहले दिया गया था- उसमें उचित परिवर्तन आवश्यक हो गया था। ऐसी स्थिति में वर्गों का समारोप पहले किया गया तथा कार्यकर्ताओं को यह सूचना भी दी गई कि वे यथाशीघ्र अपने स्थानों पर वापस जाकर अपने हिन्दु बन्धु, भगिनी और माताओं को जान-मान के साथ सुरक्षित ढंग से भारत पहुँचाने की व्यवस्था करें तथा अखिरी हिन्दू के रवाना होने तक अपने स्थान पर डटे रहें और उसके पश्चात् ही स्वयं भारत की ओर चले आयें। कार्यकर्ता अपने-अपने स्थानों पर लौटे। इन कार्यकर्ताओं में से कई लोग पुनः कभी दिखाई नहीं दिये- अपने समाज की रक्षा में वे वीरगति को प्राप्त हुए। उस घोर संकटकाल में संघ के स्वयंसेवक ही सुरक्षा के एकमेव आशाकेन्द्र बने। विभाजन के इस कालखण्ड पर लेख, पुस्तकें आदि लिखनेवालों ने संघ स्वयंसेवकों की वीरता, पराक्रम और समाज की रक्षा में प्राणों के बलिदान की प्रशंसा की है। इस कार्य में स्वयंसेवकों ने 'अपने-पराये' का कोई भेद नहीं किया। कांग्रेस के अनेक नेता संघ-प्रदत्त सुरक्षा- कवच के फलस्वरूप ही स्वतंत्र भारत में सुरक्षित पहुँच पाए।

संघ स्वयंसेवकों की इस वीरता और अद्-भुत पराक्रम-पर्व का श्री गुरुजी ने अपने मुख से बखान कभी नहीं किया और न ही इसका श्रेय लुटने का कोई प्रयास किया। वह सारा इतिहास अभी तक अज्ञात है। स्वयंसेवकों के बलिदान को वे समाज की रक्षार्थ निभाया गया आवश्यक कर्तव्य ही मानते थे। संघ की प्रेरणा से पंजाब रिलीफ कमेटी की स्थापना हुई और उसके माध्यम से हिन्दू विस्थापितों की सब प्रकार की समस्याओं का निराकरण करने का प्रयास किया गया। यह सारा भयानक-पर्व समाप्त होने के बाद एक बार दिल्ली में पत्रकारों ने इस सम्बन्ध में ढेर सारे प्रश्न पूछकर श्री गुरुजी से स्वयंसेवकों के पराक्रमपूर्ण घटनाओं के बारे में जानना चाहा किन्तु श्री गुरुजी ने उन्हें यही उत्तर दिया कि- "संघ ने क्या किया, इसकी विज्ञापनबाजी हम नहीं करना चाहते। क्योंकि अपनी मातृभूमि और अपने समाज बांधवों की सेवा की विज्ञापनबाजी कैसी? यह हमारा आद्य कर्तव्य है। किंतु इतना बता दूँ कि उन सारी घटनाओं की यदि जानकारी जी गई तो हरेक के रोम-रोम से संघ की जय-जयकार की ध्वनि के सिवा अन्य ध्वनि सुनाई नहीं देगी।"

८.७ श्री गुरुजी का तेजस्वी उदाहरण

गुरुजी सभी उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों से निरंतर सम्पर्क बनाये हुए थे। १५ अगस्त को देश का विभाजन हो गया। उसके पूर्व ८ अगस्त तक श्री गुरुजी ने सिंध का प्रवास किया था। पंजाब का प्रवास भी हो चुका था। पंजाब के उस समय के आतंकित, असुरक्षित और अस्थिर वातावरण में अमृतसर से अंबाला तक सब जिला स्थानों पर श्री गुरुजी ने कैसा प्रवास किया होगा इसकी कल्पना ही शरीर पर रोंगटे खड़े कर देनेवाली है। एक ही उदाहरण का यहाँ उल्लेख किया तो भी स्वयं के प्राण संकट में डालकर वे स्थान-स्थान पर कैसे पहुँचे होंगे, अपने आपद्-ग्रस्त बंधुओं से मिलने की कितनी तीव्र उत्कंठा उनके हृदय में रही होगी यह बात ध्यान में आ सकेगी। यह प्रवास वर्षा से उध्वस्त हुए रास्तों और रेलवे मार्ग से किया गया। कभी इंजिन में बऐठना पड़ा तो कभी मालगाड़ी के गार्ड के साथ बैठकर मंजिल पार करनी पड़ी। जालंधर से लुधियाना के मार्ग में चहेड्डू नाम का पुल था। वहाँ पहुँचने पर ऐसा दिखाई दिया कि आगे का प्रवास असंभव है क्योंकि पुल टुट गया है और रेल की पटरी नीचे झूल रही है। पुल के नीचे बाढ़ का पानी प्रचण्ड ध्वनि करता हुआ बह रहा था। पुल के निकट पहुँचने पर श्री गुरुजी के साथ जो कार्यकर्ता थे उनके सामने प्रश्न चिह्न खड़ा हुआ। पुल पार करने का धोखा न लिया जाय, ऐसी आम राय व्यक्त हुई। परन्तु पल भर का भी विचार न करते हुए श्री गुरुजी ने पटरी पर पैर रखा और सर-सर कदम बढ़ाते हुए उन्होंने देखते –देखते पुल तेजी से पार कर लिया। निरूपाय हो कर अन्य कार्यकर्ताओं को भी हिम्मत बटोर कर यह कड़ी कसौटी सफलता से पार करनी पड़ी। श्री गुरुजी का सारा ध्यान था, आगे कैसे पहुँचा जाय। कठिणाइयाँ उनकी गिनती में ही नहीं थीं। एक बार श्री गुरुजी के निजी सहायक डॉ. आबाजी थत्ते ने बतालाया था कि उस प्रवास का स्मरण होते ही आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

१९६० में इंदौर में हुए कार्यकर्ताओं के समक्ष अपने एक भाषण में श्री गुरुजी ने इस कालखंड के बारे में कुछ उल्लेख किया था। संघ का नित्य कार्य कितना महत्वपूर्ण है और तात्कालिक समस्या अथवा संघर्ष से विचलित होना कितना अनिष्टकारी है इसी सन्दर्भ में श्री गुरुजी ने उक्त कालखंड का उदाहरण दिया था। उस भाषण के कुछ अंश श्री गुरुजी की मानसिकता को स्पष्ट करते हैं। उन्होंने ९ मार्च १९६० को अपने भाषण में कहा था- "देश में समय-समय पर निर्माण होनेवाली परिस्थिति के कारण मन में तूफान उठता है। १९४२ में भी अनेकों के मन में तीव्र आंदोलन था। उस समय भी संघ का नित्य कार्य चलता रहा। प्रत्यक्ष रूप से संघ ने कुछ न करने का संकल्प किया। परंतु संघ के स्वयंसेवकों के मन में उथल-पुथल चल ही रही थी। संघ अकर्मण्य लोगों

की संस्था है, इसकी बातों में कुछ अर्थ नहीं है, ऐसा केवल बाहर के लोगों ने ही नहीं तो कई अपने स्वयंसेवकों ने भी कहा। वे बड़े रूष्ट भी हुए।"

"इसके बाद देश भर में फिर से एक अस्थिर-सी परिस्थिति लोग अनुभव करने लगे। मुसलमानों ने मार-पीट और दंगा-फसाद शुरू कर दिया था। विभाजन के पूर्वरंग की कृष्णछाया फैलने लगी थी। उस संकट का दृढ़ता से मुकाबला करने का विचार अपने लोगों के मन में आया और फिर कार्य-विस्तार में वे जुट गए। परंतु काफी विलम्ब हो चुका था। जब नाक में पानी घुसने लगे तब तैरना सीखने का विचार मन में आने से क्या लाभ? पता नहीं, अपने समाज को क्या हो गया है। प्यास लगने पर कुआं खोदने का विचार करने की खराब आदत अपने समाज को कैसे लगी? उस समय भी लोग बोलने लगे कि संगठन होना चाहिए। परिणामस्वरूप पंजाब की संघ-शाखाओं में बहुत बाढ़ आई थी। मुझे स्मरण है, मैंने उस समय भी कहा था कि पाण्डुरोग में रोगी मोटा हो जाता है। परन्तु उसके स्थूल शरीर का बोझ मृत्यु का पूर्वचिन्ह होता है। उसके मुख का गौरवर्ण वास्तव में विवर्ण रहता है। ऐसे पाण्डुरोगी के पुष्ट दिखनेवाले शरीर से महत्कार्य नहीं हो सकता। उस समय भी नहीं हुआ। कुछ अल्प सा कार्य हुआ और संकट का यथाशक्ति प्रतिकार हुआ।"

श्री गुरुजी के उपर्युक्त भाषण से उन अनेक प्रश्नों का भी परोक्ष उत्तर मिल जाता है जो १९४७ में हुए विभाजन के संदर्भ में अनेक लोगों ने बाद के कालखण्ड में खड़े किये। यह पूछा गया कि अगर संघ को मातृभूमि की अखंडता अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय थी तो संघ ने अपना सर्वस्व दाँव पर लगाकर विभाजन के विरूद्ध तीव्रतर संघर्ष क्यों नहीं किया? स्पष्ट रूप में कहना हो तो यही कहा जा सकता है कि संघ की उस समय स्वयं की इतनी शक्ति नहीं थी कि अपने बलबूते जन-आन्दोलन चलाकर विभाजन रोक पाता। फिर भी संघ ने विभाजन टालने की दिशा में यथासंभव प्रयत्न अवश्य किया। यदि कांग्रेस के नेताओं और गांधीजी ने विभाजन को स्वीकार कर देश की ओर से ब्रिटिश सरकार और मुस्लिम लीग के साथ कोई समझौता नहीं किया होता तो समाज को साथ लेकर संघ देश के विभाजन को रोकने के संघर्ष में सफलता से जूझ सकता था। किन्तु विभाजन को सरकारी स्तर पर स्वीकार कर लिया गया था और इसलिए अधिक कुछ कर पाना संभव नहीं था।

८.८ एक वरिष्ठ सहकारी का विश्लेषण

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कुछ वरिष्ठ कार्यकर्ताओं के विचार इस दृष्टि से मननीय हैं। हिंदुओं की रक्षा और विस्थापितों की सेवा पर ही संघ ने संतोष क्यों मान लिया, ऐसा प्रश्न एक बार संघ के दक्षिणांचल प्रचारक श्री यादवराव जोशी से पूछा गया। उस समय की परिस्थिति के निम्नलिखित पहलू श्री यादवराव जी ने रखें-

"(१) विभाजन रोकने लायक संघ की शक्ति, लोगों में जागृति और संगठन उस समय नहीं था।

(२) ब्रिटिशों ने भारत छोड़कर जाने के बारे में जो घोषणा की थी वह इतनी ही थी कि वे जून १९४८ के अंत तक सत्ता का हस्तान्तरण कर देंगे। इसमें देश-विभाजन का कोई प्रस्ताव नहीं था। माउंटबेटन घोषित योजना के १० माह पूर्व ही यानी, १५ अगस्त १९४७ को ही देश विभाजन के साथ सत्ता हस्तान्तरण का निर्णय इसलिए कर सका क्योंकि कांग्रेस ने देश विभाजन की स्वीकृती दे दी थी। यदि कांग्रेसी नेता और ८-१० माह ठहरते तो संघप्रेरित हिन्दू शक्ति दहशत को समाप्त कर सकती थी और देश का विभाजन रोका जा सकता था। परंतु प्रारंभ में विभाजन का उत्साह से विरोध करनेवाले नेहरू, पटेल आदि नेताओं और अंत में स्वयं गांधीजी ने भी सन् १९४७ में विभाजन को स्वीकार करने का मन बना लिया था। फिर भी विभाजन विरोधी प्रचार श्री गुरुजी द्वारा चालू रखा गया। कांग्रेस और संघ की शक्ति एकजुट होती तो चित्र एकदम बदला हुआ दिखाई देता। दुर्भाग्य से संघ को अपना राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वी मान कर उसे ही नष्ट करने की नीति कांग्रेस ने अपनायी।

(३) सभी संघविरोधी शक्तियों को लगता था कि संघ विभाजन के विरोध में बगावत का झण्डा फहरायेगा और इस प्रखर राष्ट्रवादी शक्ति को नष्ट करने का सुअवसर उन्हें मिलेगा। यदि प्रतिकार किया होता तो गृहयुद्ध और शहादत के सिवा कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता। कांग्रेस का प्रचार ऐसा था कि सैकड़ों वर्षों बाद खंडित स्वरूप में क्यों न हो स्वतंत्रता प्राप्त हो रही है; इसके अतिरिक्त विभाजन हुआ तो भी वह स्थायी रूप से टिकनेवाला तो है नहीं। यह अस्थायी बात है और फिर से देश एक होगा। इसलिए आज विभाजन का विरोध करनेवाले एक प्रकार से स्वातंत्र्य-प्राप्ति का ही विरोध करनेवाले हैं। संघ ने प्रतिकार किया होता तो संघ को स्वातंत्र्य का विरोधी करार देकर उसे नष्ट करने का प्रयास सरकार ने और कांग्रेस पर विश्वास रखनेवाले लोगों ने भी आवेश से किया होता। स्वातंत्र्यप्राप्ति का आकर्षण बहुत बड़ा था। संघ का विरोध स्वातंत्र्य से नहीं, विभाजन से है, यह आवाज बहुत क्षीण सिद्ध हुई होती। संघ हिन्दू राष्ट्र के विचार की अंतिम विजय चाहनेवाला और उसके लिए काम करनेवाला संगठन है। विभाजन स्वीकार करनेवालों का असली रूप उजागर करने का महत्कार्य संघ के

द्वारा होना आवश्यक था। प्रत्यक्ष सक्रिय विरोध करना संभव नहीं हुआ तो भी विभाजन-विरोधी भूमिका पुष्ट करने का प्रयास श्री गुरुजी ने अविरत चालू रखा था। संगठन को मजबूत रखना और कार्यशक्ति बढ़ाना यही मार्ग श्री गुरुजी को राष्ट्रहित की दृष्टि से योग्य लगा। मुझे भी लगता है कि श्री गुरुजी की भूमिका पूर्णतः योग्य थी। हिंदू-हिंदू के बीच का उग्र कलह का संकट भी टल गया। विभाजन की जो वेदना होनी थी वह तो सहना ही पड़ी। किन्तु उस समय विभाजन रोकने के लिये कुछ नहीं किया जा सका यह टीस स्थायी रूप से चुभने-वाली है।"

उस विचित्र एवं दुविधापूर्ण परिस्थिति का तटस्थ विचार करनेवाले किसी भी व्यक्ति को श्री यादवराव जी का यह विश्लेषण सामंजस्यपूर्ण लगेगा।

८.९ अन्तिम सत्य नहीं : श्री गुरुजी

विभाजन के सम्बन्ध में बोलते समय श्री गुरुजी के मुख से बार-बार उनकी व्यथा, वेदना व्यक्त होती थी। विभाजन वस्तुस्थिति बन चुका था किन्तु श्री गुरुजी ने उसे 'अन्तिम सत्य' कदापि नहीं माना। अखण्ड मातृभूमि ही सदैव उनकी उपास्य देवता रही। मातृभूमि की खंडित प्रतिमा पुनः अखण्ड बनाने का स्वप्न प्रत्येक देशभक्त के हृदय में पलता रहे; इस सन्दर्भ में एक घटना काफी उद्-बोधक है। १९५५ में जब परम पूजनीय श्री गुरुजी से पूज्य पेशावर मठाधीश श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी ने एक प्रश्न पूछा, 'भारत क्या फिर कभी अखण्ड होगा?' श्री गुरुजी ने तत्काल उत्तर के रूप में-

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।

नर्मदे सिंधु कावेरि जलेस्मिन् सन्निधिं कुरू।।

श्लोक कहा और कहा कि हम अपनी सिन्धु नदी को नहीं भूल सकते। स्वामी जी के अगले प्रश्न पर कि यह कैसे होगा? श्री गुरुजी ने उत्तर दिया कि हिन्दुओं के असंगठन व दुर्बलता के कारण ही विभाजन हुआ। उस कारण को दूर करने से देश फिर से अखण्ड हो सकेगा।

८.१० श्री गुरुजी की सतर्कता

विभाजन की योजना क्रियान्वित हुई। नेताओं के भरोसे बैठी लक्षावधि जनता को जघन्य अत्याचार सहने पड़े। चितौड़ का जौहर भी फीका पड़ जाए ऐसा बलिदान हुआ। लक्षावधि लोगों को जन्मभूमि का त्याग करना पड़ा। उनकी व्यथा हृदयविदारक थी। उन्हें संघ ने यथासंभव दिलासा दिया। हिंदू समाज के तारणहार के रूप में श्री गुरुजी

के प्रति व्यापक रूप में श्रद्धा निर्माण हुई, किंतु इसी समय नियति का घटना-चक्र कुछ अलग दिशा से घुमने लगा। उन घटनाओं की ओर मुड़ने के पूर्व श्री गुरुजी ने भारत सरकार द्वारा जो महत्वपूर्ण काम करवा लिया उसके संबंध में कुछ कहना आवश्यक है क्योंकि विभाजन के बाद सिंध में पैदा हुई अशांत स्थिति से उस काम का संबंध था। सामान्यतः अगस्त मास में सिंध में विशेष गड़बड़ नहीं हुई। परन्तु सितम्बर मास में भारत से मुसलमानों के जत्थे पंजाब और सिंध में पहुँचे। उन्होंने भारत में मुसलमानों पर भीषण अत्याचार होने की अतिशयोक्तिपूर्ण कहानियाँ प्रस्तुत कीं। फलस्वरूप सितंबर मास में सिंध में मुसलमानों ने हिंदुओं पर अत्याचार करना प्रारंभ कर दिया।

इस दंगाग्रस्त काल में दि. १० सितंबर को कराची की शिकारपूर कालोनी में एक बम-विस्फोट हुआ। इस घटना का बहाना बनाकर पाकिस्तानी शासन ने हिंदुओं की गिरफ्तारियों का सिलसिला शुरू कर दिया। इसी समय अर्थात दि. १२ सितंबर को दिल्ली की भंगी कालोनी में महात्मा गांधी जी से श्री गुरुजी की भेंट हुई थी। स्वयंसेवकों के सम्मेलन में गांधीजी का भाषण भी हुआ था। बम विस्फोट और यह गांधी-गुरुजी भेंट इन दोनों घटनाओं के भड़कीले और उभाड़नेवाले समाचार कराची के 'डान' नामक समाचार पत्र ने बड़े-बड़े शीर्षक देकर एकत्र छापे थे। "कराची में बम विस्फोट : पाकिस्तान नष्ट करने का भारत का प्रयत्न" और "महात्मा गांधी का संघ के स्वयंसेवकों को मार्गदर्शन : यदि पाकिस्तान अपनी इसी नीति पर चलता रहेगा तो भारत-पाक संघर्ष होगा।" ऐसे शिर्षक इन समाचारों को 'डान' ने दिये थे।

बम-विस्फोट के बाद अधिवक्ता खानचंद गोपालदास जी और अन्य १९ स्वयंसेवकों को गिरफ्तार किया गया। इन संघ कार्यकर्ताओं की मुक्ति किस प्रकार की जाय, यह प्रश्न उपस्थित हुआ। यह स्पष्ट था कि भारत सरकार और पाकिस्तान सरकार के बीच सामंजस्य होने पर ही स्वयंसेवकों की मुक्ति संभव है और बिना शासकीय सहयोग के कुछ भी कर पाना संभव नहीं है। श्री गुरुजी ने भारत सरकार के मन्त्रियों और अधिकारियों से संपर्क साध कर जो परामर्श दिया उससे अंत में यह कठिन कार्य सफल हो सका। सरदार पटेल गृहमंत्री थे और गृहमंत्रालय के कुछ प्रमुख अधिकारी भी श्री गुरुजी के प्रति सद्-भाव रखनेवाले थे क्योंकि हिंदू-विस्थापितों को संघ-कार्यकर्ताओं ने कितनी कठिनाई से सुरक्षित भारत लाया यह उन्हें ज्ञात था। भारत में आये विस्थापितों की जो विविध प्रकार से सेवा संघ ने की उसके प्रति कृतज्ञता का भाव था। दो सरकारें परस्पर के राजनीतिक कैदियों की अदला-बदली (exchange of political prisoners) कर सकती हैं, इस प्रथा का आधार लेकर पाकिस्तान के हिंदू कैदियों और भारत के मुसलमान कैदियों की अदला-बदली करने की योजना श्री गुरुजी

ने सुझायी और वह गृहमंत्रालय ने स्वीकार की। अदला-बदली का दिन निश्चित हुआ और अदला-बदली का स्थान भी फिरोजपुर तय हुआ।

ऐसा लगा कि बै. खानचंद गोपालदास जी के साथ अन्य १९ लोगों को भी फिरोजपुर में लाया गया होगा। परंतु समाचार मिला कि केवल बै. खानचंद को ही लाया गया हैं क्योंकि उस समय श्री कुरेशी नामक केवल एक पाकिस्तानी कैदी भारत सरकार की हिरासत में था। एक के बदले एक को ही छोड़ने का पाक सरकार ने तय किया था। विभाजन के समय यह कुरेशी बड़ा कुख्यात हुआ था। फिरोजपुर में इन मुक्त कैदियों के स्वागतार्थ श्री गुरुजी के स्वयं की जाने की योजना संघ के कार्यकर्ताओं ने बनायी थी। अन्य स्वयंसेवक भी वहाँ जानेवाले थे। बहुत भव्य कार्यक्रम होने वाला था।

परंतु एन सौके पर गंभीर समस्या उपस्थित हो गयी। कुरेशी के बदले में केनल खानचंद जी की मुक्तता यदि भारत सरकार ने मान ली तो शेष १९ लोगों का छुटकारा प्रायः असंभव होगा इसका ज्ञान श्री गुरुजी को था। इसलिए कुरेशी के बदले में खानचंद जी के साथ अन्य १९ लोगों की मुक्तता भी पाक को करना चाहिए ऐसा आदेश भारत सरकार के गृह मंत्रालय की ओर से भेजे जाने की आवश्यकता थी। बहुत ही कम समय पास में था। श्री गुरुजी अत्यंत व्यथित हो उठे। स्वागत के लिए आये स्वयंसेवकों में श्री लालकृष्ण आडवाणी भी थे। सब के मन निराशाग्रस्त थे, परंतु ऐसा दिखाई दिया कि श्री गुरुजी के मन को निराशा ने जरा भी स्पर्श नहीं किया है। उन्होंने एकदम कहा, “हम अब भी कुछ कर सकते हैं” और डॉ. आबाजी थत्ते की ओर मुड़कर कहा, “आबा, काकासाहब गाडगील को फोन लगाओ, मैं उनसे बात करता हूँ।”

उस समय पंजाब में राष्ट्रपति का शासन था। श्री भिड़े नामक चीफ सेक्रेटरी थे। सरदार पटेल कहीं बाहर गये हुए थे, इसलिए काका साहब गाडगील अस्थायी रूप से गृहमंत्री पद संभाल रहे थे। श्री गुरुजी ने काका साहब से बातचीत की। उसके बाद तत्काल पाक-शासन को संदेश भेजा गया कि कुरेशी के बदले में खानचंद जी सहित सभी २० लोगों की मुक्तता हुई तो ही कैदियों की अदला-बदली होगी अन्यथा नहीं होगी। उस दिन के लिए अदला-बदली का कार्यक्रम स्थगित हुआ। परंतु भारत सरकार के कड़े रूख का योग्य परिणाम हुआ। पाक शासन की तीव्र इच्छा थी कि कुरैशी मुक्त हो। अतः भारत सरकार की मांग के अनुसार कुरेशी के बदले में सभी २० लोगों को मुक्त करना पाक शासन को स्वीकार करना पड़ा।

इस उथल-पुथल में लगभग एक मास बीत गया। बै. खानचंद जी सहित सारे स्वयंसेवक बंधु सुरक्षित भारत पहुँचे। उनका भव्य स्वागत किया गया।

भारत सरकार का सहयोग संपादन कर इस प्रकरण में श्री गुरुजी ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका संपन्न की । सरदार पटेल, काकासाहब गाडगील और श्री भिड़े से श्री गुरुजी के व्यक्तिगत स्नेह संबंध, स्वयंसेवकों की मुक्तता हेतु उनकी तीव्र व्याकुलता, योग्य समय पर कड़ा रूख स्वीकारने का उनका परामर्श और काम सफल होगा ही यह उनका संपूर्ण विश्वास आदि गुणों के दर्शन इस प्रसंग से हुए। श्री लालकृष्ण आडवाणी ने तो यहाँ तक कहा कि श्री गुरुजी की योजकता और निश्चय का यह जो अनुभव हुआ वह मन पर विलक्षण परिणाम करनेवाला और कभी मनःपटल से न मिट सकनेवाला सिद्ध हुआ।

सिंध के ही संबंध में श्री लालकृष्ण आडवाणी द्वारा बताया गया और एक प्रसंग उल्लेखनीय है। विभाजन के पूर्व दि. ५ से ८ अगस्त श्री गुरुजी का सिंध प्रांत में प्रवास हुआ था इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इस प्रवास के समय काँग्रेस के अध्यक्ष आचार्य कृपलानी जी संयोग से कराची में थे। कराची के संघचालक एडवोकेट खानचंद गोपालदास जी की आचार्य कृपलानी जी से गाढ़ी मित्रता थी। श्री गुरुजी चाहते हों तो कृपलानी से उनकी भेंट सहज करवायी जा सकती है ऐसा सूचित किया गया। श्री गुरुजी की इस सुझाव पर प्रतिक्रिया अत्यन्त तीखी थी। उन्होंने कहा, “आचार्य जी से कहो कि अब मिल कर क्या करना है?” यह कहते समय उनके अंतःकरण की वेदना और विभाजन की स्वीकृति के संबंध में क्षोभ प्रत्येक शब्द में से प्रतिबिंबित हो रहा था। उनसे और कुछ कहने की हिम्मत किसी को नहीं हुई और अर्थात् भेंट भी नहीं हो पायी।

इस प्रवास के पश्चात श्री गुरुजी कश्मीर गये। श्री शंकराचार्य जी द्वारा स्थापित मंदिर का श्रद्धापूर्वक दर्शन किया। लौटने पर उन्होंने प्रधानमंत्री पं. नेहरू जी से मिलकर अपने काश्मीर-प्रवास की जानकारी उन्हें दी। सरदार पटेल से भी श्री गुरुजी मिले।

*

९ गांधीजी की हत्या: संघ विरोधी अभियान

समाज के सहयोग से संघ के स्वयंसेवक विस्थापित बांधवों की सेवा में दिन-रात जुटे थे। श्री गुरुजी ने एक सार्वजनिक निवेदन प्रकाशित कर समाज को सहयोग हेतु आवाहन किया। पंजाब सहायता समिति और बंगाल में वास्तुहारा सहायता समिति के द्वारा सैकड़ों शिविर चलाये जा रहे थे। सहस्त्रों बांधवों को इन शिविरों में सहारा दिया गया। इस अशांत और तनावपूर्ण वायुमण्डल में देश को श्री गुरुजी के उत्तुंग व्यक्तित्व का असाधारण पहलू देखने को मिला। उनके अंतःकरण की विशालता का विलोभनीय दर्शन समूचे राष्ट्र को हुआ। प्रतिक्रियात्मक विचारों का जरा भी स्पर्श न होने देते हुए भविष्यकालीन निरामय निर्माण और सुव्यवस्था प्रस्थापित करने की आकांक्षा से इस महान् व्यक्तित्व ने कितनी विधायक स्नेहमयता संपादित की है, इसका प्रत्यक्ष परिचय विभाजन के बाद के चार-पांच महीनों में उनकी गतिविधियों, आचरण-व्यवहार और वक्तव्यों से राष्ट्र की जनता को मिला।

९.१ अमृतभरा हृदय

इस संदर्भ में उनके एक भाषण मात्र का उल्लेख करना पर्याप्त होगा। वह दिन था मकर संक्रमण का। १४ जनवरी १९४८ को श्री गुरुजी मुंबई में थे। मुंबई शाखा की ओर से आयोजित उत्सव में वे बोले थे। खण्डित भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता और सत्ता परिवर्तन का जो नया पर्व देश में प्रारंभ हुआ था, उस संबंध में संघ की भूमिका को उन्होंने अत्यंत स्पष्ट शब्दों में प्रस्तुत किया था। उनके इस भाषण को पिछले चार-पांच माह के अनुभवों की पृष्ठभूमि प्राप्त थी। उन्हें दिखाई दे रहा था कि विस्थापितों में कितना क्षोभ है। वे यह देख रहे थे कि भीषण रक्तपात के कारण भयभीत सत्ताधारी पक्ष के लोगों में दंगों और हिंसाचार के लिये संघ पर दोष मढ़ने की वृत्ति तीव्र होती जा रही है। संघ के प्रति द्वेष-भावना पैदा की जा रही थी। प्रधानमंत्री पं. नेहरू के मन में संघ के प्रति कोई सद्-भावना नहीं है इसका अनुभव वे स्वयं पं. नेहरू से एक भेंटवार्ता में ले चुके थे। संघ की शक्ति को नष्ट करने का विचार सत्ताधारी दल में पनप रहा था। कांग्रेस, मुस्लिम समाज और कम्युनिस्ट सब मिलकर संघ के विरूद्ध अप-प्रचार तथा झूठे-अनर्गल आरोप लगाने में जुट गये थे। यह सब जानते हुए भी श्री गुरुजी ने अपने मुंबई के भाषण में स्नेहमयता, राष्ट्र कल्याण के लिये सहयोग, क्षमाशीलता और निर्वैरता का आश्वासन देनेवाला स्वर प्रकट किया।

श्री गुरुजी ने कहा, “शांत चित्त से विचार करने पर हमारे ध्यान में आयेगा कि मनुष्य के जीवन में अनेक प्रकार के प्रयोग होते रहते हैं। उनमें सफलता-विफलता, सुख-दुःख, विजय-पराजय के प्रसंग आना स्वाभाविक ही है। प्रयोग की सफलता-विफलता को सिद्ध होने के लिए कुछ समय तो लगेगा ही- अन्यथा प्रयोग करनेवाले के साथ अन्याय होगा। जो कुछ हो रहा है, वह उचित हो या अनुचित, हमें प्रक्षुब्ध न होते हुए अपना कार्य करते रहना चाहिए। समस्याओं के मूल में जाकर विचार करना चाहिए। अंतःकरण में किसी भी प्रकार के द्वेष अथवा बदले की भावना न रखते हुए परस्पर-शत्रुता की भावना का त्याग करते हुए शांत चित्त से प्रगति का मार्ग अपनाना चाहिए।”

अपने इस भाषण में श्री गुरुजी ने कहा, “क्षोभ देनेवाली सभी बातों को हजम कर हम आगे बढ़ेंगे। अपने हृदय के अमृत में क्रोध के विष को नहीं घुलने देंगे। अपने चारों ओर जो लोग दिखाई देते हैं, वे कैसे भी हों, अपने राष्ट्र के, अपने समाज के ही हैं। उनकी विचार-प्रणाली कैसी भी क्यों न हो, उन्होंने भी कुछ अच्छे काम किये हैं, त्याग भी किया है। इसलिये हमें शांतचित्त से विचार करना चाहिए। हम अपनी स्नेहपूर्ण उदारता और बंधुत्व की भावना उनके प्रति नहीं तो किनके प्रति प्रकट करेंगे? किसी के कहने अथवा करने से मन में निर्माण होनेवाले क्षोभ को हृदय में जरा भी स्थान न देते हुए फिर से सिर उठानेवाले भेदों को मिटाकर “वयं पंचाधिकं शतं” की आत्मीय भावना से एकसूत्र-बद्ध राष्ट्र के निर्माण में अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए और इस प्रयास में हमें अपने प्राणों से भी हथ धोना पड़े तो उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए।”

अजातशत्रुत्व तथा अमृतमय भावना का आचरण अकेले श्री गुरुजी का ही नहीं वरन् उनके चैतन्यप्रद नेतृत्व में देश भर में शक्तिशाली रूप में खड़े सूत्रबद्ध संगठन का भी था। सत्ता-परिवर्तन का यह कालखंड दिल्ली में भय और शंका से ग्रस्त था। इस काल में नागरिक जीवन को सुरक्षित रखने, इतना ही नहीं तो कांग्रेस का शासन भी सुरक्षित रखने के लिए संघ ने सब प्रकार का सहयोग दिया। दिल्ली की भंगी कालोनी में गांधी जी के निवास स्थान की सुरक्षा का दायित्व भी संघ के स्वयंसेवकों ने निभाया। गांधी जी भी संघस्थान पर जाकर स्वयंसेवकों से मिले और अपने भाषण में उन्होंने संघकार्य की सराहना भी की। गांधी जी को अपना अनशन छोड़ने के लिए राजी कराने हेतु जारी संयुक्त विज्ञप्ति पर दिल्ली प्रांत के संघचालक लाला हंसराज गुप्त ने खुशी से अपने हस्ताक्षर किये। संघ के कारण कहीं भी शांति भंग, प्रक्षोभ भड़कने अथवा उत्पात होने की कोई घटना नहीं हुई।

संघ के भव्य कार्यक्रम और श्री गुरुजी के मुख से अमृतमय संगठनमंत्र को सुनने के लिए उन कार्यक्रमों में एकत्रित होनेवाली लक्षावधि जनता को देखकर सत्ताधारी क्षेत्र में यह भावना फैली कि यह कांग्रेस के लिये बड़ी चुनौती ही खड़ी हो रही है। इसलिए संघ को हर प्रकार से दबाने के प्रयत्न शुरू हुए। इसके कुछ कटु अनुभव १९४७ के नवम्बर मास में मिल चुके थे। प्रथम अनुभव पुणे के निकट चिंचवड में दि.१ व २ नवम्बर को आयोजित लगभग १ लाख स्वयंसेवकों के सम्मेलन पर अचानक ऐन समय पर शासन की ओर से पाबंदी लगाने का था। वास्तव में गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल स्वयं इस सम्मेलन में प्रमुख अतिथि के नाते उपस्थित रहनेवाले थे। इसलिये सर्वत्र विशेष उत्साह का वातावरण बन गया था। मुंबई सरकार ने प्रतिबंध का आदेश जारी किया तो अनेकों को भारी निराशा हुई। इस अनावश्यक और अन्यायकारी रोक से अनेक कार्यकर्ताओं में क्षोभ भी पैदा हुआ। किन्तु शासकीय आदेश का उल्लंघन कर सम्मेलन का आयोजन करने का आग्रह न तो श्री गुरुजी ने किया और न ही किसी स्वयंसेवक कार्यकर्ता ने। विकल्प के रूप में महाराष्ट्र में तेरह स्थानों पर श्री गुरुजी के कार्यक्रम आयोजित किये गये और वे सभी कार्यक्रम शानदार ढंग से सम्पन्न हुए। इन तेरह स्थानों पर दिये अपने किसी भी भाषण में श्री गुरुजी ने चिंचवड सम्मेलन पर पाबंदी के विरुद्ध न तो अपनी नाराजगी व्यक्त की और न ही शासन की कोई आलोचना की। उनके भाषणों का प्रमुख सूत्र यही रहा कि अपना समाज असंगठित होने के कारण ही उसे अनेक संकटों से गुजरना पड़ रहा है। समाज यदि संगठित नहीं हुआ तो स्वतंत्र भारत भी संकट-ग्रस्त हो जायेगा। विभाजन के लिये समाज की असंगठित अवस्था और आत्म-विस्मृति को ही उन्होंने जिम्मेदार ठहराया।

दूसरी घटना थी दिल्ली में नवम्बर के अंत में सम्पन्न मुख्यमंत्री-सम्मेलन में हुई चर्चा और विचार-विनिमय। इस सम्मेलन में राज्यों के मुख्यमंत्री तथा राज्यों के गृहमंत्री भी उपस्थित थे। इस सम्मेलन में चर्चा का प्रमुख विषय मानों राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ही था। चर्चा का प्रमुख मुद्दा यही था कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ 'हिंसात्मक' गतिविधियों में लिप्त है, इसलिये उसे रोकने के लिये कठोर पग उठाये जाने चाहिये। आखिर सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि संघ की सारी हलचलों पर पाबंदी लगाने की बजाय केवल अपराधी व्यक्ति के विरूद्ध कार्रवाई की जाए। इसके साथ ही संघ की गतिविधियों पर बारीक नजर रखने की बात भी तय की गई। उक्त सम्मेलन में हुई चर्चा की जानकारी समूचे राष्ट्र को ४ फरवरी १९४८ को संघ पर प्रतिबंध लगाने सम्बन्धी जारी सरकारी आदेश में दिये गये ब्यौरे से मिली। इसी माह की तीसरी घटना थी मेरठ में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

का ही चर्चा का प्रमुख विषय बना रहना। इस अधिवेशन में अनेक वक्ताओं ने संघ पर प्रतिबंध लगाने की मांग की। इस दिशा में शासकीय विचार-चक्र का संकेत देने-वाली घटना भी उल्लेखनीय है। दि. २९ जनवरी को प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने अमृतसर की सभा में घोषणा की कि 'हम संघ को जड़मूल से नष्ट करके ही रहेंगे।' इस भाषण का समाचार पढ़ने के बाद श्री गुरुजी ने कहा कि "संघ पर होनेवाले सभी आघातों को हम विफल करेंगे। हमारा (संघ का) कार्य किसी की कृपा से नहीं बढ़ा। किसी की बुरी दृष्टि से वह समाप्त भी नहीं होगा। यह कार्य किन्हीं कागजी प्रस्तावों से खड़ा नहीं हुआ। अतः कागजी आदेशों से उसे नष्ट नहीं किया जा सकता।" उनके उक्त उद्-गारों को परखने का समय अत्यंत निकट आ पहुँचा है, शायद इसकी कल्पना श्री गुरुजी को भी न रही हो।

वास्तव में आगे की घटनाओं से यह बात साफ हो जाती है कि संघ पर हिंसा-दंगा फैलाने तथा जातिवादी आदि होने का जो आरोप लगाया जा रहा था- वह राजनैतिक था। कांग्रेस ने देश को अखण्ड बनाये रखने का अभिवचन दिया था परन्तु देश विभाजन स्वीकार कर जनता के साथ विश्वासघात किया था। इस कारण लोगों के मन में कांग्रेस के प्रति तीव्र असन्तोष निर्माण हुआ था। देश-विभाजन के भीषण दिनों में हिन्दु समाज की रक्षा करने हेतु संघ द्वारा किये गये अप्रतिम साहस और बलिदान के कारण समाज का संघ पर विश्वास और उसकी जनप्रियता बहुत बढ़ गई थी। देश के अन्य भागों में भी मुसलमानों द्वारा भड़काये गये दंगों के समय हिन्दु समाज की रक्षा के लिए संघ के स्वयंसेवक ही ढाल बने थे। परन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि देश के ऐसे संक्रमण काल में संघ द्वारा बढ़ाये गये सहयोगी हाथ को स्वीकार करने की बजाय वह भविष्य में राजनैतिक प्रतिस्पर्धी बन सकता है। इस भय से आरोप लगाकर उसे नष्ट करने का षड्यन्त्र रचा गया।

अखबारों में अथवा कांग्रेसी नेताओं के भाषणों में संघ पर जातिवादी, साम्प्रदायिक, प्रतिक्रियावादी, फैसिस्ट होने सम्बन्धी जो आरोप लगाये जाते थे उनकी चिंता संघ में कोई नहीं करता था। इन आरोपों का संघकार्य की गति पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। किन्तु ३० जनवरी को जो दुर्भाग्यपूर्ण घटना हुई उसका संघ-विरोधियों ने पूरा-पूरा लाभ उठाया और संघ की अग्नि-परीक्षा का समय अकस्मात् आ खड़ा हुआ।

९.२ राष्ट्रीय सामंजस्य की आवाज

उस दिन सायंकाल श्री गुरुजी मद्रास में संघ द्वारा निमंत्रित प्रतिष्ठित नागरिकों की सभा में उपस्थित थे। नागरिकों से वार्तालाप चल रहा था। चाय की प्यालियां सभी के समक्ष रखी जा रही थीं। श्री गुरुजी के हाथों में भी चाय की प्याली थी। वे उसे मुंह से लगाते इसके पूर्व ही अकस्मात् यह दुःखद समाचार सुनने को मिला कि दिल्ली के बिड़ला भवन में प्रार्थना के समय किसी ने गोली चलाकर गांधीजी की हत्या कर डाली! यह खबर सुनते ही गुरुजी ने चाय की प्याली नीचे रख दी और कुछ क्षणों तक चिंतामग्न स्थिति में स्तब्ध बैठे रहे। फिर उनके मुंह से व्यथित उद्-गार निकले- 'देश का दुर्भाग्य है यह।' अगला सारा प्रवास कार्यक्रम रद्द कर वे तुरन्त विमान द्वारा सीधे नागपुर लौटे। मद्रास से रवाना होने के पूर्व ही उन्होंने पं. नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल व श्री देवदास गांधी के नाम तार भेजकर अपनी शोक संवेदना व्यक्त की। साथ ही आदरणीय महात्मा जी की दुःखद मृत्यु पर शोक प्रकट करने के लिये तेरह दिनों तक संघ शाखाएँ बन्द रखने का आदेश भी गुरुजी ने सर्वत्र प्रसारित किया। नागपुर लौटते ही उन्होंने तुरन्त प्रधानमंत्री पं. नेहरू तथा सरदार पटेल के नाम महात्मा जी की दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु पर अपनी व्यथा को प्रकट करनेवाले पत्र भेजे। पं. नेहरू के नाम लिखे पत्र का कुछ अंश इस प्रकार है :-

"विभिन्न प्रवृत्तियों के लोगों को एक सूत्र में पिरोकर उनका सही मार्गदर्शन करने वाले एक कुशल कर्णधार पर किया गया आक्रमण किसी एक व्यक्ति के प्रति विश्वासघात नहीं, समुचे राष्ट्र के प्रति विश्वासघात है। इसमें कोई संदेह नहीं कि आप याने वर्तमान शासनाधिकारी उस देशद्रोही पर उचित कार्यवाही करेंगे ही। वह कार्यवाही कितनी भी कठोर क्यों न हो, उस क्षति की तुलना में सौम्य ही होगी जो इस समय उठानी पड़ी है। इस विषय में मैं अधिक क्या कह सकता हूँ? आज हम सबके लिए परीक्षा की घड़ी है। वर्तमान प्रक्षोभक परिस्थिति में संतुलित विवेकबुद्धि, मधुरवाणी और राष्ट्रहित के प्रति एकान्तिक निष्ठा सहित सावधानी से सारे क्रियाकलाप करते हुए राष्ट्रनौका को पार ले जाने का उत्तरदायित्व हम सब पर है।"

सरदार पटेल के नाम प्रेषित अपने पत्र में श्री गुरुजी ने लिखा- "उस महान संगठक के आकस्मिक तिरोधान से अपने कंधों पर जो उत्तरदायित्व आ पड़ा है उसे हमें कुशलता से वहन करना होगा। तदर्थ उस आत्मा की पवित्र स्मृतियों को संजोकर रखना होगा जिसने परस्पर विरोधी प्रकृति के लोगों को एक सूत्र में गूँथकर उन सब को ध्येयमार्ग पर चलाया। आइये, हम सद्-भाव, संयतवाणी तथा भ्रातृभाव के द्वारा शक्ति संचित कर चिरन्तन एकात्म राष्ट्रजीवन के निर्माण हेतु प्रयत्नशील हों।"

इन पत्रों के अंत में श्री गुरुजी ने लिखा कि संघ का गठन भी इसी आस्था और आधार पर किया गया है और परमदयालु परमेश्वर से प्रर्थना है कि विशुद्ध एवं शक्तिमान राष्ट्रजीवन के निर्माण हेतु इस राष्ट्र के सपूतों को वह सही मार्गदर्शन एवं प्रेरणा दे।

इन दोनों पत्रों की भावना अत्यंत निर्मल, दिवंगत के प्रति पूर्ण आदर व श्रद्धा व्यक्त करनेवाली और राष्ट्रीय संकटकाल में सहकार्य का मनःपूर्वक आश्वासन देनेवाली है। संघ के स्वयंसेवकों के नागपुर तथा अन्य स्थानों पर शोकसभाओं का आयोजन कर गांधी जी के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं। श्री गुरुजी ने असोसियेटेड प्रेस द्वारा एक संदेश प्रसारित किया। उसमें भी राष्ट्र की एकता, परस्पर स्नेह और सेवाभावना को टिकाये रखने की बात ही कही। किन्तु इस भीषण दुर्घटना के बाद संघ के विरूद्ध अपप्रचार का बाजार गर्म हो उठा! ऊल-जलूल अफवाहें फैलाई जानें लगीं और सर्वत्र संघ के विरूद्ध प्रक्षोभक वातावरण बनाने का प्रयास किया गया। श्री गुरुजी की सद्-भावना को समादर मिलना तो दूर रहा, उल्टे शासन ने संघ को गांधी जी की हत्या से जोड़ने की घृणित भूमिका अपनायी।

श्री गुरुजी ने अपने एक वक्तव्य में संघ के स्वयंसेवकों को निर्देश दिया कि "गलतफहमी से निर्माण होनेवाली सब प्रकार की परिस्थिति में सभी स्वयंसेवकों को अपना व्यवहार स्नेहपूर्ण ही रखना चाहिए। उन्हें यह ध्यान में रखना चाहिए कि गलतफहमी के शिकार बनकर लोगों द्वारा दिया गया त्रास भी अपनी मातृभूमि का नाम जगत् में उज्ज्वल करने वाले महापुरूष के प्रति देशवासियों में असीम प्रेम और आदर भावना का ही द्योतक है।"

दुर्भाग्य से श्री गुरुजी का इतना सात्विक निवेदन भी वृत्त-पत्रों में उचित स्थान नहीं पा सका। संघ के विरूद्ध क्षोभ भड़काने का क्रम जारी रहा। महाराष्ट्र में इस काण्ड को ब्राह्मण-अब्राह्मण विवाद के रूप में उभाड़ा गया। परिणामस्वरूप असंख्य लोगों के घरों पर हमले हुए, आगजनी, लुट-पाट का सिलसिला चल पड़ा। भारी क्षति हुई। महाराष्ट्र एवं आसपास के प्रदेशों में हजारों परिवार निराधार बने एवं कुछ लोगों की आहुति भी हुई। देशभर में संघ स्वयंसेवकों और कार्यकर्ताओं को भारी यातनाएं सहनी पड़ीं। फिर भी किसी ने कोई प्रतिकार नहीं किया और न ही किसी के प्रति कटु शब्दों का प्रयोग किया। सब कुछ शांति से सहन किया। इसके पीछे डर या भय की कोई भावना नहीं बल्कि राष्ट्रहित में संघ द्वारा प्रदर्शित अभूतपूर्व संयम का भाव ही था। श्री गुरुजी ने प्रतिकार न करने का आदेश सर्वत्र भेजा था।

जनक्षोभ की आंच प्रत्यक्ष श्री गुरुजी तक पहुँची। उस समय श्री गुरुजी ने जिस असामान्य धैर्य, संयम और विशाल हृदयता का परिचय दिया, वह उनके द्वारा की जा रही समाज परमेश्वर की उपासना की विशुद्धता का ही परिचायक था। प्रसंग बड़ा तनावपूर्ण था। १ फरवरी १९४८ के दिन सुबह श्री गुरुजी के नागपुर स्थित निवासस्थन के सामने हजारों लोग जमा हो गये और मकान पर पत्थर पेंकने लगे, अनर्गल आरोपों सहित अश्-लील नारेबाजी होने लगी। प्रसंग की गंभीरता को देखते हुए श्री गुरुजी की सुरक्षा के लिए स्वयंसेवक उनके पास आये और हमलावरों को ठिकाने लगाने की अनुमति माँगने लगे। इस पर श्री गुरुजी ने उन स्वयंसेवकों से कहा, "मेरे निवास के सामने मेरी सुरक्षा के लिए अपने ही बांधवों का रक्त बहे यह मैं नहीं चाहता। मेरी सुरक्षा के लिए यहाँ किसी को रुकने की आवश्यकता नहीं है, आप सभी अपने-अपने घरों को लौट जायें।"

९.३ अग्नि परीक्षा का प्रारंभ

इसी समय श्री गुरुजी के निवास पर पुलिस का पहरा लगा दिया गया किन्तु उसे सायंकाल हटा लिया गया। नागपुर के चिटणीस पार्क में हुई आम सभा में संघ विरोधी विषवमन किया गया। तब पुनः स्वयंसेवकों को उपद्रव भड़कने की आशंका हुई। कोई अनहोनी न होने पाये इसलिए स्वयंसेवकों ने श्री गुरुजी को किसी अन्य सुरक्षित स्थान पर चलने की सलाह दी। इस पर श्री गुरुजी ने जो उत्तर दिया वह उनकी अंतःकरण की थाह देनेवाला है। बाहर इतना प्रक्षोभजनक उन्मादी वातावरण होने के बावजूद श्री गुरुजी के मन को अपनी सुरक्षा का विचार यत्किंचित भी स्पर्श नहीं कर पाया। उन्होंने अपना सर्वस्व समाजपुरूष के अधीन कर दिया था। उन्होंने कार्यकर्ताओं से कहा, "ऐसा दिखाई देता है कि चहुँ ओर की परिस्थिति और संकट को देखकर आप सारे विचलित हो उठे हैं। आपके मन विक्षुब्ध हैं। अतः यही उचित होगा कि आप सब लोग यहाँ से जायें और मुझे शांतिपूर्वक यहीं रहने दें। मेरी चिंता आप जरा भी न करें। आपका आग्रह है कि मैं यहाँ से अन्यत्र चलूँ, पर क्यों? आज तक जिस समाज के लिए मैं कार्य कर रहा हूँ, अगर वही मुझे नहीं चाहता तो मैं कहाँ और क्यों जाऊं? जो कुछ होना होगा होने दीजिये। अब मेरी संध्या का समय हो गया हैं आप सभी यहां से अपने-अपने घर लौट जायें।" इतना कहने के बाद श्री गुरुजी संध्या करने के निमित्त भीतर के कमरे में चले गये। किन्तु जैसी कि कार्यकर्ताओं को आशंका थी, ऐसा कोई उपद्रव फिर नहीं हो पाया क्योंकि श्री गुरुजी के निवास स्थान पर पुनः पुलिस का पहरा लग चुका था और हमलावरों के लिये श्री गुरुजी के निवास स्थान की ओर जाना असंभव हो गया था। दोपहर के समय कुछ उपद्रवकारियों ने रेशीमबाग

स्थित डॉक्टर जी की समाधि को क्षति पहुँचाई थी। जिन डॉक्टर जी ने राष्ट्र और हिन्दू समाज के उत्कर्ष के लिये हँसते-हँसते अपना सारा जीवन होम कर दिया था उन्हीं की समाधि पर मृत्यु के आठ वर्ष बाद कुछ नासमझ हिन्दू बन्धुओं ने पाशवी हमला किया था।

श्री गुरुजी के घर पर पुलिस पहरे का अर्थ दि. १ फरवरी की मध्यरात्रि के बाद स्पष्ट हुआ। श्री गुरुजी रात के १२ बजे तक जाग रहे थे। कहाँ क्या हुआ, स्वयंसेवकों पर कैसे-कैसे अत्याचार हुए, इसकी जानकारी उन्हें मिलती रही। शायद वे और किसी घटना की चिंता में मग्न थे। जो कुछ घटनाएँ हो रही थीं उनसे वे व्यथित तो थे ही। मध्य रात्रि के बाद पुलिस की गाड़ी उनके मकान के सामने आकर रूकी। श्री गुरुजी के नाम गिरफ्तारी का वारंट जारी किया गया था और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक को गांधी जी की हत्या के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया। इस आरोप को सुनकर श्री गुरुजी हँसे किन्तु जरा भी अस्वस्थ नहीं हुए। अत्यंत शांतिपुर्वक वे उस पुलिस अधिकारी के साथ कारागृह में जाने के लिए तैयार हो गये। वहाँ उपस्थित कार्यकर्ताओं से विदा लेते समय उन्होंने कहा, "संदेह के बादल छँट जायेंगे और निष्कलंक होकर हम बाहर निकलेंगे। तब तक अनेक प्रकार के अत्याचार होंगे। उन्हें अत्यंत संयम के साथ सहन करना होगा। मेरा यह विश्वास है कि संघ के स्वयंसेवक इस अग्नि-परीक्षा में निश्चित रूप से खरे उतरेंगे।"

पुलिस की गाड़ी चल पड़ी। भारतीय दंड संहिता की धारा ३०२ और १२० के अन्तर्गत गिरफ्तार श्री गुरुजी जेल के सींकचों में बंद कर दिये गये। सत्ता का स्वार्थ जब अनियंत्रित हो उठता है तब कितनी विवेकशून्यता निर्माण होती है तथा न्याय और ईश्वर को पैरों तले कुचलने का मोह संवरण करने की सूझ भी नहीं रह पाती, इसका स्वाधीनता प्राप्ति के आरंभिक काल का यह जीता जागता उदाहरण है। श्री गुरुजी की गिरफ्तारी की खबर हवा की तरह सर्वत्र फैलते देर नहीं लगी। संघ के सरकार्यवाह श्री भैय्याजी दाणी ने सभी शाखाओं को तार भेजकर सुचित किया कि गुरुजी को गिरफ्तार कर लिया गया है। हमें हर स्थिति में शांति और संयम का परिचय देना चाहिए। (गुरुजी, इन्-टर्न्ड, बी काम एट ऑल कास्ट)

इसके बाद सरकार की ओर से संघ के विरूद्ध कुछ और कदम उठाये गये। दि.२ फरवरी को केन्द्र सरकार ने संघकार्य को अवैध घोषित करने वाला अध्यादेश जारी किया। केन्द्र सरकार के इस परिपत्रक में संघ पर हिंसात्मक कार्यवाही करने के आरोप लगाये गये और कहा गया कि- "हिंसा के इस उग्र आविष्कार का कड़ाई से नियंत्रण

करना सरकार अपना कर्तव्य मानती है। इस कर्तव्य की पूर्ति के प्रथम पग के रूप में संघ को अवैध घोषित किया जा रहा है।"

बाद में ४ फरवरी को सम्पूर्ण देश में संघ पर प्रतिबन्ध लगाये जाने की अधिकृत घोषणा भी कर दी गई। देश भर में संघ के कार्यकर्ताओं और स्वयंसेवकों की गिरफ्तारियों का दौर चला। तीस हजार से अधिक गिरफ्तारियां की गई। इस समय सारे देश का वातावरण संघ-विरोधी अफवाहों, अनर्गल आरोंपो तथा विकृत विष-वमन से भरा जा रहा था। संघ को खत्म करने की भाषा सर्वत्र छुटभैये नेता भी बोलने लगे थे। इस सीमा तक अफवाहें फैलायी गईं कि "गुरुजी का गांधी-हत्या में प्रत्यक्ष हाथ था। मुंबई में हुई शिनाख्त में मदनलाल ने गुरुजी को पहचान लिया!" कारागार में श्री गुरुजी को यह समाचार ज्ञात हो चुका था कि संघ पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। दि. ५ फरवरी को जब उनके वकील मित्र श्री दत्तोपंत देशपांडे उनसे मिलने गये तो श्री गुरुजी ने उनके पास संघ को विसर्जित किये जाने सम्बन्धी वक्तव्य लिखकर दिया और कहा कि वे इसे प्रकाशित करा दें। इस वक्तव्य में श्री गुरुजी ने लिखा था- "प्रारंभ से ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

की यह नीति रही है कि सरकारी नियमों का पालन करते हुए ही अपने कार्यक्रम किये जायें। इस समय सरकार ने उसे अवैध घोषित कर दिया है, अतः मैं यही उचित समझता हूँ कि प्रतिबंध हटाये जाने तक संघ को विसर्जित कर दूँ। तथपि सरकार ने संघ पर जो आरोप लगायें हैं उन्हें मैं पूर्णतया अस्वीकार करता हूँ।"

श्री देशपांडे ने संघ को विसर्जित किये जाने सम्बन्धी श्री गुरुजी के आदेश को सर्वत्र तार द्वारा सूचित करने का प्रयास किया। किंतु ये सारे तार नागपुर में ही रोक लिये गये। फिर भी अन्य मार्गों से यह आदेश सर्वत्र पहुँचाया गया और संघ विसर्जन का समाचार वृत्त-पत्रों में छप गया। इससे भी मजेदार बात यह है कि संघ का विसर्जन सम्बन्धी समाचार सर्वप्रथम ६ फरवरी को पाकिस्तानी अखबार 'डान' में ही प्रकाशित हुआ। बाद में भारत के अखबारों ने उसे प्रकाशित किया। इस समय कुछ लोगों ने समझा कि संघ समाप्त हो गया। संघ विरोधियों ने यह जानकर चैन की साँस ली होगी कि संघ का राष्ट्रव्यापी संगठन दफना दिया गया है। किन्तु श्री गुरुजी की गांधी हत्याकाण्ड में आरोपी के रूप में गिरफ्तारी एक सरासर मूर्खतापूर्ण कृत्य है इसका अनुभव सरकार को होते देर नहीं लगी। श्री गुरुजी से पूछताछ के लिए तत्कालीन डी.आई.जी. हीराचन्द जेल में पहुँचे और जेलर साहब से श्री गुरुजी को उपस्थित करने को कहा। हत्या और षड्यंत्र की धाराओं में गिरफ्तारी के कारण श्री गुरुजी काफी घबड़ा गये होंगे, ऐसा मानकर उन पर रौब जमाने के लिए विशालकाय डी.आई.जी.

महोदय टेबल पर जूतों सहित पैर रखकर बैठ गये और सिगरेट फूँकने लगे। श्री गुरुजी को जब लाया गया तब उनको देखकर डी.आई.जी. महोदय ने ताना कसा- "ओहो, आप ही गुरु गोलवलकर हैं! आप सरसंघचालक हैं! आप तो बड़े दुबले-पतले हैं।" श्री गुरुजी ने छूटते ही उत्तर दिया- "डाक्टर हेडगेवार ने सरसंघचालक का कोई आकार-प्रकार निश्चित नहीं किया था अन्यथा आपको या किसी भैंसे को सरसंघचालक के पद पर बिठा देते।"

श्री गुरुजी का निर्भयतापूर्ण हथौड़ामार उत्तर सुनकर अधिकारी महोदय एकदम चौंके और अपने दोनों पैर नीचे उतारकर जेलर साहब से कहने लगे- "अरे जेलर साहब, गुरुजी के लिए कुर्सी लगाइए।" श्री गुरुजी के बैठने के बाद डी.आई.जी. महोदय ने पूछा कि "गुरुजी, महात्मा गांधी की हत्या के बारे में आप क्या जानते हैं?" श्री गुरुजी ने कहा "मैं आपको क्यों बताऊँगा? जो कुछ बताना होगा अदालत में बताऊँगा और अदालत में पं. नेहरू और सरदार पटेल को भी हाजिर करवाऊँगा।" तब तक सरकार भी जान चुकी थी कि श्री गुरुजी को या संघ को इस कांड़ में घसीटने का प्रयास करने से अपने को अदालत के सामने मुँह की खानी पड़ेगी। इसलिए सरकार ने ७ फरवरी को ही उन पर से गांधी हत्या संबंधी अभियोग अकस्मात् वापस ले लिया और उन्हें हत्या का षड्यंत्रकारी न मानकर साधारण स्थानबद्ध बंदी ही माना जाने लगा। सुरक्षा-कानून के अंतर्गत ६ माह की नजरबंदी का नया आदेश सरकार ने जारी किया।

९.४ कारागार बना ध्यान मंदिर

कारागार में श्री गुरुजी की मनस्थिति अत्यंत शांत थी। स्थानबद्ध कैदी के नाते अपने अधिकार क्या हैं और कौन सी सुविधाएं माँगी जा सकती हैं, यह विचार उन्होंने कभी मन में नहीं लाया। प्रारंभ में कई दिनों तक उन्हें अखबार भी उपलब्ध नहीं कराये गये। आगे चलकर वह सुविधा दी गई। किन्तु कारागृह के वास्तव के दौरान अखबार पढ़ने के प्रति उनका कभी कोई लगाव नहीं रहा। उसी प्रकार प्रारंभ में कई दिनों तक जेल में केवल एक दरी, एक चादर और दो कम्बलों से ही उन्होंने अपना काम चलाया। कभी किसी वस्तु की मांग नहीं की। सहज मिलनेवाली वस्तुओं में ही उन्होंने संतोष माना। एक बार उनका चश्मा खराब हो गया तो उन्हें पढ़ने में कष्ट दोने लगा। फलस्वरूप उन्हें सिरदर्द की बिमारी लग गई। किन्तु उन्होंने जेल अधिकारियों से न तो चश्मा दुरूस्ती की मांग की और न ही सिरदर्द की शिकायत। कारागृह में अपने कमरे में और आसपास के परिसर में वे अत्यंत स्वच्छता बनाये रखते थे। कागज के टुकड़े को भी इधर-उधर नहीं गिरने देते थे। अपनी सेवा के लिए तैनात कैदी को भी

उन्होंने स्वच्छता का पाठ सिखाया। अपने से पहले वे उसी को नहलाते थे। अन्य कैदियों और पहरेदारों के साथ भी उनका व्यवहार आत्मीयता पूर्ण होता था। वे उनकी घरेलू बातों में रूची लेते थे। कारागृह के एकांतवास में उन्हें कोई कठिनाई अनुभव नहीं हुई। बल्कि इसके विपरीत पूर्वकाल में सारगाछी आश्रम के वास्तव्य में जिस तरह ध्यान-धारणा, उपासना, अध्यात्म ग्रंथों के पठन में वे अधिकांश समय बिताया करते थे वही अवसर ठीक ११ वर्षों बाद सरकार की कृपा से उन्हें प्राप्त हुआ था। कारागृह में उनकी दिनचर्या कुछ इस प्रकार होती- वे प्रातः ५ बजे जाग उठते, प्रातर्विधिसे निवृत्त हो कर कमरे में टहलते हुए गीता का पाठ करते और तत्पश्चात् वे कुछ घंटे संध्या-वंदन, ध्यान-धारणा आदि में बिताते और भोजन के समय तक ज्ञानेश्वरी, तुकाराम की गाथा, वाल्मीकि रामायण और तुलसीकृत रामचरितमानस, महाभारत, दास-बोध आदि ग्रंथों का पठन करते। स्नान से पूर्व वे नित्य योगासन करते और अपने सहयोगियों को भी यह सब सिखाते किन्तु उन्हें सच्चा आनंद तो ध्यान-धारणा में ही मिलता। उनकी ध्यान-धारणा के सम्बन्ध में वार्तालाप के दौरान श्री अप्पाजी जोशी ने बताया कि “श्री गुरुजी को ध्यानमग्न अवस्था में बैठे मैंने स्वयं अपनी आंखों से देखा है। उस समय उनकी मुद्रा अत्यंत प्रसन्न होती और ऐसा प्रतित होता मानों वे समाधि-सुख के सागर में डूब गये हों। उन्हें निश्चय ही ईश्वर का साक्षात्कार हुआ था। यह तो डाक्टर जी के सहवास का चमत्कार था जो उन्हें उस व्यक्तिगत सुख के आकर्षण से हटाकर राष्ट्र औप समाज की सेवा में जीवन समर्पित करने के लिए बाध्य कर सका। संघ का यह महद् भाग्य था।”

श्री गुरुजी ध्यान धरणा के समय जिस तरह पालथी मारकर एकाग्रचित्त से बैठा करते, उसी तरह वे पढ़ते समय भी बैठा करते । उन्हें लेटकर या चहल-कदमी करते हुए पढ़ते कभी किसी ने देखा नहीं। स्थानबद्धता के इस कालखण्ड में श्री गुरुजी ईश्वरचिंतन से शेष समय में मन ही मन विभिन्न संघ शाखाओं तथा वहाँ के स्वयंसेवकों का चिंतन-स्मरण करते। इस सम्बन्ध में श्री गुरुजी ने स्वयं अपने एक भाषण में इसका उल्लेख करते हुए बताया था कि - “मुझे चहारदीवारी में जाकर बैठना पड़ा। वहाँ मैं अकेला था। मेरे सामने प्रतिदिन २४ घण्टे होते थे। इनमें से कई घण्टे मैं एक-एक स्थान को याद करने, वहाँ के स्वयंसेवकों के चेहरों को अपनी आँखों के सम्मुख लाने तथा मानों बैठक में मैं उनसे परिचय कर रहा हूँ, इस प्रकार के काल्पनिक चित्र देखने में खो जाता था। इस प्रकार अव्यक्त का चिंतन क्लेशकारक होता है। मेरे अंतःकरण को भी क्लेश हुआ किन्तु भावनाओं के इस संघर्ष की उपेक्षा कर मैं इष्ट कर्तव्य को ही करता रहा।” संघकार्य और स्वयंसेवकों के साथ तन्मयता का यह अद्-भुत उदाहरण है।

कारावास में भी श्री गुरुजी का आत्मविश्वास अदम्य रहा। दि. १५ फरवरी के बाद श्री अप्पाजी जोशी, बाबासाहेब घटाटे, बच्छराज़ व्यास, बापू साहब सोहनी आदि प्रमुख कार्यकर्ताओं को भी उनके साथ लाकर रखा गया। एक बार किसी ने उनसे पूछा- "संघ का कार्य तो हम लोग प्रामाणिकता से और विशुद्ध भावना से करते हैं, फिर भी हम पर यह संकट क्यों आया?"

इस पर श्री गुरुजी का उत्तर था- "संघ की शक्ति के कारण ही यह संकट आया है और शक्ति के प्रभाव से ही वह दूर हो जायेगा। संकट की इस कसौटी पर यदि संघ खरा उतरता है तो उसकी अधिक उन्नति होगी।"

उनके इस आत्मविश्वास का दर्शन एक और उत्तर से मिलता है। मध्य प्रदेश के कारागृह में स्थानबद्ध अनेक स्वयंसेवकों ने अपनी गिरफ्तारी के विरूद्ध उच्च न्यायालय में 'बंदी प्रत्याक्षीकरण' याचिका दायर की। गिरफ्तारी के जो कारण सरकार की ओर से प्रस्तुत किये गये वे निराधार होने के कारण उच्च न्यायालयों के न्यायाधिशों ने उनकी धज्जियां उड़ाई। स्वयंसेवकों की रिहाई का क्रम चल पड़ा। तब श्री गुरुजी के साथियों ने उनसे भी आग्रह किया कि वे 'बंदी प्रत्याक्षीकरण' याचिका द्वारा अपनी रिहाई करवा लें परंतु श्री गुरुजी ने स्पष्ट शब्दों में ऐसा करने से इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा, "जिन्होंने मुझे गिरफ्तार किया है वे ही जब उन्हें उचित प्रतीत होगा स्वयं मुझे रिहा करेंगे। अपनी रीहाई के लिये मैं स्वयं कोई प्रयत्न नहीं करूँगा।"

९.५ 'विस्तृत कारागार'

६ अगस्त १९४८ को उनकी गिरफ्तारी की अवधि समाप्त हो रही थी, परंतु फिर भी इसमें संदेह था कि सरकार उनको रिहा करेगी क्योंकि सरकार यदि चाहे तो ६ मास की अवधि और बढ़ा सकती थी। किंतु सरकार की ओर से ऐसा कोई प्रयास नहीं हुआ और आखिर श्री गुरुजी निर्धारित समय पर रिहा कर दिये गये और वे पुनः नागपुर स्थित अपने घर लौटे। यह समाचार पाकर सर्वत्र स्वयंसेवकों और संघ के शुभचिंतकों में आनंद छा गया। अब यह आशा प्रकट होने लगी कि संघ पर प्रतिबंध हटावाने का कोई मार्ग निकाला जायेगा। किन्तु यह आनंद और आशा अल्पकालिक सिद्ध हुई क्योंकि श्री गुरुजी की रिहाई के तुरंत बाद ही समाचार मिला कि सरकार ने उनकी गतिविधि पर कड़े बंधन लगा दिये हैं जो इस प्रकार थे-

(१) वे नागपुर नगरपालिका की सीमा के भीतर रहें तथा जिलाधिकारी की अनुमति के बिना बाहर न जायें।

(२) किसी सभा में भाषण न दें।

(3) किसी भी दैनिक, साप्ताहिक या मासिक पत्र में जिलाधिकारी की अनुमति के बिना प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कुछ भी न लिखें।

(४) प्रान्तीय या केन्द्रीय सरकार के प्रति असंतोष उत्पन्न करनेवाली कोई कार्रवाई प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में न करें तथा ऐसे व्यक्तियों से सम्बन्ध भी न रखें। विभिन्न वर्गों में द्वेष या शत्रुता उत्पन्न करके शांति भंग न करें।

सरकार के उक्त आदेश पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए श्री गुरुजी ने केवल इतना कहा कि "मेरी रिहाई से यही हो पाया है कि अब मैं बड़े कारागृह में आ गया हूँ। मेरे लिए कारागृह की दीवारें अधिक विस्तारित कर दी गई हैं (only my prison walls have been extended)।" सरकार द्वारा लगाई पाबंदियों में चौथी पाबंदी को पढ़कर श्री गुरुजी मुस्कराए क्योंकि उसमें सरकार के प्रति असंतोष उत्पन्न करनेवाले व्यक्तियों से सम्बन्ध न रखने की बात कही गयी थी। इस शर्त में छिपी हास्यास्पदता की ओर ध्यान खींचने के लिये उन्होंने एक पत्र लिखकर सरकार से मांग की कि "सरकार के प्रति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ऐसी कार्रवाईयाँ करनेवालों की सूची मेरे पास भेजी जाए ताकि उनके साथ सम्बन्ध न रखने में सुविधा हो।"

इन शर्तों में संभवतः भूल से ही 'किसी को पत्र भी न लिखें' की शर्त लिखना रह गया था। उसी का लाभ उठाकर श्री गुरुजी ने ११ अगस्त को प्रधानमंत्री पं. नेहरू तथा सरदार वल्लभभाई पटेल को पत्र लिखकर संघ पर लगाये अकारण प्रतिबंध पर अपनी चिन्ता व्यक्त की। श्री गुरुजी ने पं. नेहरू के नाम लिखे अपने पत्र में कहा- "यह सत्य है कि मैं उस समय यह नहीं समझ पाया कि मैं तथा मेरे असंख्य मित्र गिरफ्तार तथा नजरबंद क्यों किये गये। मैं बाद में की गई उस कार्यवाही को भी नहीं समझ पाया जो उस संगठन के सम्बन्ध में की गई जिसका मैं प्रतिनिधित्व करता हूँ। मैं कई बार प्रकट किये गये इस तर्क से अपने को समझाने का प्रयत्न करता हूँ कि अत्यन्त असाधारण परिस्थिति के फलस्वरूप वह असंयमित कार्यवाही की गई। मैं इस बात पर विश्वास नहीं करना चाहता कि उच्च तथा उत्तरदायी पदों पर स्थित व्यक्ति उत्तेजित हो सकते हैं, जल्दबाजी कर सकते हैं और मानसिक सन्तुलन खो सकते हैं। किंतु यही निष्कर्ष मुझे बाध्य हो कर स्वीकार करना पड़ा है क्योंकि छः महिने की नजरबन्दी की अवधि के बाद जब बहुत से ऐसे प्रमाण प्रकाश में आ चुके हैं जो मुझे या मेरे कार्य को उन सारे गम्भीर आरोपों से दोषमुक्त करते हैं जो हमारे मत्थे मढ़े

गये थे अब मेरे विरूद्ध एक आदेश जारी किया गया जिसके द्वारा मुझे नागपुर में ही रहने के लिए बाध्य कर दिया गया।"

मैं सर्वशक्तिमान् परमात्मा का कृतज्ञ हूँ कि उसने मेरे मन को कलुषित होने नहीं दिया और मैं अपने स्नेह, सौहार्द तथा आत्मीयता की भावना से परिपूर्ण हूँ। मुझे आशा और विश्वास है कि मेरे पुराने सहयोगी कार्यकर्ताओं की भी यही भावनाएँ होंगी। मैं स्नेह के इस संदेश को सभी तक पहुँचा देता और सभी से यह कहता कि वे कष्ट और व्यथा की भावना से हृदय को मलिन न होने दें। किंतु मेरे ऊपर लगाये गये इन प्रतिबन्धों ने मुझे इस आवश्यक कर्तव्यपालन से रोक दिया है। इन अन्याय-पूर्ण प्रतिबंधों में डाले जाने के स्थान पर यदि मुझे अपनी स्थिति स्पष्ट करने और इस संकट के समय सरकार के साथ सहयोग और प्रेम की मेरी भावना का आपको विश्वास दिलाने का अवसर दिया गया होता तो मैं उसे उचित समझता। अपने-अपने रास्ते पर चलते हुए भी हम सब भारत माता की सेवा में एकरूप हो सकते हैं।

"इस अवधि में हम सदा के लिए हार्दिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की आशा करें और उसके बीच कुछ महीनों के वे भयंकर दुःस्वप्न न आने दें जो हमारे पारस्पारिक प्रेम में कटुता उत्पन्न कर सकें।"

९.६ न्याय की माँग

सरदार पटेल के नाम लिखे पत्र में भी इसी प्रकार स्नेहमय सहयोग की भावना व्यक्त की गई थी। किन्तु सितम्बर की २४ तारीख तक न तो नेहरू जी से न सरदार पटेल की ओर से ही कोई पत्रोत्तर प्राप्त हुआ। इसलिये दि. २४ सितम्बर को श्री गुरुजी ने पुनः दोनों के नाम पत्र भेजे। इस कालावधि में भारत सरकार ने हैदराबाद के भारतीय संघ में विलय का प्रश्न सफलता से हल कर लिया था। अपने पत्र के प्रारंभ में ही इस घटना का गौरवपूर्ण उल्लेख कर श्री गुरुजी ने पं. नेहरू से न्याय की सीधी-सीधी माँग की थी। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने पत्र में लिखा- "संघ पर प्रतिबंध लगाए लगभग आठ मास व्यतीत हो चुके हैं तथा इस विषय पर सब प्रकार की छानबीन की जा चुकी है। मुझे विश्वास है कि अब आपको भलीभाँति अनुभव हो गया होगा कि संघ पर लगाये गये आरोप मिथ्या तथा निराधार हैं। अतएव यह विषय तो अब केवल न्याय का ही प्रश्न है और अपनी सरकार से न्याय की आशा करना हमारा अधिकार है।" इसी पत्र में कम्युनिस्टों की कुटिल एवं हिंसक गतिविधियों की चर्चा करते हुए श्री गुरुजी ने लिखा- "संघ विसर्जित किये जाने के कारण इस बीच के समय में बुद्धिमान

नवयुवक कम्युनिज्म के जाल में फँसते जा रहे हैं। ब्रह्मा, हिन्द चीन, जावा तथा पड़ोस के दूसरे राज्यों में भी कुछ आतंकपूर्ण घटनाएँ हुई हैं, उनसे इस आगामी विभीषिका की कल्पना की जा सकती है। इस संकट का सुदृढ़ प्रतिरोधक संघ आज विद्यमान नहीं है। कम्युनिस्टों ने संघ को अपने पथ का सबसे बड़ा रोड़ा समझा और इसीलिए वे सदा उसके विरूद्ध विषवमन तथा कुत्सित प्रचार करते रहे। आशा है आप शान्तचित्त से इस समस्या पर विचार करेंगे और ऐसा वायुमंडल निर्माण करने में सहायक होंगे जिसमें संघ अपने सांस्कृतिक आधार पर सम्मानपूर्वक कार्य करता हुआ इस नई विभीषिका का मुँह तोड़ने में सरकार का हाथ बँटा सके। संघ पर लगाये गये आरोपों को असंदिग्ध रूप से वापिस लेने से ही वैसा वातावरण निर्माण हो सकता है।"

सरदार पटेल के नाम लिखे अपने पत्र में भी श्री गुरुजी ने कम्युनिस्ट संकट का उल्लेख करते हुए पत्र के अंत में लिखा कि "केवल परिस्थिति की पुकार सुनते हुए आप निर्णय लें। मैं और मेरे सब साथी परिस्थिति को काबू में लाकर अपने देश को अजेय बनाने के लिए आपसे सहकार्य करने के लिए पहले से ही प्रयत्नशील हैं।"

इसके बाद पं. नेहरू और सरदार पटेल दोनों के पत्र आये। सरदार पटेल का पत्र ११ अगस्त के पत्र के उत्तर में था तो पं. नेहरू का पत्र २४ सितम्बर के पत्र के जवाब के रूप में था। सरदार पटेल ने अपने पत्र में लिखा- "राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने संकट काल में हिन्दू समाज की सेवा की इसमें कोई संदेह नहीं। ऐसे क्षेत्रों में, जहाँ उनकी सहायता की आवश्यकता थी, संघ के नवयुवकों ने स्त्रियों तथा बच्चों की रक्षा की तथा उनके लिये काफी काम किया। किन्तु मुझे विश्वास है कि संघ के लोग अपने देशभक्तिपूर्ण कार्यों को कांग्रेस के साथ मिलकर ही कर सकते हैं, अलग रहकर या विरोध करते हुए नहीं। जहाँ तक आप पर लगे प्रतिबंधों का सवाल है मैं मध्य प्रान्त की सरकार से पूँछ-ताँछ कर रहा हूँ।"

यह जानना रोचक होगा कि हैदराबाद में की गई कार्यवाही के लिए श्री गुरुजी द्वारा प्रेषित अभिनन्दन के लिए उन्हें धन्यवाद देते हुए सरदार पटेल ने आगे क्या कहा? उन्होंने कहा कि "हमारा असली कार्य तो अब प्रारंभ हुआ है । हमें शताब्दियों की हानि की भरपाई करना है। हमें कोई संदेह नहीं कि इस कार्यवाही के समान ही उस कार्य में भी आप जैसे मित्रों की सदिच्छा एवं सद्-भावना हमें प्राप्त होती रहेगी।"

नेहरु जी ने अपने पत्र में लिखा कि- "संघ साम्प्रदायिक है। संघ के नेता जो कुछ बोलते हैं, वह कृति में दिखाई नहीं देता।" इस पत्र में संघ पर लगाये गये आरोपों के

निराधार और झुठे सिद्ध होने तथा संघ पर से प्रतिबंध हटाये जाने संबंधी श्री गुरुजी की मांग का कोई उल्लेख नहीं था।

देश के अनेक प्रमुख तथा विचारशील नागरिक भी यह अनुभव करने लगे थे कि संघ के साथ अन्याय हुआ है। संघ-विरोधी तूफान थम चुका था और संघ के निर्दोष होने की बात तथा संघ की देशभक्ति और त्याग भावना की प्रशंसा भी खुलकर करने के लिये लोग सामने आने लगे थे। देशहित का विचार करने वाले निष्पक्ष लोग सरकार को संघ पर से प्रतिबंध हटाने की सलाह देने लगे। संघ पर लगी पाबंदी हटाने की मांग को लेकर राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के नाम लाखों पत्र भेजे गये। कारण चाहे जो हो, १३ अक्टूबर को सरकार ने श्री गुरुजी की गतिविधियों पर लगाई गई सारी पाबंदियाँ हटा लीं। श्री गुरुजी नागपुर से बाहर जा सकते थे। उन्होंने तय किया कि राजधानी दिल्ली में जाकर सरकार के प्रमुखों के साथ प्रत्यक्ष वार्तालाप कर संघ पर हुए अन्याय का निराकरण कराया जाए। अतः वे दि. १७ अक्टूबर को दिल्ली पहुँचे। दिल्ली आगमन पर हजारों नागरिकों ने उनका भव्य स्वागत किया। श्री गुरुजी दिल्ली आ रहे हैं, यह वार्ता किसी भी अखबार में प्रकाशित न होने के बावजूद दिल्ली रेल्वे स्टेशन पर उनका उत्स्फूर्त एवं भव्य स्वागत हुआ। यह वास्तव में इसी बात का द्योतक था कि अपप्रचार और निंदनीय आरोपों के बावजूद श्री गुरुजी और संघ के प्रति लोगों के प्रेम और श्रद्धाभाव में कोई कमी नहीं आयी थी।

स्वाभाविकतया अब सबकी नजरें दिल्ली की घटनाओं की ओर लगीं। दिल्ली के वास्तव्य में पहले ही दिन १७ अक्तूबर को श्री गुरुजी ने गृहमंत्री सरदार पटेल से भेंट की। यह चर्चा अपूर्ण रहने के कारण २३ अक्तूबर को दुबारा भेंट की गई। इन दोनों मुलाकातों में सरदार पटेल का यही आग्रह रहा कि "संघ कांग्रेस में विलिन हो जाए।" श्री गुरुजी ने स्पष्ट शब्दों में इसे अस्वीकार कर दिया। तब श्री पटेल ने प्रान्तीय सरकारों के साथ विचार-विनिमय करने की आवश्यकता बताते हुए कुछ और समय माँगा और अपने मुंबई प्रवास पर चले गये। श्री गुरुजी ने नेहरूजी व सरदार पटेल के साथ अपने वार्तालाप व पत्रव्यवहार में यह भूमिका ली कि चूँकि केन्द्र सरकार ने ही संघ पर प्रतिबंध लगाया है और चूँकि संघ पर लगाये गये सारे आरोप झूठे और निराधार सिद्ध हुए हैं, अतः यह केन्द्र सरकार का दायित्व है कि वह या तो संघ पर से प्रतिबंध हटाए या न्यायालय में आरोप सिद्ध करे। दोनों पक्ष अपनी-अपनी भूमिका पर अड़े रहे और मूल प्रश्न बिना हल निकले अधर में लटका पड़ा रहा। न्यायप्राप्ति के लिये श्री गुरुजी दिल्ली में ही जमकर बैठे। उनके इस दिल्ली निवास में दिल्ली, पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान आदि से भारी संख्या में स्वयंसेवक आकर गुरुजी से

मिलने लगे। संघ के बाहर के व्यक्ति भी आकर गुरुजी से भेंट करने लगे। पत्रकार भी श्री गुरुजी से मिलकर यह प्रश्न पूछते कि संघ अब कौन सा कदम उठने जा रहा है?

इस बीच ३० अक्तुबर को सरदार पटेल ने अचानक श्री गुरुजी के पास मौखिक संदेश भिजवाकर सुचित किया कि "इससे आगे विचार विनिमय संभव नहीं, अतः आप नागपुर वापस चले जायें।" इस संदेश का अर्थ समझने में श्री गुरुजी को देर नहीं लगी। सरकार संघ पर पाबंदी का प्रश्न अधर में लटकाये रखने की नीति अपनाए हुई थी। अतः अब सार्वजनिक तौर पर कुछ हलचलें प्रारंभ करने की आवश्यकता निर्माण हुई। श्री गुरुजी दिल्ली छोड़ने के लिए कतई तैयार नहीं थे। उन्होंने २ नवम्बर को दिल्ली में ही एक पत्रकार-परिषद् आमंत्रित की और संघ पर लगाये आरोपों का निराकरण करने वाले दो विस्तृत पत्रक प्रकाशनार्थ दिये। संघ को राजनीतिक दल में रूपांतरित करने का प्रश्न उन्होंने स्पष्टतः ठुकरा दिया। पवित्र सांस्कृतिक क्षेत्र में कार्यरत संगठनों को बिना किसी बाधा के काम करने की सुविधा मिलनी चाहिये, यह आग्रह भी उन्होंने किया। श्री गुरुजी ने अभी तक न्याय-प्राप्ति की आशा नहीं छोड़ी थी और इसलिये उन्होंने दिल्ली छोड़ने की सरकारी सलाह भी ठुकरा दी थी।

दि. ३ नवम्बर से १३ नवम्बर तक पूरे दस दिन दिल्ली में ही रहकर श्री गुरुजी ने सरकार की न्यायबुद्धि जागृत करने का भरसक प्रयास किया। प्रधानमंत्री पं. नेहरू और गृहमंत्री सरदार पटेल दिल्ली लौट आये। श्री गुरुजी ने उनके साथ पत्रव्यवहार जारी रखा। दि. ३.११.४८ को पं. नेहरू को लिखे पत्र में सरकार को उपलब्ध संघ-विरोधी तथाकथित प्रमाणों को चुनौती देते हुए उनसे भेंट के लिये समय माँगा। इन पत्रों में श्री गुरुजी के शब्दों में अब कुछ अधिक तीखापन नजर आने लगा था। बाद में दिनांक ५ नवम्बर को श्री गुरुजी ने सरदार पटेल के नाम भी एक विस्तृत पत्र भेजा। इस पत्र में संघ पर लगी पाबंदी उठाए जाने के सम्बंध में सरकार द्वारा टालमटोल का रवैया अपनाए जाने तथा संघ स्वयंसेवकों के धीरोदात्त संयम का उल्लेख तो है ही किन्तु सरकार की ओर से की गई अपेक्षा-भंग की गहरी वेदना भी झलकती है। इस बात का उल्लेख करना इसलिए महत्वपूर्ण प्रतीत होता है कि खंडित मातृभूमि को स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद देश को मजबूत नींव पर खड़ा करने के लिये देशप्रेम की खातिर श्री गुरुजी ने अपने अंतःकरण में कितनी विशालता धारण की थी, इस पर उत्कृष्ट प्रकाश पड़ता है। श्री गुरुजी के शब्द ही उनके अंतःकरण की विशालता का बोध कराते हैं। उनके शब्द हैं- "देश की नाजुक अवस्था को देखकर और उज्ज्वल भविष्य के निर्माण के लिए विघटन नष्ट करने की आवश्यकता को दृष्टि में रखकर मैंने शांतता से चलने की सब स्वयंसेवक बन्धुओं को सूचना दी और शान्तिमय मार्ग से समझौता

हो इस निमित्त प्रयत्न किया। राजनैतिक क्षेत्र में कार्यक्षम और वर्तमान काल में शासनारूढ़ संस्था कांग्रेस और सांस्कृतिक क्षेत्र में असामान्य बन्धुभाव, दृढ़ राष्ट्रप्रेम तथा स्वार्थशून्यता को निर्माण करने में सफलता पाने वाला राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इनके बीच में वैमनस्य न हो, वे परस्पर पूरक हों और इनका कहीं पवित्र मिलन हो इसलिए मैंने अपनी पूरी शक्ति से प्रयत्न किया। सहकार्य का हाथ आगे बढ़ाया। मुझे अत्यंत दुःख से कहना पड़ता है कि मेरी सद्-भावनाओंकी आपकी ओर से उपेक्षा की गई। दोनों प्रवाहों के संयोग की मेरी ईचछा अतृप्त ही रही है। हो सकता है कि परम करूणामय परमात्मा मेरे लिए किसी अन्य मार्ग की ओर संकेत कर रहा हो और संभवता उसी में इस देवभूमि भारतवर्ष के भाग्योदय के बीज हों।"

आज जब पिछे मुड़कर देखते हैं तो ऐसा लगता है कि काश! दो प्रवाहों का यह संगम, यह मिलन उस समय हो पाता तो? श्री गुरुजी की अपेक्षा सफल हो पाती तो? किन्तु कल्पना करने से क्या होगा? श्री गुरुजी द्वारा 'वयं पंचाधिकं शतम्' की भावना से आत्मीयतापूर्ण सहयोग का आगे बढ़ाया हुआ हाथ नेहरू-पटेल जैसे दिग्गजों के नेतृत्ववाली सरकार ने अविचारी वृत्ति से ठुकरा दिया और श्री गुरुजी को दूसरा पृथक् मार्ग अपनाने के लिये विवश कर दिया। इस अलग मार्ग को अपनाने से पूर्व एक बार पुनः सत्तारूढ़ उच्च पदस्थ नेताओं से खुले दिल से वार्तालाप करने की इच्छा भी श्री गुरुजी ने व्यक्त की। किन्तु पं. नेहरू और पटेल दोनों ही इसके लिये तैयार नहीं हुए। दि. ८ व दि. १२ को श्री गुरुजी ने पुनः पं. नेहरू के नाम दो पत्र और दि. १३ को सरदार पटेल के नाम एक पत्र लिखा। किन्तु सरकार की ओर से बार-बार यही रट लगाई जाती रही कि 'पाबंदी हटाना संभव नहीं है। स्वयंसेवकों का व्यवहार नेताओं की नीति से मेल नहीं खाता। अतः भेंटवार्ता से कोई लाभ नहीं होगा। श्री गुरुजी को तत्काल नागपुर वापस लौट जाना चाहिये।' दि. १२ को सरकार की ओर से प्रसारित एक प्रेस नोट में तो यहां तक धमकी दी गई कि अगर श्री गुरुजी नागपुर वापस नहीं जायेंगे तो उन्हें गिरफ्तार कर लिया जायेगा।

९.७ सरकार की अत्याचारी नीति

श्री गुरुजी भी यह जान चुके थे कि सरकार की ओर से सारे दरवाजे प्रायः बंद हो चुके हैं और अगर वे दिल्ली न छोड़ने के अपने निश्चय पर डटे रहे तो उनकी गिरफ्तारी किसी भी समय हो सकती है। इस बात में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रही थी कि वार्तालाप से हल निकालने और न्याय प्राप्त करने का पर्व अब समाप्त हो चुका है। अतः शांतिपूर्ण मार्ग से सरकारी प्रतिबंध के आदेश को ठुकराकर पुनः कार्यारंभ करना

होगा। इसकी कल्पना भी श्री गुरुजी ने कार्यकर्ताओं को दे दी। इतना ही नहीं तो स्वयंसेवकों के नाम एक खुला पत्र भी उन्होंने लिखकर तैयार रखा। साथ ही सर्वत्र प्रसारित करने के लिये एक संदेश भी अपने ही हाथों लिखकर रखा। दि. १३ को ही रात्रि में पुलिस की गाड़ी लाला हंसराज गुप्त के निवास स्थान पर पहुँची और श्री गुरुजी को गिरफ्तार कर ले गई। आश्चर्य की बात तो यह है कि स्वतंत्रता आंदोलन के समय जिस कानून को 'काला-कानून' कहा जाता था, उसी १८१८ के 'बंगाल स्टेट प्रिजनर्स एक्ट' का सहारा स्वतंत्र भारत की केन्द्र में स्थित कांग्रेस सरकार ने मातृभूमि के एक महान् सेवक को गिरफ्तार करने के लिए लिया! श्री गुरुजी को विमान से नागपुर लाकर नागपुर के कारागृह में रखा गया।

सरकार की इस कृति के कारण परस्पर वार्तालाप से हल निकालने का मार्ग बंद हो गया और संघ की ओर से न्याय प्राप्ति के लिये प्रतिबंध-विरोधी सत्याग्रह का राष्ट्रव्यापी आंदोलन अपरिहार्य हो गया।

*

१० सत्याग्रह-पर्व की सार्थक फलश्रुति

दिल्ली-वार्ताएँ विफल हो गई और न्याय की माँग जानबूझकर उपेक्षित की गई और संघ के विरूद्ध अपप्रचार करने का क्रम जारी रहा। तब संघ के पास सत्य का आग्रह लेकर आगे बढ़ने के सिवा और कोई चारा नहीं था। श्री गुरुजी ने स्वयंसेवकों के नाम लिखे एक विस्तृत पत्र में दिल्ली-वार्ताओं की समूची पृष्ठभूमि स्पष्ट की। इस पत्र में भी संस्थागत अहंकार अथवा व्यक्तिगत प्रतिष्ठा के लिए कुछ करने का भाव जरा भी प्रकट नहीं हुआ, बल्कि हम जो भी करने जा रहे है वह विशुद्ध देशप्रेम की भावना से देश-हित में ही है यही विचार व्यक्त किये हैं। उस पत्र में उन्होंने कहा, "निरंकुश उत्पीड़न के आगे घुटने टेकना स्वतन्त्र भारत के नागरिकों के सम्मान के प्रति अपमान है और हमारे सभ्य स्वतन्त्र राज्य के आदर को एक धक्का है। देशप्रेमी नागरिकों के रूप में यह हमारा पवित्र कर्तव्य है कि ऐसे निरंकुश उत्पीड़न के आगे झुकने से अस्वीकार कर दें। इसलिए हमें अपने कर्तव्य का पालन करना है, खड़े रहना है और राज्य और नागरिकों के अधिकारों और सम्मान की पुष्टि करना है।" इस तरह सत्याग्रह अभियान सम्बन्धी निर्णय की पूर्व सूचना देते हुए स्वयंसेवकों को इस अभियान के समय शांति बनाये रखने और किसी भी स्थिति में मन में कटुता का भाव न आने पाये, इस दृष्टि से सतर्क रहने का आवाहन भी श्री गुरुजी ने किया। इस दृष्टि के साथ आंदोलन हेतु जो 'संदेश' श्री गुरुजी ने प्रसारित किया वह तो 'समर का शंखनाद'- 'क्लेरियन काल' नाम से इतिहास में अंकित हो चुका है। उस संदेश का अंतिम अंश हम यहाँ उद्-घृत कर रहे हैं ताकि पूरे संदेश की कल्पना आ सके। वह स्फूर्तिप्रद, ओजस्वी और सभी में विश्वास जागृत करनेवाला अंश इस प्रकार है:-

१०.१ 'अधर्म से धर्म' का संघर्ष

"अपना कार्य श्रेष्ठ है, महान् है, ईश्वरीय है। इसकी पूर्ति में मानवता का उच्चतम आविष्कार है, भगवान का साक्षात्कार है।"

"अतः उठो और दस मास से स्थगित अपने कार्य का पुनरारम्भ करो। दस मास की अकर्मण्यता की क्षति-पूर्ति करो। सत्य हमारे साथ है। अन्यायों को सहते रहना उसका भागी बनकर पाप करना है। अन्याय का परिमार्जन हम करें। अंतःकरण में न्यायपूर्ण सत्य के अधिष्ठाता श्री परमात्मा को दृढ़ विश्वास से धारण कर समस्त प्राणशक्ति से

भारत माता का ध्यान कर, उसकी संतानों के प्रेम से प्रेरित होकर उठो, कार्य उठाओ, बढ़ाओ और यशः प्राप्ति तक कहीं भी न रूकते हुए आगे बढ़ते चलो।"

"यह धर्म का अधर्म से, न्याय का अन्याय से, विशालता का क्षुद्रता से तथा स्नेह का दुष्टता से सामना है। विजय निश्चित है क्योंकि धर्म के साथ श्री भगवान और उनके साथ विजय रहती है।"

"तो फिर हृदयाकाश से जगदाकाश तक भारत की जयध्वनि ललकार कर उठो और कार्य पूर्ण करके ही रहो।" "भारत माता की जय।"

संघ की शाखाएं पुनः आरंभ करने के लिये देशव्यापी आंदोलन छेड़ा जाने-वाला है, इसकी भनक सरकार को मिल चुकी थी। इस चर्चा से कांग्रेस के उच्च पदस्थ नेता मानो खिसिया गये। सरदार पटेल ने ५ दिसम्बर को ग्वालियर की एक सभा में कहा, "कुछ लोग बताते हैं कि संघ सत्याग्रह करने जा रहा है। किन्तु वे लोग कभी सत्याग्रह नहीं कर सकेंगे। उनका सत्याग्रह किसी भी दशा में सफल नहीं हो सकता क्योंकि इनके मन विकारों से ग्रस्त रहते हैं। हमने उन्हें कांग्रेस में सम्मिलित हो जाने की सलाह देकर उनका हृदय-परिवर्तन करने का प्रयास किया, किन्तु उन्होंने शक्ति आजमाने का मार्ग अपनाया हैं। मैं उन्हें चेतावनी देता हूँ कि इस ढ़ंग की चुनौतियों का सामना करने के लिये हम तैयार हैं।"

सरकार की ओर से ऐसी धमकियां देना जारी था कि ९ दिसम्बर को सरकार्यवाह श्री भैयाजी दाणी के नेतृत्व में देशभर में शाखाएँ प्रारंभ कर सत्याग्रह आंदोलन प्रारंभ हो गया। प्रतिबंध संघ शाखा लगाने पर था। अतः प्रतिबंध का आदेश तोड़कर सर्वत्र संघ शाखाएँ शुरू करना- यही सत्याग्रह आन्दोलन का स्वरूप था। 'भारत माता की जय' तथा 'संघ अमर रहे' के नारे लगाते हुए स्वयंसेवकों के जत्थे स्थान-स्थान पर शाखा लगाने के लिए आगे बढ़ते थे और पुलिस उन्हें गिरफ्तार कर लेती। पुलिस का हस्तक्षेप होने तक शाखा के नित्यकार्यक्रम चालू रहते। गिरफ्तारी के समय प्रतिकार नहीं करना और शांति बनाए रखने के अनुशासन का कड़ई से पालन किया जाता। सत्याग्रह देखने के लिये असंख्य जनता उमड़ने लगी। गिरफ्तार स्वयंसेवकों को पुलिस-गाड़ी में बिठाकर कारागृह रवाना कर दिया जाया। इस सत्याघ3ह के कारण संघ पर लगी पाबन्दी देशभर में जनचर्चा का विषय बन गई। हजारों दीवारें "संघ पर आरोप सिद्ध करो या प्रतिबंध हटाओ" की माँग से रंग गयीं। उसी प्रकार संघ पर

लगाये गये आरोपों का खंडन करते हुए उसकी राष्ट्रीय भूमिका को प्रकट करनेवाले पत्रक स्थान-स्थान पर लाखों की संख्या में वितरित किये जाने लगे। सत्याग्रह आंदोलन के प्रति स्वयंसेवकों में विलक्षण उत्साह था। सत्याग्रह में सहभागी बनने के लिये मार्ग में आनेवाली सभी बाधाओं को दूर कर हजारों की संख्या में स्वयंसेवक सत्याग्रह में भाग लेने लगे। सैकड़ों ने अपनी नौकरियों पर लात मार दी, असंख्य छात्रों ने अध्ययन स्थगित कर दिया। किसी ने भी अपनी शारिरिक- पारिवारिक और अन्य प्रकार के कष्टों की चिंता नहीं की। ९ दिसम्बर से प्रारंभ इस सत्याग्रह के थमने के कोई चिन्ह दिखाई नहीं दे रहे थे। संघ के प्रति जनता का समर्थन और सहानुभूति दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी।

१०.२ सरकार की आँखें खुलने लगीं

सरकार समझ बैठी थी कि अनुभवहीन युवकों का यह आंदोलन कुछ दिनों में अपने आप समाप्त हो जायेगा। सरकार को यह अपेक्षा भी नहीं थी कि सत्याग्रहियों की संख्या २-४ हजार तक भी पहुंच पायेगी। संघ के इस सत्याग्रह की ओर स्वयं प्रधानमंत्री पं. नेहरू किस दृष्टि से देख रहे थे, यह उनके एक भाषण में व्यक्त किये गये उद्-गारों से स्पष्ट होता है। जयपुर में कांग्रेसियों की एक सभा में उन्होंने कहा कि- "यह संघ के बच्चों का दुराग्रह हैं। सरकार इस आंदोलन को कुचलने के लिये अपनी सारी शक्ति लगा देगी। संघ को फिर से सिर नहीं उठाने देंगे।" पं. नेहरू के इस कथन में मात्र कुछ सच्चाई थी। यह सत्याग्रह 'संघ के बच्चों का है!' क्योंकि सत्याग्रह का सूत्र संचालन करने वाले २० से २५ वर्ष की आयु वाले तरूण ही थे। किसी नेता या किसी सुप्रतिष्ठित राजनीतिक दल का आशिर्वाद भी उसे प्राप्त नहीं था। स्वयं श्री गुरुजी भी इस समय तुलनात्मक दृष्टि से अन्य नेताओं की अपेक्षा छोटी उम्र के ही थे। किन्तु 'इन बच्चों ने' जिस कल्पना-शक्ति, अनुशासन-प्रियता और त्याग बुद्धि व देश भक्ति का परिचय दिया वह असामान्य ही था। सरकार ने बल प्रयोग से सत्याग्रह आंदोलन को कुचलने का भी प्रयास किया। पंजाब और मद्रास राज्यों में तो सत्याग्रहियों के साथ बर्बरता बरती गई और निर्घृण अत्याचार किये गये। सरकारी बर्बरता के कुछ नमूने इस प्रकार थे। पंजाब में जहाँ सत्याग्रहियों को कड़ाके की सर्दी में तालाबों, नदियों व नहरों में फेंका गया वहीं मद्रास, हावड़ा, आगरा, जोधपुर, बरेली, बक्सर, ग्वालियर आदि स्थानों पर बर्बर लाठीचार्ज कर अनेकों के सिर फोड़े गये! और यह भी खुली जगह में नहीं, बल्कि कारागृह की बंद कोठरियों में!! सरकार ने यह कल्पना भी नहीं की थी कि सतहत्तर हजार से अधिक सत्याग्रहियों को जेलों में बंद करना पड़ेगा! इतनी प्रचण्ड संख्या में सत्याग्रहियों की जेलों में व्यवस्था कर पाना भी

उसके लिये असंभव सा हो गया। अतः कई स्थानों पर तो सत्याग्रही स्वयंसेवकों को पुलिस गाड़ी में बिठाकर रात्रि के घने अंधकार में शहर से ४०-५० मील दूर बीहड़ जंगलों में ले जाकर ठिठुरती ठंड में छोड़ दिया जाता था। अनेक प्रकार के कष्ट और अत्याचार सहन करते हुए भी स्वयंसेवक कहीं भी उत्तेजित या प्रक्षुब्ध नहीं हुए, बल्कि शांति के साथ सब कुछ सहते रहे। कुछ स्थानों पर भूख हड़ताल जैसे आत्मक्लेश के मार्ग को अपनाया। किन्तु गान्धीजी के नाम का दिन-रात जप करनेवाले सत्ताधारियों और कांग्रेसियों ने भी कभी कल्पना नहीं की होगी, इतने सुंदर, सुव्यवस्थित और शांतिपूर्वक ढंग से सत्याग्रह करने का अद्-भुत परिचय संघ के स्वयंसेवकों ने दिया। मद्रास में शांतिपूर्ण ढंग से सत्याग्रह करने वालों पर निर्मम लाठीचार्ज की घटना की खुली निन्दा लिबरल पार्टी के टी.आर. वेंकटराम शास्त्री और लोकसभा सदस्य स्वामी वेंकटाचलम् ने की। आगे चल कर श्री व्यंकटराम शास्त्री संघ पर लगी पाबंदी उठाने के लिए मध्यस्थता करने हेतु प्रस्तुत हुए। जनता का संघ के प्रति समर्थन और सहानुभूति बढ़ती ही जा रही थी। स्थान-स्थान पर 'बंदी हटाओ' 'संघ पर से अन्याय दूर करो' आदि मांगो को लेकर जुलूस निकलने लगे।

सत्याग्रह थमने का नाम नहीं ले रहा था और स्वयंसेवकों में उत्साह की कोई कमी भी नजर नहीं आ रही थी। ऐसे गुणसम्पन्न युवकों को अकारण सहनी पड़ रही यातनाओं को देखकर अनेक सत्प्रवृत्त लोगों के मन व्यथित होने लगे। अनेक ऐसे नेता यह अनुभव करने लगे कि कुछ न कुछ सुलह का मार्ग निकलना चाहिए। केन्द्र सरकार के गृह मंत्रालय को पत्र भेजकर इस मामले में मध्यस्थता की तैयारी दर्शायी गई। जनवरी के प्रारंभ में पुणे से प्रकाशित मराठी दैनिक 'केसरी' के संपादक श्री ग. वि. केतकर को सरकार ने सिवनी जेल में जाकर श्री गुरुजी से भेंट की अनुमति दे दी। तदनुसार श्री केतकर ने दो बार- १२ व १९ जनवरी को श्री गुरुजी से भेंटकर देश की परिस्थिति से उन्हें अवगत कराया तथा यह सुझाव भी दिया कि अगर सत्याग्रह स्थगित कर दिया जाए तो संघ पर से पाबंदी हटाने की दृष्टि से कुछ हलचलें करना आसान हो जाएगा। श्री गुरुजी ने इस सुझाव को स्वीकार कर सत्याग्रह स्थगित करने सम्बन्धी आदेश लिखकर केतकर को दिया। सत्याग्रह-आंदोलन के सूत्र संचालन करनेवाले कार्यकर्ताओं तक वह आदेश पहुँचाया गया और आखिर २२ जनवरी १९४९ को सत्याग्रह-आंदोलन स्थगित कर दिये जाने की अधिकृत घोषणा की गई। ९ दिसंबर १९४८ को प्रारंभ देशव्यापी सत्याग्रह पर्व उज्ज्वल यश-संपादन कर स्थगित हुआ। इस बीच सभी लोगों के ध्यान में यह बात आ गयी कि संघ को आसानी से कुचल डालने का दंभ निरर्थक है और संघ ने जिस विवेक और समझदारी की भूमिका अपनायी है, वह कोई निर्बलता के कारण नहीं बल्कि विशुद्ध देशप्रेम के कारण अपनायी है। गांधी

जी के सत्याग्रह-तंत्र का उनके अनुयायियों को भी लज्जित कर सकनेवाले ढंग से उपयोग कर संघ ने एक बड़ी नैतिक विजय संपादित की थी। लगभग दो लाख स्वयंसेवक सत्याग्रह हेतु प्रस्तुत हुए जिनमें ७७०९० स्वयंसेवक गिरफ्तार होकर विभिन्न अवधि के लिए कारागृहों में रहे। स्वाभाविकतः जनमत जागृत होकर संघ के प्रति सहानुभूति की लहर सर्वत्र चल पड़ी। समाचार पत्रों में भी इस लहर का प्रतिबिम्ब प्रकट होने लगा।

दिनांक २२ जनवरी १९४९ को अम्बाला से प्रकाशित होनेवाले 'दि ट्रिब्युन' ने सरकार की सोच का सामान्यतः समर्थन करते हुए भी यह कहा कि "रा. स्व. संघ के नेता ने आन्दोलन को बिना शर्त स्थगित कर प्रकरण के अंतिम निपटारे के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। अब आगे के कदम उठाने का कार्य सरकार का है जिसे प्रतिबन्ध हटा देना चाहिए....।"

कलकत्ता के 'स्टेट्समैन' ने दि. २२ जनवरी १९४९ के अपने संपादकीय में यह लिखकर कि 'संघर्ष का ढंग भी संघ के नेताओं को धन्यवाद देने योग्य था'-सरकार को इस बात की अनुभूति करा दी कि संघ पर लगे प्रतिबंध के कारण देश के युवकों का बल किस प्रकार व्यर्थ जा रहा है। उसने लिखा- "कानून भंग करने के आंदोलन में भाग लेने के कारण आज भारत के अनेक अच्छे लोगों को जेल में डाल दिया गया है। वे सब देश की उत्तम सेवा करने में समर्थ हैं। उनके पास आदर्श है, शारारिक बल है तथा सेवा के स्तुत्य कार्यों को करने के लिए स्वार्थ-त्याग की भावना भी है। ये सभी देश का गौरव बढ़ने की क्षमता लिए हुए हैं। ऐसी युवा शक्ति को जेल में सड़ते रखना कहाँ तक उचित है?"

यहाँ इस बात का विशेष रूप से उल्लेख करना होगा कि श्री गुरुजी ने मध्यस्थता करने के इच्छुक महानुभावों को किसी प्रकार की कठिनाई न होने पाये, इस सद्-भावना से ही सत्याग्रह स्थगित करने के लिए लिखित अनुमति श्री केतकर को सौंपी थी। यह एक प्रकार की सुजनता ही थी। आदरणीय व्यक्तियों के शब्दों का आदर करने हेतु अपने आग्रह को एक ओर रखने में उन्हें जरा भी हिचक महसूस नहीं हुई। सत्याग्रह स्थगित करने के निर्णय से मध्यस्थों के लिए मार्ग खुल गया। श्री केतकर के बाद मद्रास के उदारमतवादी नेता श्री टी.आर. व्यंकटराम शास्त्री ने, जो एक निष्पक्ष, निस्पृह, सेवाभावी और विद्वान् कार्यकर्ता के रूप में ख्यातिप्राप्त थे, मार्च १९४९ में कारागृह में श्री गुरुजी से दो बार भेंट की। प्रथम भेंट में तय हुआ कि संघ का एक

लिखित संविधान शीघ्र ही तैयार किया जाए। बाहर के कार्यकर्ताओं ने जिस अलिखित व्यवस्था से संघकार्य चल रहा था, उसे लिपिबद्ध कर श्री व्यंकटराम शास्त्री को सौंपा। श्री शास्त्री जी उस संविधान को लेकर कारागार में पहुँचे और श्री गुरुजी को उसे दिखाकर आवश्यक संशोधन करने को कहा। श्री गुरुजी ने बिना संविधान के पन्ने खोले उस पर हस्ताक्षर कर दिये जिसे देखकर शास्त्री जी विस्मित हुए बिना नहीं रहे। उनके उद्-गार थे कि लोकतंत्र की भावना का यह कितना श्रेष्ठ प्रदर्शन है जहाँ नेता का अपने अनुयायियों पर यह प्रबल विश्वास है कि उन्होंने जो कुछ किया होगा, ठीक ही किया होगा। संघ का संविधान तैयार होते ही उसे सरकार के पास भेजने की अनुमति दूसरी भेंट में श्री गुरुजी ने दे दी। किन्तु शास्त्रीजी की मध्यस्थता में प्रेषित संविधान को सरकार ने स्वीकृत नहीं किया। सरकार की ओर से कहा गया कि वह संविधान स्वयं श्री गुरुजी ही सरकार को भेजें। पत्रों को परस्पर पहुँचाने में अपनायी गई ढिलाई के कारण अप्रैल-मई- ये दो माह बिना किसी प्रगति के यूँ ही बीत गये। अपनी मध्यस्थता शायद सरकार को पसंद नहीं इस विचार से श्री व्यंकटराम शास्त्री कुछ काल तक शांत रहे।

इस बीच सरकार की ओर से संघ के संविधान पर अनावश्यक आपत्तियाँ प्रस्तुत करते हुए कालापव्यय की नीति अपनायी गयी। तब सरकार की अड़ियल-वृत्ति और उसके कारण हजारों स्वयंसेवकों के कारागृह में पड़े रहने से श्री गुरुजी अस्वस्थ हो उठे। संविधान में सरकार की ओर से उठाई गई सभी आपत्तियों का निराकरण करते हुए एक विस्तृत पत्र श्री गुरुजी ने सरकार को भेजा। संघ पर लगाए गये आरोपों का दो-टुक जवाब देने वाला श्री गुरुजी का मूल पत्र काफी तीखा और चुनौती भरा था। यह पत्र उन्होंने १७ मई को भारत सरकार के गृहमंत्री के नाम अंग्रेजी में लिखा था। जब सरकार ने श्री गुरुजी का यह पत्र श्री शास्त्री के पास भेज दिया तब श्री शास्त्री जी ने जनता के समक्ष संपूर्ण वस्तुस्थिति को स्पष्ट करनेवाला अपना वक्तव्य प्रकाशित करने का निश्चय किया।

इस प्रकार पत्र-व्यवहार के चलते श्री गुरुजी को सिवनी जेल से हटाकर बैतूल के कारागृह में लाया गया। सिवनी के कारागृह में श्री गुरुजी की व्यवस्था उन जैसे महान् नेता के लिए आवश्यक सुविधाओं से पूर्ण नहीं थी। वहाँ की व्यवस्था के बारे में श्री केतकर ने प्रत्यक्ष आँखों से जैसा देखा, वैसा हूबहू वर्णन किया। उससे सरकार के संकुचित मनोवृत्ति ही प्रकट होती है। उन पर केवल १० रू. महिने का ही खर्च किया जाता! नियमानुसार मिलनेवाली सुविधाओंसे उन्हें वंचित रखा गया। बैतूल कारागृह की व्यवस्था तो और भी कष्टदायी थी। बंदी हटाने के लिए मध्यस्थता करनेवाले

मौलिचन्द्र शर्मा ने उनसे बैतूल कारागृह में ही भेंट की थी। श्री गुरुजी के माता-पिता भी बैतूल में ही श्री गुरुजी से मिलने गये थे। इन भेंट-मुलाकातों का जो वृत्त प्रकाशित हुआ उनसे श्री गुरुजी के गिरते स्वास्थ्य, कारावास में उनके साथ किया जानेवाला बर्ताव और संघ के सम्बन्ध में सरकार की टालमटोल और दुराग्रही नीति आदि सारी बातों पर प्रकाश पड़ता है। परिणामस्वरूप हितचिंतकों की तीव्र प्रतिक्रियाएँ प्रकट होने लगीं। श्री गुरुजी ने कभी भी व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं की कोई चिन्ता नहीं की। कारावास में एक बंदी को प्राप्त होनेवाले अधिकारों का अध्ययन कर तदनुसार सुख-सुविधाओं की मांग भी उन्होंने नहीं की। उनकी चिन्ता का एकमात्र विषय था- हिन्दू समाज को एकरस सुसंगठित बनाकर देश के सामर्थ्य को बढ़ानेवाले संघ के खंडित कार्य को पुनः प्रारंभ किया जाये। उनकी यह सुनिश्चित और पक्की धारणा थी कि संघकार्य का अन्य कोई विकल्प नहीं है। संघ का पक्ष न्याय और सत्य का होने के बावजूद सरकार अपना दुराग्रह छोड़ने के लिए तैयार नहीं हो रही है यह देखकर स्वयंसेवकों के मन में क्षोभ और संताप की भावना पैदा होने लगी। सार्वजनिक कार्यकर्ता और निष्पक्ष समाचार-पत्र संघ का पक्ष लेकर सरकार की अन्यायकारी भूमिका के विरोध में खुलकर बोलने और लिखने लगे। विदेशों में भी भारत सरकार की निंदा और आलोचना की जाने लगी। लन्दन में 'वर्ड' नामक पत्र ने लोकतंत्र में इस प्रकार के नागरिक स्वाधीनता के अपहरण की आलोचना करते हुए लिखा- "जिस ब्रिटिश राज्य की सब भांति निन्दा की जाती थी, उसमें भी नागरिक स्वतंत्रता का गला नेहरू के इस फासिस्ट राज्य की तरह कहीं भी घोंटा गया हो यह हमें याद नहीं आता।" संघ पर पाबंदी के विरोध में कोई नया जन आंदोलन प्रारंभ करने का विचार भी सरकारी नीति की प्रतिक्रिया के रूप में व्यक्त किया जाने लगा। संघ को अब राजनीतिक दल के रूप में सामने आना चाहिए, ऐसा सुझाव भी संघ के हितचिंतक नागपुर से प्रकाशित दैनिक 'हितवाद' के संपादक श्री ए.डी.मणि जैसे लोग देने लगे।

एक नयी तनावपूर्ण स्थिति बनती जा रही थी और संघ के प्रति जनता की सहानुभूति दिनों-दिन बढ़ती जा रही थी। भारत सरकार को भी यह आभास होने लगा कि जनमत उसके विरोध में होता जा रहा है। तब अचानक जून माह की समाप्ति पर सरकार ने भारतीय जनाधिकार समिति के अध्यक्ष पं. मौलिचन्द्र शर्मा को श्री गुरुजी से मिलकर लिखित रूप में कुछ मुद्दों के जवाब लाने के लिए प्रवृत्त किया। श्री शर्मा ने पहले गृहमंत्री सरदार पटेल, संघ के सरकार्यवाह श्री भैयाजी दाणी और श्री बालासाहब देवरस से भेंट की और बाद में बैतूल जाकर सरकार की दृष्टि में आपत्तिजनक मुद्दों को पुनः श्री गुरुजी के समक्ष रखा। अब श्री गुरुजी अपनी ओर से भारत सरकार को किसी भी प्रकार का कोई लिखित स्पष्टीकरण देने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने तय कर लिया था कि अब आगे सरकार के साथ कोई पत्र-व्यवहार नहीं करेंगे। उधर परिस्थिति के

बढ़ते दबाव के आगे झुककर सरकार पहले जैसे अड़ियल रवैये अथवा दुराग्रह पर कायम रहना नहीं चाहती थी। सरकार यह जान चुकी थी कि प्रतिबंध हटाये बिना और कोई चारा नहीं है। अतः इसके लिए वह कोई नया निमित्त ढूँढ रही थी।

१०.३ प्रतिबन्ध अचानक क्यों हटाया गया?

पं. मौलिचन्द्र शर्मा की इस भेंट के बाद श्री गुरुजी ने उन्हें (शर्माजी को) एक व्यक्तिगत पत्र लिखा। इस पत्र में सरकार द्वारा उठायी गयी आपत्तियों के सम्बन्ध में संघ की भूमिका को पुनः एक बार स्पष्ट किया गया था। यह पत्र दिनांक १० जुलाई १९४९ का है। इसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भारतीय संविधान, राष्ट्रध्वज, हिंसाचार और गुप्तता का आरोप, संघ में कार्यकारी मंडल का चुनाव, प्रतिज्ञा, बाल स्वयंसेवकों का प्रश्न, सरसंघचालक की नियुक्ति, संघ में जाति विशेष का वर्चस्व और हिसाब रखने की पद्धति- इस प्रकार आठ मुद्दों पर संघ की भूमिका स्पष्ट की गई है। पं. मौलिचन्द्र शर्मा के नाम दि. १० जुलाई को लिखे इस पत्र को ही आधार मानकर भारत सरकार ने संघ पर १८ मास से लगे प्रतिबन्ध को स्वयं ही वापस ले लिया। इतनी जल्दी-जल्दी में प्रतिबन्ध हटाने के सरकार के निर्णय के पीछे एक अत्यंत महत्वपूर्ण कारण रहा। श्री वेंकटराम शास्त्री जी ने एक प्रदीर्घ वक्तव्य तैयार कर समाचार पत्रों को दिनांक १३ जुलाई के पहले प्रकाशित न करने की सूचना दी थी। उस पत्र में सरकार की नीति किस प्रकार अन्यायपूर्ण एवं मूलभूत नागरिक अधिकारों की अवहेलना करनेवाली है- इसका स्पष्ट दिग्दर्शन था। श्री वेंकटराम शास्त्री जी जैसे देशमान्य, उदारमतवाले मध्यस्थ व्यक्ति का इस प्रकार का निर्णय देश के सामने आने से सरकार की तो और बेइज्जती हौनेवाली थी। इससे बचने के लिए दिनांक १२ जुलाई को ही प्रतिबन्ध हटाने का निर्णय लिया गया। फिर भी मद्रास के 'दि हिन्दू' ने 13 जूलाई को शास्त्री जी के वक्तव्य का पूर्ण पाठ छाप ही दिया। इधर प्रतिबन्ध भी हट गया। उधर शास्त्री जी का वक्तव्य लोगों के सामने आने के कारण से सरकार का असली चेहरा भी उजागर हो गया।

अपना अन्तिम निष्कर्ष देने के पूर्व उन्होंने संघ संबंधी उन अनेक आपत्तियों का स्पष्टीकरण दिया जो सरकार ने श्री गुरुजी के साथ हुए पत्र-व्यवहार में उठाई थीं। अवयस्कों को संघ में प्रवेश तथा राष्ट्रीय तिरंगे झण्डे के संबंध में श्री गुरुजी द्वारा दिये गये स्पष्टीकरण से श्री शास्त्री जी ने सहमति व्यक्त की। बाद में संघ के प्रमुख के पूर्व प्रमुख द्वारा चुने जाने के संबंध में, जिसे सरकार ने अलोकतांत्रिक और 'फासिस्ट' (तानाशाही) कहा था, श्री शास्त्री जी ने उत्तर दिया- "किसी सरकार या राज्य को तो

फासिस्ट कहा जा सकता है किंतु किसी निजी संगठन को नहीं जिसमें प्रवेश के लिए किसी को बाध्य नहीं किया जा सकता। जिसकी इच्छा हो वह उसमें जाये या जाने से इन्कार कर दे अथवा प्रवेश लेने के बाद भी त्यागपत्र देकर बाहर आ जाये। इस देश में ऐसी अनेक संस्थाएँ हैं जहाँ के प्रमुख अपने उत्तराधिकारी को मनोनीत करते हैं। संस्था के सब सदस्यों द्वारा वह निर्वाचित नहीं किया जाता। भावजगत् में सार्वजनिक निर्वाचन कोई औचित्य नहीं रखता।"

साम्प्रदायिकता के आरोप के संबंध में शास्त्री जी कहते हैं- "संघ में सभी प्रकार एवं वर्गों के हिंदुओं को प्रवेश है। उनके विभिन्न कार्यक्रमों में सभी समुदायों के लड़के बिना किसी भेदभाव के सम्मिलित होते हैं। इस संगठन के उद्देश्य और प्रकृति ही ऐसी है कि उसमें अहिन्दुओं के लिए प्रवेश नहीं है।.....घोर साम्प्रदायिकता के बीच रहते हुए मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि रा.स्व. संघ इस अनेकधा विभाजित हिंदु समाज को संघबद्ध करने की दिशा में अच्छा कार्य कर रहा है। यह बात उन अनिष्ट प्रवृत्तियों को रोकने में भी सहायक हो सकती हैं जो हमारी आँखों के सामने पनप रही हैं और जिसकी ओर सरकार द्वारा ध्यान दिया जाना आवश्यक है।"

समाचार पत्रों की इस टिप्पणी पर, जो वास्तव में सरकारी सूत्रों से ही निकली थी, कि "(संघ का) संविधान तो ठीक है किंतु इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि संघ के नेता उसका यथावत् पालन करेंगे," श्री शास्त्री जी ने कहा- "यह तो किसी भी संगठन के प्रति ज्यादती होगी कि पहले से ही यह सोचकर कि शायद उसके सदस्य आगे चलकर किसी अवैधानिक गतिविधि में भाग लें, उसे काम प्रारम्भ ही न करने दिया जाय।" समाचार पत्रों की एक दूसरी टिप्पणी के संदर्भ में कि "यद्यपि वे अपने संगठन को अराजनैतिक घोषित कर रहे हैं किन्तु एक रात में वे बदल सकते हैं," उन्होंने कहा- "हाँ, वे वैसा कर सकते हैं और यदि उन्होंने वैसा किया तो वह कोई अपराध नहीं होगा। बल्कि मुझे विश्वास है कि उनमें इतनी समझदारी है कि वे ऐसी गलती करना ही नहीं चाहेंगे।"

आगे श्री शास्त्री जी कहते हैं- "अपने निर्णय पर पहुँचने के पहले मैंने निम्न बातों पर ध्यान दिया है- यह कि पूर्ववर्ती सरकार के काल में बीस वर्षो से अधिक समय तक उन्होंने खुलेआम बिना किसी आपत्ति के काम किया है; यह कि सार्वजनिक क्षेत्र के गणमान्य लोगों ने उसके कार्यक्रमों या उत्सवों में कम-अधिक प्रमाण में खुलकर भाग लिया है; यह कि अनेक सरकारी अधिकारियों ने भी उनके कार्य में बिना किसी के आपत्ति उठाये भाग लिया है; यह कि हमारी सरकार ने भी तब तक उनके विरूद्ध कोई

कदम उठाना उचित नहीं समझा जब तक महात्मा गांधी की हत्या नहीं हो गई और उसमें उन लोगों का हाथ होने और अन्यों के भी जीवन के लिए खतरा होने का संदेह नहीं हुआ। मुझे लगता है कि उस संदेह के लिए अब कोई आधार शेष नहीं बचा है। जो बंदी प्रत्याक्षीकरण याचिका प्रस्तुत कर सकते थे वे उस माध्यम से न्यायालय की सहायता प्राप्त करने में सफल हुए हैं और कुछ आरोप भी जिसमें रा.स्व. संघ का हाथ माना गया था, न्यायालय में टिक नहीं पाये हैं। मुझे लगता है कि यदि प्रतिबंध हटा दिया गया और संगठन को उसी तरह कार्य करने दिया गया जैसा वर्तमान समस्या खड़ी होने के पूर्व पिछले बीस वर्षों से अधिक समय से वह करता आ रहा है, तो राज्य अथवा सार्वजनिक सुरक्षा को किसी भी प्रकार का खतरा उत्पन्न नहीं होगा।"

"अंत में, इस आशा के साथ मैं समाप्त करना चाहूँगा कि सरकार यह सोचे कि किस प्रकार प्रतिबंध हटाकर वह रा.स्व. संघ को पूर्ववत् कार्य करने दे। मेरे मतानुसार प्रतिबंध को जारी रखना और उसके प्रमुख लोगों को जेल में निरुद्ध रखना न तो न्यायसंगत है, न विवेकपूर्ण और न ही लाभदायक।"

सरकार द्वारा अचानक बंदी हटाने के पीछे और एक कारण संभव है। दि. २८ मई १९४९ को श्री गुरुजी ने बालासाहब देवरस के नाम एक पत्र अपनी सेवा में रत एक कैदी के माध्यम से बाहर भिजवाया जो मध्यप्रदेश की सरकार के हाथ लग गया। उससे सरकार को यह भनक लग गयी कि संघ पुनः एक जन आन्दोलन करने की सोच रहा है। इस आन्दोलन से ही सरकार की छवि जनता में मलिन हुई थी, अतः पुनः आन्दोलन का मौका देना बुद्धिमानी नहीं होगी, ऐसा उन्हें लगा होगा। अपने पत्र में श्री गुरुजी ने लिखा था-

"सरकार की ओर से यही सब होगा यह मैंने श्री वेंकटराम शास्त्री को पहली भेंट में बता दिया था। किंतु उन्होंने कहा था कि 'वह सब मुझ पर छोड़ दें।' उनके आत्मविश्वास से लगा कि शायद सरकार के कुछ प्रमुख व्यक्तियों के साथ उनकी कोई निर्णायक बातचीत हुई होगी। इसलिए, और अन्य दृष्टि से भी, अपने से सहानुभूति रखनेवाले इन सत्पुरुष को प्रयत्न करने दिया जाय और मेरी बाधा न रहे यह सोचकर मैंने उन्हें सम्मति दे दी।"

"किन्तु मुझे लगता है कि यह मामला तब तक नहीं सुलझेगा जब तक सर्वत्र सूचना भेजकर पुनः एक बार जोरदार आन्दोलन नहीं किया जाता। इसका यह अर्थ नहीं है कि एकदम जल्दबाजी की जाय। पहले ऐसी योजना बने जिससे आन्दोलन लम्बे समय

तक चल सके और फिर योग्य समय देखकर आन्दोलन आरम्भ किया जाय। इसके साथ-साथ अनेक प्रकार की हड़तालें भी करवाई जा सकीं तो उत्तम होगा। एक अच्छा वक्तव्य तैयार हो जिसमें इस बात का उल्लेख किया जाय कि कैसे शास्त्रीजी जैसे मध्यस्थों के परामर्श एवं सम्मति से संविधान तैयार कर सरकार के पास भेजा गया और कैसे सरकार अपनी पुरानी ही बातों की रट लगाते हुए अपने दुराग्रह पर अड़ी हुई है। उस वक्तव्य को देशभर में बँटवाने कि व्यवस्था की जाय और घोषणा की जाय कि जनता के एकत्रीकरण के न्यायपूर्ण अधिकारों की प्रस्थापना हेतु प्रयत्न करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं बचा है और चूँकि सरकार के अड़ियल रवैये ने सारे रास्ते बन्द कर दिये हैं इसलिए हम पुनः शान्तिपूर्ण आन्दोलन शुरु कर रहे हैं। किसी अज्ञात स्थान से डाक के द्वारा उस वक्तव्य की प्रतियाँ केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों को भिजवा कर पहले के समान आन्दोलन करना चाहिए, ऐसा मुझे लगता है।"

"यह मेरा मत है किन्तु आप बाहर रहे अपने प्रमुख सहयोगियों से योग्य परामर्श कर जो उचित हो वह निश्चित करें। न इधर के, न उधर के, ऐसी जो त्रिशंकुवत् स्थिति मध्यस्थों के कारण निर्माण हुई है उसे समाप्त करें।"

यहाँ यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संविधान को लिखित रुप में देने हेतु अपनी स्वीकृति देने अथवा संविधान के कुछ मुद्दों पर उठाई गई आपत्तियों का विचार करते समय श्री गुरुजी ने सरकार की कोई 'शर्त' स्वीकार नहीं की। कुछ लोगों ने स्वार्थवश इस प्रकार का प्रचार भी करना चाहा कि संघ ने सरकार को कुछ आश्वासन दिये हैं उन शर्तों पर ही पाबन्दी हटाई गई है। किन्तु जब श्री गुरुजी और सरकार तथा मध्यस्थों के बीच हुआ सारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित हो गया तब संघ द्वारा सरकारी शर्तों को स्वीकार किये जाने सम्बन्धी सारे दुष्प्रचार की हवा निकल गई। संघ का जो कार्य अलिखित संविधान के अनुसार चल रहा था उसे ही लिखित रुप में दिया गया- इसके अलावा अन्य कोई भी 'शर्त' स्वीकार किये जाने का प्रश्न ही नहीं था। सरकार ने स्वयं अपनी ओर से बिना किसी शर्त के प्रतिबंध हताया, यह बात भी स्पष्ट हो गई।

१०.४ सरकार ने भी स्वीकारा

कहावत है कि "हाथ कंगन को आरसी क्या?" स्वयं सरकार को ही इस सत्य को खुले तौर पर स्वीकार करना पड़ा। मुंबई विधानसभा में १४ अक्तुबर १९४९ को उस सरकार

के गृह एवं राजस्व मंत्री ने सूरत जिले के लल्लूभाई माखनजी पटेल के प्रश्नों के उत्तर में बताया कि-

(१) रा.स्व.संघ का प्रतिबंध बिना किसी प्रकार की शर्त के उठाया गया, और

(2) संघ के नेता के द्वारा सरकार को किसी भी प्रकार का वचन नहीं दिया गया है।

यहाँ यह बताना तथ्य संगत होगा कि अपनी जाँच द्वारा यह स्पष्ट हो जाने के बाद कि संघ पर आरोपित अनेक अपराधों में संघ का कोई हाथ नहीं है, सरकार सारे अनुचित एवं अन्यायपूर्ण हथकण्डे अपना रही थी। आँख खोल देनेवाले इस तथ्य के उपरान्त भी कि महात्मा गांधी की हत्या सहित अन्य अपराधों में भी, जिनका जोरदार डिमडिम पीटा जाता रहा, सारे देश में कहीं भी किसी भी स्वयंसेवक के विरुद्ध एक भी आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं हुआ, मुकदमा चलाने की बात तो दूर रही। इस संदर्भ में सरदार पटेल द्वारा पं. नेहरु को २७ फरवरी १९४८ को, अर्थात महात्मा जी की हत्या के उपरान्त एक माह के अन्दर ही जो पत्र लिखा गया वह इस सारे मामले में सरकार के बेईमानी का निन्दनीय दस्तावेज है। सरदार पटेल ने लिखा- "बापू की हत्या की जाँच में हो रही प्रगति पर मैंने प्रायः प्रतिदिन ध्यान दिया है..... सभी अपराधियों ने अपनी गतिविधियों के लम्बे और विस्तृत वक्तव्य दिये हैं। ..... उन वक्तव्यों से यह बात भी स्पष्ट रुप से उभर कर आती है कि इस सारे मामले में संघ कहीं भी संलिप्त नहीं है।"

१०.५ गृहमंत्री ने भी स्वीकारा

संघ पर से प्रतिबंध हटने के बाद गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने श्री गुरुजी के पत्र के उत्तर में एक पत्र भेजकर अपनी प्रसन्नता और शुभकामना व्यक्त की। इस पत्र का कुछ अंश इस प्रकार है:-

"........जैसा आपने अपने सार्वजनिक भाषण में कहा है, देश की स्थिति वैसी ही है और घटनाओं का चक्र इस प्रकार चल रहा है कि हम सबको वर्तमान काल और भविष्य पर दृष्टि रखनी चाहिये, न कि भूतकाल पर। मुझे आशा है कि आप संघ और काँग्रेस और सरकार के विषय में इस नियम पर चलेंगे।"

"संघ पर से पाबंदी उठा लेने पर मुझे जितनी खुशी हुई है इसका प्रमाण तो उस समय जो लोग मेरे निकट थे वही बता सकते हैं। मुझे इस बात पर विशेष प्रसन्नता है कि

इस प्रकार एक बार फिर ईश्वर ने मुझे यह अवसर दे दिया है कि संघ के भविष्य के विषय में जो विचार मैंने सालभर पहले जयपुर व लखनऊ की आमसभाओं में प्रगट किये थे, उनको पूरा करने का प्रयत्न कर सकूँ।"

"आशा है, आप स्वस्थ होंगे। मैं आपको अपनी शुभकामना भेजता हूँ।"

संघ पर प्रतिबंध हटाये जाने की घोषणा दि. १२ जुलाई को सायंकाल आकाशवाणी से की गई और दि. १३ जुलाई को श्री गुरुजी को बैतूल कारागृह से मुक्त किया गया। श्री गुरुजी मध्यान्ह में जब नागपुर रेल्वे स्टेशन पहुँचे तो वहाँ उपस्थित ३० हजार से अधिक जनसमूह ने हर्षध्वनि से उनका स्वागत किया। समूचा वायुमंडल भारतमाता की जय-ध्वनि से गूँज उठा! अग्नि-परीक्षा में सफल होकर आनेवाले अपने पुत्र का जब स्वयं पिताजी ने पुष्पमाला पहनाकर स्वागत किया तो यह दृश्य देखकर उपस्थितों की आँखों से आनंदाश्रु फूट पड़े। ऩागपुर में तीन-चार दिनों तक रुकने के बाद श्री गुरुजी श्री टी. आर. व्यंकटराम शास्त्री से मिलने हेतु मद्रास गये और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की। प्रतिबंध हटते ही श्री शास्त्री जी ने नागपुर के पते पर अभिनंदन-तार भेजा था- 'All is well that ends well' –अन्त भला तो सब भला। श्री गुरुजी के नाम अभिनंदन-पत्रों और तारों की झड़ी लग गई थी। श्री गुरुजी मद्रास, पुणे और मुंबई का प्रवास कर नागपुर लौटे। प्रतिबंध काल में मदद करनेवालों से प्रत्यक्ष भेंटकर उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की। इसमें पुणें के श्री ग.वि. केतकर का भी समावेश था। इस सारे प्रवास में स्थान-स्थान पर जनता ने श्री गुरुजी का अभूतपूर्व स्वागत किया। इस प्रवास में श्री गुरुजी के प्रति उत्कट प्रेम की अभिव्यक्ति का हृदयस्पर्श दर्शन हुआ।

*

११ स्वागत पर्व: अचूक मार्गदर्शन

प्रतिबन्ध काल में पूरे १८ मास श्री गुरुजी अपने प्रिय स्वयंसेवकों से मिल नहीं पाये थे। जनसम्पर्क खंडित हो चुका था। स्वयंसेवकों और जनता में भी श्री गुरुजी का दर्शन करने और प्रतिबन्ध हटने के बाद वे कौन सा मार्गदर्शन करते हैं, यह जानने की उत्सुकता थी। अतः देशव्यापी संचार आरंभ करना आवश्यक ही था। सब के मन में एक ही प्रश्न था कि संघ पर प्रतिबंध के अध्याय से कौन सी सीख ली जाये? श्री गुरुजी के मन में कांग्रेस सरकार द्वारा अपनाई गई दमन नीति की क्या प्रतिक्रिया है? शासनकर्ताओं के प्रति श्री गुरुजी किन शब्दों का प्रयोग करेंगे? आखिर इन सभी प्रश्नों का निवारण श्री गुरुजी के भाषणों में जिस ढंग से हुआ, उससे उनके अंतःकरण की विशालता, उदारता, उत्कट देशभक्ति, किसी के भी प्रति मन में बैर अथवा द्वेष के अभाव और हिन्दू संस्कृति के आदर्शों के अनुरूप आचरण का ही साक्षात्कार हुआ। श्री गुरुजी का भाषण सुनकर लक्षावधि श्रोताओं के मुख से श्री गुरुजी के प्रति धन्योद्-गार ही निकले।

श्री गुरुजी का यह भारत-भ्रमण १९४९ के अगस्त माह में प्रारंभ हुआ तो जनवरी १९५० तक जारी रहा। इस बीच वे जहाँ-जहाँ गये वहाँ-वहाँ जनता द्वारा उनका उत्स्फूर्त स्वागत किया गया। २० अगस्त को उत्तर भारत के प्रवास हेतु दिल्ली की ओर प्रस्थान करने के पूर्व थोड़ा समय निकालकर वे मुंबई जाकर सरदार पटेल से भेंट कर आये। सरदार पटेल का स्वास्थ्य अच्छा नहीं होने की खबर उन्हें मिल चुकी थी। सरदार पटेल के साथ लगभग एक घंटा वार्तालाप होता रहा। इस भेंट के समय संघ के तत्कालीन सरकार्यवाह श्री भैयाजी दाणी भी श्री गुरुजी के साथ थे। इस भेंट में सरदार पटेल ने ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों का उल्लेख करते हुए हिन्दू समाज की पाचन-शक्ति बढ़ाने की आवश्यकता प्रतिपादित की। पाकिस्तान बनने के बाद उत्पन्न समस्याओं और घटनाओं का भी सरसरी तौर पर उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा, “बीती को बिसारकर अब देश के भविष्य का ध्यान रखना चाहिये।”

लगभग पाँच माह तक श्री गुरुजी के भारत-भ्रमण में सर्वत्र उनका जो भव्य स्वागत हुआ उसका विवरण भले ही कितना रोचक क्यों न हो, स्थानाभाव के कारण उसे यहाँ प्रस्तुत करना संभव नहीं हैं। केवल उदाहरण के लिए राजधानी दिल्ली में हुए स्वागत का वर्णन प्रस्तुत करना ही पर्याप्त होगा। राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश, आंध्र, मद्रास, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात आदि राज्यों के प्रमुख शहरों में भी दिल्ली जैसा ही भव्य

स्वागत किया गया। दिल्ली में हुए प्रचण्ड एवं शानदार स्वागत का परिणाम यह हुआ कि स्वाभाविकतः सारे विश्व का ध्यान श्री गुरुजी के व्यक्तित्व की ओर आकर्षित हुआ। ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कार्पोरेशन (बी.बी.सी.) ने यह अभिमत व्यक्त किया कि,- "श्री गुरुजी भारतीय क्षितिज पर उदित एक चमकते सितारे हैं। इतना प्रचण्ड जनसमुदाय आकृष्ट करनेवाले भारत में दूसरे व्यक्ति पं. नेहरू ही हैं।" भारतीय समाचार पत्रों में भी श्री गुरुजी के स्वागत के समाचार सुर्खियों में प्रकाशित हुए। १९५६ में श्री ना.ह.पालकर द्वारा लिखित 'श्री गुरुजी : व्यक्ति और कार्य' नामक पुस्तक में दिल्ली में हुए स्वागत का विवरण इस प्रकार है :-

"दिल्ली स्टेशन पर तथा उसके बाहर दूर-दूर तक इतनी भीड़ थी मानों सम्पूर्ण राजधानी ही गुरूजी के दर्शनार्थ उमड़ पड़ी हो। जय-जयकारों के घोष से सारा आकाश गूँज उठा तथा फूलों से मार्गों की सूरत बदल गयी। सम्पूर्ण राजधानी गुरूजी के स्वागतार्थ सजायी गयी थी। स्थान-स्थान पर स्वागत-द्वार खड़े किये गये थे। सायंकाल रामलीला मैदान में गुरुजी के सार्वजनिक स्वागत समारोह में ५ लाख से अधिक स्त्री-पुरूष एकत्रित हुए थे। उस समय नगर में ऐसा लग रहा था कि मानों सभी मार्ग रामलीला मैदान की ओर जा रहे हैं। मंच की भव्यता तथा कार्यक्रम का आयोजन भी अद्वितिय था। गणवेशधारी स्वयंसेवक शांति के साथ जनता का स्वागत करते तथा उन्हें यथा-स्थान बैठाते थे। पुलिस की मदद के बिना ही सभा में शांति और अनुशासन बनाये रखने में स्वयंसेवकों की सफलता स्पृहणीय थी। दिनांक २३ अगस्त को दिल्ली की इस सभा में नागरिकों की ओर से श्री गुरुजी को सम्मान-पत्र भेंट किया गया। मानपत्र के उत्तर में श्री गुरुजी ने वहाँ उपस्थित जनसमुदाय को सम्बोधित किया।"

स्थान-स्थान पर श्री गुरुजी का स्वागत इस प्रकार अत्यंत शानदार ढंग से हुआ। अपनी मुक्ति के बाद भारत-भ्रमण पर निकले श्री गुरुजी का भारत की कोटि-कोटि जनता ने जैसे विराट् तथा हार्दिक स्वागत किया, उसका उदाहरण इतिहास में मिलना कठिन है। स्थान-स्थान पर हुए स्वागत के उत्तर में जो उद्-गार श्री गुरुजी ने प्रकट किये, वे उनकी अतिशय उदारता, हृदय की विशालता और सहिष्णु वृत्ति के ही परिचायक हैं। लगातार अठारह मास तक अपने तथा लाखों स्वयंसेवकों के ऊपर होते रहे अपार कष्टों तथा अपमानों को सहकर भी इस अवसर पर उन्होंने सरकार अथवा अन्य किसी व्यक्ति के विरुद्ध लेशमात्र भी कटुता व्यक्त नहीं की और न ही इस अवसर को उन्होंने अपने प्रचार का साधन बनाया। अत्यंत धैर्यपूर्वक तथा हिमालय सदृश महानता से उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा, "संघ बंदी के इस मामले को अब यहीं समाप्त कर दीजिये। जिनके बारे में लगता हो कि उन्होंने आप पर अन्याय किया है,

उनके प्रति मन में कटुता का अंश भी मत आने दीजिये। दाँत यदि जीभ को काट ले या टाँग टाँग से लड़ पड़े तो हम न तो उन दाँतों को उखाड़ फेंकते हैं, और न ही पैर को काट डालते हैं। जिन्होंने हम पर अन्याय किया वे भी अपने ही हैं। अतः बीती को बिसारकर हमें क्षमाशीलता प्रकट करनी चाहिये। नींद पूरी करके जागने वाला व्यक्ति और अधिक उत्साह से काम में जुट जाता है, उसी भांति हमें भी समाज की विभेदकारी, संकुचिततापूर्ण तथा अन्य परिस्थितियों को दूर करने के लिए दूने उत्साह से उसी कार्य का प्रारंभ करना चाहिये जिसे हम पहले भी कर रहे थे। यह कार्य करते समय किसी के प्रति अपने मन में द्वेषबुद्धि उत्पन्न नहीं होने देना चाहिये।"

सर्वत्र अपने भाषणों में यही विचार उन्होंने प्रकट किये। इसके साथ ही देश की चिन्ताजनक परिस्थिति का चित्रण करते हुए संघ को जो कार्य करना है, उसकी स्पष्ट और विधायक भूमिका भी प्रस्तुत की। स्वयंसेवकों पर आघात करनेवाले स्वकीयजन ही थे, यह बताते समय वे कहते थे कि "अगर यही आघात किसी परकीय या विदेशी ने किये होते तो संघ की शक्ति का अनुभव जरूर करा दिया जाता। अखिर हमने भी अपनी माँ का दूध पिया है इसकी अनुभूति तो उसे करा दी जाती।" समाज और राष्ट्र का चित्र बदलना हो तो भारतीय संस्कृति के गुणों को अंगीकृत कर संगठित होना पड़ेगा- यही संघ का मूल विचार वे बार-बार प्रतिपादित करते रहे। उन्होंने लोगों का ध्यान भारत की आध्यात्मिक प्रकृति की ओर आकृष्ट किया। उनके उद्-गारों से यह बात स्पष्ट हो जाती थी कि इस सारे स्वागत या सम्मान को वे गोलवलकर नामक किसी व्यक्ति का स्वागत या सम्मान नहीं मान रहे हैं। वैसा भाव उनके मन को छू भी नहीं पाया था।

श्री गुरुजी के इस प्रवास के दौरान पंजाब के सोनीपत का एक प्रसंग उल्लेखनीय है। वहाँ एक स्वयंसेवक ने भावावेश में आकर "श्री गुरुजी अमर रहें"- 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अमर रहे' इस प्रकार के नारे लगाये। जिस स्वयंसेवक ने ये नारे लगाये उसे गुरुजी ने रोका और अपनी नाराजगी व्यक्त की। बाद में श्री गुरुजी ने कहा, "किसी भी व्यक्ति अथवा संगठन के सम्बन्ध में ऐसे नारे नहीं लगाये जाने चाहिए क्योंकि कोई भी व्यक्ति अथवा संगठन कभी अमर नहीं होता, केवल राष्ट्र ही चिरंजीवी अथवा अमर हो सकता है। अतः नारा लगाना हो तो 'भारत माता की जय' यही एक मात्र उद्-घोष हमारा होना चाहिये।" किसी व्यक्ति या संस्था की नहीं बल्कि सभी को अपने राष्ट्र की भक्ति और सेवा उत्कटता से करनी चाहिए यही उनकी एकमात्र आकांक्षा थी। गीता के तेरहवें अध्याय में क्षेत्रज्ञ-लक्षणों का जो विवरण है, उसमें पहला ही लक्षण- 'अमानित्व' बताया गया है। श्री गुरुजी के जीवन में इसी का दर्शन होता है। किसी स्थान पर व्यक्ति के नाते अपना स्वागत किया जा रहा है, इसकी कल्पना मात्र से वे

व्यथित हो उठते। संघ प्रसिद्धि से सदा दूर रहा और इस प्रसिद्धि पराङ्गमुखता का गलत अर्थ भी लगाया गया। प्रसिद्धि से दूर रहनेवाला कोई कार्य गुप्त ही हो सकता है- यही समीकरण बिठाने का प्रयास होता रहा। तब राजधानी दिल्ली और अन्यत्र भी श्री गुरुजी ने प्रसिद्धि पराङ्गमुखता की संस्कृतिक भूमिका लोगों को समझाकर बताई। स्वागत करने हेतु जुटी भीड़ को वे यही बताते कि 'यह जो स्नेह आप बरसा रहे हैं, वह संघ पर ही है। संघकार्य की यही महत्ता है। अतः इसी (संघ) कार्य से देश का चित्र बदलेगा इस अपेक्षा से यह स्नेह अब सक्रिय सहयोग में रुपान्तरित होना चाहिये।'

११.१ प्रखर राष्ट्रीय दृष्टि

इस प्रगट चिन्तन में श्री गुरुजी को जनमानस में उभरे और एक नये प्रश्न के कारण संघ की सम्पूर्ण विचारधारा को ही नये संदर्भ में स्पष्टता के साथ प्रस्तुत करना पड़ा।

श्री गुरुजी जब कारागृह में थे उन्हीं दिनों उनसे यह प्रश्न किया गया था कि जब मुसलमानों को उपना एक प्रदेश काटकर दे दिया गया और हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों या दंगों का मूल कारण ही नष्ट हो चुका है, तब संघ की क्या आवश्यकता रह गई है? वस्तुतः यह प्रश्न अनावश्यक था, फिर भी संघ के वास्तविक स्वरूप को समझाने के लिए निमित्त रूप में श्री गुरुजी ने इस प्रश्न का उचित उपयोग कर लिया। संघ के सम्बन्ध में उस समय और आज भी अनेक बुद्धिजीवी-विचारशील माने जानेवाले लोग यह भ्रान्त धारणा पाले हुए है कि संघ मुस्लिम-द्वेष्टा या मुस्लिम-विरोधी है और मुस्लिमों का अनावश्यक आतंक अपनी शक्ति के बल पर रोकनेवाली संस्था है। देश विभाजन के बाद चारों ओर अशांति और तनावपूर्ण वातावरण में भी श्री गुरुजी ने इस प्रश्न पर अत्यंत संतुलित विचार व्यक्त किये थे। श्री गुरुजी द्वारा इस प्रश्न के उत्तर में व्यक्त विचार स्पष्ट और मूलगामी थे कि उनका यहाँ थोड़ा विस्तार से उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा। श्री गुरुजी ने कहा, "जिन्होंने मुझसे यह प्रश्न पूछा है उन्हें मैंने स्पष्ट बताया है कि आपका यह दृष्टिकोण ही पूर्णतः गलत है। पहली बात तो यह है कि संघ किसी के साथ संघर्ष करने अथवा संघर्ष का प्रतिकार करने के लिए खड़ा नहीं हुआ। दूसरी बात यह है कि राष्ट्रीय चारित्र्य निर्माण करने के संघ के प्रमुख कार्य की ओर आपका ध्यान नहीं गया है। शारीरिक संघर्ष का मुकाबला करने के लिए सामर्थ्य खड़ा करने की जहाँ तक बात है, उसके लिए देश में अखाड़े, व्यायामशालाएँ आदि संस्थाएँ हैं ही। उनके द्वारा वह कार्य हो सकता है। इस एक मामुली काम के लिए इतना बड़ा राष्ट्रव्यापी संगठन खड़ा करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। पर क्या

अपने समाज का केवल यही दुःख है? अपने समाज का गहराई से निरीक्षण करने के बाद अपने ध्यान में आयेगा कि राष्ट्रीय-चारित्र्य सम्पन्न नागरिक निर्माण करने की जिम्मेदारी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने प्रारम्भ से ही ग्रहण की है। यह कार्य कभी समाप्त नहीं होता। वह अखंड चलता रहता है। वर्तमान पीढ़ी को जैसी उसकी आवश्यकता होती है उसी प्रकार वह आनेवाली पीढ़ियों के लिए भी होती है। भारत का प्रत्येक व्यक्ति अपने देश के लिए प्रयत्न करने में संलग्न है ऐसा दृश्य हमेशा दिखाई देना चाहिये। इसलिये संघ का कार्य परिस्थिति-निरपेक्ष है। हाथ में लाठियाँ लेकर गुंडों के समान इधर-उधर घूमना या जातीय दंगे भड़काना कदापि संघकार्य नहीं है!"

"विश्व शांति भी हमारे सामने लक्ष्य है। वह तो हमारा जीवन-कार्य है और वह हमें पूरा करना चाहिए। आध्यात्मिक जीवन के आधार पर विश्व को शांति का पाठ देना और सम्पूर्ण मानव-समूह में एकता का भाव निर्माण करना हमारा सच्चा कार्य है । परंतु यह कब संभव होगा? जब हम अपने सांस्कृतिक जीवन का तत्वज्ञान आत्मसात् कर चारित्र्यसम्पन्न करोड़ों लोगों को एक सूत्र में गूँथकर उन्हें उच्च ध्येय की प्राप्ति के लिए कटिबद्ध करने में सफल होंगे।"

ब्रिटिश राजसत्ता का अंत, देश का दुर्भाग्यशाली विभाजन, तीन वर्षों में ही स्वतंत्र भारत की चिंताजनक स्थिति और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की नये संदर्भ में भूमिका आदि के बारे में बदलती परिस्थिति के अनुसार श्री गुरुजी को काफी कुछ कहना पड़ा। केवल स्वयंसेवकों के समक्ष ही नहीं, सम्पूर्ण समाज के बीच भी कहना पड़ा। इस संवाद का प्रारंभ हमें उनके इस प्रवास में स्थान-स्थान पर दिये गये भाषणों में ही परिलक्षित होता है। महात्मा गांधी की हत्या, देशभर में हुई इस दुर्घटना की प्रतिक्रिया, संघ पर सरकार का अन्यायकारी रोष, सर्वत्र बढ़ती हुई आदर्शहीनता और इस कारण राष्ट्रीय प्रगति के मार्ग में उत्पन्न होनेवाली बाधाएँ देखकर श्री गुरुजी का मन अत्यंत व्यथित हो उठा था। व्यक्तिगत मान-अपमान अथवा गौरव समारोहों में उन्हें जरा भी रुचि नहीं थी। प्राप्त अवसर का लाभ उठाकर अपने इस भारत-भ्रमण में लोगों के समक्ष प्रखर राष्ट्रीय विचार रखने काही उन्होंने प्रयास किया। उनके भाषणों में यह विश्वास प्रकट होता था कि संघ के मार्ग से ही देश में स्थिरता, वैभव और प्रतिष्ठा की प्राप्ति की जा सकेगी।

उत्तर भारत के प्रवास में दि. ३० अगस्त को दिल्ली के वास्तव्य में श्री गुरुजी ने प्रधानमंत्री पं. नेहरु से भेंट की। संघ पर से पाबन्दी हटने के बाद प्रधानमंत्री के साथ संघ नेता की यह प्रथम भेंट थी। स्वाभाविकतया उसका स्वरूप औपचारिक रहा। किंतु

इसके बाद पुनः २३ सितम्बर और २९ नवम्बर को दो बार श्री गुरुजी पं. नेहरु से मिले। ये दोनों भेंट-वार्ताएँ लम्बी चलीं। दोनों नेताओं ने देश की परिस्थिति सम्बन्धी अपने-अपने विचारों का आदान-प्रदान किया। श्री गुरुजी ने संस्कृति और राष्ट्रवाद, अहिन्दुओं का राष्ट्रजीवन में स्थान, संघकार्य का स्वरूप और उद्येश्य, सहिष्णुता, अहिंसा इत्यादि विषयों पर मुक्त हृदय से अपने विचार व्यक्त किये तथा नेहरु जी के प्रश्नों के उत्तर दिये। इन भेंट-वार्ताओं के बावजूद दुर्भाग्य से पं. नेहरु का मन संघ के प्रति स्वच्छ नहीं हुआ और वे संघ पर हमेशा फासिस्ट और साम्प्रदायिकता का आरोप लगाते ही रहे। बाद के कालखंड में पं. नेहरु के साथ भेंट करने का कोई अवसर नहीं आया क्योंकि स्वयं पं. नेहरु ही गुरुजी से मिलना नहीं चाहते थे।

इन्हीं दिनों पं. नेहरु द्वारा संघ का विरोध व्यक्त करनेवाली एक महत्वपूर्ण घटना हुई, जो संघ और कांग्रेस के बीच के सम्बन्धों की दृष्टि से सुदूरपरिणामी ,सिद्ध हुई। घटना यौं रही कि सरदार पटेल की इच्छानुरूप कांग्रेस के ही कुछ नेताओं ने संघ स्वयंसेवकों के लिए कांग्रेस के द्वार खुले करने की दिशा में हलचल प्रारंभ की। इस मुद्दे को लेकर कांग्रेस में दो गुट निर्माण हुए। राजर्षि टंडन और पं. द्वारिकाप्रसाद मिश्र स्वयंसेवकों के कांग्रेस-प्रवेश का खुला समर्थन करने लगे। गुजरात के श्री ओंकारप्रसाद ठाकुर ने तो टंडन जी के मत का समर्थन करते हुए एक लेख भी प्रकाशित किया। इस लेख में उन्होंने कहा था कि “अगर संघ के अनुशासित स्वयंसेवक कांग्रेस में आ जायें तो कांग्रेस की सारी गंदगी हट जाएगी।” जिस समय यह चर्चा चल रही थी उन दिनों पं. नेहरु विदेश यात्रा पर गये हुए थे परन्तु उनके वापस लौटने पर कांग्रेस कार्यकारिणी ने एक प्रस्ताव पारित किया। इस प्रस्ताव में कहा गया था कि “संघ के स्वयंसेवक यदि चाहते हों तो वे कांग्रेस में शामिल हो सकते हैं। किन्तु कांग्रेस में शामिल होने के बाद वे कांग्रेस सेवादल के अलावा अन्य किसी भी स्वयंसेवी संगठन में भाग नहीं ले सकेंगे।” पं. नेहरु की उपस्थिति में पारित इस प्रस्ताव का अर्थ स्पष्ट था कि संघ के संविधान में भले ही स्वयंसेवकों को यह छूट दी गई हो कि वे हिंसा में विश्वास या देशबाह्य निष्ठा न रखनेवाले किसी भी राजनीतिक दल में भाग ले सकते हैं, फिर भी कांग्रेस का आग्रह यही रहा कि कांग्रेस में आना हो तो संघकार्य को तिलांजलि देनी होगी। इस प्रकार संघ स्वयंसेवकों के लिए कांग्रेस के दरवाजे बन्द कर दिये गये।

११.२ भीषण घड़ी में शांति की मूर्ति

संघ के प्रति द्वेषभाव रखनेवाले कुछ लोगों ने इस ‘स्वागत-पर्व’ में उपद्रव मचाने के प्रयास भी किये। मिरज, कोल्हापुर, सांगली आदि क्षेत्रों में पथराव, हुल्लड़बाजी और श्री

गुरुजी को चोट पहुँचाने के लिए किये गये प्रयासों का विशेष रूप से उल्लेख करना होगा। कोल्हापुर में तो भीषण प्रसंग टल गया। श्री गुरुजी जैसेही कोल्हापुर में पहुँचे तो संघ विरोधियों ने उनके विरुद्ध नारेबाजी, पुतले जलाना, उन्हें हमलावर भीड़ के घेरे में फँसाने का प्रयास करना आदि कृत्य किये। किंतु श्री गुरुजी की भावमुद्रा यह थी मानों उन्हें इसकी कुछ भी कल्पना या जानकारी नहीं है। अत्यंत तनावपूर्ण वातावरण में भी धीर गंभीर और शांत रहते हुए वे सारे कार्यक्रम निर्धारित समय पर तत्परता से पूर्ण करते रहे। कोल्हापुर में देवी के दर्शन भी वे कर आये। बाद में कोल्हापुर से सांगली का प्रवास था। शासकीय अधिकारियों ने श्री गुरुजी को लोहे की जालियोंवाली गाड़ी में बिठाकर कोल्हापुर की सीमा तक सुरक्षित पहुँचाया। इस गाड़ी पर भी पथराव हुआ जिनमें बड़े-बड़े पत्थरों का प्रयोग किया गया था।

कोल्हापुर से सांगली तक का प्रवास श्री गुरुजी ने प्रसिद्ध सिने निर्माता एवं निर्देशक श्री भालजी पेंढ़रकर की गाड़ी में किया। हमेशा की भांति वे सामने की ओर ड्राइवर के बाजूवाली सीट पर बैठे। श्री बाबाराव भिड़े भी पिछली सीट पर बैठे थे। मार्ग में मिरज की ओर से आनेवाली एक सड़क कोल्हापुर-सांगली मार्ग से आकर मिलती है। वहाँ कुछ स्वयंसेवक साइकिल से यह खबर देने के लिए पहुँचे थे कि आगे सांगली के निकट उपद्रवकारी भारी संख्या में खेतों में छिपकर बैठे हैं जिनका गुरुजी की गाड़ी रोककर उनपर हमला करने का इरादा है। इन स्वयंसेवकों ने यह सुझाव दिया कि श्री गुरुजी की गाड़ी (कार) को सामने नहीं रहना चाहिए। उस कार के आगे स्वयंसेवकों से भरी एक बस चले और उसके पिछे श्री गुरुजी की कार। किन्तु श्री गुरुजी ने इस सुझाव को ठुकराते हुए कहा- "नहीं, कार ही आगे रहेगी, आप लोग व्यर्थ में चिन्ता कर रहे हैं। कुछ नहीं होगा" और श्री गुरुजी की गाड़ी आगे बढ़ी। कार आते देख छिपकर बैठे उपद्रवकारी कार को रोकने के लिए सड़कों पर आने लगे। किन्तु श्री बाबाराव ने ड्राइवर को स्पष्ट सूचना दे रखी थी कि कार तेजी से चलाना और किसी भी परिस्थिति में रोकना नहीं। उपद्रवकारी भीड़ यह समझ बैठी थी कार भीड़ देखकर गति धीमी करते हुए आखिर रुकने के लिए विवश होगी। किन्तु भीड़ को देखते ही श्री बाबाराव ने पुनः ड्राइवर को सूचना दी कि तेज गति से चलो और बिना रोके गाड़ी को आगे बढ़ाओ। ड्राइवर ने वैसा ही किया। गाड़ी की गति और तेज कर दी। जैसे-जैसे गाड़ी निकट आने लगी हमलावर भीड़ प्राण बचाने सड़क के दोनों किनारों पर हट गई और उनके बीच से कार सुरक्षित रूप से निकल गई! हमलावर देखते ही रह गये। उन्हें हमला करने का मौका नहीं मिल पाया। इस सारे काल में जब कार व बस में बैठे सभी लोग स्वाभाविक रूप से अत्यन्त तनावग्रस्त थे, श्री गुरुजी शान्तता की प्रतिमूर्ति बने बैठे रहे।

सांगली में श्री गुरुजी की सुरक्षा की सारी तैयारियाँ की गई थीं। जैसे ही वे सांगली पहुँचे, श्री गुरुजी को सुरक्षित देखकर चिंतामग्न कार्यकर्ताओं ने राहत महसूस की। सांगली में भी पथराव, नारेबाजी की कुछ घटनाएँ हुईं किन्तु सभी कार्यक्रम योजनानुसार सम्पन्न हुए। सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए श्री गुरुजी ने तनावपूर्ण परिस्थिति और उपद्रवों का उल्लेख तक नहीं किया और न हीं उनके चेहरे पर चिंता की झलक ही दिखाई दी। सांगली की स्वागत सभा में भी उन्होंने संघ का विधायक विचार प्रतिपादित किया। श्री गुरुजी की धीरोदात्तता और निर्भयता का यह दर्शन कार्यकर्ताओं के लिए विलक्षण परिणामकारी तथा संस्मरणीय रहा।

कोल्हापुर-सांगली की इन घटनाओं से श्री गुरुजी व्यथित अवश्य हुए किन्तु मन की शांति और संतुलन को उन्होंने ढहने नहीं दिया। मन में किसी के प्रति क्रोध की भावना प्रवेश नहीं कर पायी और न ही इन घटनाओं के लिए उन्होंने किसी पर दोषारोपण किया। इस घटना पर आगे चल कर 'पुरुषार्थ' मासिक में अपने लेख में उन्होंने कहा- "जिन्हें अपना मान कर गले से लगाना है, जिनकी सेवा करना है वह यही अपना समाज है। वह चाहे तो फूलों की माला पहिनाए या जूतों की! वह प्रशंसा करे या निंदा, गालियाँ दे या कुछ भी करे, आखिर है तो वह अपना ही। हमारी परीक्षा लेने के लिए वह अनेक बार अच्छा-बुरा बर्ताव करता है; किन्तु वह तो केवल परीक्षा ही है। वास्तव अंतःकरण से वह अपना ही है। वह अपने साथ आयेगा। इतना ही नहीं तो अपनी अलौकिक निष्ठा के कारण अपना अनुयायी बनकर हमेशा हमारे पीछे चलेगा। समाज परमेश्वर का ही रूप है और परमेश्वर ने कह रखा है कि मैं अपने भक्तों का दास हूँ। आवश्यकता है हम अपने आपको सच्चे भक्त के रूप में प्रस्तुत करें।"

११.३ लक्ष्य पर सतत दृष्टि

श्री गुरुजी ने आध्यात्मिक परम्परा प्राप्त हिन्दुओं की भक्ति-भावना को सामाजिक-कर्तव्यपूर्ति की दिशा में मोड़ने का अखंड प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने अपने सेवामय जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया। संघबंदी के विपरीत कालखंड में अथवा संघबंदी हटने के बाद विजयोल्लास के 'स्वागत-पर्व' में उन्होंने अपने चित्त का संतुलन और समत्व कभी भी ढहने नहीं दिया। इन तात्कालिक बातों में न फँसते हुए संघ के वास्तविक जीवनकार्य की ओर स्वयंसेवकों तथा समाज का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास सभी उपलब्ध अवसरों तथा माध्यमों से उन्होंने किया।

स्वागत समारोहों की सर्वत्र धूम चल रही थी फिर भी दैनंदिन चलनेवाली शाखाओं तथा स्वयंसेवकों पर उचित संस्कारों की व्यवस्था पुनः ठीक ढंग से खड़ी करने की आवश्यकता श्री गुरुजी अनुभव कर रहे थे।

साथ ही कार्यकर्ताओं के मन में उठ रहे प्रश्नों पर श्री गुरुजी ने बहुत गम्भीरता और गहराई से विचारमंथन किया। वे अनुभव कर रहे थे कि कार्यकर्ताओं के मन में संघ-विचार एवं संघ की कार्य-पद्धति के प्रति उत्कट श्रद्धा पुनः स्थापित करना आज की पहली आवश्यकता है। इसलिए १९४९ के अक्तुबर माह में जब कुछ दिनों तक उनका वास्तव्य नागपुर में था, तब कार्यकर्ताओं के समक्ष लगातार पाँच दिनों (दि. १९ से २२) तक उन्होंने अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किये। इस विचार मंथन का प्रयोजन बताते हुए श्री गुरुजी ने कहा- "अनेकों के अन्तःकरण में यह शंका आती है कि अपने देश की परिस्थिति को देखते हुए पूर्व-पद्धति से काम करने की कुछ आवश्यकता है या नहीं? इसका हमें अवश्य विचार करना चाहिए।"

नागपुर के कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन करने के पश्चात् श्री गुरुजी उत्तर भारत के प्रवास पर निकले और वहाँ प्रचारकों के अनेक शिबिरों में इन प्रश्नों पर अपने विचार खुलकर रखे। उत्तर प्रदेश में जौनपुर और सीतापुर में आयोजित प्रचारक शिबिरों में श्री गुरुजी द्वारा प्रस्तुत विचार उसी समय लखनऊ से 'ध्येय दर्शन' नामक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुए।

इन बौद्धिक एवं चर्चा सत्रों में राजसत्ता और राजनीति की सीमाओं को स्पष्ट करते हुए श्री गुरुजी ने कहा, "राजनीति जीवन का अल्पतम अंग है, जीवन को व्याप्त करनेवाला साधन नहीं। कई लोगों के मन में विचार आया कि 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार तो जनता के मन के ऊपर प्रभाव करने के लिए सत्ता लेना ही चाहिए। किन्तु आजकल तो जनतंत्र का जमाना है। अब तो 'यथा राजा तथा प्रजा' हो गया है। प्रजा दुर्बल है तो राजा भी दुर्बल होगा। प्रजा यदि भयातुर, विश्वासहीन, चरित्रहीन तथा अभारतीय तत्वों से प्रेम करनेवाली होगी तो राजा भी वैसा ही होगा। अतः सत्य तो यह है कि प्रजा के अधिष्ठान पर राजा का निर्माण हो, न कि राजा की सत्ता के आधार पर प्रजा के मार्गदर्शन का विचार।"

आसेतु हिमाचल हिन्दु संगठन की आवश्यकता पर बल देते हुए श्री गुरुजी ने कहा कि हमारा समाज अभी भी जाति भेद और प्रान्त भेद का शिकार है, असंगठित है, दुर्बल

है, आत्मविस्मृति में डूबा हुआ है। उसमें स्वार्थ भरा हुआ है। जब तक वह राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत और चारित्रवान नहीं होगा तब तक जनतंत्र सफल कैसे होगा? राजसत्ता प्रभावी कैसे होगी?

उन्होंने कहा कि राष्ट्रभक्त समाज के निर्माण का कार्य केवल राजनीति से नहीं होगा। राष्ट्र संस्कृति से बनता है। विशुद्ध संस्कृति को सामने रखकर उसे अधिक से अधिक तेजस्वी बनाकर, शुद्ध कर, भिन्न-भिन्न भ्रमात्मक विचारों को हटाकर शुद्ध राष्ट्र कल्पना के आधार पर विशुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण से समाज और राष्ट्र के उत्थान का जो कार्य हमने लिया है, उसे ही संस्कृति कहा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की राजनीति के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए श्री गुरुजी ने कहा कि, "सभी संस्थाएँ समाज के भेदों को उभाड़ कर अपनी रोटी पर ही अधिक घी चुपड़ने की इच्छा से भिन्न्ता को बढ़ाने की कोशिशों में लगी हैं। नयी-नयी भिन्नताएँ पैदा करती जा रही हैं।.... अखिल भारतीय नेतृत्व के दावेदार भी इन भेदों से ऊपर नहीं उठ पाये हैं।"

श्री गुरुजी ने प्रश्न किया कि जब देश में व्यक्तिगत और राष्ट्रीय चारित्रहीनता है, तब तक परिवर्तन कैसे होगा? राष्ट्र के चारित्रिक पतन के लिए दलगत राजनीति को उत्तरदायी ठहराते हुए उन्होंने कहा कि 'सर्व साधारण रीति से चारित्र्य जो दिखाई नहीं देता उसका कारण यह है कि लोग विचार करते हुए किसी न किसी दल की दृष्टी से विचार करते हैं, चाहे वह राजनीतिक हो या आर्थिक। वे दल की महत्ता को ही अधिक मानकर उसको बढ़ाना और उसी के द्वारा राष्ट्र का कल्याण करना चाहते हैं। राष्ट्र के लिए भला-बुरा क्या होगा इसका विचार नहीं करते। लोग चुनावों में देश का भला करने के भाव से नहीं, दलगत स्वार्थ लेकर आते हैं। आज जीवन के सभी क्षेत्रों में आसेतु हिमाचल फैले हुए राष्ट्र के बारे में पूर्ण कल्पना नहीं है। सेवा की सम्पूर्ण प्रवृत्ति भी दलगत स्वार्थ में फँस गई है। दलीय स्वार्थ और अनुशासन ही सम्मुख रह जाता है। ...दल बनाकर दलगत स्वार्थ से ऊपर उठने की बात असम्भव है।'

सुसंगठित चरित्रवान जीवन की आवश्यकता को सर्वोपरि बताते हुए श्री गुरुजी ने कहा, 'चरित्र या स्नेह का आधार एकात्मता है..... एकात्मता का भाव ही सुसंगठित रूप दे सकेगा। संस्कृति को राष्ट्र की आत्मा जानकर उसे ही हम जगाना चाहते हैं। इसके लिए सत्ता की आवश्यकता नहीं। इतिहास बताता है कि सत्ता के कारण बनी एकता

शीघ्र नष्ट हो जाती है। मनुष्य के अन्दर श्रेष्ठ जीवन उत्पन्न करने का कार्य सत्ता के द्वारा नहीं हो सकता।'

"राजसत्ता के ऊपर हमारा जीवन निर्भर होता तो परकीयों के आक्रमण होते ही हम समाप्त हो जाते। जब तक हम इस सांस्कृतिक धारा को जागृत रख सकेंगे तब तक जीवित रहेंगे।...प्रजा यदि संस्कृति को मानती है तो भला और किसका राज्य हो सकता है? अतः सम्पूर्ण प्रजा को सांस्कृतिक आधार पर सुसंगठित करने से कार्य होगा। हम तो राष्ट्र में अपनी संस्कृति के आधार पर चेतना उत्पन्न करते हुए उसके कल्याण की ही कामना करते हैं। हममें से किसी को मंत्री बनने की इच्छा तो है नहीं। भारत में चलनेवाले प्रत्येक कार्य पर यदि हम अपना रंग चढ़ाना चाहते हैं तो हमें इस ठोस चिरंतन कार्य को ही अपनाना चाहिए। जैसे सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा प्रकाशित होता है उसी प्रकार प्रजा के प्रकाश से ही सत्ता को जीवन, प्रकाश और प्रभाव मिलता है। सूर्य के अन्दर की प्रभावान चैतन्ययुक्त शक्ति के समान हम प्रजा के सर्वस्व, उसकी आशा आकांक्षा के मूर्त रूप बनें। फिर उसके प्रकाश से चमकनेवाली सत्ता और कौन सा प्रकाश दे सकेगी?"

संघ कार्य की मूल भूमिका का स्मरण दिलाते हुए श्री गुरुजी ने कहा, "अपना कार्य तो मूर्तिकार का है जहाँ राष्ट्रात्मा पूर्ण प्रभाव से प्रकाशित है। यह कार्य विघटनकारी पद्धतियों का गुलाम बनकर नहीं हो करता। विच्छिन्नता के स्थान पर एकात्मता उत्पन्न कर, अराष्ट्रीयता के स्थान पर राष्ट्रीयता जागृत कर, अभारतीयता के स्थान पर भारतीयता का मंत्र पिलाकर हमें नव चैतन्य परिपूर्ण समाज का निर्माण करना है। आज हमारी सारी समस्याएँ स्वार्थ के कारण हैं।...बड़े-बड़े व्यक्ति भाषा, प्रान्त, पंथ, मत का अभिमान रखते हैं और अखिल भारतीय नेता कहलाते हैं। किन्तु हमारे यहाँ बच्चा भी कहता है कि यह सारा भारत मेरा है।"

अपनी ऋषि दृष्टि से भविष्य में झाँकते हुए उन्होंने कहा कि, "राष्ट्र का चैतन्य किसी न किसी रूप में प्रगट होगा ही। बीज बो दिया है वटवृक्ष अवश्य खड़ा होगा।" अब राष्ट्र जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संघ के स्वयंसेवकों द्वारा खड़े किये विशाल संगठनों ने संघ को अनेक शाखा-प्रशाखाओंवाले वटवृक्ष का रूप दे दिया है। श्री गुरुजी की भविष्यवाणी सत्य हुई है।

प्रतिबंधकाल के पश्चात् संघ की वैचारिक भूमिका को ठीक ढंग से प्रस्तुत कर कार्य के प्रति प्रखर प्रेरणा जागृत करने का जो कठिन कार्य कारावास से मुक्त होने के बाद श्री गुरुजी ने अत्यंत दूर-दृष्टि के साथ प्रारंभ किया, उसका यह श्रीगणेश ही है। इस कार्य के सम्बन्ध में आगे विस्तार से विचार किया जाना है, अतः यहाँ अधिक गहराई में जाने का मोह हमें टालना होगा। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अंग्रेजों की सत्ता समाप्त हो जाने के बाद परिस्थिति में हुए परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए स्वतंत्रता के सन्दर्भ में संघ की जो विचार प्रणाली श्री गुरुजी ने उस कालखंड में असंदिग्ध रुप से प्रतिपादित की, उसी आधार पर आज संघ खड़ा है। उसी जीवन-रस का पान कर संघ का वट-वृक्ष विस्तारित हुआ है।

*

१२ आपदग्रस्तों के आशा स्तंभ

सन् १९५० का पुर्वार्ध। देश का विभाजन होकर तीन वर्ष बीत चुके थे। इन तीन वर्षों के कालखंड में पश्चिम बंगाल राज्य का दौरा करते समय श्री गुरुजी ने जो देखा, सुना तथा प्रत्यक्ष अनुभव किया, उसके फलस्वरुप वे बहुत ही व्यथित हुए थे। अपने बंधुओं की दुखद अवस्था देखकर उनका हृदय द्रवित हो उठा था। सामाजिक समरसता उनके हृदय का स्थायी भाव होने के कारण वे बहुत ही दुःखी हुए थे।

भारतीय नेताओं ने पाकिस्तान के निर्माण की सन्धि करते समय अपने हिन्दू बंधुओं के भविष्य का तनिक भी विचार नहीं किया। अनिश्चित आशावाद पर ही वे निर्भर रहे। जो हुआ, वह कभी होगा नहीं, यही उनकी मनोधारणा थी। किन्तु यह धारणा गलत सिद्ध हुई। पश्चिम पाकिस्तान से विस्थापित हिन्दुओं के विशाल जत्थे बाढ़ की भांति आए और उनकी संपूर्ण व्यवस्था में संघ ने भरसक प्रयत्न कर अपना संपूर्ण सहयोग प्रदान किया। पूर्व पाकिस्तान में लगभग डेढ़ करोड़ हिन्दू शेष थे। उन्हें घोर यातनाएँ दी जा रहीं थीं। परिणामतः हिन्दुओं का जीवन इतना असुरक्षित हुआ और अत्याचार इस हद तक पहुँचा कि लाखों हिन्दू बेघर होकर आत्मरक्षा हेतु पश्चिम बंगाल में आ पहुंचे। असीम यातनाओं से उन्हें संघर्ष करना पड़ा।

१२.१ जनशक्ति को आवाहन

भारत सरकार की दृष्टि से वे निर्वासित 'विदेशी' थे, शरणार्थी थे। पाक शासित प्रदेश में उनके लिए दो ही विकल्प थे- धर्मान्तर या मृत्यु। किन्तु उन्होंने हिन्दू के नाते ही जीने का निश्चय किया था। इस कारण आपदाओं से जूझते हुए वे किसी तरह भारत में आ पहुँचे। आश्चर्य की बात यह थी कि अपनी सरकार न तो उनकी सुरक्षा का प्रयास कर रही थी, न ही आबादी की अदला-बदली का विचार उसके मन में उभरता दिखाई दे रहा था। कितनी घोर विड़ंबना थी यह!

ये वे लोग थे जिनसे स्थानान्तरण के बारे में न पूछा गया, न ही उनकी कोई चिंता की गयी। बस, कलम की एक नोक से उन्हें उनकी मातृभूमि से वंचित कर दिया गया। जो कल स्वदेशीय थे वे आज परदेसी बना दिए गये। उनके जान-माल, इज्जत तथा स्वाभिमान कि हमारे नेताओं को कोई परवाह नहीं थी। इस गंभीर तथा उग्र समस्या का निवारण केवल सरकार ही कर सकती थी। सरकारी स्तर पर ही उसका

हल संभव था। किंतु केवल सरकार का मुँह ताकते हुए बैठना श्री गुरुजी को मान्य नहीं था। उन्होंने आवाहन किया कि समाज का भी उत्तरदायित्व है कि वह अपने विस्थापित-पीड़ित बन्धुओं की सहायता हेतु स्वयंप्रेरणा से अग्रसर होकर अपना कर्तव्य निभाए।

सेवा का यह कार्य करने के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तत्वावधान में 'वास्तुहारा सहायता समिति' का गठन किया गया। संघ के अकृत्रिम सामाजिक स्नेह भाव का यह एक स्वाभाविक आविष्कार था। विभाजन पूर्व तथा विभाजन के बाद जब भी राष्ट्रजीवन संकटग्रस्त रहा, संघ सदा ही सेवा कार्यों में अग्रसर रहा है। इस समय यही प्रेरणा कार्यान्वित हुई। श्री गुरुजी स्वयं इस प्रेरणा के स्त्रोत बने।

पूर्व पाकिस्तान स्थित हिन्दुओं की भीषण अवस्था से संबंधित एक निवेदन श्री गुरुजी ने तुरन्त प्रकाशित किया। इस निवेदन में समाज को अपने कर्तव्य का निर्वाह करने का आवाहन किया गया। श्री गुरुजी कलकत्ता से दिल्ली पहुंचे।

समय की पुकार को देखते हुए उन्होंने अविलंब राष्ट्र के नाम एक संदेश विनम्र निवेदन के रूप में प्रकाशनार्थ दिया। प्रस्तुत निवेदन में पाकिस्तान स्थित हिन्दुओं की दुरावस्था का वर्णन कर सहायता प्रदान करने का आवाहन किया गया था। ७ मार्च १९५० को यह निवेदन प्रकाशित किया गया। 'वास्तुहारा सहायता समिति' की स्थापना ८ फरवरी को ही हो गयी थी। श्री गुरुजी ने समिति के कार्यकर्ताओं को निःस्वार्थ सेवा का महामंत्र दिया था।

पश्चिम बंगाल, असम तथा उड़ीसा में संघ कार्य का स्वरूप बहुत सीमित था। यह समस्या गंभीर तथा राष्ट्रीय स्तर की थी और सरकारी सहायता की अपेक्षा रखनेवाली थी। इस कारण दिल्ली से प्रकाशित किये गये आवाहन में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि सरकार दुविधा की मनोवृत्ति त्याग कर ठोस तथा निर्णायक उपायों की योजना करें। इस आवाहन का एक अंश है-

"अनिश्चितता, दुविधा भरी मनोवृत्ति तथा दुर्बलता ही बढ़ती रहेगी तो डेढ़ करोड़ निष्प्राण निर्दोष भारतीयों के विनाश का पाप भारत सरकार के माथे पर होगा। सरकार की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जायेगी। अतएव सांप्रदायिकता के दल-दल में न फँसते हुए निर्भयता पूर्वक कदम उठाया जाय, समस्या चाहे पुलिस कार्यवाही की हो या हिन्दू-

मुसलमानों की जनसंख्या की अदला-बदली की। हिन्दुओं और भारत-निवासी मुसलमानों का बराबरी से (संख्या बल सापेक्ष) स्थानान्तरण हो, तदर्थ सुनिश्चित उपाय योजना शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वित की जाय जिसके फलस्वरूप हमारे सहोदर डेढ़ करोड़ हिन्दुओं की रक्षा हो सके तथा भविष्य में वे शांतिपूर्ण सुखमय जीवन व्यतीत कर सकें।"

"साथ ही मैं अपने देशवासियों से बिनती करता हूँ कि वे अपना क्षोभ, भावनोद्रेक संयमित ढंग से प्रगट करें। जिन गतिविधियों द्वारा शांति भंग होकर सरकार के मार्ग में अड़चनें, रुकावटें पैदा हो सकती हैं, उन्हें वर्जित करें। हमें चाहिए कि हम किसी भी असामाजिक, देश विघातक तथा अवांछनीय कृत्यों के शिकार न बनें।"

श्री गुरुजी के इस संदेशात्मक निवेदन पत्र को अखबारों ने खुले दिल से प्राथमिकता देकर प्रकाशित किया। इसके पश्चात् नागपुर पहुंचने पर दि. १४ मार्च को श्री गुरुजी ने उपर्युक्त आशय का एक लिखित आवाहन पुनः प्रकाशित किया जिसमें देशवासियों से विस्थापितों की सहायता के लिए हाथ बंटाने का आग्रह किया गया था। श्री गुरुजी के प्रत्येक शब्द में उनके हृदय की टीस, ममता तथा अपार स्नेह का भाव प्रगट हुआ था। तत्कालीन राष्ट्रीय समस्या की गंभीरता का परिचय इस निवेदन की विशेषता थी।

आम जनता को सतर्क करते हुए श्री गुरुजी ने कहा,

"यह तो सरकार की जिम्मेदारी है ऐसा सोचकर निष्क्रिय बैठे रहना भारतवासियों को शोभा नहीं देता। समाज को चाहिए कि वह संपूर्ण शक्ति के साथ सरकार का कार्यभार हलका करने में अपना हाथ बँटाए।"

सरकारी कामकाज में बाधा उत्पन्न करना श्री गुरुजी को कतई मान्य नहीं था। उनकी भूमिका सदैव सहायता की रही। प्रश्न चाहे विस्थापितों का हो या संघ पर लगे प्रतिबंध का, राज्य पुनर्रचना का हो या प्राकृतिक आपदाओं या विदेशी आक्रमण का, मात्र सरकार का विरोध करने का सूत्र उन्होंने कभी नहीं अपनाया। देशभक्ति, लोककल्याण तथा राष्ट्रीय एकात्मता का पोषण- इन निकषों पर आधारित उनका मार्गदर्शन रहा करता था।

पूर्व पाकिस्तान से आये निर्वासितों की करुण कहानियाँ दिल दहला देनेवाली थीं। उन्हें सुनकर आंतरिक पीड़ा का अनुभव होता था और ऐसे समय चित्त का प्रक्षुब्ध होना भी

स्वाभाविक ही था। फिर भी श्री गुरुजी उत्तेजित नहीं हुए। आपे के बाहर की जानेवाली आक्रामक प्रतिक्रियाओं को उन्होंने बढ़ावा नहीं दिया। वे बार-बार कहा करते थे कि हमें संयम के साथ विधायक दृष्टिकोण अपनाते हुए प्रश्नों का हल ढूँढ़ना चाहिए।

पूर्व भारत में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शक्ति कम थी। फिर भी संघ के स्वयंसेवकों ने निःस्वार्थ सेवाकार्य का एक अनूठा आदर्श समाज के सामने रखा। श्री गुरुजी द्वारा किये गये आवाहन का परिणाम स्वरूप समूचे देश के कोने-कोने से धन, वस्त्र, अनाज तथा जीविकोपार्जन के लिए आवश्यक वस्तुओं का प्रवाह वास्तुहारा सहायता समिति की ओर बहने लगा। पूर्व पाकिस्तान में अत्याचारों का तांता लगभग सालभर चलता रहा। विस्थापितों की बाढ़ पश्चिम बंगाल की दिशा में बढ़ती रही। इन विस्थापितों के लिए शिविरों का निर्माण कर उन्हें अन्न, वस्त्र, बर्तन आदि आवश्यकताओं की पूर्ति करना, उनके स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना, अर्थोत्पादन की सुविधाएँ उपलब्ध कराना, बालकों की शिक्षा के लिए पाठशालाएँ चलाना आदि कार्यकलाप समिति द्वारा अखंड रूप से चल रहे थे। पश्चिम बंगाल तथा असम में स्थित शिविरों में ८० हजार बंधुओं को आश्रय प्राप्त हुआ, डेढ़ लाख लोगों को वस्त्र दिए गये तथा १ लाख से अधिक लोगों के लिए अनाज और दूध का प्रबंध किया गया। इस कार्य में संघ के ५ हजार कार्यकर्ता दिन-रात जुटे हुए थे।

उपर्युक्त कालखंड की एक और उपलब्धि यहां उल्लेखनीय प्रतीत होती है। इन दिनों संघ पर से प्रतिबंध हटने के पश्चात् गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल देश-स्थिति पर विशेष चर्चा करने हेतु श्री गुरुजी से वार्तालाप किया करते थे। श्री गुरुजी उनके लिए विश्वासपात्र बने हुए थे। जब भी कोई विशेष घटना देश में होती, श्री गुरुजी अपनी राय तथा संघ की भूमिका से उन्हें अवगत कराते थे।

जब पूर्व पाकिस्तान से आए विस्थापितों का प्रश्न उग्र तथा प्रक्षोभक बना तब सारे देश में प्रतिक्रियाएँ प्रतिध्वनित होने लगीं। श्री गुरुजी ने सरदार वल्लभभाई पटेल को दि. ५ अप्रैल को जो पत्र लिखा उसमें उन्होंने कहा, “अपने देश में शांति भंग होना या परिस्थिति का लाभ उठाने के लिए सरकार के विरुद्ध भावनाएं भड़काना सर्वथा अनुचित होगा। शांति को बनाए रखना यही हमारी नीति है तथा इसी भाव को मन में धारण कर हम पीडितों की सेवा कर रहे हैं।”

दि. १२ अप्रैल को श्री गुरुजी दिल्ली पहुंचे। स्वयं श्री वल्लभभाई पटेल से मिलकर सहायता समिति के कार्यों से उन्हें अवगत कराया।

श्री वल्लभभाई पटेल यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने श्री गुरुजी से पूर्व भारत में संघकार्य का अधिक विस्तार करने का मानस व्यक्त किया

दि. ३० अप्रैल १९५० को दिल्ली के आनन्द पर्वत मैदान पर संघप्रेमी नागरिकों द्वारा श्री गुरुजी को १ लाख १ हजार १ सौ १ रू. की धनराशि संघकार्य के हेतु समर्पित की गयी। श्री महाशय कृष्ण इस कार्यक्रम के मनोनीत अध्यक्ष थे। उपस्थित गणमान्य नागरिकों को संबोधित करते हुए श्री गुरुजी ने कहा, “संघ को केवल पैसा देकर आत्मसंतुष्ट न रहें। स्वयं संघमय बनने का प्रयास करें।”

१२.२ असम में भूकम्प

वास्तुहारा सहायता समिति का काम करने में कार्यकर्ता गण व्यस्त थे। किन्तु उनकी सेवाशीलता की मानों परीक्षा लेने की निसर्ग को इच्छा हुई। दि.१५ अगस्त को असम में भूकम्प का जबरदस्त प्रकोप हुआ। प्रकृति के इस आकस्मिक प्रकोप ने असमवासियों को झिंझोड़ दिया। भूकम्प के कारण ब्रह्मपुत्र नदी का मार्ग ही बदल गया। इसके फलस्वरूप अनगिनत मकान धराशायी हो गये, जमीन में दस-बारह फीट चौड़ी दरारें बन गई, नदी पर बने पुल ध्वस्त हो गए। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी। करोड़ों रुपयों की हानि हुई।

सदैव के अनुसार अपने स्थायी सेवाभाव का स्मरण कर संघ के कार्यकर्ता सहायता करने हेतु दौड़ पड़े। ‘भूकम्प पीड़ित सहायता समिति’ की स्थापना की गयी। न्यायमूर्ति कामाख्याराम बरुआ इस समिति के अध्यक्ष थे। श्री गुरुजी ने पत्र भेजकर स्वयंसेवकों को अपनी संपूर्ण शक्ति दाँव पर लगाकर पीड़ितों की सेवा करने के लिए प्रोत्साहित किया। सितम्बर मास में श्री गुरुजी समिति के कार्य का अवलोकन करने के लिए असम पहुंचे। इस प्रवास के समय उन्होंने स्वावलंबन का संदेश समस्त असमवासियों को दिया।

“समाज यदि संगठित तथा अनुशासनबद्ध हो तो ही अनेक गंभीर संकटों का सामना वह कर पाएगा” श्री गुरुजी के मार्गदर्शन की यही दिशा थी। संकट की घड़ी आने पर

हर समय सरकार या बाहरी सहायता पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति उन्हें पसंद नहीं खी। साथ ही 'एक दल' के रूप में रहकर काम करना भी उन्हें स्वीकार नहीं था। उनकी यह कल्पना थी कि स्वयंसेवक समाज में घुलमिल कर, उसे साथ लेकर काम करें।

समिति के सहायता कार्यों की श्री गुरुजी ने प्रशंसा की। एक विशेष निवेदन प्रकाशित कर जिन स्वयंसेवकों ने बाढ़ से घिरे गांवों तक तैरते हुए पहुँचकर पीड़ित बंधुओं तक सहायता पहुँचाई, उसकी भूरु-भूरु प्रशंसा भी की। अपने प्राणों की परवाह न करते हुए स्वयंसेवकों का जुट जाना, समर्पित होना, अन्न,वस्त्र आदि के वितरण में अनुशासन का प्रदर्शन करना उन्हें बहुत आच्छा लगा। वे प्रसन्न थे।

१२.३ विभिन्न परिस्थितियों में

१९५० का वर्ष समाप्त होने के कगार पर था। इसी समय १५ दिसंबर को गृहमंत्री वल्लभभाई पटेल का दुःखद निधन हुआ। यह समाचार जब प्राप्त हुआ तब नागपुर में संघ के केन्द्रीय कार्यकारी मंडल की महत्वपूर्ण बैठक चल रही थी। स्व. वल्लभभाई पटेल के हृदय में संघ के प्रति जो स्नेहभाव था उससे सभी कार्यकर्ता परिचित थे। बैठक में शोक प्रस्ताव पारित कर बैठक समाप्त की गयी। श्री गुरुजी इस राष्ट्रपुरुष के प्रति अपना आदरभाव व्यक्त करने तथा उनके अन्तिम दर्शन हेतु मुंबई जाना चाहते थे। मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री पं. रविशंकर शुक्ल के साथ हवाई जहाज से वे मुंबई पहुंचे। संघ की ओर से श्री गुरुजी ने लौहपुरुष वल्लभभाई पटेल के पार्थिव शरीर पर पुष्पचक्र चढ़ाया। बाद में उन्होंने अपने शोक संदेश में कहा,

"श्री वल्लभभाई पटेल की मृत्यु देश पर हुआ एक असहनीय आघात है। हम लोग उनके प्रेमभाजन रहे हैं। इस कारण यह हमारा कर्तव्य है कि हम अपने देश को बलसंपन्न बनाकर अंतर्गत कलह तथा बाह्य आक्रमणों से देश की रक्षा करें। ऐसा दृढ़ संकल्प करना ही उनके प्रति सही श्रद्धांजलि सिद्ध होगी।"

कारावास से मुक्ति पाने के पश्चात् डेढ़ वर्ष का समय सर्वसामान्य रूप से बीता। जगह-जगह सत्कार होते तो कभी-कभार पत्थर भी बरसाए जाते। किन्तु श्री गुरुजी अविचल थे। सत्कार के फूल वे निर्विकार तठस्थ भाव से स्वीकार करते थे। साथ ही पत्थरों को भी फूल मानकर उनका स्वागत करने में उन्हें आनंद आता। प्राकृतिक आपदाओं से पीड़ित बांधवों की सेवा, संघकार्य का प्रसार तथा वैचारिक व संघटनात्मक प्रेरणा

देने का कार्य वे करते रहे। इन सभी कार्यकलापों का सूत्र एक ही था : अपने सांस्कृतिक आदर्शों की आधारकशिला पर अपने हिन्दू राष्ट्र को बलशाली, गुणसंपन्न तथा परम वैभव के शिखर पर विराजमान करना हमारा कर्तव्य है। साथ ही हमें दुखियों के दुःख का परिहार और राष्ट्रीय दायित्व के निर्वाह की क्षमता प्रदान कर लोगों को कार्य प्रवृत्त करना है।

१२.४ भारतीय जनसंघ का उदय

समाज पुरूष को ही केवल श्री गुरुजी ने अपना उपास्य देवता माना था। श्री गुरुजी जो भी करते उसमें उनका एक ही निश्चित मंतव्य रहा करता था- स्वयं को तथा संघ को राजनीति से, सत्ता स्पर्धा से दूर रखना। किंतु भारत का संविधान २६ जनवरी १९५० से कार्यान्वित हुआ। तदनुसार पहला आमचुनाव १९५२ में हुआ।

चुनाव नजदीक आने पर देश का वातावरण गर्म हो गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही राजनीति समूचे सार्वजनिक जीवन पर छा गयी। संघ के भीतर भी गम्भीर अन्तर्द्वन्द्व प्रारम्भ हो गया। भीतर और बाहर दोंनो ओर से श्री गुरुजी पर दबाव पड़ने लगे कि संघ को राजनीति में भूमिका निभानी चाहिए। प्रतिबन्ध काल में स्वयं सरदार पटेल ने इस बारे में काफी आग्रह किया था। किन्तु गुरुजी राजनीति से अलग रहने की अपनी भूमिका पर चट्टान की तरह अडिग रहे। प्रतिबन्ध उठने के बाद संघ के अनेक कार्यकर्ताओं के मन में भी यह प्रश्न उठा कि क्या राजनीति से अलग रह पाना संभव होगा? पिछले अध्याय में हम बता चुके हैं कि श्री गुरुजी ने ऐसे प्रश्नों का बहुत ही तर्कयुक्त समाधान करते हुए सत्ता और दल की राजनीति से अलग रहकर निष्काम सांस्कृतिक संगठन साधना की आवश्यकता का प्रतिपादन किया था।

किन्तु जीवन में सत्ता की भूमिका प्रभावी होती जा रही थी। कांग्रेस और केन्द्रीय सरकार में पं. नेहरु और सरदार पटेल के बीच वैचारिक दूरी बढ़ती जा रही थी। कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए नेहरु और पटेल के बीच छायायुद्ध में पटेल समर्थित प्रत्याशी राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने नेहरु समर्थित आचार्य कृपलानी को हरा दिया। इसके पूर्व पूर्वी पाकिस्तान में हिन्दुओं पर भारी अत्याचार होने पर लाखों की संख्या में हिन्दू शरणार्थी प. बंगाल में आ गये। इस प्रश्न पर भी नेहरु और पटेल का मतभेद उभर कर सामने आ गया। सरदार पटेल इन शरणार्थियों के पुनर्वास के लिए पाकिस्तान से भूमि मांगने के पक्षधर थे जबकि नेहरुजी ने पाकिस्तान के प्रधानमंत्री

लियाकत अली खान के साथ ८ अप्रैल १९५० को अत्यन्त अपमानजनक समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये जिसके विरोध में बंगाल के डॉ. शामाप्रसाद मुखर्जी और के.सी. नियोगी ने नेहरु मंत्रिमण्डल से त्याग पत्र दे दिया। ये दोंनो मंत्री सरदार पटेल की नीतियों के समर्थक थे। उनके हटने से सरकार में सरदार की स्थिति थोड़ी कमजोर हुई। किन्तु कांग्रेस संगठन पर उनकी पकड़ मजबूत थी। दूसरा प्रदर्शन कांग्रेस अध्यक्ष के चुनाव में हो गया। सरदार का स्वास्थ्य तेजी से गिर रहा था और १५ दिसम्बर १९५० को उनके निधन के साथ सरकार और संगठन दोनों पर नेहरुजी का निष्कंटक वर्चस्व हो गया। नेहरुजी की हठधर्मी के सामने पुरुषोत्तमदास टण्डन को अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देना पड़ा और पं. नेहरु प्रधानमंत्री के साथ-साथ काँग्रेस अध्यक्ष भी बन बैठे। द्वारिकाप्रसाद मिश्र जैसे कई पटेल समर्थक नेता खुले विद्रोह के रास्ते पर उतर आये।

तेजी से बदलते इस घटनाचक्र के कारण संघ के कार्यकर्ताओं का एक वर्ग एवं अन्य राष्ट्रवादी तत्व एक राष्ट्रवादी राजनीतिक दल की स्थापना की आवश्यकता तीव्रता से अनुभव करने लगे। इसी छटपटाहट में से मई १९५१ में जालंधर में कुछ संघ कार्यकर्ताओं की पहल पर भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई। लगभग उसी समय बंगाल में डॉ. शामाप्रसाद मुखर्जी ने भी जनसंघ की शाखा स्थापित की। उन्होंने श्री गुरुजी से बार-बार भेंट करके आग्रह किया कि संघ को नये राजनीतिक दल को पूरा सहयोग देना चाहिये। श्री गुरुजी स्वयं कभी इस मत के नहीं थे कि संघ राजनीति में कूदे और संघ के संगठन को राजनीति से पूर्णतया अलग रखते हुए कुछ चुने हुए श्रेष्ठ कार्यकर्ताओं को राजनीति के क्षेत्र में प्रयोग करने के लिए मुक्त कर दिया। श्री गुरुजी की ओर से यह छूट मिलते ही सितम्बर से अक्तूबर १९५१ में विभिन्न प्रान्तों में भारतीय जनसंघ की शाखाओं का जाल बिछ गया और १२ अक्तूबर १९५१ को दिल्ली में पहले राष्ट्रीय सम्मेलन में अखिल भारतीय जनसंघ का प्रादुर्भाव हो गया और वह अपना घोषणा पत्र लेकर चुनाव में उतर गया।

१२.५ चुनावी कोलाहल से दूर

किन्तु श्री गुरुजी को चुनाव प्रचार के कोलाहल में कोई रस नहीं आता था। उल्टे वे एक दूसरे के विरुद्ध आरोप-प्रत्यारोप को सुनकर व्यथित होते थे। उन दिनों उनका मन बहुत अशांत था। इसलिये वे इस सत्ताभिमुखी चुनावी वातावरण से परे रहने का संकल्प ले, वे पुणे के पास सिंहगढ़ नामक शिवाजी कालीन दुर्ग पर निवास करने चले

गये। यहां लोकमान्य तिलक के निवास स्थान पर दि. २५ दिसम्बर १९५१ से १८ जनवरी १९५२ तक, याने २५ दिन वे रहे।

इस कालावधि का उपयोग श्री गुरुजी ने गीता, उपनिषद् तथा अन्य मौलिक ग्रंथों का पठन करने के लिए किया। चिंतन, मनन, पठन में ही वे व्यस्त रहा करते थे। अपनी सहयोगी मंडली के साथ बैठकर वे नित्य प्रति गीता के एक अध्याय का पठन, तदुपरान्त चर्चात्मक विवेचन भी करते थे।

सुबह-शाम किले पर घुमने जाना, परिक्रमा करना, ध्यान धारणा करना यही उनका दिन-क्रम रहा था प्रकृति के विविधा रुपों का साक्षात्कार करना भी उनकी विशेष अभिरुचि थी। सिंहगढ़ के ऊँचे टीले पर पद्मासन की स्थिति में बैठकर सूर्योदय और सूर्यास्त देखते समय पूर्व-पश्चिम की स्वर्णिम तथा गुलाल भरी आभा में उन्हें ब्रह्माण्ड का रूप शायद दिखाई देता हो, कह नहीं सकते। किन्तु ऐसे समय श्री गुरुजी के मुखमण्डल पर स्वर्ण की आभा दिखाई देती थी। मानों सूर्यतेज ने मुख को आलोकित कर लिया हो। आंतरिक आनन्दानुभूति के फलस्वरूप वे सदैव प्रसन्नचित्त दिखाई देते।

मकर संक्रमण के उत्सव पर्व पर श्री गुरुजी ने गढ़ पर रहनेवाले अन्य लोगों को अपने निवास पर आमंत्रित किया। अपने हाथों उन्हें लड्डू बाँटे। पूछताछ की।

चुनावी धूमधाम-कोलाहल से परे रहने हेतु श्री गुरुजी सिंहगढ़ पर रहे जरूर, किन्तु चुनाव की राजनीति में संघ की भूमिका क्या होगी? यह प्रश्न पूछा जाने लगा। संघ के जो स्वयंसेवक अब मतदाता की उम्र के थे, वे चुनाव से परे रह नहीं सकते थे। संघ की भी यह अपेक्षा नहीं थी। इस कारण संघ के सरकार्यवाह माननीय भैयाजी दाणी ने इस दिशा में मार्गदर्शन करते हुए कहा, "संघ के स्वयंसेवक राष्ट्रीय संस्कारों में पले-बढ़े हैं। अतएव उन्हें क्षुद्र, संकुचित तथा सांप्रदायिक संघर्षों से हटकर रहना होगा। इसी प्रकार लोग द्वेषमूलक विध्वंस में रुचि रखते हैं, उन्हें किसी प्रकार की सहायता न दें। संघ का कार्य निःस्वार्थ देशसेवा का है। उसी की ओर हम ध्यान दें। साथ ही जो पक्ष देशहित चाहता है उसी के पक्ष में मतदान करें।"

चुनाव समाप्त होते ही श्री गुरुजी पुनश्च भारत-भ्रमण कर संघ का विस्तार करने तथा एकता का संदेश सर्वत्र पहुंचाने के लिए निकल पड़े। सिंहगढ़ की पथरीली सीढ़ियाँ

उतरते समय भविष्य में संघ को क्या करना है, इस की योजना उनके मन में तैयार थी। श्री गुरुजी की भारत परिक्रमा पुनः प्रारंभ हुई।

१२.६ चुनाव परिणामों के परिप्रेक्ष्य में

१९५२ के चुनावों में मनःकल्पित यश न आने के कारण अनेक कार्यकर्ता अत्याधिक निराशा की मनःस्थिति में थे। अपनी निराशा उन्होंने पत्रों के माध्यम से श्री गुरुजी तक पहुँचाई भी। श्री गुरुजी ने अपने उत्तरों में कार्यकर्ताओं का जिस प्रकार मार्गदर्शन किया उसके नमूने के रूप में एक कार्यकर्ता को लिखे पत्र का मुख्यांश यहाँ उद्-घृत है-

"मुझे विश्वास है कि आप चुनावी राजनीति के प्रति मेरी अरूचि से भलिभाँति परिचित हैं। जो चुनाव में हारे हैं, वे परिणामों को खेल-भावना से ग्रहण कर शोक-क्लेश से ऊपर उठकर, जय-पराजय को समभाव तथा अनासक्तिपूर्वक कार्य करने की अपनी संस्कृति को सच्ची भावना से स्वीकार करें। जिन्होंने विजयश्री का लाभ किया है, उन्हें आनन्द मनाने का अधिकार है, किन्तु गर्व से फूलने का नहीं। पराजित लोगों को स्वाभाविक रुप से दुःख होगा, किन्तु निराश और हतोत्साहित होने का कोई भी कारण नहीं दिखता। सदैव की भाँति यह एक ही राष्ट्र के विभिन्न दलों के बीच एक खेल है, जिसे पूर्ण मैत्री एवं भ्रातृत्व की भावना से प्रणोदित होकर खेला जाना चाहिए।

चुनाव-प्रचार में स्वाभाविक रुप से कुछ उग्रता व कटुता उत्पन्न हो ही जाती है। परन्तु मेरे विचार से ये सभी अवांछित भाव तत्काल समाप्त होने चाहिए और 'हम एक राष्ट्र व एक मातृभूमि की सन्तान हैं' – यह उत्कट भाव निर्माण होना चाहिए। सभी को दलीय भावनाओं से उठकर पारस्पारिक सहयोग से समाज हित के कार्यों में जुटने हेतु कृतसंकल्प होना चाहिए। वस्तुतः सहमति का क्षेत्र बहुत विस्तृत है और मतभेदों का दायरा अति सीमित, नगण्य-सा है इसी दृष्टि के सहारे हमारा लोकतंत्रीय स्वरूप इसको ही नष्ट कर देश में अराजकता निर्माण करने के इच्छुक तत्वों के समस्त आघात सहकर भी चिरंजीवी रह सकेगा, इसमें संदेह नहीं।"

१२.७ हमारा वोट किसे ?

आगे सन् १९५७ के चुनावों के पूर्व जनता को किस प्रकार मतदान करना चाहिए इस संबंध में श्री गुरुजी का एक लेख 'हमारा वोट किसे?' इस शिर्षक से प्रकाशित हुआ था जिसका सारांश यहाँ देना उपादेय होगा। श्री गुरुजी ने लिखा था-

आगामी कुछ दिनों में देशवासी मतदान द्वारा लोकसभा एवं विभिन्न विधानसभाओं हेतु प्रतिनिधियों का चुनाव करेंगे और पाँच वर्ष के लिए उन्हें देश का शासन सौंप देंगे। ५ वर्ष का समय एक दीर्घ अवधि है, जिसमें प्रतिनिधियों की प्रवृत्तियों के आधार पर जनता की बड़ी हानियाँ या लाभ हो सकते हैं। हमारे संविधान में ऐसे प्रतिनिधियों को वापस बुलाने की कोई व्यवस्था नहीं है, जो मतदाताओं को संतुष्ट न कर सकें अथवा जो चुनाव के समय जनता को दिए गए आपातरम्य आश्वासनों से मुकर जायें। ऐसी विफलता और कभी-कभी जनेच्छा की मनमानी अवहेलना सामान्य बात हो गई है। इन दोनों स्थितियों के बावजूद, ऐसा कोई तंत्र मतदाताओं के पास नहीं है कि वे अपने द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के विचारों एवं क्रिया-कलापों से असहमत होने पर उन्हें वापस बुला सकें।

१२.८ वापस न बुला सकने का दुष्प्रभाव

एक बार चुन जाने के बाद वे पूरे पाँच साल के लिए सुरक्षित रूप से लाभप्रद एवं आरामदायक गद्दी पर बैठें रह सकते हैं- यह जानकर वे और उनका दल अर्ध-शिक्षित एवं अल्प-ज्ञानी मतदाताओं के सम्मुख मायाजाल फैलाते ही हैं कि यदि उन्हें चुने जाने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हो जाय, तो वे पृथ्वी पर स्वर्ग उतार लाएँगे। प्रेम और युद्ध में सब उचित होता है और चूँकि चुनाव अपने प्रतिद्वन्द्वियों के विरुद्ध युद्ध की भाँति ही लड़े जाते हैं, अतः चुनावी वायदों की पूर्ति मानों उनके उल्लंघन में ही समझी जाती है। इसमें किसी को कोई अनैतिकता भी दिखाई नहीं पड़ती। अतः लुभावने झूठ के जाल में फँसकर मतदाताओं को अपने पाले में लाने कि होड़ सभी प्रत्याशियों में लग जाती है। ऐसे व्यक्ति और दल जिनमें झूठ का यह अभियान चलाने की अधिकतम प्रतिभा होती है; अधिकाधिक मतों को अपनी ओर आकर्षित कर सत्ता हथिया लेते हैं और उनसे किये गये वायगों का पूर्ण तिरस्कार कर सत्ता का मनमाना उपभोग करते हैं। इसके कुछ अपवाद तो हो सकते हैं; परन्तु पिछले अनुभवोंके आधार पर ऐसे लोगों के चुने जाने के अवसर रेगिस्तान में हरे टापू की भाँति अत्यल्प ही होते हैं।

अतः मतदाता का दायित्व बहुत बड़ा है, क्योंकि उसके पास आगामी पाँच वर्ष के लिए देश और समाज का भविष्य मुहरबन्द करने की शक्ति है। एक बार किसी के पक्ष में निर्णय दे देने के बाद अपनी गलती सुधारने, निर्णय में परिवर्तन करने अथवा उससे उद्-भूत सर्वनाशी प्रभाव का निराकरण करने का कोई मार्ग शेष नहीं रह जाता। अतः इस अति महत्व की समस्या के प्रति मतदाता को अपने सम्पूर्ण विवेक से दृढ़तापूर्वक विचार करते हुए चुनाव करना होगा।

१२.९ दो अर्द्ध-सत्य

देश के अग्रणी लोग मतदाताओं को समझाने बुझाने में व्यस्त हैं। इस सम्बन्ध में दो प्रमुख सिद्धान्त सामने आ रहे हैं। दोनों सिद्धान्त उतने ही पुराने हैं; जितनी कि विधायिकाओं हेतु आम चुनाव की लोगतांत्रिक प्रणाली। उनमें पुरातन की ही पुनरावृत्ति है, नवीनता कुछ नहीं। समाचार पत्रों के अनुसार इनमें से एक है पण्डित नेहरु का प्रतिपादन कि व्यक्ति के गुण-दोष भूलकर दल अर्थात् उनकी कांग्रेस को चुना जाय और दूसरा है चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य का कथन कि दल की उपेक्षा कर व्यक्ति की समीक्षा एवं उसके चरित्र का आकलन किया जाय। राजाजी ने ठीक ही कहा है, क्योंकि अन्ततः जनप्रतिनिधियों का चरित्र ही विधायिका के अन्दर और बाहर सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है।

किन्तु उक्त दोनों विचार आंशिक रूप से ही सत्य हैं; क्योंकि उत्तम चरित्रवान व्यक्तियों से रहित तथा राष्ट्रहित में निस्वार्थ समर्पण के अभाव में कोई भी दल सिर्फ ऊँची घोषणाओं, लम्बे-चौड़े दावों और जुलूसों के आधार पर एक लकवाग्रस्त अनुपयोगी और हानिकारक शरीर से अधिक कुछ नहीं हो सकता। दूसरी ओर, समान लक्ष्य और कार्यक्रम से परस्पर-सम्बद्ध चरित्रवान, किन्तु किसी संगठित दल से न जुड़े हुए लोग ऐसे मशीनी पुर्जो के समान हैं, जो अपने आप में सक्षम होते हुए भी किसी सामूहिक कार्य के लिए अनुपयोगी तथा उपलब्धि-अर्जन के लिए अक्षम होते हैं।

अतः इन दोनों विचारों को एक साथ लेना होगा और राष्ट्रीय हितों के लिए समर्पित, स्वार्थरहित, योग्य, सामूहिक कार्यान्वयन में समर्थ तथा सामञ्जस्यपूर्ण राष्ट्रीय विचारों से अनुप्राणित चरित्रवान लोगों के दल को चुनना होगा। इन दोनों के अन्तर को न पहचान पाने पर पछतावा ही हाथ लगेगा। ऐसी स्थिति में मतदाता ठीक से समझ ले कि वह किस दल का समर्थन करे और कैसे प्रत्याशी को चुने।

१२.१० एकदलीय तन्त्र किसी भी आवरण में स्वीकार्य नहीं

चुनाव मैदान में उतरे प्रमुख दलों में से कुछ ने समाजवाद अपना आदर्शवाद माना है। किन्तु जर्मनी का समाजवाद नाजीवाद में और इटली का समाजवाद फासीवाद में बदल गया। इनके उत्थान-पतन का इतिहास तथा उसके फलस्वरूप एकदलीय अधिनायकवाद के दुष्प्रभाव सर्वविदित हैं। अपने देश में इसकी वही दुःखद गाथा नहीं दोहरायी जाएगी, इसकी कोई गारण्टी नहीं। प्रत्येक नागरिक को बहुमूल्य स्वतंत्रता की सुरक्षा सतर्कतापूर्वक करनी चाहिए। उसे न तो अपनी अस्मिता को राजतन्त्रीय अधिनायकवाद के हाथ गिरवी रखना चाहिए और न ही स्वयं को चन्द ठीकरों पर बिका दास बनने की छूट देनी चाहिए। अतः, तथाकथित समाजवादी आदर्शों के बीच से सावधानीपूर्वक लक्ष्य का सन्धान करना चाहिए जो असामाजिक व अराष्ट्रीय सिद्धान्तों में लिप्त हों।

साम्यवादी दल रूसी खेमे के समर्थक हैं और भारत में उस प्रणाली की स्थापना का स्वप्न देख रहे हैं। हाल में हंगरी में घटी घटनाओं से इस प्रणाली की स्पष्ट कल्पना हो सकती है। उन्होंने अपने जीवन के चालीस वर्षों में ऐसे रक्तपात व सामूहिक हत्याकाण्ड आदि देखे हैं, जिनकी बराबरी मानव सभ्यता के सर्वाधिक अँधेरे एवं बर्बर काल में भी नहीं मिल सकती। इस आत्म-घोषित प्रगतिशील विचारधारा के भयानक प्रभाव औसत आदमी को दास बनाने, संवेदनाओं, भावनाओं व विचारों पर कठोर नियंत्रण लाने तथा स्वातंत्र्य-दमनकारी तरीकों से मानव को निर्जीव पुर्जामात्र बनाकर रखने में देखा जा सकता है। यह हम लोगों का प्रचीनतम विरासत के बिलकुल प्रतिकुल है। वास्तव में साम्यवाद और समाजवाद में हमें कोई भी ग्राह्य नहीं है, क्योंकि दोनों ही उस प्रतिक्रियावादी प्रक्रिया की विकृत सन्तान हैं, जो सभी उत्पादन साधनों, सम्पदा तथा राजसत्ता को चन्द हाथों में समेटकर जीवन के सब पहलुओं पर क्रमशः बढ़ते जाते कठोर नियंत्रण द्वारा व्यक्तिगत जीवन को निर्जीव एवं निरानन्द बनाना चाहते हैं।

१२.११ हिन्दू-विरोधी थैली के चट्टे-बट्टे

ये दल अहिन्दू होने पर गर्व करते हैं। हमारे अस्तित्व व समरसता की जड़ों को खोखला कर हमारी हिन्दू जीवन-पद्धति के विरोधी कानूनों (जो गौ के प्रति हमारी सम्मानपूर्ण भावना, संस्कृति तथा विशिष्ट धर्म के विरोधी हैं) को मुस्लिम समाज के पक्ष में लागू करते हैं। यह पक्षपातपूर्ण रवैया कांग्रेस द्वारा अपने प्रत्याशी-चयन में मुस्लिम आरक्षण के साम्प्रदायिक दृष्टिकोण, उनके आन्दोलनों को प्रोत्साहित करने इत्यादि में उनके कुत्सित हिन्दू-विरोध का सम्पूर्ण वीभत्सता के साथ पर्दाफाश करता है।

यदि सत्ता की बागडोर ऐसे अहिन्दुओं (प्रायः हिन्दू विरोधियों) के हाथ में चली गयी, तो हिन्दू समाज, धर्म व संस्कृति और हिन्दुओं के अभिलाषित मानबिन्दुओं के समूलोच्छेदन का संकट पैदा हो सकता है। कभी-कभी कुछ सचमुच अच्छे व्यक्ति उनके प्रत्याशी बनकर चुनाव में उतर सकते हैं। मतदाता यदि केवल ऐसी अच्छाई (!) से ही निर्देशित होगा तो वे प्रत्याशी निश्चित रूप से विजय लाभ करेंगे। किन्तु, उस दल के अनुशासन में फँसकर उनके हिन्दू विचार, आदर्श, श्रद्धा एवं गुण किसी काम नहीं आएंगे और वे उस दल-तन्त्र में पूर्णरुपेण अस्तित्वहीन हो जायेंगे।

१२.१२ उचित चयन के लिए

मैं उस महान् हिन्दू समाज का आह्वान कर रहा हूँ, जिसके लिए अथक प्रयास करना मेरा धर्म बन गया है। उस पुरातन-चिरन्तन हिन्दु राष्ट्र को जिसकी आराधना मैं दिव्य शक्ति की सच्ची अभिव्यक्ति के रूप में करता हूँ, मैं प्रार्थना करता हूँ कि वे सभी आत्मचेतना से अनुप्राणित तथा स्वतंत्र व अकुतोभय होकर अपने मताधिकार का प्रयोग करें तथा व्यक्ति एवं दल के समर्थन हेतु किसी के बहकावे में न आयें और पथ से रंचमात्र भी डिगे बिना अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करें। वे सतर्क एवं विवेकशील बनें और संकल्पबद्ध होकर अपना मत ऐसे दल और व्यक्ति को दें, जो हिन्दू समाज तथा हिन्दू-हितों के प्रति समर्पण भाव रखनेवाले अनुदारता से मुक्त, प्रगतिकामी, विशालहृदय व उदारवादी, घृणारहित तथा मतभेद रखनेवाले लोगों के प्रति भी अविरोधी हों। अनिवार्यतः प्रभावी हिन्दू, उज्ज्वल वैयक्तिक व राष्ट्रीय चरित्र-सम्पन्न, पदारूढ़ या पदरहित होकर भी राष्ट्र-समाज की सेवा के लिए कृतनिश्चय, पद, प्रतिष्ठा, पैसे, प्रसिद्धि व यश की चाह से निर्लिप्त, समरसतापूर्ण सामुहिक कार्यशैली के महत्व के कद्रदान, मातृभूमि व उसकी सन्तानों के प्रति आस्था व समर्पण के भाव से

आप्लावित तथा अपने निजी सुख-दुःख को पुरी तरह भुलाकर कठिनतम कार्य के गुरुतर दायित्व का निर्वहन करने में सक्षम हो। ऐसा आचरण करने पर ही मतदाता का वोट व्यर्थ नहीं जायेगा। इस सावधानी से ही मतदाता अपनी प्रिय मातृभूमि-भारतमाता के पुंजीभूत वैभव सम्मानपूर्ण राष्ट्र जीवन की सुदृढ़ आधारशिला रखने में सहायक होने का अलभ्य लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

*

१३ स्वदेशी और गो-रक्षा अभियान

१९५२ का सितम्बर मास। नागपुर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा की बैठक हुई। इस में दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये गये उसमें एक प्रस्ताव 'स्वदेशी' के विषय में था। विदेशी सत्ता के निष्कासन के ५ साल के पश्चात् संघ द्वारा फिर से स्वदेशी को प्रस्ताव का प्रमुख मुद्दा बनाना कहाँ तक तर्क संगत है? यह प्रश्न अनेकों के मन में उभरना स्वाभाविक ही था। संघ प्रारंभ से ही स्वदेशी का पुरस्कार करता आया है। काँग्रेस ने भी महात्माजी के नेतृत्व में स्वदेशी का अभियान चलाया था। लोकमान्य तिलक युग में स्वतंत्रता आंदोलन की जो चतुःसूत्री योजना बनी थी उसमें स्वदेशी एक अहम् मुद्दा था। डॉ. हेडगेवार जी ने तो संघ के आचार तथा विचारों का आधार 'स्वदेशी चेतना' को ही माना था और स्वयं ऐसे सभी आन्दोलनों में आगे बढ़कर भाग लेते थे।

१३.१ स्वदेशी भाव जागरण

संघ का राष्ट्र संबंधी विचार स्वदेशी, ध्वज स्वदेशी, उत्सव स्वदेशी, शारीरिक शिक्षा प्रणाली भी स्वदेशी थी। डॉक्टर जी स्वयं स्वदेशी का पालन करते थे। विदेशी वस्त्र उन्होंने कभी धारण नहीं किये। साथ ही विदेश की विचारधाराओं को उन्होंने कभी नहीं अपनाया। आचार तथा विचार प्रणाली सर्वथा स्वदेशी हो, यह उनका आग्रह रहा करता था। संघ के प्रारंभिक कालखंड में कुछ अंग्रेजी पद्धतियों का अनुसरण भले ही किया गया हो किन्तु वह तात्कालिक था। संघकार्य के लिए उपयुक्त पाश्चात्य पद्धतियों का तात्कालिक अनुसरण करने में वे हिचके नहीं किन्तु ऐसा करते समय उन्हें मानसिक गुलामी या हीनताबोध का अनुभव कभी नहीं हुआ। कारण स्पष्ट था। पाश्चात्य पद्धतियों के स्थान पर स्वदेशी कार्यपद्धति को अपनाने का उनका उद्देश्य पूर्व से ही सुनिश्चित था। हुआ भी उसी तरह जैसा कि वे मनःपूर्वक चाहते थे। भविष्य में अंग्रेजी आज्ञाओं का स्थान संस्कृत आज्ञाओं ने लिया। घोष भी विशुद्ध भारतीय शास्त्रीय संगीत में ढाला गया।

श्री गुरुजी ने राष्ट्रजीवन के संदर्भ में स्वदेशी विचारों का संस्कार ही स्वयंसेवकों पर किया। किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात स्वदेशी की भावना लुप्त सी हो गई। स्वदेशी का अतिशयोक्त या अव्यावहारिक आग्रह नहीं होना चाहिए यह श्री गुरुजी को भी मान्य था। इस कारण यदि कोई डमरुनुमा रेतघड़ी को गले में बाँधकर घूमने का आग्रह करे

तो इसे वे अव्यावहारिक मानते थे। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं था कि स्वदेशी के आग्रह में पूरी ढील दे दी जाये। स्वदेशी के संबंध में अपनी भूमिका स्पष्ट करते हुए श्री गुरुजी ने कहा, "स्वाधीनता प्राप्त होने के पूर्व विदेशी शासकों के प्रति हमारे मन में घृणा थी, इस कारण स्वदेशी के प्रति जनता के मन में स्वाभाविक आकर्षण था। परन्तु अंग्रेजों के जाते ही विदेशी वस्तुओं का अधिक मात्रा में प्रयोग होने लगा; क्योंकि स्वाधीनता पूर्व स्वदेशी की भावना अंग्रेज विरोध दर्शाने का केवल एक साधन मात्र थी। स्वदेशी के प्रेम का आधर विशुद्ध तथा भावात्मक राष्ट्रप्रेम नहीं था।"

इस विचार-प्रवण तथा स्वदेशी की सुनिश्चित परिभाषा करनेवाले भाषण में श्री गुरुजी ने लोगों में स्वदेशी का प्रचार सजग रहकर करने के लिए कहा है। संघ द्वारा पारित प्रस्ताव में यह भावना व्यक्त हुई है। प्रथम हम स्वयं स्वदेशी का दृढ़ व्रत लें और बाद में लोगों को इस दिशा में प्रवृत्त करें, ऐसा आदेश स्वयंसेवकों को दिया गया।

श्री गुरुजी कहा करते थे कि स्वदेशी से जुड़ा प्रेम राष्ट्र का स्थायी भाव होना चाहिए। उनकी अपेक्षा रहा करती थी कि सर्वसामान्य छोटी-छोटी बातों में भी यह भाव प्रगट हो। विवाह समारोह में सूट-बूट पहनकर विदेशी ठाठ का प्रदर्शन उन्हें पसन्द नहीं था। विवाह का निमंत्रण, कार्यक्रम पत्रिका, अभिनंदन संदेश अंग्रेजी में छापना उन्हें कतई रास नहीं आता था। पराधीन मानसिकता से उत्पन्न परायों का अंधानुकरण करने की प्रवृत्ति से उन्हें अत्याधिक चिढ़ थी। विदेशों में होनेवाली स्त्री-सौंदर्य स्पर्धा का अनुकरण कर जब 'मिस इंडिया' का चयन होने लगा तब उन्होंने एक बार कहा था, "We really miss India in this whole affair."

किन्तु विदेश में कुछ समय रहकर भारत में लौटनेवालों से उनकी यह अपेक्षा अवश्य रहती थी कि वहाँ के जीवन में प्रगट होनेवाली सामाजिक जिन्दादिली, उत्साह, आपसी विश्वास, प्रेम आनंद आदि गुणों का परिपोष वे यहाँ अवश्य करें।

अंधानुकरण को लक्ष्य कर एक बार उन्होंने कहा कि कितनी अद्-भूत बात है कि हमने पाश्चात्य सभ्यता के केवल भद्दे बाह्य स्वरूप को ही ग्रहण किया है। उनके राष्ट्रीय गौरव तथा स्वदेश भक्ति की भावनाओं की ओर, जो शांतिकाल या विपत्ति की स्थितियों में समान रूप से पश्चिमी लोगों की प्रत्येक क्रिया को अनुप्राणित करती हैं, हमारी दृष्टि जाती ही नहीं। कुछ दशाब्दियों पूर्व इंग्लैण्ड को सर्वतोमुखी सम्पन्नता और वैभव के बावजूद आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। इंग्लैण्ड के सभी नेता इस चुनौती का सामना करने के लिए एक-मत और एक-हृदय होकर जुट गए। इस हेतु

उन्होंने स्वदेशी की भावना को पुनरुज्जीवित कर आर्थिक सर्वनाश से अपने देश को बचा लिया।

वे हिन्दू जीवन-पद्धति का आग्रह रखते थे। खान-पान, वेशभूषा, तीज-त्यौहार बोलचाल आदि सभी बातों में स्वदेशी पद्धति का आग्रह उन्होंने अनेक बार व्यक्त किया है।

भोजन के एक प्रसंग का संस्मरण उनके स्वदेशी एवं स्वाभिमानी वृत्ति पर उत्तम प्रकाश डालता है। मद्रास में विश्व हिन्दू परिषद् के तत्वावधान में एक विद्वत्परिषद् का आयोजन किया गया था। समारोप के दिन सबके एकत्र भोजन की व्यवस्था एक मंडल कार्यालय में की गई थी। भोजन की तैयारी ठीक से हुई है या नहीं, यह देखने के लिए श्री गुरुजी जरा जल्दी ही उस मंडल कार्यालय में पहुँच गये। उन्होंने देखा कि वहाँ तो मेज-कुर्सी लगाकर पाश्चात्य ढंग से व्यवस्था की जा रही है। श्री गुरुजी बड़े नाराज हुए। उन्होंने कार्यालय व्यवस्थापक से पूछा कि "आपके यहाँ पीढ़े आदि नहीं हैं?" कार्यालय व्यवस्थापक ने कहा, "हैं क्यों नहीं। एक नहीं अनेक पंगतें बैठ सकती हैं इतने पीढ़े हमारे यहाँ हैं।" तब श्री गुरुजी ने सूचना दी कि "इन मेज-कुर्सियों का जंजाल यहाँ से हटाओ और पीढ़े बिछाकर पंगत की व्यवस्था करो।" सारे प्रबन्धक तुरन्त काम में जुट गये। बैठने के लिए पीढ़े, थाली रखने के लिए पीढ़े, अल्पना, अगरबत्ती आदि लगाकर हिन्दु ठाठ की व्यवस्था की गई। संतुष्ट होकर श्री गुरुजी ने कहा, "अब हुई सही अर्थों में विद्वत्परिषद् के भोजन की तैयारी।"

भारतीय पोषाक पहनने से अपनी इज्जत कम हो जायेगी वह हमारा उपहास होगा ऐसा कहनेवालों को उनका उत्तर था, "प्रतिष्ठा कपड़ों पर नहीं, अपनी गुणवत्ता और सामर्थ्य पर अवलम्बित होती है। हम अपनी पद्धतियों का अवलम्बन करें तो विदेशियों में भी हमारे बारे में आदर की भावना ही निर्माण होती है।" इस संदर्भ में श्री गुरुजी अपना स्वयं का एक अनुभव सुनाते थे। वे कहते हैं, "मैं नागपुर में स्कॉटिश मिशनरियों द्वारा संचालित एक कालेज में पढ़ता था। एक बार हम विद्यार्थियों ने पूर्णतः महाराष्ट्रीय पद्धति के भोजन का कार्यक्रम तय किया। इसके लिए प्राचार्य ओर अन्य दो यूरोपीय प्राध्यापकों को निमन्त्रण दिया और उन्हें बताया कि धोती पहनकर उघाड़े बदन पीढ़े बैठना होगा। प्राचार्य का ईसाईयत का अहंकार आड़े आ गया और उन्होंने हमारा निमंत्रण अस्वीकार कर दिया। किन्तु अन्य दो वयोवृद्ध प्राध्यापकों ने निमंत्रण स्वीकार किया। यही नहीं, प्राचार्य को भी उन्होंने बताया कि "हमारे विद्यार्थी जब सद्-हेतु से प्रेरित होकर हमें बुला रहे हैं तो जाने में क्या अड़चन है?" प्राचार्य भी

तैयार हो गये। इन तीन यूरोपियों ने धोती पहनकर उघाड़े बदन महाराष्ट्रीय पद्धति से हम लोगों के समान ही हाथों का उपयोग करते हुए भोजन किया। अपनी पद्धति का योग्य अभिमान व आग्रह रखने से उन दिनों भी ऐसा अच्छा अनुभव आ सका।"

श्री गुरुजी का स्वदेशी संबंधी यह व्यापक विचार निजी चर्चा व बैठकों में सदा व्यक्त हुआ करता था। कालेज युवकों से चर्चा में उन्होंने कहा, "तरुणों में आधुनिक फैशन है- आधिकाधिक स्त्रैण दिखाई पड़ना।" अंत में श्री गुरुजी ने एक ही वाक्य कहा- "All this must go root and branch." (ये सभी बातें समूल नष्ट होनी चाहिए)। विद्यार्थियों में स्त्रैणता बढ़ना विनाश का लक्षण है यह बताकर वे चेतावनी देते थे, "जगत् का इतिहास साक्षी है कि मनुष्य में अपने शरीर को कोमल बनाये रखने की प्रवृत्ति के कारण ही राष्ट्र का विनाश होता है। फ्रांस, रोम और अन्य कितने ही राष्ट्र इसी कारण नष्ट-भ्रष्ट हो गये। शिवाजी द्वारा स्थापित साम्राज्य भी आगे चलकर खेल-तमाशों व नाच-गानों के कारण ही नष्ट हुआ। ऐसी बातों में लोग फँसते हैं और पराक्रम भूल जाते हैं।" संघ शाखा का स्वदेशी रूप भी उनके बोलने का विषय रहा करता था।

स्वभाषा और सुसंस्कार स्वदेशी जीवन का ही भाग है। श्री गुरुजी इन दोनों के बारे में बड़े संवेदनाशील थे। एक संपन्न हिन्दू गृहस्थ ने अपने लड़के को अंग्रेजी सिखाने के लिए एक अंग्रेज स्त्री की नियुक्ति की। लड़के को अच्छी अंग्रेजी बोलनी आये, यह उस सद्-गृहस्थ की इच्छा थी। इस संबंध में बोलते हुए श्री गुरुजी ने कहा, "अंग्रेजी बोलने की और बाद में अंग्रेजी विचार करने की आदत लग गई तो यह लड़का कभी सच्चा राष्ट्रभक्त नहीं हो सकेगा। अंतःकरण से अंग्रेजों का गुलाम ही बना रहेगा।"

श्री गुरुजी जब केरल में थे तब एक शाखा पर बाल स्वयंसेवकों को एक खेल खिलाया गया। श्री गुरुजी ने बाद में एक बाल स्वयंसेवक से पूछा, "इस खेल का नाम क्या है?" उसने कहा "दीप बुझाना।" शाखा में इस नाम का खेल श्री गुरुजी को रुचा नहीं। उन्होंने एक वयस्क स्वयंसेवक से पूछा, "इसने खेल का नाम ठीक बताया?" उत्तर हाँ में आने पर श्री गुरुजी ने कहा, "खेल का इस प्रकार का नाम नहीं होना चाहिए। हमारी संस्कृति में दीप बुझाना अशुभ माना जाता है। हमारे यहाँ कहते हैं 'ज्ञान का दीपक प्रज्ज्वलित करो।' संतवाणी है कि, 'ज्ञानदीप बुझने मत दो।' खेल में भी क्यों न हो, नाम संस्कार देने वाले ही होने चाहिए।" दूसरे दिन खेल का नाम बदलकर 'आहवान' कर दिया गया। ऐसी थी श्री गुरुजी की स्वदेशी की धारणा।

१३.२ क्रान्तिकारियों के प्रति

इसी वर्ष मई महीने में पुणे स्थित 'अभिनव भारत' नामक क्रांतिकारियों की संस्था का समापन कार्यक्रम संपन्न हुआ। स्वातंत्र्यवीर सावरकर की प्रेरणा से सशस्त्र स्वतंत्रता संग्राम करने हेतु इस संस्था की स्थापना हुई थी। किन्तु स्वाधीनता प्राप्त होते ही इस क्रांतिकारी संस्था का प्रयोजन समाप्त हो गया। इस कारण उपर्युक्त समापन समारोह का आयोजन किया गया था। स्वतंत्रता सेनानी वीर सावरकर स्वयं इस अवसर पर उपस्थित थे। स्व. डॉ.हेडगेवार जी का 'अभिनव भारत' संस्था के साथ ही क्रांतिकारी आंदोलनों से गहरा संबंध रहा था। इस कारण श्री गुरुजी को विशेष रूप से आमंत्रित किया गया था। इस ऐतिहासिक समारोह के लिए प्रचंड जनसमुदाय इकठ्ठा हुआ था। सेनापति श्री बापट अध्यक्ष थे। मनोनीत अध्यक्ष महोदय ने प्रारंभ में ही वक्ताओं पर पाबंदी लगा दी कि हर वक्ता केवल दस मिनट में अपने विचार रखे।

आश्चर्य की बात यह कि श्री गुरुजी ने केवल दस मिनट में अपना ओजस्वी भाषण समाप्त किया। स्वतंत्रता प्राप्त होने के पश्चात् भी क्रांति की ज्योति मन में प्रज्वलित रखने की आवश्यकता है, यह विचार उन्होंने प्रभावी रूप से श्रोताओं के सामने रखा। श्री गुरुजी कहा,

"अपने समाज में ऐसे भी लोग हैं जो स्वतः को अधिक बुद्धिमान मानकर ढिंढोरा पीटते हैं कि ये क्रांतिकारी सिरफिरे पागल तथा गुमराह हैं। वास्तविकता यह है कि इन तथाकथित बुद्धिवादियों को क्रांतिकारियों की देशभक्ति की उग्रता असहनीय होती है। जिन्होंने युवा पीढ़ी के हृदय में क्रांति की ज्वाला प्रज्वलित करने के एक मात्र ध्येय के लिए अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया, ऐसे डॉ. हेडगेवार के दर्शाए मार्ग पर चलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। इस कारण क्रांतिकारियों को आदरपूर्वक अभिवादन करना मेरा अहोभाग्य है।"

"सुस्थिर क्रांति की ज्योति नित्य प्रज्वलित रखने की भी नितांत आवश्यकता होती है। यदि हमें दीन-दुखियों का जीवन सुख से भरना है, वास्तविक अर्थ में सुखी और समृद्ध भारत की निर्मिति करनी है, अराष्ट्रीय भावनाओं का निर्मूलन कर भारत का अर्थात हिन्दू राष्ट्र का जीवन परिपूर्ण करना है तो आज के इस पावन अवसर पर हम अपने मन में संकल्प करें, दृढ़ निश्चय करें कि यावच्चंद्रदिवाकरौ इस राष्ट्र का पवित्र भगवा ध्वज हम सदा के लिए फहराते रहेंगे।"

श्री गुरुजी हिन्दुत्व के बारे में बहुत आग्रही रहा करते थे। हिन्दुत्व तो उनके हृदय में प्रज्वलित ऐसी प्रखर ज्वाला थी जो बढ़ती, तीव्र होती, किन्तु कदापि मलिन नहीं होती। अपने ग्रीष्मकालीन संघ शिक्षा वर्गों में श्री गुरुजी ने हिंदुत्व पर अपने विचार केन्द्रित करते हुए सूत्र रूप से कहा कि हमें हिन्दुत्व से छोटा कुछ भी नहीं चाहिए और अति विशालता के पीछे लगना इस समय अनुचित होगा, निरर्थक होगा। अव्याप्ति तथा अतिव्याप्ति इन दोनों छोरों को टालते हुए काम करने में ही व्यावहारिक बुद्धिमत्ता है। इस संसार में निहित उन्मत्त शक्तियों में भी मानवता जागृत करने का कार्य संगठित ओर समर्थ हिन्दू समाज ही कर सकेगा। हिन्दू संगठन का विचार मानवतावाद के निकष पर संकुचित सिद्ध होगा इस विचार को वे कोई महत्व नहीं देते थे। यह विचार उन्हें सर्वथा अमान्य था।

१३.३ साधुओं के समक्ष

श्री गुरुजी के एक और भाषण की ओर हमें ध्यान देना चाहिए। इसका एकमात्र कारण यह है कि दस वर्ष के बाद जिन देशहितकारी योजनाओं का सूत्रपात उन्होंने किया, उनके बीजरूप विचार इस भाषण में हमें दिखाई देते हैं।

एक सार्वभौम साधु सम्मेलन अक्तुबर के महिने में कानपुर में आयोजित किया गया था। श्री गुरुजी विशेष रूप से आमंत्रित थे। इस अवसर का लाभ उठाते हुए श्री गुरुजी ने साधु-संतों के समक्ष अपनी एक आंतरिक भावना प्रगट की।

अपने समाज में अनगिनत साधु-संन्यासी मठों में मठाधिपति के नाते रहते है। ध्यान-धारणा, पूजा पाठ, ईश्वर भक्ति के माध्यम से वे व्यक्तिगत मुक्ति या उद्धार के लिए साधना करते हैं या अन्यों को मार्गदर्शन करते हैं। किन्तु अपने समाज के बारे में वे कभी सोचते दिखाई नहीं देते। यह समाज सुरक्षित तथा प्रगतिशील किस तरह बन सकता है, यह सोच उनके मन में नहीं होती। आत्मोद्धार और लोकोद्धार इन दोनों विषयों की सूझबूझ साधु-संतों में होना नितांत आवश्यक है, यह विचार बड़े ही प्रभावी ढंग से श्री गुरुजी ने इस सम्मेलन में रखा। उन्होंने कहा,

“भगवा ध्वज हमारी हिन्दू संस्कृति का महान प्रतीक है। साधु-संतों को चाहिए कि वे इस भगवे ध्वज का संदेश घर-घर पहुंचाएँ। इसे एक राष्ट्रीय व्रत के रूप में अपनाएँ। आप समाज में ऐसी जागृति उत्पन्न करें जिसके द्वारा समाज आत्मगौरव की पुनश्च

अनुभूति कर सके। भगवा ध्वज सात्विकता का प्रतीक है। इसके सात्विक सामर्थ्य के सन्मुख सब दुष्ट प्रवृत्तियाँ हतबल-निर्बल हो जाएंगी।"

इसी भाषण में श्री गुरुजी ने कहा कि, "इस जगत् में मानव को सुख-शांति के मार्ग पर ले जानेवाला विचार-धन भारत के पास है। उसे दुनिया को देने की भारत की ईश्वरप्रदत्त भूमिका युगों-युगों से ही रही है। यह कार्य साधु-संत ही कर सकेंगे जिसे उन्हें स्वीकार करना चाहिए।" इस संदर्भ में उन्होंने पश्चिमी लोकतन्त्र और रूस के साम्यवाद, दोनों विचार प्रणालियों की उद्-बोधक समीक्षा करते हुए इन दोनों से मूलतः स्वतन्त्र अस्तित्व रखनेवाली भारतीय जीवनप्रणाली का विवेचन किया। विशेषतः दो शक्तिगुटों के शीतयुद्ध के संबंध में बोलते हुए उन्होंने कहा, "मानव-कल्याण के लिए अपने ही तत्वज्ञान को श्रेष्ठ समझने वाले दो गुट विश्वशान्ति की बातें तो करते हैं, परन्तु सम्पूर्ण दुनिया पर अपना प्रभुत्व प्रस्थापित करने के लिए मानव-संहार के साधन जुटाने में लगे हुए दिखाई देते हैं। मौका देखकर अणुशक्ति का भी उपयोग कर मानव-संहार करने के लिए ये देश सिद्ध हुए हैं। अमरिका ने तो द्वितीय महायुद्ध में जापान में अणुबम का प्रत्यक्ष प्रयोग किया था। इसके विपरीत महाभारत के अर्जुन का संयम देखें। इसके पास पाशुपतास्त्र था। अद्-भुत प्रभावी ब्रह्मास्त्र भी था। परन्तु इन दोनों अस्त्रों का प्रयोग उसने नहीं किया क्योंकि मानवता का विनाश उसे करना नहीं था। अर्जुन को मालुम था कि ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने से आठ वर्षों तक अकाल पड़ता है, इसलिए उसने इन अस्त्रों का प्रयोग टाल दिया। शास्त्रोक्त जीवनप्रणाली की यही विशेषता है। इसलिए साधु-संतों को उस तत्वज्ञान का अधिकारवाणी से कथन करने की आवश्यकता है जिससे मानव-मानव में सच्चा बंधुभाव निर्माण हो सके। यह सम्पूर्ण विश्व ही मेरा घर है ऐसी जिनकी अनुभूति है, वे ही विश्व में शान्ति का संदेश गुँजा सकते हैं। सौभाग्य से ऐसे साधु, सन्त और महात्मा आज भी भारतवर्ष में हैं।"

मनुष्य माँ से जो अपेक्षा रखता है वही अपेक्षा सर्वसंग परित्यागी साधुजनों से है, ऐसा कह कर उन्होंने अपराध में पकड़े गये एक लडके का उदाहरण प्रस्तुत किया। इस लड़के को माँ ने अत्याधिक लाड़-प्यार से बिगाड़ ड़ाला था। वह छोटी-मोटी चोरियाँ करने लगा। माँ ने उसे टोका नहीं। आगे चलकर वह इतना अभ्यस्त हो गया कि डाकू बन गया और पकड़ा गया। उसे फाँसी की सजा सुनाई गई। उसने माँ से मिलने की अन्तिम इच्छा बतायी। माँ मिलने को आई। कुछ बतलाने का बहाना कर वह अपनी माँ के कान के पास मुँह ले गया और दाँतों से जोर से कान काट खाया। शोर गुल हुआ। तब अपनी कृति का समर्थन करते हुए उसने कहा, "मैं डाकू बना इसके लिए

मेरी माँ जिम्मेदार है। माँ ने मेरे दुर्गुणों के बारे में समय रहते चेतावनी देकर मुझे सावधान कर सन्मार्ग पर चलने की सीख दी होती तो आज मुझे फाँसी पर नहीं जाना पड़ता।" गुरुजी ने इंगित किया कि आज समाज में विद्यमान विच्छिन्नता, फूट और आपस के द्वेषभाव के कारण साधु-संन्यासियों की समाज जागृति के संबंध में उदासीनता और निष्क्रियता है। श्री गुरुजी को यह कहने का निःसंदिग्ध अधिकार था। श्री गुरुजी तथा डॉ. हेडगेवार जी ने कभी भगवे वस्त्र धारण नहीं किए थे। किन्तु वे दोनों संन्यासी थे। स्वयं श्री गुरुजी ने लोकजीवन से दूर हटकर मोक्षसाधना का मार्ग चुना था। किन्तु डॉक्टर जी के यह कहने पर उन्होंने स्वतः को राष्ट्र समर्पित कर दिया। समष्टिरूप ईश्वर की साधना करने में ही अपना जीवन व्यतीत किया।

श्री गुरुजी हमेशा समाज और विशेषतः धर्मपुरूषों के सम्मुख यह विचार रखते रहे कि पतनावस्था को देखते हुए अपने ईश्वरदत्त कार्य की ओर दृष्टिपात करना चाहिए। परिणामतः एक नया व्यास पीठ 'विश्व हिन्दू परिषद्' के नाम से निर्मित हुआ। सम्मेलनों में समय-समय पर जो विचार उन्होंने रखे, उसी का मूर्त, व्यवहार्य रूप है विश्व हिन्दू परिषद्।

१३.४ ऐतिहासिक हस्ताक्षर संग्रह

सितम्बर १९५२ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की प्रतिनिधि सभा में गोहत्या बंदी की माँग का पुनरुच्चार किया गया। साथ ही यह भी निर्देश दिया गया कि इस संबंध में भारतीय जनता की तीव्र भावना अपने प्रजातांत्रिक शासन के ध्यान में लाने के उद्देश्य से स्वयंसेवकों द्वारा प्रचण्ड राष्ट्रव्यापी अभियान प्रारम्भ किया जाए। श्री गुरुजी के मार्गदर्शन में प्रतिनिधि सभा द्वारा पारित इस प्रस्ताव में कहा गया था-

"यह सभा गोसंवर्धन संबंधी भारत सरकार की अस्थिर नीति के बारे में असंतोष व्यक्त करती है। अपने देश में गोवंश-संवर्धन का विषय न केवल आर्थिक दृष्टि से बल्कि हमारी सांस्कृतिक श्रद्धा तथा एकात्मता की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। विगत ५ वर्षों से गोहत्या बंदी की माँग की भारत सरकार द्वारा लगातार उपेक्षा हो रही है। इस सभा की दृष्टि से यह अत्यंत अनुचित है।"

"देशभर में जनमत अनुकूल तथा संघटित कर राज्यकर्ताओं को गोवंश संवर्धन के प्रति अपने पवित्र कर्तव्य का स्मरण करा दिया जाय, यह दृढ निश्चय यह सभा करती है। इसलिए सभी स्वयंसेवकों को यह आवाहन किया जाता है कि वे सभा, मोर्चों द्वारा

कोटि-कोटि भारतीय जनता की यह भावना ऐसी दृढ़ इच्छा शक्ति में परिणत करें ताकि भारत सरकार के प्रजातांत्रिक शासन के लिए गोवंश के विनाश पर कानून द्वारा प्रतिबंध लगाना अपरिहार्य हो जाए।"

इस प्रस्ताव में समस्त भारतीय जनता तथा विभिन्न राजनीतिक दलों को सहकार्य देने का आवाहन किया गया था।

साथ ही गोहत्या बंदी की मांग करनेवाले आवेदन पत्र पर जनता के हस्ताक्षर अंकित कर अन्त में देशभर से प्राप्त हस्ताक्षरों का यह संग्रह महामहिम् राष्ट्रपति को समर्पित किया जाए, ऐसी कार्यक्रम की योजना बनाई गई। यह भी सुझाया गया कि हस्ताक्षर संकलन करते समय आम सभा, मोर्चा, प्रदर्शनी, पोस्टर्स, पत्रक, लेख आदि प्रचार-प्रसार माध्यमों का उपयोग जनमत जागरण के लिए किया जाय। संघ के स्वयंसेवक आवेदन पत्र लेकर जब घर-घर पहुंचेंगे तब सभी महानुभाव उन्हें अपने हस्ताक्षर देकर सहकार्य करें, इस अर्थ का एक निवेदन भी श्री गुरुजी ने प्रकाशित किया। यह पत्रक दि. १३ अक्तुबर १९५२ को प्रकाशित किया गया।

यह भी तय किया गया कि प्रत्यक्षतः यह अभियान दि. २६ अक्तुबर को गोपाष्टमी के मुहूर्त पर प्रारंभ हो और दि. २२ नवम्बर को दिल्ली में उसकी समाप्ति की जाय। एक विनम्र निवेदन भी श्री गुरुजी द्वारा प्रस्तुत किया गया कि आंदोलन को देशव्यापी व प्रभावी बनाने के लिए जो धन लगे उसकी पूर्ति भी जनता स्वयं ही करे।

इसके अतिरिक्त देश में चल रहे विभिन्न समाचार पत्रों, मान्यवर नेतागण, लेखक, विद्वान् विचारक-चिंतक, धर्मगुरू, संत-महंत तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं को व्यक्तिशः स्वतंत्र पत्र भेजकर श्री गुरुजी ने अपनी भूमिका स्पष्ट की तथा उनके सहकार्य की माँग की।

स्वतंत्रता सेनानी वीर सावरकर को भी श्री गुरुजी ने व्यक्तिगत रूप से पत्र लिखकर उन्हें अपने मंतव्य से अवगत कराया। इस पत्र के कुछ अंश यहाँ उद्-घृत करना उचित होगा, जिससे हम जान सकें कि गोमाता और भारतमाता के प्रति उनकी श्रद्धा व भावना कितनी तीव्र थी। साथ ही उससे श्री गुरुजी के हृदय की स्पष्टता, पारदर्शिता तथा राष्ट्रीय विषयों को उनके द्वारा दिये जानेवाले महत्व का भी हमें यथेष्ट ज्ञान हो सकेगा। श्री गुरुजी ने लिखाः

“अपने श्रद्धाकेन्दों के विषय में अनास्था तथा गोवंश के समान पवित्र श्रद्धा के विषय और श्रद्धा-स्थानों का विदेशियों द्वारा होनेवाला विनाश निर्लज्जता से सहने की आदत के फलस्वरूप लोगों ने भारत माता का विभाजन होने दिया। वह एक घृणास्पद, घोर पाप था। यह पाप आज भी कायम है। इस कलंक को मिटाकर ही समाधान और शांति का अनुभव ले पाऊँगा ऐसा कहनेवाला कोई स्वाभिमानी दिखाई नहीं देता। इसके विपरीत विभाजन के कलंकित पाप का समर्थन करनेवाले बड़े-बड़े नेता अवश्य दिखाई देते हैं। हमारी संस्कृति के अनुसार गोमाता और भारत माता अविभक्त हैं, एक ही हैं। इस कारण गोमाता की हत्या को प्रोत्साहन देनेवाले या दुर्लक्ष्य करनेवाले वास्तविक अर्थ में भारतमाता के भक्त भला कैसे बन सकते हैं? यह सर्वथा असंभव है।”

श्री गुरुजी द्वारा लिखे गए पत्र, पत्रक, प्रतिवेदन आदि का देशभर में भरपूर स्वागत किया गया। यथासमय पूर्वनियोजित योजना के अनुसार गोपाष्टमी के शुभावसर पर स्थान-स्थान पर अभियान प्रारंभ हुआ। हजारों की संख्या में सभाओं, यात्राओं में गोहत्या बंदी के प्रस्ताव पारित हुए।

मुंबई के अभियान का प्रारंभ श्री गुरुजी की सभा से हुआ। सहस्त्रावधि लोगों की उपस्थिति में श्री गुरुजी ने गोहत्या बंदी की मांग को तर्कसंगत बताते हुए उसका राष्ट्रीय महत्व विशद् करनेवाला भाषण दिया। इस भाषण में श्री गुरुजी ने कहा,

“पराधीनता में से उत्पन्न हर बात मिटाकर विदेशी आक्रामकों के नामोनिशान को धो डालना, उनका निर्मूलन करना किसी भी स्वतंत्र स्वाभिमानयुक्त राष्ट्र का प्रथम कर्तव्य माना जाना चाहिए। इसी दृष्टि से सोमनाथ मंदिर का जीर्णोद्धार एक उचित घटना है।”

“जब तक हमारे रहन-सहन, विचार-पद्धति, जीवन की ओर देखने के हमारे दृष्टिकोण तथा सोच-विचार पर विदेशियों की छाप रहेगी तब तक हम स्वतंत्र हुए हैं ऐसा नहीं माना जा सकता। हजारों वर्षों की पराधीनता के कारण निर्मित जो भी प्रश्न होंगे उन्हें हल कर अपने राष्ट्र को संसार का सर्वाधिक अग्रसर राष्ट्र बनाने की उत्कट आकांक्षा प्रत्येक व्यक्ति के अंतःकरण में जागृत होना ही स्वाधीनता की वास्तविक अनुभूति होगी।”

आज सामान्य व्यक्ति के हृदय में भारत मेरी मातृभूमि है यह भाव तथा धर्मनिष्ठा का लोप होता दिखाई देता है। हम अपने गौरवशाली इतिहास को भी भूल रहे हैं। यदि ऐतिहासिक श्रद्धास्थानों का इसी तरह विस्मरण होता रहा तो भविष्य में हमारे लिए एक भी श्रद्धास्थान शेष नहीं रहेगा। यदि दुर्भाग्य से ऐसा हुआ तो हम किस आधारशिला पर गगनस्पर्शी राष्ट्रमंदिर बना पाएंगे? आकाश छूनेवाली ऊँची उड़ान कैसे भर पाएँगे?

“जिस राष्ट्र का श्रद्धास्थान नष्ट हो जाता है उस राष्ट्र के अभ्युदय की कामना करना व्यर्थ होगा। हम अपने राष्ट्र की उन्नति करना चाहते हैं, किन्तु हमें चारों ओर मतभेद, भिन्न-भिन्न संप्रदाय, परस्पर विरोधि तथा दलगत राजनीति और तज्जन्य विघटन ही दिखाई देता है। इस कारण हम ने सोचा कि राष्ट्र में एक सर्वमान्य श्रद्धा-केन्द्र निर्माण कर सब को एक ही वैचारिक-भावनात्मक आधार पर खड़ा करना आवश्यक है। अब हमें यह योचना है कि वह सर्वमान्य श्रद्धा केन्द्र कौन सा है? अपने राष्ट्र में राजनीतिक या पांथिक भिन्नता भले ही हो, एक बात निर्विवाद सत्य है कि गोवंश का नाम लेते ही श्रद्धा की अतुलनीय भावना जागृत हो जाती है। इसलिए ‘गाय (गो)’ हमें एकत्र ला सकती है। हम सब इस दिशा में विचार करें। अपने हृदय में गोमाता के प्रति श्रद्धाभाव बढ़ाएँ। अपने अंतःकरण तथा राष्ट्रजीवन में पराकोटि की तेजस्विता निर्माण करें।”

मुसलमान तथा ईसाइयों को भी इस आंदोलन में सहकार्य देने की आवश्यकता है ऐसा प्रतिपादन श्री गुरुजी ने इस भाषण में किया। इस कथन द्वारा मुसलमान और ईसाइयों के संबंध में संघ की भूमिका क्या है? इस प्रश्न का उत्तर साथ-साथ मिल जाता है। श्री गुरुजी कहा,

“आप कल्पना कीजिए कि किसी को अमेरिका का नागरिक बनना है और इस नागरिकता को पाने का उसे अधिकार भी है तो उस परिस्थिति में अमेरिका जाने पर उसे किस ध्वज का अभिमान रखना होगा? क्या भारत के चक्रांकित तिरंगे ध्वज का अभिमान रखकर बात बन सकेगी? कदापि नहीं। उसे अमरिका के राष्ट्रध्वज का अभिमान ही मन में रखना होगा।”

“यह ध्वज की बात हुई। अब हम राष्ट्रपुरूष के बारे में सोचें। किस राष्ट्रपुरूष का गौरव उसे करना होगा? जॉर्ज वाशिंग्टन और अब्राहम लिंकन का। अमेरिका में हमें भगवान

राम और कृष्ण की पूजा करने में कोई मनाई नहीं है किन्तु साथ ही हमें उनके राष्ट्रीय श्रद्धा केन्द्रों को भी स्वीकार करना पड़ेगा। ”

“इसी प्रकार ईसाइ और मुसलमानों को भी भारत के जीवन से समरस होकर रहना होगा। भारत का नागरिकत्व (Civil Code) के नियमानुसार ही उन्हें चलना होगा, रहना होगा। यहाँ के राष्ट्रजीवन का आदर्श अनुकरणीय मानकर राष्ट्रीय उत्सवों को अपने उत्सव मानकर मनाना होगा। भारत के राष्ट्रपुरूषों का ही उन्हें जयजयकार करना दोगा। मैं तो चाहता हूँ कि वे छत्रपति शिवाजी महाराज जैसे श्रेष्ठ राष्ट्रवीरों की भी जयजयकार करें। उन्हें यह करना ही चाहिए। भारतीय जीवनप्रवाह से समरस होकर तथा श्रेष्ठ भारतीय विभूतियों से प्रेरणा पाकर फिर चाहे वे अपनी उपासना के लिए मस्जिद में जाएँ और पैगंबर का नाम लें, ईसाई चर्च में बायबल पढ़ें, हमें इस में कोई आपत्ति नहीं होगी। व्यक्तिगत धर्म के नाते उन्हें इसकी छूट रहेगी।”

“सामूहिक जीवन की दृष्टि से यहां के जीवनप्रवाह का स्वीकार उन्हें करना ही होगा। यदि इस विचारधारा को हम सब मान लेंगे तो अवश्य ही प्रगतिशील राष्ट्रजीवन संभव हो पाएगा।”

आर्थिक दृष्टिकोण को सामने रखकर श्री गुरुजी ने गोहत्या बंदी का समर्थन किया। साथ ही राष्ट्रीय श्रद्धास्थानों को नष्ट कर डालरों की कमाई करनेवालों की उन्होंने कड़ी भत्सना की। श्री गुरुजी ने मुंबई में जिस तरह अभियान के उद्-घाटन का भाषण दिया, उसी तरह दिल्ली में संघ के सरकार्यवाह श्री भैयाजी दाणी ने अपने विचार रखे।

दि. 23 नवंबर तक गोहत्या बंदी की मांग करनेवाले पत्रक पर लोगों के हस्ताक्षर लेने का काम संघ के स्वयंसेवक बहुत ही योजनाबद्ध तरीके से कर रहे थे। हर नागरिक तक पहुंचना परिश्रम तथा लगन का काम था जिसे स्वयंसेवकों ने बखूबी निभाया। कहीं भी विरोध नहीं हुआ। लोग उत्साह और आनंद के साथ धर्मकर्म मानकर, सामाजिक कर्तव्य मानकर हस्ताक्षर देते। किन्तु पं. नेहरु ने बड़ी गर्जना के साथ कहा कि यह संघ का एक राजनीतिक स्टंट है! बस, पं. नेहरु के इस विधान को सुनते ही कांग्रेसी नेता तथा मुसलमान और ईसाइयों ने हस्ताक्षर देने के लिए आगे बढ़ाया हुआ हाथ पीछे खींच लिया। न केवल मुँह मोड़ने का प्रयास हुआ, बल्कि कांग्रेस के सचिव श्रीमन्नारायण जी ने एक फतवा निकाल कर इस आन्दोलन में सहयोग देने से कांग्रेसजनों को मना भी कर दिया।

फिर भी व्यापक रुप से राजनीतिक पक्षों के सदस्यों के हस्ताक्षर प्राप्त हो सके। लगभग ५४ हजार कार्यकर्ताओं ने ८५ हजार ग्रामों में घूमकर लगभग २ करोड़ हस्ताक्षर प्राप्त किये। यह हस्ताक्षर संग्रह दिल्ली भेजा गया। दि. ७ दिसंबर को एक बृहत् शोभायात्रा के रूप में उसे प्रदर्शित किया गया। यह शोभायात्रा डेढ़ मील लंबी थी।

रामलीला मैदान पर इस शोभायात्रा का रुपांतर एक प्रचंड आम सभा में हुआ। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी वक्ता के नाते इस सभा में उपस्थित थे। श्री गुरुजी ने उन सभी का आभार प्रदर्शन किया जिन्होंने इस राष्ट्रीय आंदोलन को सफल बनाने के लिए हाथ बँटाया था, अपार परिश्रम किये थे।

इस आभार प्रदर्शन के भाषण में श्री गुरुजी ने पं. नेहरु द्वारा इस आंदोलन को 'राजलीतिक स्टंट' घोषित करनेवाले कथन का करारा जवाब दिया। उनके शब्द काफी पैने और धारदार थे। श्री गुरुजी ने पं. नेहरु से प्रतिप्रश्न पुछा। आचार्य विनोबाजी के कथन को उद्-घृत करते हुए उन्होंने कहा-

'आचार्य विनोबा भावे कहते हैं कि, 'सबै भूमि गोपाल की'। पर मैं पूछता हूँ कि यह भूमि गोपालों की है या गोहत्या करने वालों की? महर्षि दयानंद ने भी इस कार्य को अंगीकृत किया था; अपनाया था। क्या उन्हें भी राजनीतिक स्टंट करना था?' कुछ दिन पूर्व साँची में भगवान् बुद्ध के दो शिष्यों की अस्थियों को प्रतिष्ठित करनेवाले कार्यक्रम के लिए पं. नेहरुजी पहुँचे थे। कार्यक्रम समाप्त होते ही नेहरुजी वहां से ६ मील दूरी पर स्थित भेलसा में पहुँचे और गोहत्या जारी रखने की घोषणा कर डाली। भगवान बुद्ध की अहिंसा का गौरव करने के तुरन्त बाद उन्होंने गो-हत्या की घोषणा की।

चाहे सारा संसार विरोध में खड़ा हो जाए, हिन्दुओं को अपने मानबिंदु की रक्षा करनी चाहिए ऐसा उत्कट भावभीना आवाहन श्री गुरुजी ने अपने भाषण के अंत में किया।

दि. ८ दिसंबर को दिल्ली के तत्कालीन प्रान्त संघचालक श्री लाला हंसराज को साथ लेकर श्री गुरुजी ने राष्ट्रपति से भेंट की। हस्ताक्षर संग्रह राष्ट्रपति के सुपुर्द किया। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा कि वे सरकार से इस संबंध में सहानुभूतिपूर्वक विचार करने के लिए कहेंगे। वास्तव में राष्ट्रपति स्वयं गोहत्या के पक्ष

में थे। परन्तु संसार में किसी राष्ट्रीय प्रश्न के हल के लिए इतने बड़े पैमाने पर हस्ताक्षर एकत्र करने का अपने ढंग का अनोखा, एकमात्र प्रयास होने के उपरांत भी सरकार ने इस अभियान की उपेक्षा ही की।

स्वतः को प्रजातांत्रिक शासक और शासन को प्रजातांत्रिक माननेवालों ने राष्ट्रकल्याण तथा जनमत को केवल पक्ष के स्वार्थ के लिए अपने पैरोंतले रौंद डाला। यह अभियान परिणाम की दृष्टि से असफल रहा ऐसा कोई सोच सकता है। किन्तु यह सत्य नहीं है।

अनेक प्रांतों के शासनों ने क्रमशः गोवध बंदी के लिए कानून बनाए। किन्तु केन्द्र सरकार ने ऐसा नहीं किया। यह कमी आज भी अनुभव होती है। अभियान के अंतिम दौर में श्री गुरुजी ने उसे असफलता के दायरे से बाहर रखने की चेष्टा की। अभियान समाप्ति के पश्चात इस प्रश्न को उन्होंने शासन के अंधेरे कोने में पड़ने नहीं दिया।

राष्ट्रपति के सम्मुख हस्ताक्षर संग्रह प्रस्तुत करने के ठीक एक साल बाद २ नवंबर १९५३ से १४ नवंबर तक पुनः एक बार जनमत की ओर शासन का ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न संघ के माध्यम से किया गया। फिर से सभाओं , जुलूसों और एकत्रीकरण के कार्यक्रमों का आयोजन किया गया।

१९५४ में कुंभ मेला प्रयाग में संपन्न हुआ। वह माघ का महीना था। इस पवित्र अवसर पर 'गोहत्या निरोध समिति' द्वारा एक विशेष कार्यक्रम आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम की विशेषता यह थी कि जिस निर्वाचन क्षेत्र से पं. नेहरु लोकसभा के लिए चुने गये थे उसी क्षेत्र के मतदाताओं के हस्ताक्षर संग्रहित कर सरकार के ध्यानाकर्षण हेतु प्रस्तुत किए गये। इस कार्य विशेष का अंतस्थ हेतु नेहरुजी के मतदाताओं की भावना का दर्शन उन्हें कराना था। गोहत्या बंदी की मांग करनेवाले आवेदन पत्र पर नेहरुजी के निर्वाचन क्षेत्र के कुछ २,५७,५८० मतदाताओं ने हस्ताक्षर किये थे। पंडित जी को चुनाव में प्राप्त कुल मतों से डेढ़ लाख से अधिक मतदाताओं ने गोवध बंदी के पक्ष में हस्ताक्षर किये थे। इस हस्ताक्षर संग्रह के साथ प्रधानमंत्री के नाम भेजे गये प्रतिवेदन में लिखा था कि जब संसद में गोवध बंदी का विषय चर्चित होगा तब वे इस प्रस्ताव का समर्थन करें। गोहत्या का समर्थन करनेवाला व्यक्ति हमारा प्रतिनिधित्व कदापि नहीं कर सकता।

इतना सब कुछ करने के उपरान्त भी प्रधानमंत्री जी ने अपने मतदाताओं की भावना की कोई चिन्ता नहीं की। उनके कानों पर जू तक नहीं रेंगी। इस कुंभ मेले में श्री गुरुजी विशेष रूप से उपस्थित थे। संघ के स्वयंसेवकों ने हस्ताक्षर संकल्प तथा कुंभ मेले के कार्यक्रम को सफल करने का भरसक प्रयत्न किया था।

१९६६ में पुरी के शंकराचार्य जी ने गोहत्या बंदी की मांग के प्रश्न पर आमरण अनशन किया। इस अवसर पर श्री गुरुजी ने सरकार की नीति पर कठोर टिप्पणी की। इन दिनों प्रत्येक पत्रकार परिषद्, लेख, भाषण और चर्चा सत्र में इस विषय का बार-बार स्पर्श हुआ दिखाई देता है।

भारत सरकार ने अभी तक गोवंश-रक्षा के हेतु केन्द्रीय कानून नहीं बनाया है। वह इस संबंध में नकारात्मक भूमिका निभा रही है। इस कारण प्रांतीय सरकारों ने भले ही गोवंश बंदी कानून पास किया हो, वह कार्यान्वित नहीं हो पा रहा है।

गोहत्या विरोध के लिए समय-समय पर सरकारी स्तर पर बनी समिति या आंदोलकों द्वारा बनायी गयी गोरक्षा महाभियान समिति के कार्यकलापों से श्री गुरुजी अत्यन्त असंतुष्ट थे। सरकारी गोरक्षा समिति की बैठक में जाना उन्हें निरर्थक तथा समय का अपव्यय लगता था। वे त्रस्त होकर कहते थे कि “गोहत्या बन्द करने हेतु वास्तव में एक मिनट ही पर्याप्त है, छह मास चलनेवाली समिति की क्या आवश्यकता है।” महाभियान समिति की चर्चा करते हुए उन्होंने एक बार कहा था कि “वहाँ ऐसी चर्चा चलती है कि लगता है जैसे हम बाजार में बैठे हों।”

श्री गुरुजी नहीं चाहते थे कि सत्याग्रह या अनशन का मार्ग अवलंबन कर गोहत्या निरोध आंदोलन चले। परन्तु सन् १९६६ के अंत में पुरी के शंकराचार्य जी ने पुरी में और श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी ने वृन्दावन में अनशन प्रारंभ कर दिया। इससे परिस्थिति जटिल हो गयी। सन् १९६६ में राजधानी में प्रचण्ड प्रदर्शन हुए थे। आंदोलन धधक उठा था। ऐसी वार्ताएँ प्रस्तुत हो रही थीं कि गोहत्या निरोध का अध्यादेश राष्ट्रपति जारी करने जा रहे हैं। परन्तु अध्यादेश न निकालने का ही निश्चय किया गया। इसके लिए कारण दिया गया कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसके पूर्व दिए गये निर्णय की अवहेलना होगी। सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय यह था कि बुढे और खेती के काम के लिए निरुपयोगी बैलों की हत्या करने में कोई आपत्ति नहीं है। अध्यादेश जारी किया तो इन बैलों की हत्या का भी विरोध होगा। सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय पर

तीखी टिप्पणी करते हुए श्री गुरुजी ने कहा कि 'गौ' याने संपूर्ण गोवंश ही अभिप्रेत है जिस प्रकार man कहने पर woman भी आती है। परन्तु इस सामान्य रूप से सर्वत्र मानी हुई बात को ध्यान में न रखते हुए बैलों को गायों से अलग किया गया है। बैलों की हत्या के बहाने गायों की हत्या करने से कौन रोक सकता है? यह समाचार ज्ञात होने पर श्री गुरुजी ने कहा, "आखिर राष्ट्रपति किसलिए हैं? उनका शब्द ही प्रमाण माना जाना चाहिए।"

सन् १९५२ के अगस्त मास में श्री गुरुजी द्वारा दिया गया संकेत सही निकला। इस मास में विभिन्न ४० संस्थाओं के प्रतिनिधियों की एक बैठक आयोजित की गयी थी। सत्याग्रह मुहिम के लिए विशेष अनुकूलता बैठक में नहीं दिखायी दी। इस बैठक में श्री गुरुजी ने कहा, "गोहत्या के निरोध के प्रति आज जितना अनुकूल वातावरण निर्माण हुआ है उतना इसके पूर्व कभी भी निर्माण नहीं हुआ था। इस वातावरण में भी गोहत्या निरोध की दिशा में पग उठाने के लिए सरकार को प्रवृत्त किया नहीं जा सका तो आगामी ४-५ वर्षों में गोहत्या बंद होना संभव नहीं क्योंकि आगे देश के सामने अन्य अनेक प्रश्न उपस्थित होनेवाले हैं और उनपर से लोगों और सरकार का ध्यान हटाकर उसे गोरक्षा के प्रश्न की ओर मोड़ना असंभव होनेवाला है।"

उपर्युक्त भविष्यवाणी पूर्णतः सही निकली। ऐसा नहीं कि इस प्रश्न को प्रभावी बनाने का प्रयत्न नहीं हुआ। परन्तु उसे जनमानस में और सरकार की दृष्टि से भी अग्रक्रम प्राप्त नहीं हुआ। आन्दोलन शान्त हो गये। अब तक भी इस प्रश्न का अन्तिम हल दृष्टिपथ में नहीं है। गोमांस का निर्यात और खेती के उपयुक्त जानवरों की हत्या बड़ा गंभीर प्रश्न बन गया। सेक्युलैरिज्म का डंका बजानेवाले इस प्रश्न पर मुसलमानों और ईसाइयों को नाराज करनेवाला कोई भी कदम उठाएँगे, ऐसी संभावना नहीं है। इस अनिच्छा की जड़ें नेहरु की नीतियों में हैं यह श्री गुरुजी ने प्रकट रूप से स्पष्ट बतलाया था। इस संदर्भ में नेहरुजी द्वारा बैरिस्टर जिन्ना को लिखे एक पत्र के कुछ कथनों का वे उल्लेख करते थे। गुवाहाटी में सन् १९५५ में प्रतिष्ठित नागरिकों की सभा में बोलते हुए इस पत्र के वाक्यों को उन्होंने दोहराया था जो इस प्रकार थे। "ऐसा दिखता है कि गोहत्या के विषय में कांग्रेस के विरुद्ध झूठा और बेबुनियाद प्रचार किया जा रहा है। कांग्रेस गोहत्या को कानून से बंद करनेवाली है यह कांग्रेस विरोधी प्रचारक बतलाते हैं। मुसलमानों को उनके किसी भी सुप्रतिष्ठित अधिकार से वंचित करने की कांग्रेस की इच्छा नहीं है।"

गोवंश का विनाश अब भी जारी है। आचार्य विनोबा भावे के लिए गोवंश-रक्षा सर्वाधिक प्रिय विषय रहने के कारण उन्होंने गोहत्या बंदी के लिए सत्याग्रह किया, आंदोलन छेड़ा। किन्तु फिर भी केन्द्र में आसीन सत्ताधारियों को गोहत्या बंदी का राष्ट्रव्यापी कानून बनाकर उसका कठोर पालन करने की इच्छा नहीं होती। मतों की (votes) असीम लालसा का राजनीति पर विपरीत परिणाम हो रहा है।

तिरुप्पुर में सन् १९६७ में पर्लिक्काड़ ज्ञानाश्रम के स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी के साथ गोहत्या विरोधी आन्दोलन के बारे में बातचीत करते समय श्री गुरुजी ने दो मुद्दोंपर विशेष बल दिया। प्रथम मुद्दा यह था कि विदेशी शासन भारत में प्रस्थापित होने के बाद ही यहाँ गोहत्या प्रारंभ हुई। इसलिए अपने राष्ट्र-जीवन पर वह कलंक है; गो-हत्या मुसलमानों ने शुरु की और मुसलमानों ने वह विरासत में आगे चालू रखी। अब हम स्वतंत्र हुए हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पूर्व की राजनीतिक गुलामी के काल के सारे कलंक नष्ट करना हमारा कर्तव्य है। यदि यह कर्तव्य पूरा नहीं किया तो हम मानसिक दासता के शिकार होंगे। परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर गोहत्या बंद करना तो दूर रहा, वह अनेक गुना बढ़ी है। १९४४-४५ में ही पूर्व की तुलना में वह ५० से १०० गुना बढ़ी थी। अंग्रेजों के समय विदेशी सेना भारत में रहती थी इसलिए यह प्रमाण बढ़ा होगा किन्तु स्वतन्त्रता के बाद यह प्रमाण घटा नहीं उल्टे विदेशी सेना के यहाँ से चले जाने पर भी गायों की हत्या २० गुना बढ़ी है।

श्री गुरुजी का दूसरा मुद्दा यह था कि सम्पूर्ण भारत में केन्द्रीय कानून से गोहत्या बंदी होना अत्यावश्यक है। क्यों आवश्यक है इसकी कारण मीमांसा बताते हुए उन्होंने कहा, "अंग्रेजों ने गाय और सुअर के मांस का सेना के लिये उपयोग करना निषिद्ध माना था, यह ध्यान में लेना चाहिए। १८५७ का स्वातन्त्र्य युद्ध भड़कने के लिए जो कारण थे वे भी हमें स्मरण करना चाहिए। अब सेना में सुअर के मांस पर बंदी है परन्तु गोमांस का उपयोग मुक्त रूप से किया जाता है। उत्तरप्रदेश जैसे कुछ राज्यों में गोहत्या पर कानून से बंदी है परन्तु उसमें संशोधन करने का भारत सरकार ने सुझाव दिया है। इस संशोधन से अनुपयुक्त पशु सेना के लिए काटे जा सकेंगे। इससे उत्तम जानवर भी कत्ल किये जाने का भय निर्माण हुआ है। गोहत्या निरोध कानून निरर्थक सिद्ध होने लगा है। जिन कारणों से हम भारत सरकार से सम्पूर्ण देश के लिए एक कानून बनाने की मांग कर रहे हैं, उनमें महत्व का कारण यह है कि मैसूर राज्य जैसे प्रदेशों में गोहत्या बंदी का कानून होते हुए भी राज्य की सीमा-पार के भागों में अंधाधुंध पशुहत्या की जाती है और वह मांस मैसूर क्षेत्र में चोरी-छिपे लाकर सरे आम बेचा जाता है। इसलिए संपूर्ण देश में लागू होनेवाला कानून चाहिए।

उन्होंने यह मुद्दा भी रखा कि गो हत्या निरोध के विरोध में विदेशी सत्ताओं का दबाव पड़ता हुआ दिखाई देता है। उन्होंने कहा कि कुछ नेतागण ऐसा तर्क देते हैं कि गोमांस निर्यात नहीं किया तो हम विदेशी मुद्रा बड़े पैमाने पर खो बैठेंगे। इस तर्क में विदेशी सत्ता का दबाव स्पष्टतः दिखता है। अमरीकी लोगों को हम से पशुओं का चमड़ा और सस्ता गोमांस चाहिए। उनकी इच्छा है कि अमरीकी गायें सुरक्षित रहें और भारत को दुग्ध पाउडर के लिए हमेशा उन पर निर्भर रहना पड़े। अमरीका इसके लिए भारत सरकार पर दबाव डाल रहा है। अमरीका ने कहा है कि यदि भारत ने गोहत्या बंदी की तो उसका सहयोग भारत को नहीं मिलेगा। विदेशी मुद्रा प्राप्त करने के लिए क्या हम अपने मानबिन्दु और आदर्श के संबंध में समझौता कर सकते हैं? "

इस विषय को जन सामान्य से लेकर देश के शीर्षस्थ नेताओं और सत्ताधारियों तक पहुँचानेवाले एक मात्र नेता के रूप में श्री गुरुजी का नाम स्मरण में रहेगा। स्वतंत्रता के आंदोलन के समय महात्मा गांधी जी ने गो रक्षा तथा गो पूजन को अपने कार्य का एक अविभाज्य अंग ही माना था। हिन्दू संस्कृति की महत्ता के लक्षण के नाते गो माता के प्रति श्रद्धा का उल्लेख तो उन्होंने किया था किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात इस विचार को आगे बढ़ाने या जनमत प्रभावित करने का अवसर उन्हें प्राप्त नहीं हो सका। इसी कमी की पूर्ति श्री गुरुजी ने की। कहा जा सकता है कि गांधीजी की यह उत्कट इच्छा पूर्ण करने का भरसक प्रयास श्री गुरुजी ने किया।

*

१४ सजग राष्ट्र प्रहरी

१९४७ में हुआ देश का रक्तरंजित विभाजन, इस दुःखद पृष्ठभूमि पर प्राप्त राजनैतिक स्वाधीनता, स्वतंत्र रियासतों का विलनीकरण, महात्माजी की हत्या, नये संविधान की स्वीकृति, तदुपरांत १९५२ में हुआ पहला आम चुनाव आदि घटनाएँ १९४७ से १९५२ तक के पाँच वर्षों में घटीं। इन घटनाओं के दूरगामी परिणाम भारतीय समाज में प्रतिबिंबित हुए। प्रतिक्रियाएं उभरती रहीं। भिन्न-भिन्न विचारों की लहरें जनमानस पर टकराती रहीं।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लिए इन घटनाओं से अलिप्त रहना, उनसे हटकर रहना सम्भव नहीं था। विभाजन के रक्तरंजित कालखंड में संघ के स्वयंसेवकों ने हुन्दू समाज की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी। गांधी हत्या के पश्चात निर्दोष होते हुए भी संघ को जनप्रक्षोभ का शिकार होना पड़ा और उसमें से संघ झुलस कर निकला। संघ इस अग्निपरिक्षा में खरा उतरा। संघ पर लगा प्रतिबंध हटाया गया। संघकार्य पुनः प्रारंभ हुआ। फिर भी नये वातावरण के सन्दर्भ में संघ की भूमिका क्या रहेगी? यह प्रश्न अनेकों के मन में उत्पन्न होना स्वाभाविक था।

स्वतंत्रताप्राप्ति का प्रश्न हल हो चुका था। सदियों से हृदय में व्याप्त पराधीनता की पीड़ा-भावना समाप्त हो चुकी थी। अब प्रश्न था भारत के नवनिर्माण का। यह नव निर्माण कैसे होगा? इस प्रकार के अनेक प्रश्न एक के बाद एक सामने आते गये। संघ के अनेक कार्यकर्ताओं के मन में भी ये प्रश्न बार-बार उभरते रहे। १९५२ के चुनाव का उदाहरण इस बात को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त होगा।

१४.१ चुनावी जय-पराजय के परे

१९४७ के संकटग्रस्त कालखंड में संघ के हजारों कार्यकर्ताओं ने अपने प्राण संकट में डालकर पाकिस्तानी आक्रमणकारियों से हिन्दू बंधुओं को बचाया था। संघ उस समय समाज के लिए प्रशंसा का पात्र बना था। इस कारण अनेक कार्यकर्ता १९५२ के आम चुनाव में भारतीय जनसंघ के प्रत्याशी के रूप में खड़े हो गये। किन्तु आश्चर्य की बात यह रही कि जब चुनाव के परिणाम घोषित हुए तब विजेताओं में एक भी कार्यकर्ता का नाम नहीं था।

सभी प्रत्याशी पराभूत हुए। जिन लोगों ने देश के विभाजन को मान्यता दी, देश का बँटवारा निःसंकोच स्वीकार किया, निर्वासितों की ओर ध्यान तक नहीं दिया, उन्हें बेहाल, बेघरबार, असहाय अवस्था में देखते हुए भी जिन्होंने न आह भरी न अन्याय को रोकने के लिए कोई प्रयास किया, ऐसे लोग सत्ता के सिंहासन पर बिठाए गये। संघ के स्वयंसेवकों द्वारा किया हुआ त्याग, बलिदान, भले ही वह निरपेक्ष हो, कम से कम इस चुनाव के संदर्भ में निराशा उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त था।

परिणामतः पंजाब-दिल्ली विभाग में निराशा और विफलता की भाषा अनेक कार्यकर्ताओं के मुँह से सुनाई देने लगी। कार्यकर्ताओं के मन में निराशा के काले बादल मँड़राने लगे। इन बादलों की काली परछाई हृदय पर छाने लगी। दूसरी ओर कश्मीर, भाषानुसार प्रांत रचना, सेक्यूलर राज्य का आशय और स्वतंत्र भारत का एकात्म राष्ट्रस्वरूप, हिन्दू के अतिरिक्त अन्य (ईसाई और मुसलमान) समाजों का भारत में स्थान, ऐसे अनेक प्रश्न राष्ट्रीय मंच पर चर्चा और चिंतन-मनन के विषय बने थे।

स्वाधीनता के बाद का प्रारंभिक काल राष्ट्रजीवन के सभी पहलुओं व मान्यताओं का विचार कर भविष्य की दृष्टि से नींव की स्थापना का था। इस कारण वाद-प्रतिवाद की धूल से सामाजिक और राजनीतिक वायुमंडल भरा हुआ था। इस धूमिल वातावरण में सही दिशा की ओर जाते हुए राष्ट्रजीवन की मूलभूत समस्या पर संघ की दृष्टि केन्द्रित करने तथा संघबाह्य जनता को राष्ट्रीय भूमिका तथा कर्तव्यों से अवगत कराने का जो प्रयत्न श्री गुरुजी ने किया, उसके लिए वर्तमान भारतवर्ष को उनके प्रति कृतज्ञता का भाव हृदय में सँजोना चाहिए।

मूलतः डॉ. हेडगेवार जी ने संघ की स्थापना हिन्दू समाज को संगठित करने तथा पराधीनता के लिए कारणीभूत हुए दोषों को दूर कर उसे तेजस्वी तथा बलशाली बनाने के लिए की थी। उनकी धारणा थी कि स्वतंत्रता तो इस योजना का एक अंश मात्र है, एक मंजिल है। किन्तु दुर्भाग्य से खंडित भारत की स्वतंत्रता ही हमें स्वीकार करनी पड़ी।

दूसरे महायुद्ध के पश्चात अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति तथा साम्राज्य संभालने की असमर्थता के कारण इच्छा न होते हुए भी ब्रिटिशों को स्वतंत्रता भारत की झोली में ड़ाल देनी पड़ी। फिर क्या संघ का प्रयोजन समाप्त हुआ? श्री गुरुजी ने इस प्रश्न का उत्तर 'नहीं'

में दिया और स्वतंत्र भारत में संघ को जो कार्य करना था उसकी विशुद्ध रचना प्रस्तुत की। डॉक्टर जी के विचारों तथा कार्यपद्धति के सूत्र को बाधा न पहुंचाते हुए उन्होंने यह रचना पुरस्कृत की थी। साथ ही डॉक्टर जी के विचार तथा कार्यपद्धति पर दृढ़ श्रद्धा पुनश्च सुस्थिर करने में वे सफल रहे।

इस दृष्टि से १९५४ के मार्च में श्री गुरुजी के साथ पूरे देश भर के जिला तथा ऊपरी स्तर के प्रचारकों के खुले और प्रदीर्घ विचार-मंथन का कार्यक्रम हुआ। दि. ९ मार्च से १६ मार्च, अर्थात आठ दिन का यह आयोजन था। शिविर के लिए नागपुर-वर्धा मार्ग पर स्थित सिंदी नामक गाँव चुना गया था इसका एक विशेष कारण था। संघ संस्थापक डॉ. हेडगेवार जी ने १९३९ में इसी सिंदी गाँव में एक बैठक आयोजित कर संघ की नयी संस्कृत प्रार्थना को स्वीकार किया था, साथ ही संघ की कार्यपद्धति तो स्थायी रूप प्रदान किया था।

अब १५ साल बाद संघ के विचार तथा कार्यपद्धति के संबंध में मूलभूत चिंतन करने हेतु इस शिविर का आयोजन किया गया था। स्थान वही-सिंदी, किन्तु संदर्भ बदली हुई परिस्थिति का। सिंदी में हुए इस चिंतन-मंथन का समारोप करते समय दि. १६ मार्च १९५४ के दिन श्री गुरुजी ने १९३९ की बैठक का संदर्भ-स्मरण कराते हुए कहा,

“उस समय (१९३९) हम लोगों ने अपने अंतःकरण में अपने कार्य के प्रति विश्वास दृढ़ किया था और निश्चय भी किया था कि हम दिनरात परिश्रम कर इस कार्य को बढ़ाएँगे। तदुपरांत सवा वर्ष पूरे होते-न होते डॉक्टर साहब की जीवन यात्रा समाप्त हुई। किन्तु फिर भी एकाग्रता से काम करते हुए हमने संघकार्य को आगे बढ़ाया। संघकार्य विकसित हुआ। यदि हमारे चारों ओर की परिस्थिति के परिणाम-स्वरूप कुछ शंकाएँ मन में उत्पन्न हुई हों तो हम पुनः एक बार निश्चय करें कि किसी भी दोष को अपने मन में प्रवेश नहीं होने देंगे। अपनी सर्वशक्ति दाँव पर लगाकर, दिन-रात परिश्रम करते हुए हम अपने-अपने श्रेत्र में संघकार्य प्रभावोत्पादक ढंग से बढाएंगे। हम संघ का ऐसा प्रभाव अर्जित करेंगे कि संघ के वातावरण का स्पर्श जिसे नहीं हुआ, ऐसा एक भी व्यक्ति न रहे। हमारी इच्छा मात्र से राष्ट्रजीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्र कार्यप्रवण होंगे और देश की प्रगति और कल्याण का उद्देश्य हम सफल करेंगे।”

सिंदी में हुए चर्चासत्र का संपूर्ण ब्यौरा देने का यहाँ प्रयोजन नहीं है। किन्तु इस बैठक में श्री गुरुजी ने हिन्दू जीवनदर्शन के प्रकाश में स्वतंत्र भारत का जीवनोद्देश्य क्या है?

विश्व की विभिन्न विचारधाराओं का परिणाम क्या हो रहा है? हिन्दू समाज के मूल तत्व क्या हैं? संघ कार्यपद्धति की अनुपम यशस्वी विशेषताएँ क्या हैं? आदि विषयों पर भाषण दिये और कार्यकर्ताओं से मुक्त प्रश्नोत्तर आदि किये। अंत में श्री गुरुजी ने कार्यकर्ताओं के सम्मुख जो आवाहन किया वह बहुत ही प्रेरक तथा हृदय को स्पर्श करनेवाला था। स्वतंत्रता प्राप्त होने के पश्चात् १९५४ में बढ़ती हुई समस्याओं के प्राथमिक कालखंड में श्री गुरुजी ने अत्याधिक लगन तथा हृदय की वेदना भरी टीस के साथ कहा, “आज देश के सामने जो संकट हैं और भविष्य में जो समस्याएं उपस्थित होनेवाली हैं, उनमें से देश को उबारने की शक्ति केवल अपने ही कार्य में निहित है। किसी अन्य कार्य के लिए यह संभव नहीं है।”

आगे सभी प्रचारकों को संबोधित करते हुए श्री गुरुजी ने कहा कि वे अपनी व्यक्तिगत बातों को हृदय से हटाकर सर्वस्वार्पण कर अपना काम करें। कार्यकर्ताओं को कार्यप्रवण करने तथा त्याग और समर्पण के लिए प्रवृत्त करने का विलक्षण सामर्थ्य श्री गुरुजी की वाणी, विचार तथा आचरण में था इसमें कोई संदेह नहीं।

१९५४ के पहले से ही संघ के कार्यकर्ता राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत होने लगे थे। किन्तु सिंदी के चर्चा शिविर में श्री गुरुजी ने ‘शाखाकेन्द्रित कार्य’ पर सर्वाधिक ध्यान देने का आग्रह रखा था। शाखा संघ की शक्ति तथा संस्कार का केन्द्र है। अतः शाखा शक्तिशाली होगी तो शाखा के भरोसे होनेवाले बाहरी काम भी प्रभावी होंगे यह उनके कथन का मुख्य आशय था। श्री गुरुजी ने संघ की कार्यपद्धति को राष्ट्र-पुरुष के पूजन का मार्ग कहा। इसी कार्य में एकाग्र होने का आग्रहपूर्वक प्रतिपादन उन्होंने किया।

इस मार्गदर्शन के बाद सभी कार्यकर्ता अपने-अपने क्षेत्र में एक नया उत्साह, नयी उमंग तथा कर्तव्यनिष्ठा लेकर लौटे। परिणामतः भारत में संघकार्य बढ़ता, पनपता दिखाई दिया। श्री गुरुजी प्रारंभ से ही कार्यकर्ता के कार्य-कौशल्य तथा गुणों की ओर अधिक ध्यान देते थे। यह उनका स्वभाव था। कार्यकर्ता गुणवान हो, कार्य कुशल हो, स्वयंप्रेरणा से योग्य निर्णय लेने की क्षमता उसमें हो, इन्हीं बातों पर विभिन्न चर्चासत्रों में वे जोर देते, ध्यान आकर्षित करते थे। समाचारपत्रों, शिक्षा संस्थाओं, विद्यार्थियों और मजदूरों के संगठन, राजनीतिक संगठन आदि क्षेत्रों में कार्यकर्ता काम करने लगे थे। उनकी भूमिका का उल्लेख श्री गुरुजी ने किया। उस संबंध में अधिक विवेचन आगे आयेगा ही।

अनेक लोग पूछते हैं कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने देशभर में संघकार्य का प्रचार और प्रसार करने के लिए इतने बड़े प्रमाण में कार्यकर्ता के रूप में त्यागी प्रचारक कहाँ से पाए? किसी तपस्वी की भांति ये प्रचारक अपने कार्यक्षेत्र में वर्षानुवर्ष किस बलबूते पर डटे रहे? इस प्रश्न का उत्तर हमें प्राप्त होगा उन चर्चाओं में जिसमें श्री गुरुजी सहजता से विचार-विनिमय किया करते थे।

श्री गुरुजी स्वयं एक ज्वलंत उदाहरण थे। उनके आचार-विचार एकरूप थे, अभिन्न थे। डॉक्टर जी की जीवनी तथा तपस्वी श्री गुरुजी की तपःपूत, तपस्वी ध्येय-वादिता और वाणी कार्यकर्ताओं के सम्मुख प्रेरणास्त्रोत थे। इन दो महान् विभूतियों के राष्ट्रसमर्पित जीवन को भी हमें ध्यान में रखना होगा। हिन्दू जीवन-मूल्यों, अध्यात्म तथा राष्ट्रपुरुषों की परंपराओं के बारे में श्री गुरुजी का चिंतन सूक्ष्म, गहरा तथा मर्मग्राही होने के कारण संघ के कार्यकर्ताओं ने किस प्रकार जीवन के संबंध में विचार करना चाहिए, इसका रोचक उदाहरणों द्वारा स्फूर्तिप्रद विवेचन वे सरलता से किया करते थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत दस वर्ष के कालखंड में संघकार्य का विस्तार करते हुए श्री गुरुजी अत्याधिक कार्यमग्न अवश्य थे किन्तु चारों ओर हो रहीं घटनाओं की ओर उनका पूरा ध्यान था। बहुत पैनी नजर से वे इन गतिविधियों का सूक्ष्म अभ्यास किया करते थे। जानकारी की बारीकियाँ सदैव उनके ध्यान में रहा करती थीं। इसी आधार पर वे जनता तथा शासन को आगाह करते थे, सतर्क रहने की चेतावनी देते थे। गलत नीतियों पर प्रहार कर सही मार्गदर्शन करना वे अपना कर्तव्य मानते थे। इन दिनों स्थान-स्थान पर श्री गुरुजी ने जो भाषण दिये उन्हें यदि स्मरण किया, छपे हुए या संकलित वृत्तों की छानबीन की तो हमें ज्ञात होगा कि श्री गुरुजी देशहित के बारे में कितने सजग थे, सतर्क थे। विशेष रूप से हमें यह दिखाई देगा कि देश के विघटन के लिए कारण बनी तथा राष्ट्रीय एकात्मता के लिए हानिकारक घटनाओं का उल्लेख उनके भाषणों में बार-बार आया है।

देशभक्ति के ठेकेदारों ने हिन्दू राष्ट्र की भाषा बोलनेवाले, साग्रह हिन्दू राष्ट्र का समर्थन करनेवाले श्री गुरुजी को 'सांप्रदायिक' करार दिया था। इस अहंकार तथा वैचारिक प्रदूषण के फलस्वरूप देश के नेताओं ने श्री गुरुजी की देशहितकारी संकल्पनाओं को अस्वीकृत कर दिया। कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होगी।

१४.२ भाषावार राज्य-रचना

१९५२ के पश्चात् देश में भाषानुसार प्रांत रचना की माँग ने जोर पकड़ा। इस प्रश्न को उछालकर भावनाएँ भड़काने का काम कुछ नेताओं ने शुरु कर दिया। अपने भारत का संविधान संघात्मक है। राज्यपुनर्गठन आयोग के गठित होते ही तरह-तरह की माँगों तथा परस्पर विरोधी दावों की बाढ़ सी आ गई। श्री गुरुजी का स्पष्ट मत था कि देश का संविधान संघात्मक न हो। वह 'युनिटरी' याने एकात्मक हो अर्थात् केन्द्र में एक शासन और बाकी सारे प्रांत प्रशासन की सुविधा के अनुसार। किन्तु इस विचार की ओर शासकों ने ध्यान नहीं दिया। वाद-प्रतिवाद बढ़ने लगे। भाषा भेद और भाषा का दुराभिमान लेकर कई प्रांत एक दूसरे के सामने ऐसे खड़े हो गये मानों वे शत्रु राष्ट्र हों। रक्तपात की हिंसात्मक भाषा का भी प्रयोग होने लगा।

इस आंदोलन में कम्युनिस्ट पार्टी ने आग में घी डालने का काम किया। कम्युनिस्टों की अभिलाषा थी कि किसी तरह राष्ट्रीय एकात्मता भंग हो। इसे पूर्ण करने हेतु पार्टी के नेताओं ने यह कहना प्रारंभ किया कि प्रत्येक भाषा आधारित प्रांत एक राष्ट्र है तथा भारत इन राष्ट्रों का समूह है।

इस प्रकार भूतपूर्व ब्रिटिश राज्यकर्ताओं के पदचिन्हों पर चलते हुए सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने में लगे सत्ताप्रिय राजनीतिक नेतागणों तथा देश के छोटे-छोटे टुकड़े कर उसे दुर्बल बनाते हुए रुसी महासत्ता का गुलाम बनाने के लिए कटिबद्ध साम्यवादियों का कोलाहल जब परिसीमा पर था तब श्री गुरुजी ने दृढ़तम तथा निश्चयात्मक स्वर में बताने का प्रयत्न किया कि भाषा के अभिनिवेश का शिकार होने से राष्ट्रीय एकात्मता के सांस्कृतिक अधिष्ठान के भंग होने का धोखा है।

इसी समय मुंबई में प्रांतीयता के विरोध में एक परिषद् का आयोजन किया गया। श्री गुरुजी इस परिषद् के अध्यक्ष थे। परिषद् के स्वागताध्यक्ष थे श्री जमनादास मेहता और उद्-घाटक थे तत्कालीन महापौर श्री दाह्याभाई पटेल। इस अवसर पर श्री गुरुजी ने अध्यक्ष पद से जो भाषण दिया वह बहुत ही प्रखर तथा विचारप्रवर्तक था।

भाषण के प्रारंभ में ही उन्होंने कहा, "मैं एक देश, एक राज्य का समर्थक हूँ। एक ओर सारे संसार का राज्य बने ऐसा कहा जाता है और दूसरी ओर संपूर्ण भारत एक राज्य हो ऐसा विचार किसी ने रखा तो कुछ लोगों की भौंहे तन जाती हैं।"

“वास्तव में भारत में एक ही केन्द्र शासन होना चाहिए और शासन व्यवस्था की दृष्टि से राज्य के स्थान पर विभाग होने चाहिए। आज हमारे नेतागण महाराष्ट्रीय, गुजराती आदि भिन्न संस्कृतियों की बातें करते हैं। किन्तु हमारी तो आसेतु हिमाचल एक ही संस्कृति है तथा संस्कृति तो राष्ट्र की आत्मा होती है। इस कारण हमें देश की संस्कृति, परंपरा, राष्ट्रधर्म तथा कुलधर्म की रक्षा करनी चाहिए। देश को धर्मशाला बनाकर काम नहीं चलेगा। सौदेबाजी की भाषा रोककर हमें राष्ट्र का विचार करना चाहिए।”

श्री गुरुजी ने भाषानुसार प्रांत रचना का विरोध किया। इस विरोध को उन्होंने स्पष्ट शब्दों में बेहिचक जनता के सामने व्यक्त किया। इस बारे में महाराष्ट्र में काफी टीका-टिप्पणी हुई। किन्तु श्री गुरुजी ने ऐसी टिप्पणियों की ओर न हीं ध्यान दिया, न ही चिंता की। किसी भी परिस्थिति में उन्होंने अपना राष्ट्रीय विवेक डिगने नहीं दिया। सदैव की भांति वे अजिग रहे। विवेकशीलता की अनुभूति संयुक्त महाराष्ट्र के आंदोलन के समय हुई। प्रधानमंत्री पं. नेहरुजी ने आंध्र का राज्य भाषा के आधार पर निर्माण करने को मान्यता प्रदान कर दी थी। किन्तु महाराष्ट्र और गुजरात को मिलाकर विशाल द्विभाषी राज्य बनाया गया। इस निर्णय का विरोध करने के लिए आंदोलन छिड़े, किन्तु पुलिस द्वारा गोलियाँ बरसाकर दमननीति का सहारा लेते हुए आंदोलन भंग करने का प्रयास किया गया। श्री गुरुजी ने इस दमन प्रवृत्ति का कड़ा विरोध किया। इस विरोध को अधिक प्रखर बनाने हेतु उन्होंने एक पत्रक प्रसारित किया जिसमें उन्होंने कहा, “सरकार गुंडों की सहायता से सत्याग्रह को कुचलना चाहती है। सरकार द्वारा प्रोत्साहित गुंडाशाही को सहना असंभव है। इस गुंडागर्दी का यदि मैंने विरोध नहीं किया तो माना जाएगा कि मैंने अपने कर्तव्य का निर्वाह नहीं किया। मैं कर्तव्यच्युत नहीं रह सकता।”

एक और प्रसंग इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। प्रतापगढ़ पर पं. नेहरु द्वारा श्री छत्रपति शिवाजी महाराज की मूर्ति के अनावरण का कार्यक्रम आयोजित किया गया। संयुक्त महाराष्ट्र समिति ने पं. नेहरु के आगमन तथा अनावरण कार्यक्रम का कड़ा विरोध करने का निश्चय किया। विरोध प्रदर्शनों की तैयारियाँ बड़ी गर्मजोशी से चालू हो गयीं। श्री गुरुजी को यह बात अनुचित लगी। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से इस प्रकार के विरोध प्रदर्शन अनुचित है, यह बात उन्होंने प्रगट रूप से कही। यद्यपि कांग्रेस शासन द्वारा यह कार्यक्रम राजनैतिक उद्देश्य से आयोजित किया गया था और मराठी जनमानस के प्रति प्रेमभाव तथा अपनत्व का आभास निर्माण करने का एक अंतस्थ हेतु भी उसके मूल में था तथापि भारत के प्रधानमंत्री छत्रपति शिवाजी महाराज का गौरव करने आ

रहे हैं, अतएव उनके आगमन का विरोध करना श्री गुरुजी सर्वथा अनुचित मानते थे। उनके लिए राष्ट्रीय गौरव सर्वोपरि था।

इस अवसर पर प्रकाशित एक परिपत्र में श्री गुरुजी ने कहा, "छत्रपति शिवाजी की मूर्ति का अनावरण करने के लिए मान्यता देते समय पं. नेहरु को झुकना पड़ा है। आज तक अपनी ही अहंकारी प्रवृत्ति में डूबे रहने के कारण उन्होंने अनेकों बार शिवाजी का अपमान किया था। आज संपूर्ण भारत के शासक-सुत्रधार पं. नेहरु, विलंब से ही क्यों न हो, एक असामान्य राष्ट्रपुरुष के प्रति आदर व्यक्त करने हेतु पधार रहे हैं। शिवाजी महाराज न केवल महाराष्ट्र के अपितु संपूर्ण भारत के वंदनीय महापुरुष हैं। साथ ही इस युगपुरुष की यथार्थ महत्ता समूचे विश्व को बताने वाला यह प्रसंग है। यह एक अपूर्व योग हमें प्राप्त हुआ है इसमें अपशकुन नहीं होना चाहिए। ऐसा प्रयत्न कोई न करे। ऐसी कृति करने से शिवाजी के बारे में अनादर तथा अश्रद्धा का भाव ही प्रगट होगा। इस कारण मैं सभी बंधु, भगिनी तथा माताओं से आग्रहपूर्वक विनती करता हूं कि वे अपनी विवेक बुद्धि से काम लें। अपना विवेक जागृत रख इस कार्यक्रम में भाग लें।"

श्री गुरुजी के इस वक्तव्य के कारण अनुकूल-प्रतिकूल प्रतिक्रियाएँ प्रकट हुई। किन्तु इस परिपत्रक ने संयुक्त महाराष्ट्र के समर्थकों को विचार के लिए बाध्य किया। परिस्थिति को नया मोड़ लेना पड़ा।

१४.३ पंजाब के संदर्भ में

आगे चलकर पंजाबी सूबे का विवाद निर्माण हुआ और उसमें से ही पंजाब और हरियाणा, दो शासकीय प्रांत तैयार हुए यह सर्वविदित है। यह वाद जिस समय परमोच्च शिखर पर पहुँचा था उस समय भी श्री गुरुजी ने अपनी राष्ट्रीय एकता की और सब भारतीय भाषाएँ राष्ट्रीय भाषाएँ हैं यह भूमिका कभी नहीं छोड़ी। भारतीय जनसंघ के उस भाग के कार्यकर्ताओं को भी न पसन्द पड़नेवाली स्पष्ट और निस्संदिग्ध भूमिका उन्होंने ग्रहण की। उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि जिनकी मातृभाषा पंजाबी है वे प्रामाणिकता से राजनीति का विचार छोड़कर पंजाबी को ही अपनी मातृभाषा लिखवाएँ। पंजाबी मातृभाषा होते हुए भी हिन्दी को मातृभाषा लिखवाने की सलाह जो देते हैं वे बड़ी भारी भूल कर रहे हैं। इस मतप्रदर्शन से अनेक आर्यसमाजी श्री गुरुजी पर बहुत नाराज हुए। जनसंघ के लोगों को भी अड़चन सी

मालूम होने लगी। परन्तु श्री गुरुजी द्वारा जो सलाह दी गयी थी वह कितनी हितकारक थी, यह समय ने सिद्ध कर दिया है। आगे पंजाब में उग्रवादी गतिविधियों ने पाकिस्तान की शह पर जोर पकड़ा। प्रत्यक्ष संघशाखाओं पर हमले होकर अनेक स्वयंसेवकों को प्राणों से हाथ धोना पड़ा। फिर भी संघ की भूमिका अत्यन्त संयमित रही। सिख हिन्दू ही हैं और हिन्दू-हिन्दू में झगड़ा लगाकर गृहयुद्ध भड़काने का राष्ट्र-द्रोही षड्यन्त्र सफल नहीं होने देना चाहिए, इस भूमिका से संघ कार्यरत रहा। बदला लेने के विचार को उसने कभी भी आश्रय नहीं दिया। इस नीति का पंजाब में शांति लाने की दृष्टि से बड़ा लाभदायक परिणाम हुआ इसमें कोई संदेह नहीं।

दक्षिण के भाषायी विवाद को सुलझाने हेतु श्री गुरुजी ने राष्ट्रीय एकता की कसौटी सामने रखते हुए इस आधार पर प्रयास किये कि समस्त भारतीय भाषाओं का भावजगत् समान होने से सब राष्ट्रीय भाषाएँ ही हैं। सन् ६६-६७ के आस-पास तमिलनाडु में हिन्दी-विरोधी आन्दोलन अपने चरम पर था। तब कोयंबटूर की सार्वजनिक सभा में, जिसकी अध्यक्षता स्वतंत्र भारत के केन्द्रीय मंत्रिमंडल में मंत्री रह चुके श्री आर.के. षण्मुखम् चेट्टियार ने, जिन्होंने संविधान सभा में हिंदी का विरोध किया था, की थी, श्री गुरुजी ने कहा- “भारत की सभी भाषाएँ राष्ट्रभाषाएँ हैं क्योंकि वे सब एक ही राष्ट्रीय भाव प्रगट करती हैं। किन्तु एक भाषायी समूह के लोग दूसरे भाषायी समूह को लोगों के साथ किस भाषा में वार्तालाप करेंगे? ऐसी सम्पर्क भाषा कोई भी भारतीय भाषा हो सकती है। चूँकि हिन्दी देश में सर्वाधिक बोली और समझी जाती है इसलिए उसे सम्पर्क भाषा के रूप में चुनना अधिक सुविधा का रहेगा।” बाद में अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री षण्मुखम् चेट्टियार ने कहा, “If that is the attitude, then I am for Hindi. (अगर ऐसा दृष्टिकोण है तो मैं हिन्दी का समर्थक हूँ।)” अप्रिय सत्य बतलाने के प्रसंग श्री गुरुजी पर इस कालखंड में अनेक बार आये। महाराष्ट्र-कर्नाटक सीमा विवाद तो बहुत नाजुक था। परन्तु प्रत्येक अवसर पर सम्पूर्ण भारत की सांस्कृतिक एकात्मता, हिन्दू समाज में परस्पर प्रेम का पोषण और राष्ट्रीय अखण्डता के सूत्र न त्यागते हुए जो हितकारक था वही श्री गुरुजी ने बतलाया।

राष्ट्रहित की छोटी-मोटी बातों में भी श्री गुरुजी कितने सजग थे इसके चाहे जितने उदाहरण उनके अखंड प्रवास के समय स्थान-स्थान के भाषणों में से बतलाए जा सकते हैं। कुछ प्रमुख बातों का ही संक्षेप में उल्लेख यहां किया है। जब उनकी इस सजगता का विचार मन में आता है तब केरल के वास्तव्य में उनके मुख से सहजता से निकले उद्-गार स्मरण आते हैं। घटना इस प्रकार हुई, तैल-स्नान के उपचार के लिए वे सन् १९५६ में पट्टाम्बी गये थे। प्रथम दिन तैल-स्नान और बाद में एक

घण्टा तैल-मर्दन होकर ऊष्ण जल से स्नान के लिए श्री गुरुजी को स्नानगृह की ओर ले जाया गया। तब वहां के वैद्यराज बोले, “जरा संभल कर कदम बढ़ाएँ। विशेषतः स्नानगृह में सावधानी बरतें अन्यथा पाँव फिसलने की आशंका रहती है।”

श्री गुरुजी स्नानगृह के दरवाजे तक पहुँचे थे। पीछे मुड़कर देखते वैद्यराज से उन्होंने बिल्कुल उत्स्फूर्तता से कहा, “आपका इशारा योग्य है परन्तु गोलवलकर का जन्म पैर फिसलकर गिरने के लिए नहीं हुआ है, सावधानी से प्रत्येक पग निश्चयपूर्वक आगे डालने का स्वभाव बचपन से ही बना है।” इन उद्-गारों से श्री गुरुजी के स्वभाव वैशिष्ट्य पर उनके ही मुख से उत्तम प्रकाश पड़ता है। “हर विषय में सावधानी” यह समर्थ रामदास द्वारा बतलाया गया गुण अत्यन्त विषम परिस्थिति में भी उनके प्रत्येक शब्द से व्यक्त होता दिखाई देता है।

भाषिक प्रश्न हो या राज्य पुनर्गठन का प्रश्न; आंदोलन, हिंसाचार और लोकक्षोभ का विस्फोट होने पर ही सरकार माँगों को मान्य करती है इसका श्री गुरुजी को दुःख होता था। भाषायी आंध्र की मांग सरकार ने श्री पोट्टि रामुलु की मृत्यु के बाद मान्य की यह उदाहरण था ही। एक ही भाषा के लोगों का एक से अधिक राज्य होने में श्री गुरुजी का विरोध नहीं था। आन्ध्र में तेलंगना स्वतंत्र राज्य निर्माण करने की माँग ने खूब जोर पकड़ा था। यह सन् १९७३ के प्रारंभ की बात है। हिंसा, सार्वजनिक मालमत्ता का बड़े पैमाने पर विध्वंस आदि प्रकार कम्युनिस्टों द्वारा भड़काये गये थे।इस निमित्त किये गये मत प्रदर्शन में श्री गुरुजी ने कहा, “आंदोलनकारियों का उग्र आंदोलन हुआ तो ही एकाध माँग या समस्या की ओर ध्यान देने की सरकारी नीति के परिणाम स्वरूप शांति और सुव्यवस्था की परिस्थिति बिगड़ने की संभावना है। इससे कानून विषयक आदर ही नष्ट हो जाता है। हिंसात्मक विस्फोट होने की राह देखने का क्या कारण? उत्तम मार्ग यह है कि यदि माँग न्याय्य और तर्कसंगत हो तो वह स्वीकार की जाय। यदि आन्ध्र और तेलंगना को पृथक् राज्य चाहिए हों तो वे दिये जा सकते हैं। एक ही भाषा के दो राज्य रहने में कोई बुरी बात नहीं है, सीमा पर स्थित और सामरिक दृष्टि से महत्व के प्रदेशों में नये राज्य निर्माण करते समय अधिक सावधान रहना चाहिए। राष्ट्र-विरोधी शक्तियों के दबाव के नीचे असम का सात राज्यों में विभाजन हो सकता है तो आंध्र के सौहार्दपूर्ण में दो राज्य क्यों नहीं बनाये जा सकते? वस्तुस्थिति यह है कि केवल भाषिक आधार पर राज्यों की पुनर्रचना करना ही गलत कदम था। अब भी केवल प्रशासनिक सुविधा के आधार पर, जिसमें समान भाषा भी एक घटक तत्व हो, राज्यों की पुनर्रचना की जाय तो विघटनवादी प्रवृत्तियों को रोका जा सकेगा। मेरा मत आज भी कायम है कि एकात्मक (Unitary) राज्य पद्धति ही अपने देश की प्रकृति से अधिक मेल खानेवाली है।”

१४.४ गोवा मुक्ति के समय

श्री गुरुजी को दो और प्रश्नों के संबंध में अपना मतप्रदर्शन करना पड़ा। एक प्रश्न था गोमांतक का। १९४७ में अंग्रेज भारत छोड़ गये किन्तु पोर्तुगीज शासक तब भी गोवा में डटे हुए थे। इस दुराग्रह के विरोध में गोवा में जन आंदोलन शुरु करने का निश्चय किया गया। इस कार्य के लिए पुणे में 'गोवा विमोचन समिति' की स्थापना की गयी। समिति में सभी राजनीतिक दलों तथा दलबाह्य लोगों को भी सम्मिलित किया गया था। नीति के बतौर यह तय किया गया कि सर्वप्रथम भारत सरकार गोवा को पोर्तुगीजों के शिकंजे से मुक्त कराने का प्रयास करे। तदनुसार समिति द्वारा केन्द्रीय शासन से प्रार्थना की गयी। बाद में गोवा मुक्ति आंदोलन प्रारंभ किया गया। १९५५ में हुए इस आंदोलन में संघ के स्वयंसेवकों ने उत्साह से भाग लिया। पोर्तुगीजों द्वारा दागी गई गोलियों से राजाभाऊ महंकाल नाम का एक स्वयंसेवक मारा गया। सत्याग्रहियों पर अमानुषिक अत्याचार किये गये। निर्मम अत्याचारों के बावजूद भी सत्याग्रह जारी रहा।

इस गोवा मुक्ति के लिए पोर्तुगीजों के उपनिवेशवाद का विरोध करने के बजाय भारत सरकार मे सत्याग्रहियों पर पाबंदियाँ लगा दीं। परिणामतः सत्याग्रह जारी रखना असंभव सा हो गया। गोवा मुक्ति के लिए चल रहे आंदोलन के साथ ही भारत सरकार की नीति की ओर श्री गुरुजी बहुत बारीकी से ध्यान दे रहे थे। दि. २० अगस्त १९५५ को श्री गुरुजी ने एक परिपत्र मुंबई में प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने कहा, "गोवा में पुलिस कार्रवाई (Police action) करने का यह सुनहरा मौका है। इस कृति से गोवा तो मुक्त होगा ही अपितु हमारी प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी और जो राष्ट्र हमें हमेशा धमकाते रहते हैं, उन पर भी धाक जम सकेगी।"

श्री गुरुजी कहा करते थे कि "पाश्चात्य राष्ट्रों के, विशेष रूप से इंग्लैण्ड के दबाव के कारण भारत सरकार गोवा के प्रश्न को हल करने के लिए सख्ती से पेश नहीं आ रही है। चाहे जो हो, हम गोवा लेकर ही रहेंगे यह पैनी आकांक्षा मन में धारण कर अंगद सा साहसी कदम आगे बढ़ाना आवश्यक है। यदि भारत सरकार इंग्लैण्ड की इच्छा को तूल देती है, उसे प्राथमिकता देती है तो हमें जो स्वतंत्रता प्राप्त हुई हैं उसके कोई मायने नहीं रह जायेंगे। वह निरर्थक दिखावा मात्र होगी। ऐसी राजनीतिक स्वाधीनता की कोई कीमत नहीं होती।" इस प्रकार श्री गुरुजी अपना मंतव्य निःसंदिग्ध रूप व

संपूर्ण पारदर्शिता से स्पष्ट किया करते थे। न किसी का भय, न किसी की चिंता। यदि चिंता थी तो केवल समाज और राष्ट्रहित की।

उनका मानना था कि गोवा का प्रश्न विशुद्ध राष्टीय प्रश्न है। यदि पं. नेहरु स्वयं तिरंगा ध्वज हाथ में लिए गोवा मुक्ति आंदोलन का नेतृत्व करेंगे तो चाहे जितने स्वयंसेवकों को सत्याग्रह में भाग लेने के लिए भेजने की मेरी तैयारी है। किन्तु गोवा के प्रश्न को राष्ट्रीय प्रश्न मानकर सभी राष्ट्रवादी शक्तियों को संगठित करने का प्रयास कांग्रेस के नेता ने कभी किया ही नहीं। उनकी यही मान्यता रही कि जो सत्याग्रह चल रहा है वह विरोधी दलों का ही है।

गोवा मुक्ति के प्रश्न पर श्री गुरुजी की भावना अत्यन्त तीव्र थी। अपनी आसिन्धु सिन्धु मातृभूमि के एक अविभाज्य अंग गोमान्तक से इतिहास की कितनी स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं। किंतु भारत सरकार यदि शस्त्रबल का उपयोग कर गोवा मुक्ति के लिए आगे कदम न बढ़ाती हो तो क्या करना चाहिए? १९५५ के सत्याग्रह का अनुभव ध्यान में लेकर कुछ कृति भारत के जनता ने ही की तो उस बात के लिए श्री गुरुजी सब तरह से अनुकूल थे। संघ के कुछ तेजस्वी तरुणों ने सशस्त्र कार्यवाही द्वारा पोर्तुगीज आधिपत्य में रहे दादरा-नगर हवेली की मुक्ति प्रत्यक्ष कर दिखायी थी। इस लड़ाई के युवकों में से एक श्री सुधीर फड़के ने अपने संस्मरण में लिख रखा है कि यद्यपि श्री गुरुजी से प्रत्यक्ष रूप से विचार विनिमय कर यह मुक्ति संग्राम नहीं हुआ था फिर भी उनकी सहमति हम ने गृहीत मानी थी।

श्री सुधीर फड़के ने कहा है कि प्रत्यक्ष गोवा को भी मुक्त करने की एक योजना १९६२ के आसपास उसी तरुण गुट ने बनायी थी। श्री सुधीर फड़के और कुछ युवाओं का डॉ. पुण्डलिक गायतोण्डे, श्री मोहन रानडे आदि गोमन्तकीय स्वातन्त्र वीरों से निकट का संपर्क था। डॉ. गायतोण्डे इंग्लैण्ड से भारत लौट आये थे और वे भी गोवा मुक्ति के लिए अतीव व्याकुल थे। अन्त में एक योजना बनी कि भारत से लगी हुई सीमा के निकट का कुछ भू भाग सशस्त्र संघर्ष द्वारा मुक्त कर वहां डॉ. गायतोण्डे के नेतृत्व में स्वतन्त्र शासन प्रस्थापित किया जाय। इस योजना को श्री गुरुजी की सहमति थी। मनुष्य बल और द्रव्यबल की ओर भी ध्यान देने को वे तैयार थे। उनसे तीन बार श्री सुधीर फड़के ने भेंट की। श्री गुरुजी की सजगता यहां भी देखने को मिली। डॉ. गायतोण्डे और प्रधानमन्त्री पं. जवाहरलाल जी के बहुत निकट के संबंध थे। पं. नेहरु के विरोध के बाद भी क्या वे इस कार्य में नेतृत्व करेंगे, इसका निस्संदिग्घ उत्तर डॉ.

गायतोण्डे से माँगने का उन्होंने सुधीर फड़के को सुझाव दिया। तदनुसार उनका सकारात्मक उत्तर प्राप्त होने पर ही योजना को हरी झण्डी दिखाई गई। यह आश्वासन भी प्राप्त हुआ कि गोवा के भीतर प्रविष्ट होने तक भारत सरकार की ओर से रुकावट तो आयेगी नहीं अपितु सब प्रकार का सहयोग और मार्गदर्शन भी मिलेगा। परन्तु इसके पहले कि स्वयंसेवक कुछ करते भारतीय सेना ही गोवा की ओर चल पड़ी। कारण यह हुआ कि सन् १९६२ के चुनाव में श्री कृष्णमेनन भी कांग्रेस के उम्मीदवार बन गये और उन्हें तथा कांग्रेस को लाभ दिलाने हेतु फौजी कार्यवाही कर गोवा को मुक्त करा लिया गया और स्वयंसेवक अपना पराक्रम दिखाने से वंचित रह गये। किन्तु भारत सरकार की कार्यवाही का, जो भले ही देर से की गई हो, देश में स्वागत किया गया। पू. गुरुजी ने भी उसका स्वागत किया किन्तु इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि भारत सरकार ने इसे राष्ट्रीय प्रश्न मानकर हल नहीं किया था। ध्यान देने योग्य बात यही है कि श्री गुरुजी ने इस संघर्ष की योजना में रुचि लेकर उसका उचित मार्गदर्शन किया और यह बात उनके राष्ट्रनेतृत्व की क्षमता की दृष्टि से लक्षणीय है।

गोवा के स्वतंत्र होते ही प्रधानमंत्री पं. नेहरु के साथ अन्य राजनीतिक नेताओं ने यह कहना प्रारंभ किया कि गोवा की पृथक् संस्कृति को सुरक्षित रखेंगे। गोवा का विलय समीप के राज्य के साथ न करते हुए उसे केन्द्र शासित राज्य घोषित किया गया। इससे अल्पसंख्यक ईसाई समाज के राजनीतिक हितसंबंध निर्माण हुए और राजनीतिक अस्थिरता बन गयी। यह भिन्न संस्कृति की भाषा, पृथक् संस्कृति की संकल्पना श्री गुरुजी को पसंद नहीं थी। उन्होंने डंके की चोट पर कहा, "गोवा में यदि भिन्न संस्कृति होगी तो वह पोर्तुगीजों की ही हो सकती है। गोवा भारत का ही अंग होने के कारण वहाँ की संस्कृति भी भारतीय संस्कृति ही होगी, अन्य नहीं।"

श्री गुरुजी इस बारे में बहुत सतर्क रहा करते थे कि राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता भंग न होने पाये तथा किसी निहित स्वार्थ के वशीभूत हो प्रादेशिक विविधता को अलग संस्कृति न मान लिया जाये। उनकी इस सजगता का पग-पग पर अनुभव आया करता था।

१४.५कश्मीर विलयन

श्री गुरुजी की सतर्कता की अनुभूति कश्मीर समस्या के संदर्भ में भी हुई। कश्मीर का भारत के साथ जो विलनीकरण हुआ उसका आंशिक श्रेय श्री गुरुजी को भी जाता है। श्री गुरुजी ने इस दिशा में भी प्रयास किया था।

उस अत्यन्त संकटग्रस्त काल में ये प्रयास सरदार पटेल की इच्छानुसार ही श्री गुरुजी ने सफलतापूर्वक किये थे। सन् १९४७ का अक्टुबर का महीना था। विलनीकरण के प्रश्न पर कश्मीर के महाराजा हरिसिंह के मन की अवस्था ढुलमुल थी। कश्मीर हड़पने की नवनिर्मित पाकिस्तान को जल्दी थी। कश्मीर महाराज की सेना का पराभव कर श्रीनगर पर कब्जा करना पाकिस्तान के लिए सहज सुलभ था। गृहमंत्री पटेल की स्वाभाविक इच्छा थी कि जम्मु-कश्मीर भारत में रहे। अक्टुबर में ही कबाइलियों के नाम की आड़ लेकर पाकिस्तानी सैनिकों ने कश्मिर घाटी में आक्रमण शुरु कर देया। दि. २६ अक्टुबर को श्रीनगर में पाकिस्तानी ध्वज फहराकर विजयोत्सव मनाने की योजना थी। यह गुप्त वार्ता भी प्राप्त हुई थी कि महाराजा की सेना के मुसलमान सैनिक शत्रु से जाकर मिलने की सोच रहे हैं।

प्रधानमंत्री पं. नेहरु शेख अब्दुल्ला का पक्ष लेकर अड़े हुए थे। विलीनीकरण के संधि पत्र पर हस्ताक्षर हुए बिना कश्मीर में सहायता न भेजने का उनका पक्का निश्चय था। इसमें कश्मीर को पाक द्वारा हड़प लिये जाने का धोखा बिल्कुल स्पष्ट था।

पाकिस्तानी आक्रमणकारी श्रीनगर की दिशा में बढ़ रहे थे और कश्मीर के भवितव्य का वह निर्णायक क्षण था। प्रत्येक क्षण महत्व का था। मेहरचंद महाजन सहायता की मांग करने के लिए दिल्ली गये हुए थे। वहाँ पं. नेहरु अपनी जिद पर अड़े बैठे थे।

इस परस्पर-विरोधी खींचातानी में महाराजा भयंकर असमंजस में पड़ गये, कोई निश्चय न कर सके। भारत में शामिल होने के बारे में भी उनके मन में अनेक आशंकाएँ थीं। महाराजा की मनस्थिति को समझते हुए पटेल ने श्री गुरुजी को दूत के रूप में महाराजा के पास भेजा। पटेल ने ठीक ही सोचा था। श्री गुरुजी सही व्यक्ति थे। उनके पास नीतिकौशल था और उन्हें पटेल और महाराजा का आंतरिक विश्वास प्राप्त था। १७ अक्टुबर, १९४७ को श्री गुरुजी विमान द्वारा श्रीनगर पहुँचे। उन्होंने महाराजा के सामने सिद्ध कर दिया कि कश्मीर को स्वाधीन राज्य के रूप में वनाये रखने का विचार मृगतृष्णा है। पाकिस्तान उसे कदापि नहीं सहन करेगा। वह मुसलमानों से आंतरिक

विद्रोह करा देगा और राज्य की मुस्लिम सेनाएँ विमुख हो जायेंगी। श्री गुरुजी ने महाराजा को इस बारे में आश्वस्त कर दिया कि भारत कश्मीर के लिए सभी प्रकार की आवश्यक सामग्री जुटा सकता है। उन्होंने कहा कि पटेल कश्मीरियों के सभी वर्गों के हितों का पूरा-पूरा ध्यान रखेंगे। अन्ततः महाराजा भारत में विलय के सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए तैयार हो गये। १८ अक्टुबर को श्री गुरुजी दिल्ली लौट आये। उन्होंने पटेल को सूचित किया कि महाराजा भारत में शामिल होने के लिए तैयार हैं।

२६ अक्टुबर को समझौते पर हस्ताक्षर हुए और दि. २७ को सुबह से ही भारतीय सैनिक श्रीनगर के हवाई अड्डे पर उतरने लगे। किन्तु विमान उतरने लायक उधर के हवाई अड्डे की स्थिति नहीं थी। वह पूरा हिमाच्छादित था। श्रीनगर में तो अराजकता का भयानक ताण्डव चल रहा था। महाराजा भी जम्मु चले गये थे। एसी स्थिति में भारतीय सैनिकों का स्वागत करने के लिए संघ के सैंकड़ों स्वयंसेवकों ने हवाई अड्डे पर पहले से ही पहुँचकर उसे साफ किया।

उपर्युक्त भेंट और चर्चा में महाराज हरिसिंह ने संघ के स्वयंसेवकों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उन्होंने कहा, "संघ के स्वयंसेवकों ने हमें समय-समय पर अत्यन्त महत्वपूर्ण समाचार बताये थे। प्रथम तो हम उन पर विश्वास ही नहीं करते थे। परन्तु मात्र संघ के खेमे से प्राप्त हुए समाचार ही पूर्णतः विश्वसनीय थे। पाकिस्तानी सेना की गतिविधियों के बारे में समाचार प्राप्त करते समय संघ के स्वयंसेवकों ने जो साहस दिखाया, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी ही है।" यह बात भी श्री गुरुजी दि. १९ को दिल्ली लौटे और सरदार पटेल से मिलकर उन्हें श्रीनगर भेंट का सब समाचार दिया तब बताई।

इस अवसर पर संघ के स्वयंसेवकों का अद्-भूत शौर्य एवं क्षमता प्रकट हुई। पाकिस्तानी आक्रांतों के ११ अक्टुबर के आक्रमण संपूर्ण सीमा पर फैल रहे थे। जम्मू की २० हजार मुस्लिम आबादी भी उनको सहयोग देने की तैयारी में थी किन्तु स्वयंसेवकों ने पहले ही उस शरारत पर काबू पा लिया और जम्मू की रक्षा की। जम्मू के बिना काश्मीर के बचने की कोई आशा नहीं रह जाती। एक बार आन्तरिक षड्यंत्रों के निरस्त होते ही स्वयंसेवक श्रीनगर के समान ही जम्मू हवाई अड्डे को साफ और बड़ा करने के अत्यंत महत्व के कार्य में जुट गये। ५०० स्वयंसेवकों ने ७ दिन तक लगातार चौबिस घंटे कार्य कर हवाई अड्डे को भारतीय डाकोटा के उतरने योग्य बना

दिया। भारतीय सेना के सुरक्षित आगमन के लिए सड़कों की आवश्यक मरम्मत इतने कम समय में पूर्ण करने का भी कीर्तिमान स्थापित किया।

श्री गुरुजी की कश्मीर विषयक अपेक्षा पूर्णतः सफल नहीं हुई और इस विषय में अपनी व्यथा उन्होंने बाद में समय-समय पर व्यक्त भी की। भारतीय जवानों ने तथाकथित कबाइलियों को कश्मीर सीमा के बाहर मार भगाने की मुहिम द्रुतगति से और सफलतापूर्वक चलाई थी। ऐसा लगता था कि संपूर्ण जम्मू-काश्मीर आक्रमण-मुक्त होगा। श्री गुरुजी का मत था कि पाक-अधिकृत कश्मीर संपूर्णतः मुक्त हुए बिना कश्मीर में सैनिक कार्यवाही न रोकी जाय। परन्तु नेहरुजी ने अचानक एकतरफा युद्ध बन्दी की घोषणा कर दी और कश्मीर का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ में ले गये। कश्मीर का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाकर हमने गलती की है ऐसा अभिप्राय श्री गुरुजी ने तुरन्त ही व्यक्त किया। उनका यह इशारा कि 'यू.एन.ओ.' बड़े शक्तिसंपन्न राष्ट्रों के हित संबंधी दाँव-पेचों का अखाड़ा बना है और भारत को वहाँ न्याय नहीं मिलेगा, समय ने सही ठहराया है। कश्मीर का प्रश्न हल करने के संबंध में श्री गुरुजी की कल्पना अतिशय स्पष्ट थी। उनका मत था कि "भारत को केवल इसी का विचार करना चाहिए कि कश्मीर अन्य सैकड़ों रियासतों के समान ही भारत में पूर्णतः विलीन कैसे हो? अन्य प्रांतों के लोगों को वहाँ बसाकर "कश्मीरियत" का भूत मिटा डालना चाहिए। धारा ३७० रद्द करने हेतु सरकार का मन अनुकूल बनाना आवश्यक है। इससे अन्य प्रान्तों के स्तर पर जम्मू-कशमीर को लाया जा सकेगा।"

१४.६ डॉ.मुखर्जी का बलिदान

अन्य रियासतों की भांति संपूर्ण कश्मीर का भारत में विलय होना आवश्यक था। सही राजनीति की यही कालानुरूप माँग थी। किन्तु दुर्भाग्यवश देश का विभाजन होने के उपरान्त भी मुस्लिम तुष्टीकरण की कांग्रेसी नीति बरकरार रही। शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में कश्मीर को अलग राज्य का दर्जा दिया गया, वहाँ के लिए भिन्न ध्वज, मुख्यमंत्री के लिए भिन्न पदनाम आदि बातें मानी गईं। कश्मीर का मसला हल करने के लिए नेहरुजी ने 'जनमत संग्रह' की भाषा भी प्रारंभ कर दी। इसके विरोध में डॉ.श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने कश्मीर में आवाज उठाई कि 'एक देश में दो निशान, दो विधान, दो प्रधान नहीं चलेंगे।' यह उनकी न्यायोचित, तर्कसंगत घोषणा थी। साथ ही संविधान से धारा ३७० रद्द कर कश्मीर पूर्णतः भारत में विलीन कर दिया जाए, यह भी उनकी माँग थी। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी को कश्मीरी पुलिस ने गिरफ्तार कर जेल में रखा जहाँ उनकी संदेहपूर्ण स्थितियों में मृत्यु हुई।

इस दुर्घटना से सारा देश हिल उठा। श्री गुरुजी को श्यामाप्रसाद जी की मृत्यु के कारण बहुत बड़ा धक्का पहुँचा। उन जैसा स्थितप्रज्ञ भी क्षणभर के लिए स्तंभित सा हो गया। श्री गुरुजी यह मानकर चले थे कि डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में विशुद्ध राष्ट्रवाद की नीति राजनीति के क्षेत्र में पुष्ट होगी। इस हेतु अच्छे संस्कारों में मँजे हुए कुछ सहकारी भी उन्होंने उनको उपलब्ध करा दिए थे। किन्तु नियति के मन में कुछ और ही था। डॉ.श्यामाप्रसाद मुखर्जी की अनपेक्षित तथा असमय मृत्यु के कारण यह आशा ढह गयी।

श्री गुरुजी का प्रामाणिक मत था कि सत्याग्रह का नेतृत्व करने के लिए स्वयं डॉ. मुखर्जी को अग्रसर होने की आवश्यकता नहीं थी। उनके लिए यह कदम धोखादायक सिद्ध हो सकता था। आगे चलकर एक भाषण में डॉ. श्यामाप्रसाद जी का पुण्य स्मरण करते हुए श्री गुरुजी ने यह जानकारी दी। 'आप न जाइये' इस अर्थ का संदेश श्री गुरुजी ने डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी को भेजा था। किन्तु इसके प्राप्त होने के पूर्व ही कार्यक्रम की घोषणाएँ हो चुकी थीं। कदम आगे बढ़ चुका था। अब इस कदम को पीछे लेना डॉ. मुखर्जी जैसे संकल्पनिष्ठ महान् देशभक्त के लिए असंभव था।

डॉ. मुखर्जी की बलि चढ़ने के उपरान्त भी कश्मीर का प्रश्न हल नहीं हुआ। १९५३ तक स्थिति ज्यों की त्यों बनी रही। १९५३ में शेख अब्दुल्ला को हिरासत में लिया गया।

किन्तु वर्षों बाद सत्तासूत्र पुनः उन्हीं के हाथों सौंपे गए। शेख अब्दुल्ला ने तबला और डग्गा दोनों पर हाथ रखते हुए परिवारवाद और मुसलमानों की संगठित शक्ति निर्माण करने की दोहरी नीति बेहिचक जारी रखी। जनमत संग्रह का विचार परिस्थिति के दबाव के कारण पीछे चला गया। जनमत की कल्पना का अराष्ट्रीय या राष्ट्रविरोधी स्वरूप श्री गुरुजी ने प्रारंभ में ही प्रगट किया था।

राष्ट्र एक जीवित शरीर के समान होता है, इस कारण शरीर के किसी भाग का स्वतंत्ररूप से विचार नहीं किया जा सकता। संपूर्ण शरीर का विचार होना आवश्यक है। इसलिए यदि जनमत लेना ही हो तो केवल कश्मीर में नहीं, संपूर्ण भारत में लिया जाना चाहिए यह श्री गुरुजी की स्पष्ट धारणा थी।

'कश्मीर के भविष्य का प्रश्न कश्मीरी जनता का प्रश्न है' पं. नेहरु के इस मत का प्रतिवाद करते हुए श्री गुरुजी ने कहा, "कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक सारा भारत एक है। इस संपूर्ण प्रदेश पर भारतीयों का हक है। कश्मीर सिर्फ कश्मीरियों का है यह कहना सर्वथा अनुचित है।"

१४.७ ईशान्य भारत

ईशान्य भारत का प्रश्न आज भी अति विस्फोटक बना हुआ है। मेघालय, मिजोरम तथा नागालैण्ड इन राज्यों में ईसाइयों का साम्राज्य है। इधर असम में मुसलमान घुसपैठिए बनकर अपना संख्याबल बढ़ाने के प्रयास में हैं। त्रिपुरा तथा मणिपुर भी अशांत है। अरुणाचल के लोगों को भी प्रलोभन दिखाकर बड़े पैमाने पर उनका ईसाईकरण किया जा रहा है। इन सारी बातों का विचार कर जनता तथा सरकार को श्री गुरुजी हमेशा सतर्क किया करते थे।

१९५१ को मकर संक्रमण के अवसर पर स्वयंसेवकों तथा उपस्थित नागरिकों को संबोधित करते हुए जो भाषण उन्होंने दिया उसमें नागालैण्ड की समस्या का उल्लेख मिलता है। असम के घुसपैठियों के बारे में वे बार-बार आगाह किया करते थे। ईशान्य सीमा प्रदेश में ईसाई मिशनरी किन राष्ट्रविरोधी गतिविधियों में जुटे हुए हैं तथा परंपरागत धर्मनिष्ठाओं को सुरंग लगाकर ध्वस्त करने का प्रयास कर रहे हैं, इसकी समग्र जानकारी भारत भ्रमण के दौरान उन्हें प्राप्त हुआ करती थी।

नागपुर के प्रधान कार्यालय में श्री गुरुजी के साथ बैठकर बातचीत करते समय देश की वर्तमान स्थिति का ज्ञान हो जाया करता था। विश्व हिन्दू परिषद् के माध्यम से ईशान्य प्रदेशों में अनेक सम्मेलनों का आयोजन हुआ, जिसमें श्री गुरुजी उपस्थित रहकर समयोचित मार्गदर्शन करते थे। इन सम्मेलनों का एकमात्र उद्देश्य यह था कि जो हिन्दू बचे हुए हैं वे हिन्दू समाज से जुड़े रहें। उन्हें एकत्र लाकर उनमें हिन्दूत्व का भाव जागृत रखा जाए। किन्तु राज्यकर्ताओं ने इस दृष्टि से कोई योजना नहीं बनाई, परिणामतः यह समस्या आज भी जटिल बनी हुई है। वे पूछा करते थे कि नागालैण्ड यदि भारत का अविभाज्य घटक है तो उसका शासकीय संबंध परराष्ट्र विभाग से क्यों? गृहविभाग से क्यों नहीं?

श्री गुरुजी को यह प्रश्न सता रहा था : जनजातियाँ तो गो-मांस खाती हैं, जबकि हिन्हू गो को माता मानकर उसकी पूजा करता है तो उन्हें हिन्दू कैसे माना जा सकता है? जनजातियों के मन में इस संदेह का बीज ईसाई मिशनरियों ने कुप्रचार कर बोया था। श्री गुरुजी ने १९६७ में जोरहाट में सम्पन्न विश्व हिन्दू परिषद के सम्मेलन में उपस्थित द्वारिकापीठ के श्री शंकराचार्य और असम के विभिन्न वैष्णव सत्रों के अन्य प्रमुख सत्राधिकारियों से वार्ता की और उन्हें इस बारे में संतुष्ट कर दिया कि जनजातियाँ तो सदा-सर्वदा मूलतः हिन्दू ही रही हैं, पर दीर्घकाल तक शेष समाज और उसकी संस्कृति से उनका संवाद और संपर्क टुट गया अतः हिन्दू धर्म के समुचित बोध से वे वंचित रहे। इस प्रकार उनका कोई दोष नहीं है, यदि वे गो-भक्ति जैसी हमारी धार्मिक तथा सांस्कृतिक संकल्पनाओं से कटे रहे, अतः हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम बिना किसी संकोच के जनजातियों को हिन्दू समाज का अंग मान लें।

सायं के समय एक सार्वजनिक सभा हुई। उसमें द्वारिकापीठाधीश ने घोषणा की कि जनजातियाँ हिन्दू हैं और उनका गोमांस-भक्षण उनकी आर्थिक विवशता रही है, क्योंकि उन सुदूर अन्तःस्थ पहाड़ी प्रदेशों में कोई अन्य सस्ता खाद्य उपलब्ध नहीं था। आचार्य ने कहा कि दोष तो सांस्कृतिक दृष्टि से तथाकथित उन्नत लोगों का है। उन्होंने जनजातियों की सुध नहीं ली। दीर्घकाल तक न तो वे इन पहाड़ी प्रदेशों में गये और न ही उन्होंने हिन्दू संस्कृति और हिन्दू परम्परा के बारे में वहाँ के लोगों को कुछ बताया। जनजाति-नेता और प्रतिनिधि इस अधिकृत घोषणा को सुनकर प्रसन्न हो गये और गौरवान्वित अनुभव करने लगे। इससे उनकी हिन्दू अस्मिता के बारे में सभी शंकाएँ दूर हो गयी थीं।

सम्मेलन में श्री गुरुजी ने जनजाति-नेताओं के साथ बैठकर भोजन किया। इससे वे गद्-गद् हो गये। उन्हें वास्तविक जीवन में हिन्दू एकात्मता की भावना को अनुभव करने का एक और अवसर मिला।

इस सबसे हमें ज्ञात होता है कि श्री गुरुजी राष्ट्रीय समस्याओं का विचार कितनी गम्भीरता से किया करते थे। लोग श्री गुरुजी से हमेशा यह प्रश्न पूछा करते थे यदि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ राजनीतिक संस्था नहीं है तो फिर वे राजनीतिक समस्याओं पर टीका-टिप्पणी क्यों करते हैं? उत्तर में वे कहा करते थे कि 'सत्ता संपादन में संघ की कोई रुचि नहीं है। किन्तु जिस नीति का परिणाम राष्ट्र की सुरक्षा, उसकी सांस्कृतिक एकात्मता, स्वाभिमान तथा आत्मविश्वास पर विपरीत होता दिखाई दे, वहां मत प्रदर्शन करना हमारा कर्तव्य है।' इस कर्तव्य का निर्वाह श्री गुरुजी ने दक्षता पूर्वक किया।

आगे चलकर चीनी आक्रमण हुआ। उस समय सरकार ने जनता को अँधेरे में रखा। किंतु श्री गुरुजी ने इस समय भी सत्य जानकारी के आधार पर सरकार तथा जनता को चेतावनी देने का अपना कर्तव्य भलीभाँति निभाया।

१४.८ राजनीतिक क्षेत्र में समन्वय

देश की परिस्थिति का श्री गुरुजी का आकलन सूक्ष्म था। वे आगे की सोचकर कुछ योजनाएँ सामने रखते थे। इस विषय में भारतीय मजदूर संघ के संस्थापक श्री दत्तोपंत ठेंगडी द्वारा कथित उनसे संबंधित एक घटना उद्-बोधक है। १९६४ के मार्च मास में भारतीय जनसंघ के नेता पं. दीनदयाल जी ने दत्तोपंत को पू. श्री गुरुजी का एक संदेश भिजवाया कि "तत्काल लखनऊ जाकर वे राज्यसभा के लिए अपना नामांकन पत्र भरें।" वास्तव में भारतीय मजदूर संघ का दैनंदिन राजनीति या राजनीतिक पक्ष से संबंध नहीं था। फिर भी अकस्मात् यह सूचना क्यों आई? इसका रहस्य दत्तोपंत की समझ में नहीं आया। परन्तु उन्होंने लखनऊ जाकर नामांकन पत्र भरा। वे राज्य सभा में चुनकर भी आये। इसके बाद जब दत्तोपंत की श्री गुरुजी से नागपुर में भेंट हुई तब स्वाभाविकतः राज्यसभा का प्रश्न निकला। तब श्री गुरुजी ने अपने मन का हेतु दत्तोपंत को स्पष्ट रूप से बताया। श्री गुरुजी का कथन, जो दत्तोपंत जी ने लिपीबद्ध कर रखा है, इस प्रकार है- "मुझे लगता है कि इस देश में तानाशाही लाने का मोह राज्यकर्ताओं को होगा। मेरा अनुमान है कि ऐसी विकट परिस्थिति निर्माण होगी कि जब देश में एक भी विरोधी पक्ष अकेले स्वयं के बल पर प्रतिकार करने की स्थिति में

नहीं रहेगा, दबाये जाने का डर सबके मन में रहेगा। ऐसी परिस्थिति में विवश होकर विरोधी लोग यह विचार करने लगेंगे कि तानाशाही का विरोध करने के लिए सब विरोधी पक्ष एकत्र आएँ। यह सच है कि विरोधी पक्षों में भी आपसी तीव्र मतभेद हैं, परन्तु परिस्थिति के कारण सबको लगेगा कि एक बार सब के सम्मिलित प्रयत्नों से तानाशाही को तो प्रथम नष्ट कर डाला जाय। उसके बाद आपसी विवादों का विचार किया जा सकेगा। परन्तु उस समय सब के सामने यह प्रश्न रहेगा कि सब को एक मंच पर लाने का काम कौन करे? क्योंकि सब अपने-अपने पक्ष के कट्टर समर्थक के नाते जाने जाते हैं। किसी भी पक्ष के ऐसे कट्टर व्यक्ति पर दूसरे पक्ष के मनुष्य विश्वास नहीं रख सकते।"

"मेरी ऐसी इच्छा है कि यह भूमिका निभाने का काम अपने में से कोई करे। आज अपने जो लोग राजनीति के क्षेत्र में है उन सबके बारे में बाहर स्वाभाविकतः यही धारणा रहेगी कि ये लोग विशिष्ट पक्ष के हिमायती हैं। इसलिए उनमें से किसी के लिए भी यह भूमिका निभाना कठिन होगा। तुम अब एम.पी. बन गये हो एवं किसी भी पक्ष में तुम नहीं हो। अब वरिष्ठ नेताओं से तुम्हारा सहजता से परिचय होगा। सब पक्षों के नेताओं से बराबरी के नाते तुम व्यवहार कर सकोगे।"

"मुझे जो अपेक्षित है वह काम तुम्हारे द्वारा सफल होना हो तो यह आवश्यक है कि तुम्हारी प्रतिमा पक्षातीत रहे। तभी तुम्हारे विभिन्न नेताओं से व्यक्तिगत संबंध निर्माण हो सकेंगे और तुम्हारे शब्दों पर वे विश्वास रखेंगे। परंतु यह संपन्न करने के लिए तुम्हें बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। वह कीमत होगी विवादास्पद, प्रक्षोभक राजनीतिक प्रश्नों पर बोलना बिल्कुल टालना। अन्य विषयों पर बोलने का निश्चय करना पड़ेगा। ये विषय दूसरों को फीके लगेंगे, उससे तुम को प्रसिद्धि नहीं मिलेगी। व्यक्ति के नाते अपना नाम चमके इस महत्वाकांक्षा का तुम में उदय हो सकता है। वैसे गुण तुममें हैं। यदि यह इच्छा तुममें निर्माण हुई तो मैं तुम्हें दोष नहीं दूँगा। दोनों मार्ग तुम्हारे सामने हैं। कोई भी विकल्प स्वीकार करने का संपूर्ण स्वातंत्र्य तुमको है। मैं उस विषय में कुछ भी आदेश देना नहीं चाहता। यह सब इसलिए कह रहा हूँ कि आगामी परिस्थिति के संबंध में मेरा अनुमान तुम्हारे ध्यान में आये।"

श्री दत्तोपंत ने वही मार्ग बिना हिचकिचाहट के स्वीकार किया जो श्री गुरुजी को अपेक्षित था। उसके लगभग ११ वर्षों बाद देश में आपात् स्थिति लागू हुई और उस समय विरोधी पक्षों को प्रतिकार के लिए एकत्र लाने के काम में श्री दत्तोपंत ने

अत्यन्त महत्व की भूमिका निभायी। विशेषकर लोकसंघर्ष समिति द्वारा संचालित आपात्काल विरोधी सत्याग्रह के दौरान जब नानाजी देशमुख और उनके बाद श्री रवीन्द्र वर्मा गिरफ्तार हो गये तब समिति के शेष नेताओं तथा चौधरी चरणसिंह सरिखे अन्य दलों के नेताओं से निरन्तर सम्पर्क बनाए रखने में उन्हें उन संबंधों का लाभ मिला जो राज्यसभा के कार्यकाल में स्थापित किये थे। इन्हीं प्रयत्नों में से ही जनता पक्ष साकार हुआ और तानाशाही लादनेवाला कांग्रेस शासन सत्ता से च्युत हो गया। व्यक्तिगत बड़प्पन की आकांक्षा बाजू में रखकर श्री दत्तोपंत ठेंगडी ने भी श्री गुरुजी की इच्छा शिरोधार्य की। यह भी श्री गुरुजी द्वारा किये हुए चयन की अचूकता का एक प्रमाण मानना पड़ेगा।

१४.९ पितृ-वियोग

इन्हीं दिनों में श्री गुरुजी के व्यक्तिगत जीवन में एक दुःखद घटना घटी। वह थी श्री गुरुजी के पूज्य पिता श्री भाऊजी का हृदय रोग के कारण आकस्मिक मृत्यु। इस समय श्री भाऊजी की आयु ८२ वर्ष की थी। दि. २० जुलाई १९५४ को रात के समय अपने निर्धारित समय पर वे सोए और नींद के आहोश में ही उनकी मृत्यु हो गई। उस समय श्री गुरुजी नागपुर में नहीं थे। दि. १७ को ही माता-पिता का आशिर्वाद लेकर वे महाकौशल-मध्यभारत के दौरे पर निकल पड़े थे। अपने प्रिय पिता की मृत्यु का समाचार लानेवाला तार उन्हें भोपाल में दि. २१ को प्राप्त हुआ। परिणामतः अगला दौरा स्थगित कर श्री गुरुजी नागपुर के लिए रवाना हो गये। किन्तु भोपाल से ही उन्होंने नागपुर के लिए सूचना दी कि श्री भाऊजी का अंतिम क्रिया-कर्म दि. २२ तक स्थगित न करते हुए यथाविधि पूर्ण किया जाय। श्री गुरुजी की अनुपस्थिति में अंत्ययात्रा निकाली गयी। हजारों स्वयंसेवकों तथा नागरिकों की उपस्थिति में स्व. भाऊजी के पार्थिव शरीर को पवित्र अग्नि के अधीन कर दिया गया।

दि. २२ को उषःकाल के समय श्री गुरुजी नागपुर पहुँचे। 'नागोबा' नामक एक गली में उनका व्यक्तिगत निवास स्थान था। श्री भाऊजी तथा ताई (माताजी) वहां रहा करते थे। श्री गुरुजी अधिकांश समय तो महाल स्थित संघ कार्यालय में ही रहते। केवल भोजन के लिए वे घर आया करते थे। ताई के साथ गपशप, हास्य विनोद कर भोजनोपरांत वे पुनः कार्यालय की ओर चल पड़ते। श्री गुरुजी के घर स्वयंसेवकों का आना-जाना रहा करता। श्री भाऊजी तथा ताई की देखभाल स्वयंसेवक ही किया करते थे। ताई भी स्वयंसेवक में अपने माधव का रूप देखतीं, उनके खाने-पीने की व्यवस्था स्वयं करतीं। भाऊजी बहुत ही एकांतप्रिय थे।

श्री गुरुजी को देखते ही ताई की आँखों से आँसू झरने लगे। माता का शोक देखकर श्री गुरुजी कितने व्यथित हुए होंगे? वे ताई के दुःख को समझ सकते थे। बचपन से ही श्री भाऊजी ने जो असीम संस्कारधन दिया था शायद उनकी स्मृतियाँ भी श्री गुरुजी के मन में जागी हों। किन्तु नित्याभ्यास के अनुसार उन्होंने अपनी भावनाओं पर काबू पाया। मन शांत हुआ।

सान्त्वना के लिए आनेवालों की भीड़ तो थी ही, किन्तु शोक संदेशों का आना भी बहुत बड़ी मात्रा में था। पाँच दिन नागपुर में रहने के बाद वे नासिक पहुँचे। वहाँ श्री गुरुजी ने भाऊजी की ऊत्तर क्रिया यथाविधि पूर्ण की। नासिक तीर्थक्षेत्र में अनेक स्वयंसेवकों ने श्री गुरुजी से भेंट की।

७ अगस्त को श्री गुरुजी नागपुर लौटे और १० अगस्त से नित्य के अनुसार वे संघ कार्यार्थ प्रवास के लिए चल पड़े। व्यक्तिगत हानि-लाभ का विचार करने के लिए उनके पास समय ही कहाँ था?

*

१५ व्यक्ति से बड़ा कार्य

१९४० में जब श्री गुरुजी के कंधों पर संघ जैसे राष्ट्रव्यापी तथा ध्येयवाद से प्रेरित संगठन का भार सौंपा गया तब वे ३४ वर्ष के थे। संघकार्य को अपना सर्वस्व अर्पण कर वे संघ के प्रचार कार्य में इतने व्यस्त रहे कि १६ वर्ष का समय देखते ही देखते बीत गया। संघकार्य द्रुत गति से बढ़ रहा था। श्री गुरुजी देशभर दौरा करते हुए हिन्दू संगठन की महत्ता और संघकार्य की आवश्यकता को प्रभावी ढंग से रख रहे थे। इस कालखंड में समूचा भारत श्री गुरुजी को महान् द्रष्टा, मेधावी वक्ता, सामाजिक तथा राजनीतिक घटनाओं का यथार्थ ज्ञान रखनेवाले देशभक्त नेता के रूप में जानने लगा था।

इसी समय श्री गुरुजी की ५१ वीं वर्षगांठ संपूर्ण भारत वर्ष में संपन्न करने का निर्णय लिया गया। संघ पर प्रतिबन्ध तथा उसके निवारणार्थ विशाल देशव्यापी सत्याग्रह में विपुल धनराशि का व्यय हो जाने से संघ पर ऋणभार बढ़ गया था जिसका संघ के नेतृवर्ग पर दबाव बना रहता था। इस ऋणभार से मुक्त होने का एक ही उपाय था कि राष्ट्र के लिए रक्त का कण-कण और आयु का क्षण-क्षण व्यतीत करनेवाले श्री गुरुजी की ५१वीं वर्षगांठ को निमित्त बनाकर सार्वजनिक सभाओं में उन्हें श्रद्धानिधि समर्पित की जाय। किन्तु वैयक्तिक मान-सम्मान एवं प्रसिद्धि से सदैव दूर रहनेवाले श्री गुरुजी को इसके लिए तैयार करना एक कठिन कार्य था। कार्यकर्ता इस दिशा में विचार विनिमय करने लगे। सत्कार समारोह धूमधाम से हो ऐसा सभी स्वयंसेवक चाहते था क्योंकि श्री गुरुजी पर सभी जी जान से श्रद्धापूर्वक प्रेम करते थे। श्री गुरुजी की हर इच्छा स्वयंसेवकों के सर-आँखों पर थी। और यह तो ५१वीं वर्षगांठ का मंगल, भावोत्कट प्रसंग था। एक ओर श्री गुरुजी का निर्मोही स्वभाव और दूसरी ओर स्वयंसेवकों का प्रेम। यह भावभीना मीठा-मीठा संघर्ष कौन जीतेगा?

१५.१ ५१वें जन्मदिन का अपूर्व संदेश

श्री गुरुजी सदा कहा करते थे कि स्वयंसेवक को संगठन में पूर्णतः घुलमिल जाना चाहिए। अहंकार की हवा उसके मस्तिष्क में प्रवेश न करे तथा वह आत्मप्रशंसा से कोसों दूर रहे। इसी साँचे में श्री गुरुजी ने स्वतः को ढाला था। उन्होंने अपने दैनंदिन जीवन में कर्मयोग का पालन कठोरता से किया था। नित्य साधना के कारण कर्मयोग का आचरण करना उनका स्थायी भाव था इस कारण स्वयंसेवकों की उनका सत्कार

करने की तीव्र इच्छा और श्री गुरुजी का कठोर विरोध, इन परस्पर विरोधी भावों के बिच कई महीनों तक रस्सा-कशी चलती रही। जेष्ठ स्वयंसेवक और श्री गुरुजी पर प्रेमाधिकार रखने वाले कुछ अधिकारियों के अथक प्रयत्नों के फलस्वरूप श्री गुरुजी ने सत्कार समारोह के लिये मान्यता दे दी। किन्तु एक आश्वासन प्राप्त होने के बाद ही। कौन सा आश्वासन माँगा था उन्होंने? यही कि इन सत्कार कार्यक्रमों के माध्यम से जो निधि संकलित होगी, उसका उपयोग संघकार्य की वृद्धि के लिए ही किया जाएगा। कार्यकर्ताओं ने हामी भरी और स्वयंसेवकों की इच्छापूर्ति का मार्ग प्रशस्त हो गया।

कार्यक्रम की रुपरेखा कुछ इस प्रकार की निश्चित की गई। कार्यक्रम १८ जनवरी १९५६ से प्रारंभ होगा। स्वयंसेवक घर-घर जाकर श्री गुरुजी तथा संघ की विचारधारा तथा विचारप्रणाली के विषय में जानकारी देंगे। तत्पश्चात् श्री गुरुजी के लिए श्रद्धानिधि देने की प्रार्थना करेंगे। संपूर्ण भारत की जनसंख्या के एक प्रतिशत लोगों से संपर्क किया जाय। साथ ही इस अभियान की अवधि ५१ दिन की ही होगी। इस योजना से स्वयंसेवकों में उत्साह का संचार हुआ।

१९५२ के गोहत्या निरोध आंदोलन के पश्चात् सारे देश में जनसंपर्क अभियान चलाने का यह पहला ही अवसर था। इस कार्यक्रम के निमित्त आवाहन, पत्रक, वृत्तपत्रीय लेख, विशेषांक, पुस्तिका आदि विपुल साहित्य प्रकाशित किया गया। स्व. श्री नाना पालकर ने इसी अवसर के निमित्त श्री गुरुजी का जीवन-चरित्र लिखा। इस प्रचारकाल में श्री गुरुजी का नाम देश भर में गूँज उठा। श्री गुरुजी के जीवन से परिचित होते ही समाज के सुबुद्ध नागरिक यह सोचने लगे कि लाखों युवा तथा प्रौढ़ों के लिये सरसंघचालक श्री गुरुजी एक प्रेरणास्थान बने हुए हैं। यह सत्यानुभूति भी जनता को हुई कि वे न केवल संघ का, किन्तु समूचे देश का कुशल नेतृत्व करने की अपार क्षमता के धनी हैं। संपूर्ण भारत लालायित होकर कार्यक्रम की, श्री गुरुजी के दर्शन की एवं उनके ओजस्वी भाषण की बाट जोहने लगा।

निधि संकलन के समय इस बात का साक्षात्कार हुआ कि संघ मण्डल के बाहर भी श्री गुरुजी पर प्रेमवर्षा करनेवाले अनगिनत लोग विद्यमान हैं। अंत में लेखा-जोखा करने पर पता चला कि निधि संकलन २० लाख से भी अधिक हुआ है।

विजया एकादशी! श्री गुरुजी की जन्मदिन! सुबह से ही श्री गुरुजी के घर में चहल-पहल शुरु हो गई थी। शास्त्रोक्त ढंग से पूजाविधि सम्पन्न कर होम हवन किया गया।

ईश्वर तथा अन्य वेदोक्त शक्तियों का आशिर्वाद प्राप्त हो इसलिए सिद्ध मंत्र घोष भी धर्माधिकारियों द्वारा संपन्न हुआ। सभी प्रसन्न थे। श्री गुरुजी द्वारा अपनी माता ताई के चरण को स्पर्श करते ही उनके मस्तक पर दो अश्रु बिंदु माँ की आँखों से गिर पड़े। यह एक अनुठा आशीर्वाद था चिरंजीवी, यशस्वी होने का। ताई की आंखों से झरने वाले अश्रु आनंद के थे और दुःख के भी क्योंकि श्री गुरुजी के पिता श्री भाऊजी अब जीवित नहीं थे। यह भी हो सकता है कि ताई ने अपनी एक आँख से स्वयं के और दूसरी आँख से स्व. भाऊजी के आशीर्वादपूर्ण अश्रु बहाये हों। सारा वातावरण भावभीना था। स्वयंसेवक तथा अधिकारी वर्ग खुशी से फूले नहीं समाते थे।

वन्दनीया ताईजी की अनुमति प्राप्त होते ही छायाचित्र लिये गये। इस पावन पर्व सदा के लिए सँजो लिया गया। संध्या समय श्री गुरुजी अपने निवास से रेशीमबाग स्थित आद्य सरसंघचालक डॉ. हेडगेवार जी की समाधि पर गये और उस पर पुष्पार्पण किया। उसी दिन श्री गुरुजी का प्रथम सार्वजनिक सत्कार समारोह संपन्न हुआ। देशभर में स्थान-स्थान पर सत्यनारायण महापूजा, होम-पूजा, होम-हवन, मंत्र जागरण, अभिषेक अनुष्ठान आदि कार्यक्रम वृहद् प्रमाण में संपन्न हुए।

संघ के स्वयंसेवकों के साथ ही सहस्त्रावधि नागरिकों ने भी इन समारोहों में भाग लिया। अभिनंदन पत्र तथा शुभेच्छा संदेश देनेवाले तारों की तो मानों वर्षा ही हो रही थी। पत्रों और तारों का ढेर लगा हुआ था।

देश के प्रत्येक प्रान्त में सत्कार समारोह हेतु समितियों की योजना की गयी थी जिनमें प्रतिष्ठित गणमान्य नागरिकों को सम्मिलित किया गया था। श्री गुरुजी को सत्कार मूर्ति के नाते एक माह तक प्रवास करना था। सत्कार का सिलसिला दि. ८ मार्च को नागपुर में संपन्न कार्यक्रम से शुरु हुआ और अंतिम समारोह दि ८ अप्रैल को दिल्ली में मनाया गया। प्रत्येक राज्य में हुए कार्यक्रम की अध्यक्षता करने के लिये स्थानीय समितियों ने प्रख्यात व्यक्तियों का चयन किया था। निधि समर्पण, श्री गुरुजी का अभीष्ट चिंतन तथा अंत में श्री गुरुजी द्वारा सत्कार के उपलक्ष्य में दिया गया उत्तर- इस प्रकार की कुल योजना बनाई गयी थी।

नागपुर के सत्कार कार्यक्रम के अध्यक्ष विख्यात इतिहासतज्ञ तथा संसद सदस्य डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी थे तथा दिल्ली के विशाल कार्यक्रम की अध्यक्षता भारत के पाकिस्तान में नियुक्त भूतपुर्व उच्चायुक्त डॉ. श्री सीताराम जी ने की थी। अन्य स्थानों

पर डॉ. धोंडो केशव कर्वे, श्री. सोनोपंत दांडेकर जैसे महापंडितों को अध्यक्षता करने के लिये चुना गया था।

संघ तथा समाज में संघ के प्रति सहानुभूति और श्री गुरुजी क् प्रति प्रेमभाव हृदय में रखनेवाले बंधु, भगिनि तथा माताओं के सहकार्य से सम्पन्न विभिन्न कार्यक्रमों में सत्कार के उत्तर में श्री गुरुजी ने जो भाषण दिये, उनमें स्वतः को गौण बताकर संघकार्य को महान् तथा सर्वोपरि बताया। नागपुर के कार्यक्रम में बड़ी नम्रता से उन्होंने कहा, "विगत कुछ दिनों में मेरी प्रशंसा-सराहना करनेवाले समाचार, लेख अखबारों में प्रकाशित हुए देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। संघ की भांति एक महान् संगठन का श्रेय किसी एक व्यक्ति को भला कैसे मिल सकता है? संघ की प्रगति में अनगिनत कार्यकर्ताओं का सहभाग है। मैं आपका प्रेमभाजन अवश्य हूँ किन्तु संपूर्ण श्रेय का नहीं। भारत का प्रत्येक स्वयंसेवक तथा कार्यकर्ता संघ के विकास में समान रूप से सहभागी है। आप मुझ पर प्रेम करते हैं इसका अर्थ मैं मानता हूँ कि आप संघ पर प्रेम करते हैं। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस प्रेम के साथ ही संघकार्य को अपने जीवन का एक अंग बनाएँ। समाज को संघमय बनाने की दृष्टि से यह आवश्यक है क्योंकि संघ का विचार राष्ट्र का ही विचार है, भारतमाता के गौरव का विचार है। अपनी मातृभूमि के विषय में हृदय में जो श्रद्धा का भाव है उसका पुनर्जागरण करने की आज आवश्यकता है। यह तभी संभव होगा जब प्रत्येक के मन में अपनी भारतमाता के पुत्ररूप हिन्दू समाज तथा अति प्राचीन काल से चल रहे सांस्कृतिक राष्ट्रीय जीवन का चित्र अंकित होगा। अपने हृदय में यदि भारतमाता के प्रति दिव्य अभिमान होगा तो उसके आधार पर ही निष्ठा और चारित्रिक गुणों का अपने जीवन में संचार हो पाएगा। इन गुणों से युक्त या संपन्न व्यक्ति जब निर्मित होगा तब राष्ट्रकल्याण की सभी योजनाएं सफल होंगी। इसी प्रकार समर्पित, कर्तव्यपरायण तथा अनुशासनबद्ध जीवन से ही पवित्र राष्ट्रीय शक्ति निर्माण होती है। इसी शक्ति का निर्माण करना ही संघ का एक मात्र ध्येय है।"

"अपने राष्ट्र की स्थिति का विचार कीजिए। क्या हमारी मातृभूमि अखंड तथा एकात्म है? क्या हमारी राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ है? क्या हमें पता है कि हमारी राष्ट्रीयता का स्वरूप क्या है? क्या राष्ट्र का अर्थ एक दूजे से भिन्न और बेमेल गुटों की गठरी होता है? अपने देश के बारे में चिंतन करनेवाले हर व्यक्ति के मन में यह प्रश्न उत्पन्न होते हैं। इन प्रश्नों का उत्तर संघ ने प्रारंभ में ही दिया है। संघ का कार्य व्यक्ति, प्रान्त, पंथ, भाषा, पक्ष और जाति से परे तथा इन भेदों से ऊपर उठकर चलता है। इन सारे भेदों से संघ पूर्णतः अनभिज्ञ है। मातृभूमि के प्रति एक समान भक्ति की भावना जगाकर

सबको एक सूत्र में गूँथना ही संघ का उद्देश्य है। इसलिये आप सभी महानुभाव इन क्षुद्र भेदों से ऊपर उठकर संघ के समावेशक व्यासपीठ पर एकत्र आयें, यही संघ की अपेक्षा है।"

"व्यक्ति से कार्य बड़ा होता है। यदि कोई सोचे कि यह कार्य केवल मुझ पर ही निर्भर है तो यह निरर्थक अहंकार होगा। इस संसार में व्यक्ति आते हैं और जाते हैं। किया हुआ कार्य ही शेष रहता है। आज अनेक व्यक्ति ऐसे है जो सोचते रहते हैं कि उनके बाद क्या होगा? इसी चिंता से वे ग्रस्त हैं। ब्रिटिश राज्यकर्ता भी यही बोला करते थे कि उनके भारत छोड़ने के पश्चात् इस देश का कारोबार कैसे चलेगा? किन्तु अपने समाज में श्रेष्ठ, बुद्धिमान तथा गुणसंपन्न व्यक्तियों की कोई कमी नहीं है। यदि कोई व्यक्ति ओझल हो जाय, कार्य से हट जाय या भगवान को प्यारा हो जाय तो अन्य लोग आगे आकर कार्य को आगे बढ़ाते हैं। डॉ. हेडगेवार जी की मृत्यु के पश्चात हम सभी मिलकर उनका कार्य आगे चला रहे हैं। इस कारण मेरी बिनती है कि आप व्यक्ति की ओर नहीं कार्य की ओर देखें।"

"कार्यकर्ताओं ने आपसे कहा होगा कि ये गुरुजी के विचार हैं। लेकिन ये विचार मेरे नहीं हैं। अपनी भारतीय परंपरा ज्ञान का महासागर है। इस महासागर में से मैंने चंद बूँदें उठाई हैं। भारत के देहात में रहनेवाला अनपढ़ साधारण आदमी भी तत्वज्ञ है। पाश्चात्य विचारकों और विद्वानों को भौंचक्का कर देने की क्षमता रखनेवाला ज्ञान-विचार धन तो परंपरा से ही उसे प्राप्त होता है।"

"संघ की नींव में हजारों त्यागी, निष्ठावान कार्यकर्ताओं की तपश्चर्या के पत्थर जड़े हुए हैं। संघ कार्य का यही संबल है। संघ हमेशा राष्ट्र का ही विचार करता है और मैं उसे व्यक्त करता हूँ। किसी ग्रामोफोन से अधिक मेरा श्रेय नहीं है।"

"संघ का विचार एकतरफा है। संघ किसी राजनीतिक पक्ष का विरोध नहीं करता संघ केवल राष्ट्र का तथा हिन्दू समाज का भावात्मक विचार करता है। आप चाहे किसी भी दल या पक्ष में कार्य करें, किन्तु यह न भूलें कि आप हिन्दू समाज के एक अभिन्न अंग तथा भारतमाता के सुपुत्र हैं। सौ साल पहले काँग्रेस का अस्तित्व नहीं था परन्तु उस समय भी अपने राष्ट्र का अस्तित्व था। विभिन्न पक्ष निर्माण होते हैं और कालांतर में उनका क्षय हो जाता है। व्यक्ति की भांति पक्ष आते हैं और जाते हैं। साथ ही एक बात स्पष्ट है कि किसी का जन्म किसी पक्ष (पार्टी) में नहीं होता, प्रत्युत

समाज में होता है। इस कारण हमारा प्रथम कर्तव्य समाज और राष्ट्र के प्रति चाहिए। अपने जीवन का पॅत्येक क्षण इस कर्तव्य भावना से ओतप्रोत हो ऐसा प्रयत्न करें।"

"संघ का कार्य देश में परस्पर सामंजस्य, निःस्वार्थ सेवावृत्ति तथा शील संवर्धन करने का है। यह आजीवन चलनेवाला कार्य है। इस विचार प्रणाली का आप स्वागत करें। यह बात किस के द्वारा कही जा रही है, यह बात महत्व की नहीं है। क्या और किस संबंध में कहा जा रहा है, यह विचार करने का मुख्य विषय हो। भारतवर्ष में अनुशासनबद्ध तथा संगठित राष्ट्रजीवन का निर्माण हो, इसके लिए संघ आप के सहकार्य की अपेक्षा करता है।"

इस प्रकार सत्कार समारोह में स्तुति गान किये जाने पर या ज्येष्ठ महानुभावों द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसा सुनने के पश्चात् भी श्री गुरुजी की भाषा मृदु, मधुर, नम्रता से भरी हुई रहा करती थी। मैं कुछ हूँ, इस भावना का स्पर्श भी उनके व्यवहार में कभी दिखाई नहीं देता था। वही संयमित, विनम्र, मित्रता और हास्यरस से परिपूर्ण सामान्य सा व्यवहार लोगों के मन जीत कर उनके प्रति आदर-श्रद्धा-युक्त आकर्षण उत्पन्न कर जाता था। सत्कार समारोह तो प्रसंग विशेष के निमित्त होनेवाले उपक्रम मात्र हुआ करते हैं। किन्तु इन प्रासंगिक कार्यक्रमों का उपरी उद्देश्य भले ही तात्कालिक हो, हमें उनका उपयोग दैनंदिन संघकार्य विस्तार के लिये प्रेरक तथा पोषक मानकर करना चाहिए यह उनकी धारणा थी।

श्री गुरुजी स्वयं शाखा विस्तार तथा कार्यकर्ताओं से संपर्क बढ़ाने और बनाए रखने की ओर अधिक ध्यान दिया करते थे। बाकी कार्यक्रम वे परिस्थितिजन्य आवश्यकता तथा कार्यविस्तार की दृष्टि से ही पूर्ण किया करते थे। १९४९ में देशभर में संपन्न हुए अभिनंदन समारोह तथा १९५६ में हुए वर्षगांठ के कार्यक्रमों द्वारा श्री गुरुजी तथा संघ दोनों ही प्रसिद्धि के प्रकाश में इस तरह आलोकित हुए कि संपूर्ण भारत संघविचार से सुपरिचित होता दिखाई दिया। अधिकाधिक लोगों तक संघ की विचारधारा पहुँच सकी।

संघ समाज के लिये आशापूर्ति का स्थान बन गया। १९६२ तक जो ६ वर्षों का कालखंड बीता उसमें श्री गुरुजी केवल संघ विस्तार तथा संगठन के दृढ़ीकरण के कार्य में ही मग्न रहे। इस कालखंड में उनके व्यक्तिगत जीवन में कोई विशेष घटना नहीं हुई।

१५.२डॉ. अंबेडकर द्वारा बौद्ध मत की दीक्षा

१९५६ में विजयादशमी के अवसर पर एक ऐसी घटना अवश्य हुई जिसके समाज जीवन पर दूरगामी परिणाम हुए। ,माज में खलबली सी मच गयी। डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर के नेतृत्व में लाखों अनुसूचित वर्गीय बंधुओं ने बौद्ध मत को स्वीकार किया। इस वर्ष नित्य की परिपाटी के अनुसार धंतोली स्थित पटवर्धन मैदान पर (नागपुर का एक भाग) एक ओर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का विजयादशमी महोत्सव संपन्न हे रहा था तो दूसरी ओर यहां से 5 कि.मी. के अंतर पर स्थित 'दीक्षा मैदान' पर डॉ. अम्बेडकर की उपस्थिति में महार बन्धु बौद्धमत की दीक्षा ले रहे थे।

यह बात नहीं थी कि बौद्ध मत को स्वीकार करनेवाले बंधु हिन्दू परंपरा व संस्कृति से टूट रहे थे। बौद्ध समाज हिन्दू समाज का ही एक अंग हैं, व्यापक वृहद् हिन्दू समाज का एक छोटा सा अंश। डॉ. अम्बेडकर ने जब अपने वंचित समाज का मतान्तर करने का निश्चय घोषित किया था तभी से ईसाई और इस्लाम मजहबी नेताओं ने इस समाज को अपने मत में समा लेने हेतु भरसक प्रयत्न किए। किन्तु डॉ. अम्बेडकर ने बौद्धमत को स्वीकारा, यह बात उनके राष्ट्रीय दृष्टिकोण को ही दर्शाती है। बौद्ध मत की दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व पत्रकार परिषद् में बोलते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा था-
"एक बार मैंने महात्मा गांधी से कहा था कि यद्यपि अस्पृश्यता के मुद्दे पर मैं उनसे भिन्न मत रखता हूँ पर जब समय आयेगा तब मैं वह रास्ता चुनूँगा जो देश के लिए न्यूनतम हानिकारक होगा। और बौद्धमत का अंगीकार कर आज मैं देश को अधिकतम लाभ पहुँचा रहा हूँ क्योंकि बौद्धमत भारतीय संस्कृति का अंग है। मैंने इस बात की सावधानी बरती है कि मेरा मतान्तर इस भूमि की संस्कृति और इतिहास की परम्परा को हानि न पहुँचा सके।"

सैंकड़ों वर्षों से हिन्दू समाज द्वारा इन तथाकथित अस्पृश्यों पर बहुत अन्याय किये गए थे। उन्हें अपमानित किया गया था। इसके विरोध में आंदोलन, संघर्ष, युक्तिवाद तथा आवाहन के भरसक प्रयत्न हुए थे। किन्तु इसका कोई परिणाम नहीं हुआ था। समाज मानस में परिवर्तन के कोई लक्षण दिखाई नहीं दे रहे थे। समाज का एक अंग उसके मूल, से टूटना चाहता है, इसकी कोई वेदना भी शेष हिन्दू समाज में होती दिखाई नहीं देती थी।

भारत के संविधान में अस्पृश्यता (अछूत मानने की प्रवृत्ति) को अवैध माना गया है। किन्तु लोगों के प्रत्यक्ष व्यवहार में से वह नष्ट नहीं हुई थी। समाज के दलित-पिड़ित लोगों को अब भी निकृष्ट मानकर अपमानित होना पड़ रहा था। इस अवांछनीय

परिस्थिति की प्रतिक्रिया के रूप में अपने परंपरागत हिन्दू धर्म का त्याग करने का निश्चय डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर ने किया था। इस निर्णय का परिणामकारी स्वरूप १९५६ के विजयादशमी के महोत्सव के समय दिखाई दिया। डॉ. बाबा साहब का विचार साकार रूप धारण कर गया।

इस घटना द्वारा हिन्दू समाज में जागृति आयेगी ऐसी अपेक्षा थी, किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। अस्पृश्यता का यह कलंक धो डालने की आवश्यकता है यह विचार करना समाज के लिये आवश्यक था। किन्तु दुर्भाग्य से ऐसा न हो पाया।

इस घटना के प्रति श्री गुरुजी की क्या प्रतिक्रिया थी? प्रत्येक समस्या का राष्ट्रीय, स्तर पर विचार करनेवाले श्री गुरुजी को सामुहिक मतान्तरण कतई मान्य नहीं था। इस तरह समूह में मतान्तरण करने की कल्पना पर उनका विश्वास ही नहीं था। दि. १२ नवंबर १९५६ के 'पांचजन्य' साप्ताहिक में प्रकाशित एक लेख में श्री गुरुजी ने इस सामूहिक मत परिवर्तन के संबंध में अपनी राय व्यक्त की है। वे लिखते हैं, "क्या किसी सच्चे धर्म में सामूहिक धर्मान्तरण जैसी भी बात हो सकती है? एक धर्म को छोड़कर दूसरे को अंगीकार करना एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा ही संभव है।...उसके लिए आत्मनिरीक्षण की आवश्यकता है। मूल धर्म के तथा उसे छोड़कर जिस धर्म को अंगीकार किया जानेवाला है, उसके आध्यात्मिक, नैतिक व व्यावहारिक क्षेत्रों में जीवन के जो आदर्श बताये गये हैं उनका पूर्व विश्लेषण करना आवश्यक है। इसका अर्थ एक ऐसा आमूलाग्र परिवर्तन है जिसमें नये धर्म की सजीव अनुभूति हो। उसका परिणाम यह होता है कि सभी क्षेत्रों में जीवन का एक नया रूप दिखाई देता है। क्या सामुहिक धर्मान्तरण में इस प्रकार का व्यापक एवं आमूलाग्र परिवर्तन संभव है?"

डॉ. बाबा साहब की श्रेष्ठता से श्री गुरुजी अच्छी तरह परिचित थे। बाबा साहब के धर्मचक्र प्रवर्तन के सात वर्ष पश्चात, श्री गुरुजी द्वारा लिखे हुए लेख में श्री अम्बेडकर के कार्य के संबंध में उनकी धारणा का परिचय मिलता है। श्री गुरुजी ने लिखा है, "भारत के धर्म-संस्कृति के दिव्य संदेश के गर्जन से जिन्होंने सारे संसार को हिला दिया. झिंझोड़ दिया, उन श्रीमद् विवेकानन्द जी ने भी यही कहा था कि दीन, दुर्बल, गरीब और अज्ञानग्रस्त भारतवासी को ही मैं ईश्वर मानता हूँ। ऐसे पीड़ितो की सेवा करना तथा उनके सुप्त चैतन्य को जागृत कर उनका भौतिक जीवन सुखपूर्ण और उन्नत करना ही सच्ची ईश्वर सेवा होगी।" श्री विवेकानन्द जी ने 'छूना मत' की अन्यायपूर्ण प्रवृत्तियों पर तथा उनसे संलग्न गलत रुढ़ियों पर कठोर प्रहार किये।

समाज की नई रचना करने का आवाहन किया। विवेकानंद की इन्हीं भावनाओं को डॉ. अम्बेडकर जी ने भिन्न शब्दों में राजनीतिक तथा सामाजिक संदर्भ में क्षुब्ध होकर कहा। अज्ञान और दुःख में सड़ रहे समाज के एक बृहद् भाग को अपमानित अवस्था से ऊपर उठाकर उन्हें आत्मसम्मान प्रदान करने का असामान्य कार्य उन्होंने किया। अपने राष्ट्र को अम्बेडकर जी ने उपकृत कर रखा है। इन उपकारों के ऋण को उतारना कठिन बात है।

"श्रीमत् शंकराचार्य जी की कुशाग्र बुद्धि तथा भगवान बुद्ध के हृदय की करुणा का मेल होने से भारत का उद्धार होगा," ऐसा स्वामी विवेकानन्द ने मार्गदर्शन के रूप में कहा था। कहना पड़ेगा कि बौद्धधर्म का स्वीकार तथा पुरस्कार कर इस मार्गदर्शन को पूर्णता की ओर ले जाने की प्रेरणा डॉ. अम्बेडकर ने दी। उनको यह भी लगा कि व्यवहार में समानता, शुचिता, करुणामय स्नेह, इन सब गुणों में से प्राप्त मानवता की सेवा करने की विशुद्ध प्रेरणा यह बौद्धमत की श्रद्धा से उत्पन्न लाभ राष्ट्र तथा मानवता के कल्याण हेतु आवश्यक है, इस तथ्य को पहचानकर ही उन्होंने बौद्ध मत का आग्रहपूर्वक पुरस्कार किया दिखाई देता है।

"प्रारंभ में भगवान बुद्ध ने तत्कालीन त्रुटिपूर्ण धारणाओं पर टीका-टिप्पणी कर प्रहार किये और समाज सुधारने तथा धर्म का स्वरूप शुद्ध करने की कोशिश की थी, धर्म से अलग होने की नहीं। वर्तमान काल में डॉ. अम्बेडकर ने समाज तथा धर्म हित के लिये समाज चिरंजीवी, दोषरहित और सुदृढ़ बनाने के लिए आजीवन कार्य किया। समाज से टुटकर अलग होने तथा भिन्न पंथ निर्माण करने का उनका विचार नहीं था, ऐसी मेरी श्रद्धा है। इसी कारण इस युग के भगवान् बुद्ध के वारिस के नाते मैं उनकी पवित्र स्मृति को अभिवादन करता हूँ।"

अस्पृश्यता निवारण के लिए गांधी जी ने भी सराहनीय प्रयास किया। अस्पृश्य या दलित वर्गों को हिन्दू समाज से अलग करने के ब्रिटिश प्रयासों को विफल करने के लिए गांधी जी ने १९३२ में आमरण अनशन किया। उनके लिए ब्रिटिश सरकार की ओर से कोई नाम फेंके जाने के पूर्व ही गांधी जी ने 'हरिजन' शब्द सामने रखा जिसे उस समय पूरे समाज ने शिरोधार्य किया। सन् १९३३ में उन्होंने देशव्यापी अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन प्रारम्भ किया। किन्तु इतना सब करने पर भी समस्या हल नहीं हुई। कानून बनाने पर भी अस्पृश्यता बनी रही।

इस संदर्भ में श्री गुरुजी तथा संघ ने जो भूमिका स्वीकार की उसका विचार करना उचित होगा। संघ ने समाज परिवर्तन के लिए एक अलग मार्ग अपनाया। संघ का मानना है कि समाज का निरंतर तेजोभंग कर, प्राचीन परंपराओं को त्याज्य तथा निरर्थक मानकर या केवल विभिन्न भेदों पर प्रहार कर समाज को सुधारा नहीं जा सकता। इससे समन्वय के स्थान पर संघर्ष और कटुता ही बढ़ेगी। एकता के स्थान पर विलगता ही दिखाई देगी।

संघ ने यह विचार सामने रखा कि सब हिन्दू ही हैं, एक परंपरा में पले-बढ़े हैं। अतः हम सब एक हैं यह भाव जागृत कर सबके साथ समान व्यवहार करना तथा ऊँच-नीच की भाषा का न प्रयोग करना और न उच्चारण! आत्मियता की इस विशाल भूमिका को व्यावहारिकता की समतल भूमि पर लाने का सफल प्रयास श्री गुरुजी ने अपने आचरण द्वारा प्रस्तुत किया।

१९५० की एक घटना है। पुणे में संघ शिक्षा वर्ग चल रहा था। भोजन के लिए सभी स्वयंसेवक पंक्तियों में बैठे हुए थे। भोजन परोसने का काम एक गट को दिया हुआ था। जब भोजन परोसने की बारी आई तब एक स्वयंसेवक आगे आकर परोसने के लिए संकोच कर रहा था, हिचकिचा रहा था। श्री गुरुजी के पूछने पर भी वह मौन रहा। बाद में पता चला की वह एक चर्मकार था। श्री गुरुजी स्वयं उठ खड़े हुए और उन्होंने अन्न सामग्री से भरा हुआ बर्तन उसके हाथ में थमाया और कहा, “पहले मेरी पत्तल पर परोसो।” उस चर्मकार स्वयंसेवक की हिचक गायब हो गयी। वह परंपरा से चल रहे जात-पाँत की भावना को एकदम भूल गया। एक नया विश्वास, नया आयाम, एकात्मता की नयी अनुभूति उस में जाग उठी और प्रसन्नता से वह परोसने में समरस हो गया। श्री गुरुजी के स्नेहयुक्त प्रत्यक्षाचरण से यह संभव हो सका। प्रेम, सद्-भावना तथा एकात्मता के प्रवाह में भेदों को डुबो देना, विसर्जित कर देना ही संघ का मार्ग है। यह मार्ग संघ में तो सफल सिद्ध हुआ, किन्तु समाज के विविध स्तरों पर उसकी पूर्णता अभी बाकी है।

१५.३ ब्रह्मदेश के प्रमुख से

ब्रह्मदेश के सर्वोच्च न्यायालय के एक न्यायमूर्ति श्री उछान् ठुन् दिसंबर १९५६ तक भारत में थे। ‘वर्ल्ड बुद्धिस्ट कॉन्फरेन्स’ के प्रतिनिधि के नाते उनका दिल्ली आगमन हुआ था। उन्होंने श्री गुरुजी से भेंट की और संघ का निकट परिचय प्राप्त किया।

नवबौद्ध मंडली से वार्तालाप करने की उनकी इच्छा थी। तदनुसार उन्होंने दिल्ली के अतिरिक्त आगरा, मुम्बई, पुणे, नाशिक, औरंगाबाद, नागपुर आदि स्थानों की यात्रा की। श्री गुरुजी से विस्तार से चर्चा की, संघ शाखाएँ देखी। संघ के कुछ कार्यक्रमों में उनके भाषण भी हुए। उनके भाषण का सार यह था कि सनातन धर्म विशाल है। भगवान बुद्ध ने सनातन धर्म का ही उपदेश किया था। इस सनातन धर्म के प्रकाश को जगत् में फैलाने का कार्य संघ को पुनः एक बार करना चीहिए। मुझे विश्वास है कि आनेवाले समय में आग्नेय एशिया में सनातन धर्म का सन्देश प्रसृत करने का कार्य राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा होगा। ऐसा दिखाई दिया कि श्री गुरुजी की भेंट सा उन्हें बहुत आनन्द हुआ।

मुम्बई के मकर संक्रमणोत्सव में वे सम्मिलित हुए और श्री गुरुजी का भाषण उन्होंने ध्यानपूर्वक सुना। व्यक्तिगत भेंट रात्रि को श्री गुरुजी के निवासस्थान पर हुई। तिल-गुड़ दिया गया। आग्नेय एशिया में धर्म-संस्कृति के रक्षण और प्रसार के लिए संगठन की आवश्यकता इन विषयों पर मुख्य रूप से चर्चा हुई। मुम्बई और नागपुर में नव बौद्धों की ओर से आयोजित जनसभाओं में उ़छान् ठुन् के प्रकट भाषण हुए। 'वर्ल्ड फेलोशिप ऑफ बुद्धिस्ट्स्' संस्था के अध्यक्ष होने से बौद्ध मंडली ने उनके भाषण आयोजित किये थे। नागपुर में उ़छान् ठुन् ने नव बौद्ध कार्यकर्ताओं के सम्मेलन में बोलते समय संघ के कार्यकर्ताओं की शैली से काम करने की सलाह दी। संघ कार्यकर्ताओं का एकत्रीकरण संघचालक जी के निवासस्थान पर हुआ था। इन कार्यकर्ताओं के सम्मुख बोलते हुए उन्होंने संघकार्य पर अपना विश्वास व्यक्त किया और श्री गुरुजी से हुई भेंट के बारे में भी अत्यन्त संतोषजनक उद्-गार व्यक्त किये। मद्रास में भी संघ की ओर से आयोजित एक स्वागत समारोह में उन्होंने भाषण दिया।

भारत से श्रीलंका की ओर प्रस्थान करते समय पत्रकारों द्वारा पूछे गये इस प्रश्न के उत्तर में कि भारत भ्रमण के संबंध में आपका क्या अभिप्राय है और आपका सन्देश क्या है, उन्होंने जो कहा उस पर श्री गुरुजी से हुई चर्चा और संघ के कार्य के निकट से किये गये दर्शन का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता था। उन्होंने कहा, "भारत में आने के पूर्व मैं समझता था कि पूर्वकाल में भारत से विदेशों में धर्मप्रचारक जाते रहे, परन्तु वह शक्ति अब भारत में नहीं रही है। परन्तु मेरे भारत प्रवास में अनेक ज्येष्ठ कार्यकर्ताओं से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, अनेक कार्यक्रम देखने और उनमें सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हुआ। अब मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि भारत में वह सामर्थ्य आज विद्यमान है। अपना सब कुछ समाज सेवा में समर्पित करनेवाले अनेक कार्यकर्ताओं से मेरी भेंट हुई है। विद्वत्ता और योग्यता में वे बिल्कुल कम नहीं

हैं। उन्होंने निःस्वार्थ भावना से स्वयं को समाज और धर्म की सेवा में समर्पित कर दिया है। जगत् के संबंध में अपना कर्तव्य वे अवश्य संपन्न करेंगे।"

इसमें सन्देह नहीं है कि उनके द्वारा नव बौद्ध कार्यकर्ताओं को राजनीतिक उद्देश्यों से प्रेरित न होकर संघ के सहयोग से काम करने का परामर्श और 'सनातन धर्म' की परिधि में बौद्ध मत का स्थान रहने का प्रतिपादन श्री गुरुजी की भेंट का ही सुपरिणाम था।

१५.४अमेरिका से अपेक्षा

सन् १९६० में भारतीय जनसंघ के नेता श्री अटलबिहारी वाजपेयी को अमेरिका आने का निमन्त्रण प्राप्त हुआ। अटल जी ने उसे स्वीकारने का निर्णय किया। जॉन केनेडी और रिचर्ड निक्सन के बीच अध्यक्ष पद के लिए होनेवाले चुनाव का वह समय था। अटल जी संघ के पुराने स्वयंसेवक और प्रचारक भी थे। उन्होंने श्री गुरुजी को अपने अमेरिका जाने के बारे में बताया तब उनके साथ अमेरिकी जनता के नाम एक संदेश भेजने का निश्चय हुआ। यह कल्पना थी कि एकाध बड़े सार्वजनिक कार्यक्रम में अटल जी उसे पढ़कर सुनाएँ। आधुनिक जगत् में धर्म की महत्ता सुप्रतिष्ठित करने के श्री गुरुजी के प्रयत्नों का ही वह एक अंश था। अटलजी ने सितम्बर १९६० में वॉशिंग्टन में आयोजित एक भव्य समारोह में वह सन्देश अमरिकियों को पढ़कर सुनाया। इस संदेश में श्री गुरुजी कहते हैं-

"स्वामी विवेकानन्द ने अपने सद्-गुरु श्री रामकृष्ण के जीवन में प्रकट हुए शाश्वत सत्य का प्रकट उद्-घोष लोकमन्त्र और मानव प्रतिष्ठा को माननेवाले अमेरिका में किया, यह परमेश्वर की ही योजना रही होगी। जागतिक घटना चक्र के परिणाम स्वरूप स्वतंत्र जगत् का नेतृत्व अमेरिका की ओर आया है। स्वामी विवेकानन्द के सद्-विचारों का स्मरण और उनके अनुसार आचरण कर अमेरिका वह दायित्व निभा सकता है।"

"आज सारी दुनिया दो गुटों में विभाजित है। सतही दृष्टि से देखनेवालों को लगता है कि इन गुटों का संघर्ष लोकतन्त्र और साम्यवाद में है, परन्तु यह सच नहीं है। युगानुयुग से निकृष्ट स्तर के भौतिकवाद और धर्म के बीच संघर्ष चलता आ रहा है। वही संघर्ष आज भी चल रहा है। साम्यवाद भौतिकवाद का पृष्ठ पोषक है। साम्यवाद

का प्रतिकार कामचलाऊ भौतिक व्यवस्था या साम्प्रदायिक मतोंसे नहीं हो सकता। सनातन धर्म के सुनिश्चित और शाश्वत अधिष्ठान पर आधारित विश्व धर्म के द्वारा ही साम्यवाद का सफलतापूर्वक सामना किया जा सकता है। दुनिया के सभी पंथों और विश्वासों में सामंजस्य रहना और उनमें सुसंवाद निर्माण होना इस समय आवश्यक है। इसका अर्थ यह नहीं है कि व्यक्तिगत निष्ठाओं को तिलांजली दे दी जाय। उल्टे उन निष्ठाओं का शाश्वत रूप में उदात्तिकरण उसमें अभिप्रेत रहता है, यह सबको समान रूप से प्रिय लगे ऐसी वैश्विक विचारधारा है।"

"वर्तमान कालीन भारत अन्य अनेक देशों के समान भौतिक दृष्टि से समृद्ध भले ही न हो, परन्तु प्रदीर्घ कालीन जीवन के चढ़ाव-उतार में भी वह अद्वैत के शाश्वत सिद्धांतों पर अटल रहा है। वह एक बार फिर अपने पैरों पर खड़ा है और अपने उस नियत कार्य का साक्षात्कार करने में लगा है जिसके अन्तर्गत स्वतंत्र देशों को एक ऐसी वैश्विक प्रणाली प्रदान कर सकेगा जिसके भरोसे सब मिलकर दुनिया को निगलने जा रहे वर्तमान के संकट को मात दे सकेंगे।"

"मेरी ऐसी इच्छा है कि अमेरिकी जनता को स्वामी विवेकानन्द के अमर संदेश का स्मरण करना चाहिए। भारत के साथ अभेद्य मित्रता के सूत्र में स्वयं को बाँध ले। दुनिया की धर्मशक्ति विजयी होगी और हमेशा चलनेवाले सैनिकी संघर्ष से दुनिया मुक्त होगी, मानव को शान्ति और समृद्धि का लाभ होगा।"

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कार्यकर्ता शिविर का कार्यक्रम मध्य प्रदेश के इंदौर शहर में १९६० के मार्च महिने में आयोजित किया गया। इसके पूर्व १९५४ में वर्धा के निकट सिंदी में हुए प्रचारकों के शिविर में श्री गुरुजी ने संघ का विचार, तत्वज्ञान तथा राष्ट्र के संदर्भ में संघ की भूमिका के संदर्भ में निःसंदिग्ध रूप से अपने विचार प्रगट किए थे, इसकी जानकारी पूर्वाध्याय में दी गयी है।

इंदौर का यह शिविर अधिक व्यापक था। संघ के विभाग स्तरीय कार्यकर्ताओं के साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले प्रमुख कार्यकर्ता भी इस शिविर में उपस्थित थे। बीते ६ वर्षों में हुए संघ कार्य का सिंहावलोकन करना, कार्यकर्ताओं के मन में उभरने वाली शंकाओं का निवारण करना तथा संघ का भविष्य में बनने जा रही विकास योजना के संबंध में विचार करना, यह सब इस शिविर का उद्देश्य था।

संघकार्य प्रारंभ होकर ३५ वर्ष की कालावधि बीत चुकी थी। इस कालखंड में संघ को अनेक भले-बुरे प्रसंगों में से गुजरना पड़ा था, अनेक संकटों का सामना करना पड़ा था। अतः कार्यकर्ताओं के बीच खुली चर्चा का यह आयोजन किया गया था। श्री गुरुजी प्रारंभ से अंत तक इस शिविर में स्वयं उपस्थित रहे। नित्य विचारों का आदान-प्रदान होता, चर्चाएँ होतीं, प्रश्न पुछे जाते और श्री गुरुजी कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन करते। शिविर की योजना सफल रही।

प्रायः ऐसे शिविर या अभ्यास वर्गों में कार्यकर्ताओं से स्पष्ट तथा निःसंदिग्ध रूप से खुली चर्चा करना श्री गुरुजी का स्वभाव था। इसी पद्धति को अपना कर वे समन्वय की पद्धति का अवलंबन कर शंकाओं का समाधान करते। बाहर की परिस्थिति भले ही विपरीत या संकट ग्रस्त हो, हमें समाज और देश के लिए क्या करना चाहिए यह श्री गुरुजी के इन्दौर में दिए भाषणों का प्रधान सूत्र रहा था। नित्य कर्म तथा नैमित्तिक कर्म- इस प्रकार काम के द्विविध स्वरूप को सुस्पष्ट करते हुए श्री गुरुजी ने आग्रहपूर्वक तथा निश्चयात्मक ढंग से बताया कि किसी भी परिस्थिति में अपनी दैनंदिन शाखा के कार्यक्रम में शिथिलता न आने पाए। पूरी दक्षता के साथ संस्कारक्षम शाखा उत्साह के साथ चलाना कार्य की दृष्टि से नितांत आवश्यक है। देश को समस्त संकटों से तारने का वही सर्वाधिक विश्वसनीय साधन है। इन्दौर के भाषणों की और एक विशेषता यह रही कि हिन्दू धर्म तथा परंपरा के अनुसार ही हमारा जीवन व्यतीत हो; हिन्दू संस्कारों को जागृत किये बिना कार्य की निरंतरता तथा राष्ट्रीय चैतन्य की अनुभूति सर्वथा असंभव है, इस बात को उन्होंने दृढ़तापूर्वक प्रतिपादित किया। यही नहीं, संस्कारों का स्वरूप क्या हो इसका भी बड़े विस्तार से वर्णन किया। उस समय दो प्रश्नों के उपर संघ की भूमिका के बारे में श्री गुरुजी ने प्रकाश डाला। पहिला प्रश्न यह था कि हिन्दू संस्कृति के पुनरुज्जीवन में वर्ण व्यवस्था का पुनरुज्जीवन अभिप्रेत है क्या? और दूसरा प्रश्न था कि क्या वर्ण व्यवस्था को हिन्दू समाज जीवन का एक आवश्यक और अपरिहार्य अंग समझना चाहिए? श्री गुरुजी का उत्तर निस्संदिग्ध था। उन्होंने कहा- "सांस्कृतिक पुनरुत्थान से वर्ण व्यवस्था का पुनरुज्जीवन जुड़ा हुआ नहीं है। जाति के हम न विरोधी और न पक्षधर हैं। हम इतना ही जानते है कि समाज पर आये गंभीर संकट के समय में एक महत्व की भूमिका उस व्यवस्था ने निभायी थी। आज यदि समाज को वह पद्धति नहीं चाहिए तो वह नष्ट हो जायेगी और इसके बारे में किसी को भी दुःख नहीं होगा। वैसे ही वर्ण व्यवस्था के बारे में कहना होगा कि वह समाज की 'अवस्था' न हो कर केवल एक 'व्यवस्था' है। यदि वह निरुपयोगी हो गयी है तो उसका त्याग करने में हिचकिचाने का बिल्कुल कारण नहीं है। आवश्यकता

और सुविधा के अनुसार व्यवस्था में परिवर्तन हो सकता है; उपयुक्तता पर वह निर्भर है।"

संघ के स्वयंसेवक से जिस अनुशासन की अपेक्षा की जाती है, उस के अंग प्रत्यंगों का विवेचन श्री गुरुजी ने इतने विस्तार तथा गहराई से किया कि उसमें हिन्दू संस्कृति के कई अज्ञात पहलुओं के संबंध में कार्यकर्ताओं को ज्ञान प्राप्त हुआ।

श्री गुरुजी के विवेचन का आधार आध्यात्मिक था तथा कार्यकर्ताओं को संघ-कार्य के स्वरूप की सर्वंकष कल्पना भी उन्होंने आध्यात्मिक परिभाषा में ही कराई। अन्त में श्री गुरुजी ने सबका आवाहन किया कि राष्ट्र के पुनरुत्थान के लिए असीम त्यागमय जीवन का व्रत आनंद के साथ हमें स्वीकार करना होगा। इन्दौर के शिविर में हुए इन सभी भाषणों ने कार्यकर्ताओं को न केवल अंतर्मुख किया अपितु स्वतः के व्यक्तिगत गुणावगुणों को परख ने के लिए भी प्रवृत्त किया। श्री गुरुजी का यह मार्गदर्शन बहुत ही प्रभावोत्पादक तथा संस्कारक्षम था।

१९६० का वर्ष खंडित भारत की स्वाधीनता प्राप्त करने के साथ एक तप के पश्चात् का महत्वपूर्ण काल था। चीनी आक्रमण के संभाव्य संकट के साथ ही अनेक संकटों और सामाजिक पतन के दृश्य लक्षणों का साक्षात्कार श्री गुरुजी ने कराया। "हमारी परंपरा ने संकटों पर मात करने का, उन्हें परास्त करने का सामर्थ्य हमें दिया है, इस कारण भारत का जागतिक (वैश्विक) 'मिशन' पूर्ण करने के हेतु हम जी-जान से, सर्वस्वार्पण करते हुए यदि प्रयत्नशील रहे तो सफलता के बारे में मन में कोई संदेह नहीं बचेगा", इस विश्वास के साथ श्री गुरुजी ने कार्यकर्ताओं को प्रेरित किया। शिविर समाप्त हुआ। कार्यकर्ता शंकारहित हो प्रचण्ड उत्साह से अपने-अपने कार्य क्षेत्रों की ओर बढ़े। आश्चर्य की बात यह है कि इस वर्ग के समाप्त होने के ठीक दो वर्ष के बाद, जैसा कि श्री गुरुजी ने पूर्वानुमान लगाया था, विदेशी आक्रमण का हिंस्त्र आघात अपने देश पर हुआ।

*

१६ युद्ध कालीन दिशा-दर्शन

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आद्य सरसंघचालक डॉ. हेडगेवार जी का अंत्यसंस्कार नागपुर के रेशीमबाग मैदान पर हुआ था। जिस स्थान पर उनका पार्थिव शरीर अग्नि को समर्पित किया गया था वहाँ एक साधारण सी समाधि बनी हुई थी।

संघ का कार्य दिन दूना रात चौगुना बढ़ता गया। देशभर के स्वयंसेवक इस पावन समाधि के दर्शन करने आने लगे। इस कारण कार्यकर्ताओं के मन में यह इच्छा जागी कि इस समाधि पर एक मंदिर सदृश वास्तु का निर्माण किया जाय जो स्वयंसेवकों तथा अन्य लोगों के लिए प्रेरणास्थान बने। इस कार्य के लिए 'डॉ. हेडगेवार स्मृति समिति' का गठन किया गया। श्री गुरुजी इस समिति के अध्यक्ष थे।

१६.१ प्रेरणास्थान का निर्माण

स्मृति मंदिर के निर्माण के लिए निधि संकलन किया गया। योजना के अनुसार स्मृति मंदिर का निर्माण कार्य पूर्ण हुआ। स्वयं श्री गुरुजी ने इस वास्तु निर्माण की ओर बहुत बारीकी से ध्यान दिया। इस समय श्री गुरुजी की बुद्धिमत्ता तथा कलात्मकता ता एक नया पहलू ध्यान में आया। उन्हें भारतीय वास्तुशास्त्र का सूक्ष्म ज्ञान तो था ही, किन्तु सौंदर्य दृष्टि, कलात्मक चिंतन तथा स्मृति मंदिर की ओर देखने की उनकी भूमिका की अनुपम अनुभूति इस समय हुई। अभियंता से लेकर पत्थर तराशनेवालों तक को वे आवश्यकतानुसार मार्गदर्शन दिया करते थे।

९ अप्रैल १९६२ वर्षप्रतिपदा के शुभमुहुर्त पर स्मृति मंदिर का उद्-घाटन किया गया। वर्ष प्रतिपदा डॉक्टर जी का जन्म दिवस होने के कारण इस अवसर का चयन होना उचित ही था। अपने आराध्य डॉक्टर जी के स्मृतिमंदिर के लिए भारत के लगभग सभी स्वयंसेवकओं ने श्रद्धापूर्वक निधि समर्पित की थी। इस कारण यह निर्णय लिया गया कि अखिल भारतीय स्तर पर इसका उद्-घाटन समारोह मनाया जाए। भारत के सभी स्वयंसेवकों तथा संघ प्रेमी जनता का ध्यान इस स्मृति मंदिर के निर्माण की ओर लगा हुआ था।

जब स्मृति मंदिर के उद्-घाटन के लिए किसी श्रेष्ठ आध्यात्मिक विभूति के नाम की चर्चा होने लगी तो कांची कामकोटि पीठ के परमाचार्य का नाम स्वाभाविक रूप से

सामने आया। यह तो सर्व विदित है कि परमाचार्य संघ को कितना चाहते थे और हम सब यह भी जानते हैं कि श्री गुरुजी की उनके प्रति कितनी श्रद्धा थी। जब परमाचार्य के पास यह निवेदन पहुँचा तो वे नागपुर जाने के लिए तुरंत तैयार हो गये। उन्होंने यह संदेश भिजवाया कि वे लोग लगभग दो मास पूर्व नागपुर के लिए प्रस्थान करेंगे जिससे पैदल चलकर समय से वहाँ पहुँच सके। श्री गुरुजी को पता था कि परमाचार्य पैदल ही चला करते हैं किन्तु उन्हें यह उचित नहीं लगा कि वे इतना शारीरिक कष्ट उठाएँ। अतः श्री गुरुजी उन्हें वैसा सूचित करते हुए उनसे अत्यन्त विनम्रतापूर्वक निवेदन किया कि अपने आशिर्वाद स्वरूप वे मंत्राक्षत भिजवाने की कृपा करें जिससे समाधि पर चढ़ाकर स्मृति मंदिर के उद्-घाटन को ऋषि हाथों की पावनता प्रदान की जा सके। श्री परमाचार्य ने श्री गुरुजी के निवेदन के अनुसार ही मंत्राक्षत भेजा।

वर्ष प्रतिपदा के दिन सूर्योदय से सूर्यास्त तक रेशीमबाग में सहस्त्रों स्वयंसेवक तथा डॉक्टर जी के बारे में अनन्य श्रद्धाभाव हृदय में रखनेवाले नागरिकों की उपस्थिति थी। स्मृति मंदिर का सुन्दर शिल्प तो देखते ही बनता था। विद्युत् दिपों से आलोकित स्मृति मंदिर के अन्दर भूतल से कुछ नीचे समाधिस्थल संगमरमर से मंडित किया गया था। फूलों की कलाकारी से समाधि की पवित्रता तथा शोभा को देखकर, एक ओर मन पुलकित होता तो दूसरी ओर दर्शक अंतर्मुख होकर मन में सोचता कि यही वह स्थल है जहाँ परम पूजनीय डॉक्टर जी ने अपने संपूर्ण जीवन को समिधा के रूप में राष्ट्रयज्ञ में समर्पित कर दिया था और वे चिरनिद्रा में समाधिस्थ हो गये थे। अथक, अविश्रांत, निर्मोहि, क्षण-क्षण प्रतिपल हिन्दू राष्ट्र के नवोत्थान के लिए यथार्थ रूप से खून का पानी होते तक-अंतिम सांस पर्यंत, शरीर की चिन्ता न कर साधना करनेवाले महान् साधक की यह चिरविश्राम स्थली है, यह भावना ज्वार-भाटे की भाँति अंतस् में उमड़कर आँखों में आँसू छलकाती थी। इसी समाधि के ठीक ऊपर प्रस्तर के कमानीदार गुंजनधारी मंडप में काले चमकीले विशेष प्रस्तर से बनाई गयी डॉक्टर जी की अर्ध-चंद्राकार आसन पर बैठी प्रतिमा तो ऐसी जीवंत प्रतीत होती मानों स्वयं डॉक्टर जी अपने सम्मुख बैठे हों; काले चमकीले पत्थर की बनी सीढ़ियों से चढ़ते ही दर्शक डॉक्टर जी की प्रतिमा तक पहुंचता था। यहां से देखने पर चारों ओर मानव समुद्र ठाठें मारता दिखाई देता था। दर्शनोत्सुक जनता बहते हुए प्रवाह की भांति आती और स्थिरचित्त हुए जनसागर में विलीन होती दिखाई देती थी।

कार्यक्रम की भव्यता व महत्ता को शब्दांकित करना सम्भव नहीं। सारी व्यवस्था अनुशासनबद्ध थी। सभी लोग श्री गुरुजी के भाषण को सुनने के लिए उत्सुक थे, लालायित था। इस अवसर पर श्री गुरूजी ने डॉक्टर जी के जीवनकार्य तथा उनकी

असामान्यता पर विस्तार से तथा विविधांगी प्रकाश डाला। श्री गुरुजी ने भाषण के प्रारंभ में ही कहा, "स्मृति मंदिर के निर्माण तथा उद्-घाटन का यह अर्थ कदापि नहीं होता कि हम व्यक्तिपूजक हैं। संघकार्य में संघ के निर्माता सर्वाधिक आदरणीय व्यक्ति थे। किन्तु हमने उनका कभी जय-जयकार नहीं किया। जय-जयकार तो राष्ट्र का, ईश्वर का तथा मातृभूमि का किया जाता है; किसी व्यक्ति विशेष का नहीं।"

"सामान्य व्यक्ति के लिए तत्वचिंतन हेतु किसी स्फूर्तिप्रद अवलंबन की आवश्यकता होती है। तत्वरूप बने पार्थिव शरीर के चिंतन से तत्व का ही चिंतन होता है। राष्ट्र को अमर बनानेवाली असामान्य कार्यपद्धति डॉक्टर जी ने हमें दी और राष्ट्रभक्ति की भावना से परिपूर्ण, अंतर्बाह्य विशुद्ध जीवन का आदर्श उन्होंने हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया। सहस्त्रों युवा स्वयंसेवकों को उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त हुई। ऐसे विशुद्ध जीवन का स्मरण जागृत रहे, इस प्रेरणा से यह स्मृति मंदिर बनाया गया है।"

दि. १० अप्रैल १९६२ को प्रातः काल श्री गुरुजी का बौद्धिक वर्ग स्वयंसेवकों के लिए हुआ। उन्होंने कहा,

"इस मंदिर को केवल पूजा का स्थान न बनाइये। हम अपने श्रद्धास्थान के जीतने निकट रहेंगे, उसके समान बनने का प्रयास करेंगे, उतने परिमाण में हमारी पूजा सफल होगी। पूजा के इस वास्तविक रूप को ध्यान में रखते हुए हमें अपने जीवन का विचार करना होगा। डॉक्टर जी द्वारा दिए गये आदर्शों के अनुसार हमें अपने जीवन को ढ़ालना होगा। एक पूजास्थान निर्माण कर हम किसी महंत की भांति गद्दी पर बैठे रहे; इस भूमिका से यह मंदिर नहीं बनाया गया है। ईटों और पत्थरों को जोड़कर बनाए गये मंदिर में मुझे कोई रुचि नहीं है। यह हमारे लिए प्रेरणास्थान बने, इसी दृष्टि से हम इस स्मृति मंदिर की ओर देखें।"

इस संदर्भ में हमें एक और बात का स्मरण होता है। डॉक्टर जी की समाधि पर मंदिर बनाने में श्री गुरुजी अगुवा थे, अग्रसर थे। उद्-घाटन हेतु सम्पूर्ण भारतवर्ष से स्वयंसेवकों को आमंत्रित किया गया था। किन्तु अपने स्वयं के बारे में श्री गुरुजी ने किस प्रकार विचार किया था, इस को जानने के लिए उनके तीन अंतिम पत्रों में से दूसरे पत्र का विचार करना होगा। इस पत्र में उन्होंने कहा, "संघ का ध्येय और उस ध्येय का दर्शन करानेवाले संघ निर्माता इनके अतिरिक्त और किसी व्यक्ति का व्यक्ति इस नाते से महत्व बढ़ाना- उनके स्मारक बनाना आवश्यक नहीं है।"

इस पत्र का आशय यही था कि उनकी देह शांत होने के उपरान्त श्री गुरुजी का कोई स्मारक न बनाया जाए। श्री गुरुजी नहीं चाहते थे कि स्मारक बनाने की परम्परा निर्माण हो। अपने जीवनकाल में वे डॉक्टर जी की स्मृति के सम्मुख सदैव नतमस्तक रहे, शरणागत रहे, किन्तु देहावसान के पश्चात् कोई दूसरा मंदिर निर्माण न हो, इसकी ओर भी श्री गुरुजी ने ध्यान दिया। अहंकार को समूल नष्ट कर अपने सर्वस्व का समर्पण डॉक्टर जी के चरणों में करना एक परिपूर्ण समर्पण ही माना जाएगा। श्री गुरुजी ने भले ही अप्रत्यक्ष रूप से आज्ञा दी हो कि कोई अन्य स्मारक या समाधि न बने, किन्तु प्रेम-श्रद्धा-स्नेह का भी अपना निजी अधिकार होता है। इस अधिकार में किसी आज्ञा की अवज्ञा भी क्षम्य मानी जाती है। इसी कारण लाखों स्वयंसेवकों के श्रद्धा स्थान डॉक्टर जी के पदचिन्हों पर चले सर्वस्व त्यागी-विरागी, विलक्षण बुद्धि व प्रतिभा से संपन्न ओजस्वी वक्तृत्व तथा आकर्षक व्यक्तित्व के धनी श्री गुरुजी के देहावसान के पश्चात् संघ के कार्यकर्ताओं ने डॉक्टर जी के समाधि के चरणों के सम्मुख श्री गुरुजी के यज्ञ-रूप जीवन का स्मरणचिन्ह यज्ञकुंड के रूप में बनाया। श्री गुरुजी से मन ही मन क्षमा माँगते हुए निर्मित यह यज्ञकुण्ड जब विद्युत संचार के पश्चात् संध्या समय प्रज्वलित होता है, तब दर्शक को ऐसी अनुभूति होती है मानों प्रत्यक्ष अग्निकुंड ज्वालाओं से जीवित हो उठा हो। दिन के प्रकाश में श्वेतवर्ण किन्तु संध्या समय अंतर्गत विद्युत् प्रवाहित ज्वालाओं की लपटों के समान दिखाई देनेवाला यह स्मृतिचिन्ह एक अनोखा ही आकर्षण है।

श्री गुरुजी का कोई व्यक्तिगत जीवन था ही नहीं। परिवार से जोड़नेवाला एक ही बंधन शेष था, पूज्य माता-ताई का। पूज्य पिता श्री भाऊजी का १९५४ में ही देहावसान हो चुका था। पिता के स्वर्गस्थ होने के पश्चात् श्री गुरुजी ताई के बारे में अधिक संवेदनाशील हो गए थे। ताई भी कर्तव्यनिष्ठ मां थी। अपने इकलौते पुत्र ने व्यक्तिगत परिवार के बंधन में पड़ने की अपेक्षा राष्ट्र परिवार के उत्थान का बोझ अपने कंधों पर लिया है, इस तथ्य को वे भली भाँति जानती थीं। अब केवल माधव ही नहीं अपितु संघ के सभी स्वयंसेवक उनके लिए पुत्र समान ही थे।

१६.२ एक अपूर्व मधुर मिलन केन्द्र

श्री गुरुजी का जब नागपुर में वास्तव्य रहाता था तब उनका न चूकनेवाला एक नित्य क्रम रहता था- मोहिते संघस्थान पर प्रार्थना संपन्न होते ही प्रमुख कार्यकर्ताओं तथा बाहर गाँव से यदि कोई अतिथि आए हों तो उनके साथ पैदल चलते हुए नागोबा की

गली के अपने घर जाना। नीचे बरामदे में श्री गुरुजी की माता जी ताई बैठी रहती थीं। वहीं सब लोग बैठ जाते। ताई के पास ही श्री गुरुजी बैठते। फिर ताई जी की अध्यक्षता में गपशप का रंग जमा करता। हास-परिहास होता। बीच-बीच में हास्य का फव्वारा छूटता। श्री गुरुजी की विनोद-बुद्धि उनकी एक अनन्य विशेषता थी। परन्तु उनका विनोद किसी को चुभनेवाला नहीं होता था, कुछ शिक्षा देनेवाला ही रहता था। इस दृष्टि से एक प्रसंग का उल्लेख करना उचित रहेगा। एक दिन एक स्वयंसेवक सपत्नीक श्री गुरुजी से मिलने आया। उसी दिन श्री गुरुजी उसके घर होकर आये थे। वह स्वयंसेवक घर पर नहीं था। उसके पिता ने बताया कि वह सिनेमा गया हुआ है। गपशप के दौरान अर्थिक खींचातानी और गुरुदक्षिणा का विषय निकला। इस नवविवाहित स्वयंसेवक से श्री गुरुजी ने पुछा, “आज कल सिनेमा के टिकट के दाम कितने हैं? पत्नी को साथ ले जाना है तब तो निम्न श्रेणी का टिकट नहीं चलेगा? जाने-आने का वाहन खर्चा एवं साथ चाय-पानी का खर्च भी होता होगा? महीने में एक सिनेमा के हिसाब से साल भर में कितना खर्च होता होगा? और फिर तंगी के नाम पर कैंची लगती है बेचारी गुरु-दक्षिणा पर!” उस स्वयंसेवक को जो समझना चाहिए था वह समझ गया। सभी को अपने-अपने खर्चे की ओर देखने की एक दृष्टि प्राप्त हुई। ऐसे कितने ही प्रसंग हैं। शाखा, स्वयंसेवकों का व्यवहार, शाखा के संस्कारों का नित्य के जीवन में आविष्कार ऐसे नाना विषय निकलते थे। अनेक बार लगता था कि ताई की अध्यक्षता में इस घण्टे भर की गपशप, चाय-पानी, खान-पान आदि को कार्यकर्ताओं के निर्माण का कितना परिणामकारक माध्यम श्री गुरुजी ने बनाया था। श्री गुरुजी के लिए ताई के मन में कितना ममत्व और अभिमान था इसके जैसे दर्शन इन बैठकों में होते थे वैसे ही इस बात के भी दर्शन होते थे कि ताई के प्रति श्री गुरुजी के मन में कितनी आत्मीयता व पूज्य भाव था।

ताई की अन्तिम बीमारी के समय उन्हें लकवा मार गया था। स्वास्थ्य नाजुक था। श्री गुरुजी को प्रवास पर जाना था। उन्होंने ताई से पूछा, “प्रवास पर जाऊँ?” उन्होंने मना किया। दूसरे दिन कुछ अच्छा लगने पर उन्होंने जाने की अनुमती दी। प्रवास में श्री कृष्णराव मोहरील पत्र द्वारा ताई के स्वास्थ्य के बारे में सूचित करते रहते थे। श्री गुरुजी का ताई को हमेशा यह आश्वासन रहता था कि “मेरे निकट न रहने की स्थिति में तू जाएगी नहीं! जब ताई अत्यंत अस्वस्थ थीं तब श्री गुरुजी नागपुर में ही रुके। वे सुबह-शाम ताई के पास बैठते, बोलते, धीरज दिलाते थे। ताई की मृत्यु के पश्चात् प्रतिदिन सायंकाल का घर के बरामदे का वह संस्कारदीप बंद हो गया। फिर श्री गुरुजी कार्यालय में ही ठहरते थे। वहीं मिलनेवाले आते। रात्रि तक बैठक चलती।”

ताई जी के जीवन तक श्री गुरुजी नागपुर में रहें या न रहें, स्वयंसेवकों का उनके घर आना जाना बना रहता था। माता के हृदय में अपने पुत्र या संतान के प्रति जो ममता, प्रेम या वात्सल्य का भाव स्वाभाविक रूप से होता है, उसका सिंचन ताई सभी स्वयंसेवकों पर निरंतर किया करती थीं। एक नहीं अनेक माधव घर में रहा करते। ताई सबकी पूछताछ करतीं। किन्तु दुर्भाग्य से यह मातृछत्र दि. १२ अगस्त १९६२ को स्वर्ग सिधार गया। ताई वयोवृद्ध थी, थक चुकी थीं। फिर भी वह एक प्रेमछत्र था श्री गुरुजी के लिए। इस छत्र की छाया में ही श्री गुरुजी भारत भर घुमा करते थे। संघकार्य पर पड़नेवाली संकटों की गर्मी में यह छत्र उन पर छाया किया करता था। ताई का यह छत्र उन्हें शांती प्रदान करता था।

प्रवास हेतु मार्गस्थ होने से पूर्व वे ताई के चरण छूकर आशिर्वाद की कामना किया करते थे। इस कारण ताई के देहान्त का उन्हें बहुत गहरा आघात पहुँचा। श्री गुरुजी के जेष्ठ गुरुबंधु श्री अभिताभ महाराज इस समय नागपुर में ही थे।

माता श्री ताई के देहावसान के पश्चात् श्री गुरुजी के हृदय में विरक्ति व वैराग्य की भावना का किसी यज्ञाग्नि की ज्वाला की भांति प्रखर रूप धारण करना अस्वाभाविक नहीं था। हिमालय के पवित्र परिसर में जाकर एकांत वास की तीव्र इच्छा उनके मन में फिर जाग उठी। किंतु तभी श्री स्वामी अखण्डानंद की बताई हुई घटना का श्री अभिताभ महाराज को स्मरण हो आया। श्री गुरुजी के विरागी मन को परावृत्त करने हेतु उन्होंने कहा, "संघ का कार्य अभी अपूर्ण है। इस कार्य की पूर्ति के लिए आप को कार्यालय के अपने कमरे में ही जाना पड़ेगा। हिमालय की गोद में जाने की अपेक्षा साधना के लिए अपना शेष जीवन इसी कमरे में व्यतीत करना उपयुक्त होगा। मैं स्वयं कार्यालय में ही रहता हूँ। इस कारण आप भी वहाँ चलिए।" श्री अभिताभ महाराज के कहने पर श्री गुरुजी कार्यालय की ओर चल पड़े।

ऐसा प्रतित होता है कि श्री अखंडानंद जी ने श्री अभिताभ महाराज को अपनी मृत्यु के पूर्व श्री गुरुजी के भविष्यकालीन जीवन के संबंध में सजग रहने की सूचना दे रखी थी। श्री बाबा ने अभिताभ महाराज से कहा था, "यह डॉ. हेडगेवार के साथ काम करेगा ऐसा लगता है। समाज सेवा के कार्य में विशुद्ध भाव से कार्यरत रहकर जनता जनार्दन की सेवा का कर्ममय जीवन वह अखंड़ रूप से करता रहेगा। एकाध बार उसे हिमालय की ओर जाने की प्रबल इच्छा होगी। ऐसे अवसर पर तुझे उसकी ओर ध्यान देना होगा।"

"बद्रिकाश्रम जा कर देवतात्मा हिमालय का दर्शन लेने में कोई आपत्ति नहीं होगी। किन्तु इस क्षेत्र में एकांतवास में रहने की यदि उसे इच्छा हुई तो उसे परावृत्त करने की जिम्मेदारी तुझे निभानी होगी।"

इसी का स्मरण कर श्री अभिताभ महाराज ने अपने कर्तव्य को बखूबी निभाया।

इसी समय कांची कामकोटि पीठाधीश श्रद्धेय शंकराचार्य श्री परमाचार्य जी का शोकसंदेश श्री गुरुजी को प्राप्त हुआ। इस पत्र में सान्त्वना के साथ लिखे विचारों ने श्री गुरुजी के विचलित चित्त को पुनः स्थिर होने तथा संघकार्य की ओर लगाने में बहुत सहायता की। श्री शंकराचार्य जी ने लिखा था,

"आपकी अस्थिचर्ममयी माता का देहावसान हुआ। किन्तु आप की भांति कोटि-कोटि सत्पुत्रों की न केवल आज किन्तु अनादि-काल से अनंत काल तक जन्मदात्री परम मंगलमयी ऐसी यह अपनी भारतमाता है। आप तो सर्वस्व का समर्पण कर निरपेक्ष भाव से भारतमाता की सेवा में रत हैं ही। इस कारण आपको मातृवियोग होना असंभव है।"

श्री गुरुजी ने हिमालय जाने का विचार त्याग दिया। मन में उभरे वैराग्य की तीव्रतम भावना का शमन होते ही वे पुनः कार्य में रम गये। अब उनके जीवन में संघकार्य के अतिरिक्त कोई आकर्षण शेष नहीं था। इस के पश्चात् जब कभी अवसर आता, वे कामकोटि पीठ के शंकराचार्य के पत्र का बहुत ही भावभीना वर्णन किया करते।

१६.३ चीन के आक्रमण के सन्दर्भ में

१९६२ का वर्ष भारत के इतिहास में बहुत ही संघर्षमय रहा। इस वर्ष अक्तूबर मास में चीन ने भारत पर आक्रमण किया और देश का वातावरण ही बदल गया। लगभग दस वर्ष पूर्व ही श्री गुरुजी ने इस संभाव्य चीनी आक्रमण की चेतावनी दी थी। लोगों और राज्यकर्ताओं को यह कल्पना ही नहीं थी कि चीन भारत पर आक्रमण करेगा। इस कारण उन्हें वह अकल्पित आकस्मिक प्रतीत हुआ। कर्नाटक स्थित शिमोगा से १९५१ में श्री गुरुजी ने लिखा था, "चीन की प्रकृति विस्तारवादी है तथा निकट भविष्य में ही उसके भारत पर आक्रमण करने की संभावना है।" इस चेतावनी का संदर्भ था चीन की तिब्बत में चल रही सैनिक कार्यवाही। इन दिनों श्री गुरुजी ने अनेक बार चेतावनी के

रूप में कहा था कि भारत ने चीन को तिब्बत की भूमि भेंट कर आपराधिक भूल की है। जो गलती अंग्रेजों ने नहीं की, वह अदूरदर्शिता भारतीय शासन ने की है। विशेष रूप से चीन में हुई कम्युनिस्ट क्रांति व भारत के पंचमांगी तथा कम्युनिस्ट आक्रमणकारियों से हमें सतर्क रहना चाहिए, ऐसा वे हमेशा कहा करते थे।

दिनांक १८.५.५६ को प्रकाशित 'पाञ्चजन्य' साप्ताहिक में श्री गुरुजी ने अपने 'तिब्बत का ग्रास और कम्युनिस्टों का मुक्तिकार्य' इस शीर्षक से अंकित उद्-बोधक लेख में न केवल भारत को अपितु एशिया को भी सतर्क रहने का इशारा किया था। श्री गुरुजी की भविष्यवाणी कितनी खरी उतरी इसका यह एक उदाहरण है।

दि. २ अप्रैल १९६० को महाराष्ट्र के पत्रकारों से श्री गुरुजी का जो वार्तालाप हुआ उसका मुख्य विषय भारत-चीन संघर्ष ही था। साथ ही २३ दिसम्बर १९६२ को दिल्ली के रामलीला मैदान पर एक आमसभा में भाषण देते हुए श्री गुरुजी ने कहा, "मुझे खेद है कि शासन को बार-बार चेतावनी देने पर भी किसी ने इस गंभीर समस्या की ओर ध्यान नहीं दिया। लगभग विगत दो महिनों से चीन ने भारत पर आक्रमण कर रखा है। यह 'आक्रमण' है इस बात को शासन अब स्वीकार करता है। वास्तव में यह आक्रमण तो १०-१२ वर्ष पुराना है। मुझ जैसे सामान्य मनुष्य ने लगभग १० वर्ष पूर्व चीन के भारत प्रवेश तथा भारतीय प्रदेश में अपनी स्थिति मजबूत बनाने हेतु उसके द्वारा किये जानेवाले भरसक प्रयत्नों का उल्लेख किया था। साथ ही अन्य कुछ जानकार लोगों ने भी इस संबंध में सचेत किया था। किन्तु हमारे नेता विश्वबंधुत्व की भावना में इतने डूबे हुए थे कि इस समस्या की ओर ध्यान देने का विचार तक हमारे मन में नहीं आया।"

चीन का तुष्टीकरण करने से वह भारत से खुश रहेगा, इस कल्पना को मन में संजोए भारत ने एक के बाद एक-अनेक सहूलियतें चीन को दी। तिब्बत पर चीन द्वारा बलात्कार का प्रतिकार करना तो दूर रहा, वरन् तिब्बत को, जो हमारी सुरक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण घनिष्ट मित्रराष्ट्र था, 'चीन की भूमि' कहकर हमने उसके साथ विश्वासघात किया। लद्दाख में हुआ चीनी आक्रमण एक लंबे अरसे तक गुप्त ही रखा गया और चीन ने १२००० वर्गमील का प्रदेश अपने अधीन कर लिया और यह बात प्रकाश में आई तब यह कहा गया कि वह प्रदेश तो बंजर है, अनुपजाऊ है। वहाँ तो घास का एक तिनका तक नहीं उगता। यह बात सर्वथा तर्कहीन थी। भाई-भाई कहते हुए जिन चीनी नेताओं को हमने गले लगाया, उन्होंने ही हमारा गला काटा। अंततः

इस स्वप्नों की दुनिया से चीनी आक्रमण ने शासन को जागृत कर सत्य का मान कराया। लेकिन बदनामी टली नहीं। देश की संरक्षण-सिद्धता की दुरवस्था चौराहे पर आ गई। तेजपुर की घटना ने तो शासन की गिरी हुई नीतिमत्ता तथा धीरज के अभाव को लज्जास्पद रीति से उजागर कर दिया।

जब चीनी सेनाएँ अरुणाचल प्रदेश में बोमडिला पार कर चारद्वार तथा मिसामारी की ओर बढ़ने लगीं तो तेजपुर के पुरे प्रशासनतंत्र का मनोबल टुट गया। जिलाधीश आदि कुछ उच्च पदस्थ अधिकारी जनता को शहर छोड़ने की सलाह दे स्वयं भाग खड़े हुए। जेल तथा पागलखाने के दरवाजे खोल दिये गये तथा स्टेट बैंक के नोट के बंडल जलाये और सिक्के और चिल्हर तालाब में फेंके जाने लगे। असम के तत्कालीन राजस्व मंत्री श्री फकरुद्दीन अली अहमद ने एन.सी.सी. के जवानों के सामने असहायता प्रगट की और बिजलीघर को डायनामाइट से उड़ देने का आदेश भी दे दिया। उसी रात आकाशवाणी पर पं. जवाहरलाल नेहरु के मुख से वे दुर्भाग्यपूर्ण उद्-गार निकले कि “मेरा हृदय तो असम के लोगों के साथ पीछे छुटा जा रहा है।” संदेश मुखर और स्पष्ट था कि भारत ने हर हालत में असम को बचाने की अपनी जिम्मेदारी से मुँह मोड़ लिया है और वहाँ की जनता को शत्रु की दया पर खुला छोड़ दिया है। असम की जनता आज भी पं. नेहरु के उस मनहुस वाक्य को भूली नहीं है और शंकित रहती है कि आगे भी कभी ऐसी ही स्थिती आई तो भारत सरकार उन्हें धोखा तो नहीं देगी? भारत के लिए महद् दुर्भाग्य और लज्जा की बात रही कि ऐसे नाजुक मौके पर उसका नेतृत्व इतना क्लीब निकला।

बलिहारी है कानू डेका, पद्मप्रसाद दास तथा पद्मजाकान्त सेनापति नाम के संघ के स्वयंसेवक व उसके कुछ अन्य साथियों की जिन्होंने युवकों कि एक टोली गठित कर सेना के अधिकारियों से संपर्क किया तथा उनकी सहायता से रात दिन पहरेदारी कर खाली हुए घरों को बांग्लादेशी घुसपैठियों के हाथों लुटने से बचाया। यही नहीं, तालाब में फेंकी गई संपत्ति को बटोरने के लिए बैलगाड़ियां ले कर आ रहे अराष्ट्रीय तत्वों से भी धन की रक्षा करवाई। दूसरी ओर सर्वश्री पूर्णनारायण सिंह, डॉ. दास, हरकान्त दास, विश्वदेव शर्मा तथा नगराध्यक्ष दुलाल भट्टाचार्य आदि लोगों ने एक समिति गठित कर यह निश्चय किया कि वे हार नहीं मानेंगे और समानान्तर सरकार गठित कर नेतृत्व प्रदान करेंगे।

श्री गुरुजी ने चीनी आक्रमण शुरु होते ही जो मार्गदर्शन दिया, उसके परिप्रेक्ष्य में स्वयंसेवक युद्ध प्रयत्नों में जनता का समर्थन जुटाने तथा उनका मनोबल दृढ़ करने में जुट गये। उनके इस सामायिक सहयोग का महत्व पं. नेहरु को भी स्वीकार करना पड़ा और उन्होंने सन् १९६३ में गणतंत्र दिवस के जनसंचलन में कुछ कांग्रेसियों की आपत्तियों के बाद भी संघ के स्वयंसेवकों को भाग लेने हेतु निमन्त्रण भिजवाया। कहना न होगा कि संघ के तीन हजार गणवेशधारी स्वयंसेवकों का घोष की ताल पर कदम मिला कर चलना उस दिन के कार्यक्रम का एक प्रमुख आकर्षण रहा।

इस आक्रमण के बाद पं. नेहरु ने कहा, "हमारे द्वारा ही निर्मित स्वप्न-संसार में से चीन ने हमें वास्तविक जगत् में ला खड़ा किया।" इस 'स्वप्न-संसार' का नाम 'पंचशील' था। हम सबको पराजय का यह लज्जास्पद इतिहास याद है। इस चीनी आक्रमण ने दिल्ली के शासन को दहला दिया। घबराहट पैदा कर दी। किन्तु थोड़े समय के बाद चीन द्वारा एकतरफा युद्धबंदी घोषित कर दी गई।

इस कालखंण्ड में चीनी आक्रमण, भारत-सरकार की आत्मघाती नीति तथा राष्ट्रीय सामर्थ्य को बढ़ाने की आवश्यकता- यह प्रायः श्री गुरुजी के प्रत्येक भाषण का विषय रहा करता था। केवल आक्रमण का प्रतिकार ही नहीं, अपितु हिमालय की संरक्षक प्राकृतिक दीवार सुरक्षित रखने हेतु हमें तिब्बत को मुक्त कराना चाहिए ऐसा प्रतिपादन भी श्री गुरुजी किया करते थे।

सभी भाषणों में श्री गुरुजी ने चीन की साम्यवादी राज-सत्ता, रूस-चीन सम्बन्धों की अस्पष्टता, भारतीय कम्युनिस्टों की दगाबाज़ी, चीन और पाक से मित्रता का खोखलापन, नेपाल से निर्मल मित्रत्व के संबंध बनाए रखने की आवश्यकता, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में स्वसामर्थ्य के बलबूते पर गुटबंदी से अलिप्त रहने से प्राप्त होनेवाले लाभ आदि अनेक विषयों पर अपने विचार व्यक्त किये। श्री गुरुजी ने यहां तक कहा कि यदि राष्ट्र के नेताओं में साहस का अभाव हो तो वे सत्ता त्यागकर उसकी बागडोर क्षात्रतेज रखनेवालों के हाथों सौंप दें।

उपर्युक्त टीका-टिप्पणी करते हुए भी उन्होंने लोगों से अनुरोध किया कि वे शासन के युद्धप्रयत्नों में सहायता करें। शासन को सहकार्य देने की प्रार्थना से ही वे भाषण का अन्त किया करते थे। इसी आशय का एक प्रतिवेदन श्री गुरुजी ने दिनांक २९.१०.१९६२ को प्रकाशनार्थ प्रस्तुत किया था।

शासन की गलतियों पर परदा न डालते हुए उन पर कठोर आघात करना, शासन को परिस्थिति की वास्तविकता तथा उसके कर्तव्यों से अवगत कराना और अंत में प्रत्येक भारतीय का आवाहन करना कि इस संकट के समय शासन की सहायता करना उसका राष्ट्रीय कर्तव्य है, यह श्री गुरुजी की नीति थी।

श्री गुरुजी ने हमेशा राष्ट्र की नित्यसिद्ध शक्ति की निर्मिति पर अधिक जोर दिया। देशभक्ति की भावना जागृत कर भारत माता के उज्ज्वल गौरव के संपादन का ध्येय उन्हें सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता था। श्री गुरुजी सदैव कहा करते थे कि क्षणिक तात्कालिक उत्तेजना राषट्र को हमेशा के लिये सुरक्षित नहीं रख सकती। 'नेहरु के हाथ मजबूत करो' ऐसी घोषणा प्रायः कम्युनिस्टों के खेमे से हुआ करती थी। इस घोषणा की कड़ी आलोचना करते हुए एक बार श्री गुरुजी ने कहा, "पहले नेहरु जी का हृदय बलवान् बनाइये, उनके हाथों में आप ही बल आ जाएगा।" केवल शांती सैनिक भेजने या एकतरफा अच्छा बर्ताव करने से चीनी आक्रमण का प्रश्न हल हो सकेगा, इस कल्पना पर उनका कतई विश्वास नहीं था। इस एकतरफा शांति तथा सौजन्य की अनावश्यक नीति को नकारते हुए श्री गुरुजी ने चीन का इतिहास, स्वभाव, असहिष्णुता और क्रुरता का बहुत ही मार्मिक विश्लेषण किया।

१९६२ में चीन द्वारा युद्धविराम किये जाने के बाद भी छुपे आक्रमण जारी थे। जिस भारतीय प्रदेश को चीन ने अपने कब्जे में लिया था वह चीन के अधिकार में ही रहा। आज भी वह भूमि पुनः प्राप्त करने के बारे में केन्द्रिय शासन दुविधा में है। भारत-चीन के बीच में मैत्रीपूर्ण संबंध प्रस्थापित करने के प्रयत्न भी किये जा रहे हैं। तिब्बत को चीनियों के चंगुल से मुक्त कराने की भाषा तो मौन सी हो गयी है।

दलाई लामा को भारत ने राजनीतिक आश्रय तो दिया किन्तु उन्हें भारत में रहकर तिब्बत को मुक्त कराने के लिये कोई भी हलचल करने की आजादी नहीं दी। चीन को परास्त करने, उसके कारनामे असफल कराने की दृष्टि से भारत कुछ नहीं कर पाया। सीमाओं का संकुचन होता देख मुँह की खाने के अलावा अपना शासन कुछ भी न कर सका। इसके विपरीत चीन ने आण्विक शस्त्रों को धारण करनेवाले राष्ट्रों के सूची में स्थान तो पाया ही, अपितु रूस के अतिरिक्त एक और महासत्ता के रूप में सारी दुनिया चीन की ओर देखने लगी। इस तथ्य को पहचान कर श्री गुरुजी ने अधिक प्रखरता से अपने विचार व्यक्त किये। राष्ट्रीय सुरक्षा, सम्मान तथा पौरुषसंपन्न राष्ट्र जीवन के बारे में किसी भी प्रकार के हीनभाव (Inferiority complex) की भाषा श्री गुरुजी के लिए

असहनीय थी। राष्ट्र में विजय का आत्मविश्वास जगाने हेतु वे ओजस्वी आह्वान किया करते। श्री गुरुजी ने जनशक्ति को जागृत करने का मार्ग शासन को सुझाया था।

इस विनाशकारी पृष्ठभूमि पर एक ही बात प्रशंसनीय रही। अपनी सुरक्षा व्यवस्था में निहित कमजोरियाँ शासन तथा कांग्रेसी नेताओं के ध्यान में आयीं और फलतः कृष्ण मेनन को इस्तीफा देना पड़ा। भविष्य में सेना की युद्ध सज्जा की ओर विशेषरूप से ध्यान दिया गया। इस सिद्धता के फलस्वरूप १९६५ में पाकिस्तानी आक्रमण का मुँहतोड़ उत्तर दिया जा सका।

भारत सरकार की नीति राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बारे में कितनी भी नकारात्मक और अपने राजनीतिक स्वार्थ के लिए व्यापक राष्ट्रहित की घोर उपेक्षा करनेवाली क्यों न रही हो, सरकार से सहयोग कर देश के कल्याण-साधन का ही प्रयत्न श्री गुरुजी सदा करते रहे। नेपाल और भारत के संबंध सामंजस्य और सहयोग के बने रहना श्री गुरुजी को अत्यन्त आवश्यक लगता था क्योंकि सांस्कृतिक दृष्टि से नेपाल भारत का ही प्रतिरूप है क्योंकि उसने आग्रह-पूर्वक अपना हिन्दुत्व टिकाए रखा है।

नेपाल से भाव बंधन दृढ़ बनाने हेतु

संयोग से श्री गुरुजी २६ जनवरी १९६३ को शिवरात्री के पावन दिवस पर भगवान पशुपतिनाथ के दर्शन के लिए काठमांडु गए हुए थे। ऐसा निश्चित हुआ कि दर्शन आदि सम्पन्न होने पर श्री गुरुजी नेपाल नरेश महाराजाधिराज महेन्द्र विक्रमशाह से भेंट करें। तदनुसार भेंट का समय निश्चित किया गया। उसके अनुसार श्री गुरुजी ने महाराजा से भेंट की। इस भेंट के समय नेपाल के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री तुलसी गिरि भी उपस्थित थे। डॉ. तुलसी गिरि के कारण ही यह भेंट निश्चित करने में संघ के कार्यकर्ताओं को कोई कठिनाई नहीं हुई। डॉक्टरी की शिक्षा के लिए जब श्री तुलसी गिरि बिहार के दरभंगा में और बाद में कलकत्ता में निवास करते थे तब संघ के संपर्क में आये थे। नेपाल नरेश को धार्मिक और सांस्कृतिक कार्य के लिए भारत में कहीं भी जाने में रोक-टोक नहीं थी इसलिये श्री गुरुजी की इच्छा थी कि भारत में हिन्दू संगठन का कार्य करनेवाले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से उनका घनिष्ठ परिचय हो, वे संघ का कार्य निकट से देखें।

यह भेंट अत्यंत सौहार्दपूर्ण वातावरण में लगभग घंटा भर चली। उस समय नेपाल और भारत के संबंधों में कुछ तनाव निर्माण हुआ था। नेपाल और चीन की सीमा परस्पर लगी हुई है। १९६२ के चीनी आक्रमण और भारत की करारी हार की छाया

भारत-नेपाल संबंध पर मँडरा रही थी। उसके कारण नेपाल का चीन की ओर अधिक झुकाव हो गया था। नेपाल में उपद्रव निर्माण कर उपद्रवी लोग भारत में आश्रय लेते हैं ऐसी नेपाल की शिकायत थी। ऐसा लगता था कि नेपाल नरेश के मन में यह भी शंका प्रवेश कर चुकी थी कि नेहरुजी के मन में हिन्दू राज्य कहलानेवाले नेपाल के विषय में कटुता निर्माण हुई है। श्री गुरुजी की स्वाभाविक इच्छा थी कि सांस्कृतिक दृष्टि से एक होने के कारण भारत और नेपाल परस्पर अधिक निकट आयें और वह उन्होंने नेपाल नरेश के निकट प्रकट भी की। उस पर उनकी अनुकूल प्रतिक्रिया दिखायी दी। श्री गुरुजी ने नेपाल नरेश की इस अनुकूल मनोभूमिका की सूचना दिल्ली के श्रेष्ठ अधिकारियों तक पहुँचाने का भी आशंवासन दिया। भारत सरकार के गृहमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री दि. १ मार्च १९६३ को काठमांडु जानेवाले थे। यह कार्यक्रम पहिले ही घोषित हो चुका था। उनसे खुले मन से वार्तालाप करने और मित्रता के संबंध दृढ़ करने की आग्रहपूर्वक विनती श्री गुरुजी ने नेपाल नरेश से की। अत्यन्त प्रसन्न वातावरण में यह भेंट संपन्न हुई। तब श्री गुरुजी ने ऐसी इच्छा व्यक्त की कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्य नेपाल नरेश स्वयं प्रत्यक्ष देखने के लिए संघ के पूर्वनियोजित एकाध कार्यक्रम में उपस्थित रहें। यह विनती महाराजा को मान्य हुई।

काठमांडु से काशी लौटते ही श्री गुरुजी ने श्री लालबहादुर शास्त्री और प्रधानमंत्री पं. नेहरु को पत्र लिखकर नेपाल नरेश से हुई भेंट का वृत्त और अपना निष्कर्ष उन्हें सूचित किया। श्री लालबहादुर को लिखे पत्र में श्री गुरुजी ने कहा था, "अपनी ओर से होनेवाले व्यवहार में कुछ सुधार कर, उचित सम्मान देकर सौहार्दपूर्ण संबंध प्रस्थापित करने और नेपाल की आर्थिक, शैक्षिक आदि आवश्यकताएँ ध्यान में लेकर उचित नीतियों का अवलंब करने से नेपाल शीघ्र ही एक समर्थ, अभिन्नहृदय मित्र, सीमा संरक्षक बंधु के नाते खड़ा हो सकता है। भारत और नेपाल के हित परस्पर संबंधित हैं, इसलिये अपनी सुरक्षा की दृष्टि से भी दोनों देशों के संबंधों में सुधार होना और निष्कपट मित्रता प्रस्थापित होना आवश्यक है।" श्री गुरुजी ने यह भी सूचित किया कि, "अब तक भारतीय अधिकारियों के रूखे, आत्मीयताशून्य आचरण के कारण जो कटुता निर्माण हुई है उसे दूर किया जाय और तदर्थ आवश्यक हो तो उन अधिकारियों के स्थान पर, जिन्होंने जानबूझकर या असावधानी से ऐसा आचरण किया है, अधिक स्नेहभावपूर्ण व्यक्तियों की नियुक्ति की जाय। मुझे विश्वास है कि इस प्रकार संपूर्ण विचार कर नेपाल के भारत के साथ-अटूट स्नेह और परस्परपूरकता के संबंध निर्माण करने में आप सफल होंगे।"

प्रधानमंत्री पं. नेहरु को लिखे गये पत्र में भी उपर्युक्त भावनाएँ श्री गुरुजी द्वारा व्यक्त की गयी थीं। इसके अतिरिक्त चीन, कम्युनिस्ट विस्तारवाद और नेपाल का विशेष उल्लेख इस पत्र में है। श्री गुरुजी ने लिखा था, "मुझे लगता है कि नेपाल सरकार को चीन के प्रति बहुत आकर्षण नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय साम्राज्यवादी साम्यवाद के प्रति तो उसे बिल्कुल प्रेम नहीं है। इसलिये चीनी विस्तारवाद के विरोध में एक प्रबल शक्ति के नाते नेपाल सिद्ध हो सकता है, सिर्फ हम भारतवासियों को नेपाल की अनेक प्रकार से सहायता करनी होगी। अपने उद्देश्यों और नीतियों के संबंध में नेपाल के मन में विश्वास निर्माण करना आवश्यक है।" इस पत्र का तत्काल दि. १ मार्च को पं. नेहरु जी की ओर से उत्तर प्राप्त हुआ और उसमें श्री गुरुजी के अधिकांश विचारों से सहमति प्रकट की गयी थी। पं. नेहरु और श्री गुरुजी के बीच तात्विक मतभेद अवश्य थे, परन्तु राष्ट्रहित की दृष्टि से एकाध राष्टीय समस्या पर परस्पर आदर रखकर विचारों का आदान-प्रदान करने की मन की उदारता भी थी। नेपाल विषयक पत्र व्यवहार से यह दिखाई देता है।

आगे १९६५ के उत्तरार्ध में श्री अटलबिहारी वाजपेयी लालबहादुर शास्त्री जी से मिले थे। उस समय श्री गुरुजी के नेपाल विषयक दौरे की खुलकर प्रशंसा शास्त्री जी ने की थी। उन्होंने कहा था, "अनुकूल पृष्ठभूमि तैयार कर नेपाल-भारत मैत्री दृढ़ करने का मेरा तीन चौथाई काम श्री गुरुजी पहिले ही कर चुके थे।"

परंतु नेपाल नरेश की श्री गुरुजी से हुई भेंट का विषय यहीं पर समाप्त नहीं होता। उसका और एक पहलू है और वह भारत सरकार को शोभा देनेवाला नहीं है। नेपाल नरेश ने श्री गुरुजी के साथ हुई बात-चित में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एकाध कार्यक्रम में उपस्थित रहने की अनुकूलता प्रकट की थी। इसलिए महाराजाधिराज की सुविधानुसार उन्हें संघ के कार्यक्रम के लिए आमंत्रित करने का प्रयत्न संघ की ओर से प्रारंभ हो चुका था। १९६३ के अक्तुबर मास में विदेशों का प्रवास पूरा कर नेपाल नरेश मुम्बई पहुँचने वाले थे। उस समय मुम्बई में उनका सार्वजनिक सत्कार करने की योजना संघ-कार्यकर्ताओं ने बनायी। परन्तु वह समय नरेश को सुविधाजनक नहीं था। इसलिये वह विचार साकार नहीं हो सका। बाद में १९६४ के मकर संक्रमण उत्सव के प्रमुख अतिथि के नाते महाराज उपस्थित रहें ऐसी विनती उनसे की गयी। परंतु उसी समय पं. नेहरुजी की नेपाल यात्रा निश्चित होने से महाराज को काठमांडु में रहना आवश्यक हो गया।

अन्त में १९६५ की १४ जनवरी को नागपुर के संघ के मकर संक्रमणोत्सव के लिए महाराज पधारें ऐसी विनती की गयी और महाराज ने वह स्वीकार कर ली। दिसंबर १९६४ के प्रारंभ में यह स्वीकृति प्राप्त होते ही श्री गुरुजी दिल्ली गये। वहाँ राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री से भेंट कर संपूर्ण कार्यक्रम के विषय में चर्चा करने की उनकी इच्छा थी। राष्ट्रपति के साथ दि.९ दिसम्बर को भेंट हुई, परन्तु प्रधानमंत्री से भेंट नहीं हुई। बाद में नेपाल नरेश ने अपने कार्यक्रम का पूरा ब्यौरा नागपुर को सूचित किया। तब श्री गुरुजी फिर से दिल्ली गये। परन्तु इस बार भी प्रधानमंत्री जी से भेंट नहीं हो सकी। इसलिये श्री गुरुजी ने प्रधानमंत्री के नाम पत्र लिखकर नेपाल नरेश के कार्यक्रम की सम्पूर्ण जानकारी उन्हें दी। इस पत्र प्राप्ति की सूचना भी मिली। इसी बीच महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री वसंतराव नाईक से भेंट कर उन्हें भी पूरा कार्यक्रम श्री गुरुजी ने बतलाया और पूछा कि सरकार क्या सहयोग देगी? इस पर मुख्यमंत्री की ओर से आश्वासन दिया गया कि भारत सरकार की ओर से प्राप्त होनेवाली सूचनाओं के अनुसार सब व्यवस्था की जाएगी। श्री गुरुजी २५ दिसंबर से ०५ जनवरी तक बिहार के प्रवास पर थे। उसी समय कुछ तथाकथित प्रगतिवादी या वामपंथी विचारों के हिन्दुविरोधी समाचार पत्रों में नेपाल नरेश की संकल्पित यात्रा के विषय में अत्यंत प्रतिकूल समाचार प्रकाशित हुए। इसके अतिरिक्त प्रधानमंत्री का भी एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ जिसमें कहा गया कि नेपाल नरेश की यात्रा के विषय में उन्हें कुछ भी मालुम नहीं है। देश के प्रधानमंत्री की ओर से कितनी असत्य भाषा!

महाराजा महेन्द्र द्वारा संघ का निमंत्रण स्वीकार किया जाना और संघ के कार्यक्रम के लिये भारत में पधारना कांग्रेसी सरकार को पसंद नहीं आया, यह स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। इधर श्री गुरुजी घोषित कर चुके थे कि नेपाल नरेश मकर संक्रमण के कार्यक्रम के लिये नागपुर में आनेवाले हैं और उससे नागपुर में नवचैतन्य का संचार हो चुका था। स्वागत की कई प्रकार से तैयारी शुरु हो चुकी थीं। इस संपूर्ण उत्साह पर पानी फिर गया। नेपाल नरेश की इस भारत यात्रा के प्रति भारत सरकार का प्रतिकूल रूख रहते हुए भी उनका पधारना अंतर्राष्ट्रीय नीति के विरुद्ध होता, अतः उन्होंने स्वाभाविक रूप से आने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। अन्तिम प्रयत्न करने की दृष्टि से श्री गुरुजी ने राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन् को तत्काल एक पत्र लिखा। इस पत्र में कहा गया था कि, “नेपाल के साथ अपने संबंध अधिक अच्छे आधार पर कायम करने की आवश्यकता जानकर हम लोग यह जो कार्य कर रहे हैं, उसके संबंध में आपको विश्वास होगा ही। अपनी अत्यंत महत्व की उत्तर सीमा पर नेपाल की स्थिति देखते हुए प्राचीन काल से चले आ रहे इन संबंधों को अधिक दृढ़ करना आवश्यक है।” परन्तु इस पत्र का कुछ भी उपयोग नहीं हुआ। भारत सरकार का

विरोध मिटा नहीं। केवल नागपुरवासी ही नहीं, अपितु अपना सम्पूर्ण भारतदेश एक ऐतिहासिक अवसर से वंचित हुआ। अपनी असमर्थता को सूचित करनेवाला जो पत्र विशेष दूत से नेपाल नरेश द्वारा नागपुर भेजा गया, उस पत्र के साथ ही उन्होंने अपना उत्सव का संकल्पित भाषण भी लिखित रूप में भेजा था।

१६.४ महाराजा का प्रेरक सन्देश

महाराज महेन्द्र ने श्री गुरुजी के नाम भेजे गये अपने पत्र में अत्यन्त खेद प्रगट करते हुए सूचना दी कि नागपुर के पवित्र मकर संक्रमण के कार्यक्रम में वे सम्मिलित नहीं हो पा रहे है। आगे अत्यंत वेदना के साथ लिखा कि "आप मेरी कठिनाइयों व मानसिक कष्ट को समझ सकते हैं जो एक हिन्दू होने के नाते उपस्थित न हो सकने से मुझे है।"

भारत के हिन्दुओं को एक संदेश देते हुए(जो उत्सव के अवसर पर पढ़ा गया) महाराजा ने कहा, "नेपाल सदा से ही भारत के हिंदुओं के लिए अखण्ड प्रेरणा का स्त्रोत रहा है। यही नहीं, नेपाल को इस बात पर गर्व है कि हिंदुओं पर जब-जब आपत्ति आई तब-तब उसने उन्हें अपनी यहाँ शरण दी है। नानासाहेब पेशवा सरीखे भारत के पहले स्वातंत्र्यसमर के सेनानियों को नेपाल में आश्रय मिला है।....नेपाल ने सदा भारत के प्रहरी की भूमिका अदा की है। दोनों की संस्कृति प्रायः एक ही है और दोनों समान जीवनादर्शों से ही प्रेरणा पाते हैं।.....यह हम सब हिंदुओं के लिए आनंद का विषय है। यह समस्त हिंदु विश्व के लिए गौरवास्पद बात है।"

"हिंदु धर्म दुनिया का प्राचीनतम धर्म है। सृष्टि की उत्पत्ति प्रक्रिया के संबंध में उसकी अपनी श्रेष्ठतम दृष्टि है। उसमें वे सारे आवश्यक सूत्र विद्यमान हैं जो सबको शांति, कल्याण और सुख प्राप्त करा देने की क्षमता रखते हैं, साथ ही इस भूपटल पर से संघर्ष के सारे चिन्हों को मिटाने की पात्रता भी उनमें है। हिन्दुत्व हम सबके लिए, जो प्राचीन, श्रेष्ठ और गौरवयुक्त हिंदु धर्म के अनुयायी हैं, गर्व एवं गौरव का विषय है।"

"दुर्भाग्यवशात् मानवता आज विनाश की ओर भाग रही है और आपसी विद्वेश और संघर्ष में रत है। हिंदु धर्म के उच्चतम सिद्धान्त ही मनुष्य को इस भयानक स्थिति से उबार सकते हैं।..... इसके लिए यह आवश्यक है कि सब जगह के हिंदु संगठित हों

और अविभाज्य शक्ति के रूप में खड़े हों। यह नहीं कहा जा सकता कि संघ इस आंदोलन में अपनी उपयोगी भूमिका अदा नहीं कर रहा है।"

"हमें इस बात से स्वाभाविक रूप से प्रसन्नता है कि यह सम्मेलन इसी सत्य के आधार पर भारत के निवासियों को सुसंगठित एवं अनुशासित रूप देने हेतु प्रयत्नरत है।...... दुनिया के एकमात्र स्वतंत्र और सार्वभौम हिंदु राज्य नेपाल के हम नेपाली भी, जो एक दृष्टि से दुनिया के सारे हिंदुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, सभी गतिशील हिंदु शक्तियों के साथ सहयोग करने के इच्छुक हैं। हम भगवान् पशुपतिनाथ और भगवती ज्ञानेश्वरी से प्रार्थना करते हैं कि इस उचित कार्य के लिए हमें शुभाशीर्वाद दे एवं आदर्श हिंदु समाज एवं मानव जीवन को वास्तविकता में परिणित करे।"

श्री गुरुजी के भाषण में भी वस्तुस्थिति का खुलासा किया गया था। संघ के इस उत्सव में नेपाल नरेश पधारे होते तो भारत-नेपाल सांस्कृतिक संबंध अधिक दृढ़ हुए होते। परन्तु यह वस्तुनिष्ठ और राष्ट्रहित का विचार छोड़कर केवल दलीय स्वार्थ का विचार सत्तारूढ़ पक्ष ने किया। इससे उसकी अदूरदृष्टि ही प्रकट हुई। श्री गुरुजी ने एक विस्तृत पत्रक प्रकाशित कर सम्पूर्ण घटनाक्रम की जानकारी स्वदेश बांधवों को दी।

१६.५ सरकारी निर्णय की पत्रों में प्रतिक्रिया

भारत सरकार द्वारा महाराजा नेपाल को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यक्रम में सम्मिलित न होने के लिए बाध्य किये जाने की कृति पर देश के कई प्रमुख पत्रों ने तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए सरकार की कड़े शब्दों में भत्सना की।

दिल्ली के दैनिक 'हिन्दुस्तान' ने लिखा "हिन्दुत्व के प्रति उपेक्षापूर्ण शुष्क व घोर उदासीनता का रूख अपना कर भी सरकार क्या उस नेपाल से मित्रता की आशा करती है जहाँ के अधिकांश निवासी कट्टर श्रद्धालु हिन्दू हैं? यह तो जड़ काटकर पेड़ से फूल की आशा करने जैसा है।"

दिल्ली से ही प्रकाशित 'वीर अर्जुन' ने लिखा "वास्तव में यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि हमारी सरकार के प्रवक्ता इतनी बेशर्मी से अपमानजनक झूठ में लिप्त हैं। (पहले सार्वजनिक रीति से महाराजा के कार्यक्रम में जाने की स्वीकारोक्ति और बाद में उससे अस्वीकार) क्या भारत सरकार यह समझ सकेगी कि हमारी सेना में सम्मिलिक गोरखा बन्धुओं के मन को उनके महाराजा के साथ इस व्यवहार से कितना धक्का लगेगा!"

पुणे के 'केसरी' ने लिखा "जब मुम्बी में पोप आते हैं तब तो राष्ट्रपति से लेकर नीचे तक का पूरा सरकारी तंत्र दौड़ कर उनका स्वागत करता है किन्तु वही सरकार महाराजा नेपाल के नागपुर जाने पर रोक लगाती है। क्या हमारी सरकार हिन्दू समाज से किसी कारण से बदला लेने पर तुली है?"

ये अनपेक्षित घटनाएँ कुछ विस्तार के साथ इसलिए यहाँ दी गई हैं जिससे यह ज्ञात हो सके कि कांग्रेस का नेतृत्व कितनी गहराई से हिन्दुत्व विरोधी विशेषकर संघ विरोधी राजनीतिक छुआछूत के भाव से ग्रसित था। यहाँ तक कि सार्वजनिक झूठ का सहारा लेकर राष्ट्र के व्यापक हित को क्षति पहुँचाने में भी वह नहीं हिचकिचाया।

१६.६ आक्रामक भूमिका हो

१९६५ में जब भारत-पाक युद्ध छिड़ा तब श्री लालबहादुर शास्त्री भारत के प्रधानमंत्री थे। कश्मीर के छम्ब नामक प्रदेश में घुसकर पाकिस्तान ने युद्ध प्रारंभ किया था। इस

समय खुले दिल से सबका सहकार्य प्राप्त करने की भूमिका श्री शास्त्री जी ने अपनाई थी। श्री गुरुजी को, किसी भी राजनीतिक दल से संबंधित न होते हुए भी, सर्वपक्षीय मंत्रणा समिति में सम्मिलित किया गया।

इस बैठक का आयोजन दिल्ली में किया गया। श्री गुरुजी प्रवास के निमित्त महाराष्ट्र के सांगली नगर में थे। शासन की सुचनानुसार उनसे संबंध प्रस्थापित कर प्रधानमंत्री का संदेश उन्हें दिया गया। श्री गुरुजी तुरन्त दिल्ली पहुँचे। इस बैठक में श्री गुरुजी ने कौन सी भूमिका निभायी, इसका सार्वजनिक प्रकटीकरण उन्होंने बैठक समाप्त होने के पश्चात ८ मार्च १९७० को विभिन्न क्षेत्रों में काम करनेवाले कार्यकर्ताओं का उद्-बोधन करते समय पहली बार किया।

श्री गुरुजी ने कहा, “इस बैठक में एक सज्जन ने युद्ध का हेतु स्पष्ट करने का अनुरोध किया- (लेट अस डिफाईन अवर वार एमस्)। एक नेता तो बार-बार ‘युवर आर्मी’ (आपकी सेना) शब्द का प्रयोग कर रहे थे। मैंने हर बार उन्हें रोककर सुझाया ‘अवर आर्मी’ - (अपनी सेना) कहिए। किन्तु जब तीसरी बार उन्होंने वही बात दुहराई तब मैंने उनसे कहा, “आप यह क्या बोल रहे हैं?” तब उन्हें अपनी गलती का अनुभव हुआ और उन्होंने ‘अवर आर्मी’ कहकर अपनी गलती को सुधारा।”

“इस बैठक में मैंने कहा कि किसी भी कीमत पर हमें यह युद्ध जीतना होगा। इस विजय के लिये जो भी परिश्रम करने पड़ेंगे, हमें करने होंगे। यह प्रश्न किसी एक दल का नहीं, समूचे देश का है। इस कारण दलगत दृष्टिकोण को कोई न उठाए। ‘युवर आर्मी’ जैसा शब्द प्रयोग करने का अर्थ अपने देश की रक्षा करनेवाली सेना को ‘विदेश की सेना’ मानने के समान होगा। हमें देश की रक्षा के लिये शत्रु से युद्ध करना है, यह बात स्पष्ट होते हुए भी ‘लेट अस डिफाईन अवर वार एमस्’, ऐसा कहना आश्चर्यजनक है। जो दूसरों पर आक्रमण करते हैं उन्हें अपने एमस्, को ‘डिफाईन’ करना चाहिये। हमें युद्ध का हेतु बताने का यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है। हमारा ‘एम’ (लक्ष्य) निश्चित है। वह है युद्ध में अपने सम्मान की रक्षा कर आक्रामकों को करारा सबक सिखाना और विजय प्राप्त करना। ‘वार एमस्’ को ‘डिफाईन’ करने की भाषा बोलना तो युद्ध के उत्साहपूर्ण प्रयत्नों में बाधा उत्पन्न करना ही होगा।”

“मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा था कि बैठक में उपस्थित लोग मानों भिन्न देशों के, राष्ट्रों के तथा अलग-अलग हितसंबंध के लोग हैं और वे सभी एक दूजे के मानो

विरोधी बनकर बैठे हैं। मुझे ऐसा लगा कि उनमें मानों कोई समान सूत्र ही नहीं। इस चित्र का अवलोकन करने के पश्चात् ऐसा कहना पड़ेगा कि संसार के विभिन्न देशों के लोग राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करते समय जिन सामंजस्यपूर्ण तत्वों का स्वयं सिद्ध मानकर चलते हैं। वे सर्वमान्य बातें भी हमारे देश में अनुकरणीय नहीं मानी जातीं। ऐसी परिस्थिति में संघ का कार्य कितना महत्वपूर्ण है, यह स्पष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

इसी बैठक में श्री गुरुजी ने एक और महत्वपूर्ण सुझाव दिया था और वह यह था कि जम्मू-कश्मीर व कच्छ की सीमा पर पाकिस्तान के बढ़ते चरणों को रोकने के लिए भारतीय सेना को लाहोर पर आक्रमण करना चाहिए। यही धारणा भारतीय सेनानायकों की भी थी। युद्ध के समय संघ के स्वयंसेवकों तथा जनता का सहयोग सरकार को प्राप्त हो, सरकार और सीमा पर रहनेवाले बंधुओं का मनोबल किस प्रकार टिका रहे आदि की चिंता श्री गुरुजी ने की। संघ के स्वयंसेवकों ने सेना को जै सहयोग दिया और जनता ने सेना को जो सक्रिय सहायता प्रदान की, उसे देख कर श्री गुरुजी बहुत ही प्रसन्न थे। दुश्मन के प्रदेश में घुसकर उस पर मात करने की युद्धनीति उन्होंने सुझाई थी। सेना की लगातार हो रही गौरवशाली विजय के कारण देशभर में देशभक्ति की लहर उमड़ आई थी। अमेरिका और ब्रिटेन द्वारा पाकिस्तान को जो युद्ध सामग्री दी गयी थी उसे भारतीय सेना ने तहस-नहस कर डाला था।

१९६२ में चीन के साथ हुए युद्ध में भारत की सेना को कलंकित और अपमानित होना पड़ा था, उस कलंक को इस विजय पर्व ने साफ धो डाला और अपने पराक्रम का ऐसा डंका बजाया कि पाकिस्तान के पाश्चात्य सहायक देश भौंचक्के रह गये। इस कारण श्री गुरुजी इतने प्रसन्न थे कि उनकी यह प्रसन्नता उन दिनों दिये गये उनके हर भाषण में झलकती थी।

सौभाग्यवशात् प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री संघ को 'अछूत' नहीं मानते थे। फलतः संघ, सेना के जवानों की पिछाड़ी सम्भालने में महत्वपूर्ण योगदान दे सका, जनता में उत्साह और त्याग भाव जगा सका। यद्यपि यह सत्य स्थिति थी फिर भी पश्चिमी और रूसी सरकारों के दबाव में आकर दिल्ली के शासकों ने भारतीय सेना की विजयशाली प्रगति बीच में ही रोक दी। शासन के इस अप्रत्याशित निर्णय के कारण श्री गुरुजी दुःखी हुए। भारत के द्वेष पर पलनेवाले पाकिस्तान को सबक सिखाने और कमर तोड़ देने का सुनहरा मौका खो देना बहुत भारी भूल है ऐसा स्पष्ट प्रतिपादन श्री गुरुजी ने

किया। जब युद्ध-विराम की घोषणा की गई तब भी उन्होंने कहा कि यह तो पाकिस्तान को शस्त्रों से पुनः तैयार होने के लिए दिया गया अवसर है, मध्यांतर है।

युद्ध-विराम की पैरवी करते हुए दिल्ली के शासन ने कहा कि भारत का उद्देश्य तो केवल पाकिस्तान की युद्ध क्षमता (वॉर पोटेन्शियल) नष्ट करने का था, न कि पाकिस्तान की भूमि हथियाने का। भारत के शासन की ऐसी अभिलाषा नहीं है।

इस वक्तव्य पर श्री गुरुजी ने अत्यंत तीखी टिप्पणी की। उन्होंने कहा, "केवल युद्ध क्षमता नष्ट करने की नीति-निर्धारित करते समय मनुष्य स्वभाव का एक मौलिक पहलू नजरअंदाज किया गया। इस ओर ध्यान नहीं दिया कि कोई मनुष्य हिंसक या आक्रामक इसलिए नहीं बनता कि उसके पास शस्त्रास्त्रों की सिद्धता है, किन्तु सत्य यह है कि उसके मन में निहित दुष्ट-क्रूर प्रवृत्ति उसे इस दिशा में प्रवृत्त करती है। इसीलिए जब तक यह क्रूर प्रवृत्ति विद्यमान है तब तक मनुष्य बार-बार शस्त्र संग्रह करता रहेगा और दुसरों का अहित सोचता रहेगा। संसार के सभी आक्रामक राष्ट्रों के इतिहास का अध्ययन करने पर यही सत्य उजागर होता है। इस दुष्ट प्रवृत्ति का विनाश कैसे होगा? यह दुष्ट प्रवृत्ति कोई जड़ वस्तु नहीं जिसे पकड़कर नष्ट किया जा सके। दुष्ट प्रवृत्ति का आविष्कार मनुष्य के या मनुष्य समूह के माध्यम से ही हुआ करता है। इसलिए यदि हमें इस दुष्टता का विनाश करना हो तो इस प्रवृत्ति का आधार-अर्थात् दुष्ट प्रवृत्ति के मनुष्य समूह को ही नष्ट करना आवश्यक है।"

साथ ही श्री गुरुजी ने इस बात की ओर भी ध्यान आकर्षित किया कि पाकिस्तान का युद्ध सामर्थ्य इंग्लैंड और अमेरिका पर निर्भर है और इन राष्ट्रों का 'वार पोटेंशिअल' नष्ट करना तो भारत की क्षमता के बाहर की बात है। विदेशी भूमि की अभिलाषा भारत को नहीं है- इस विधान का निषेध करते हुए श्री गुरुजी ने कहा कि जिस भूमि को आज पाकिस्तान कहा जाता है, वह अठारह वर्ष पूर्व भारत का एक अभिन्न अंग थी। कश्मीर के एक तिहाई भूभाग पर पाकिस्तान द्वारा बलात् कब्जा किया गया था। इस कारण पाकिस्तान को परास्त करना याने अपनी भूमी फिर से वापस लेना ही है। हम जब संपूर्ण पाकिस्तान मुक्त कर लेंगे तभी कहा जा सकेगा कि स्वतंत्रता संग्राम वास्तविक अर्थ में पूर्ण हुआ। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि इस संबंध में 'संसार के अन्य लोग क्या कहेंगे? विश्व मत क्या होगा?' इस बात का हौव्वा बनाने में कोई अरेथ नहीं है।

“यदि ऐसा नहीं हो पाता हो तो कम से कम भारत की सेना पाकिस्तान में जहां तक घुसी थी, वहीं पर युद्ध विराम रेखा निश्चित की जाय, और संयुक्त राष्ट्र संघ ने १९४९ में जो न्याय कश्मीर पर लागू किया था, वही भारत को भी लागू करने दे।” ऐसा प्रतिपादन श्री गुरुजी ने किया। भारत सरकार ने इनमें से एक भी सलाह नहीं मानी। परिणामतः श्री लालबहादुर शास्त्री के लिए विदेशी दबाव को सहन करना अनिवार्य सा हो गया। श्री गुरुजी का सुझाव था कि शास्त्री जी को समझौता वार्ता के लिए ताशकन्द जाने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी वे गये और वहां रूसी दबाव के तहत संधिपत्र बनाया गया। तथाकथित ‘आझाद कश्मीर’ से भारतीय सेना को वापस लेने के प्रश्न पर भी वे अडिग नहीं रह सके।

दुर्भाग्यवश ताशकंद में ही शास्त्री जी की रहस्यमय मृत्यु हुई। भारत ने स्वदेशी हृदय, स्वतंत्र प्रतिभा और जीवन का स्वाभिमानयुक्त भारतीय ताना बाना रखनेवाला एक महान् नेता खो दिया। रणभूमि में महान् पराक्रमी सैनिकों ने अपना बलिदान देकर जो पाया-कमाया, अर्जित किया उसे समझौता वार्ता की मेज पर मटियामेट कर दिया गया। उस इतिहास का विश्लेषण करने का यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन जो हुआ उससे श्री गुरुजी अत्याधिक दुःखी हुए।

पाकिस्तानी आक्रमण के कालखंड में सम्पूर्ण देश एक विशालकाय सामुहिक व्यक्तित्ववाले विराट् राष्ट्रपुरुष के रूप में खड़ा रहा, यह बात असंदिग्ध रूप से आनंद प्रदान करनेवाली थी। किन्तु श्री गुरुजी के मन में इस तात्कालिक एकता के स्थायी रूप से टिके रहने के बारे में संदेह था। उन्होंने पूछा, “क्या यह चित्र भविष्य में इसी तरह बना रहेगा? अपने समाज को खोकला बनानेवाली विलगता की प्रवृत्ति और अवगुण सदा के लिए नष्ट हो जाएंगे ऐसा हम विश्वास के साथ कह पाएँगे?” श्री गुरुजी ने यह प्रश्न इसलिये छेड़ा था कि इसी समय संदेह पैदा करनेवाली कुछ घटनाएँ भारत में हो रही थीं।

मद्रास में हो रहा हिन्दी-विरोधी आंदोलन, पंजाब का आपसी संघर्ष आदि कुछ घटनाओं के संदर्भ में श्री गुरुजी ने कहा, “संकट के दूर होते ही फिर से अपनी आत्मविस्मृति तथा निष्क्रियता की कोख में जा बैठने की हमारी प्रवृत्ति अपने विनाश का एक प्रमुख कारण रही है। यह सत्य हमारे इतिहास में अंकित है। अपना समाज कुंभकर्ण की नींद सोता है। इसलिये राष्ट्रीय भावना तथा एकात्मता की ज़ड़े केवल आक्रमण-कालीन तात्कालिक एकता में नहीं, अपितु अधिक गहरी किसी भावात्मक तत्वभूमि में पक्की

करना राष्ट्रहित की दृष्टि से आवश्यक है। इस प्रकार की चिरंतन राष्ट्रीय एकात्मता और भक्ति का अधिष्ठान क्या हो सकता है? विशुद्ध राष्ट्रीयता की भावना ही वास्तविक अर्थ में शाश्वत प्रेरणा का जन्मस्थान है। हाल ही में संकट के समय समाज के जिस अजेय सामर्थ्य का साक्षात्कार हमें हुआ, उसका परिपूर्ण अविष्कार भी हमें इसी प्रेरणा से होगा।"

*

१७ राष्ट्रीय पुनर्जागरण के विभिन्न कार्यों के लिए मार्गदर्शन

१९४९ के जुलाई मास में संघ पर लगा प्रतिबंध हटने के बाद श्री गुरुजी ने नई परिस्थिति के संदर्भ में हिन्दू संगठन के विचार को अधिक ठोस, सुस्थिर और परिपक्वता से परिपूर्ण करने हेतु किस तरह भगीरथ प्रयत्न किये, यह हमने विभिन्न घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में देखा। चाहे संघ कार्यकर्ताओं का अभ्यास वर्ग हो या गोहत्या विरोधी आंदोलन अथवा युद्ध के समान गंभीर प्रसंग, वे 'हिन्दू' शब्दोच्चारण से हृदय में जागृत होनेवाले राष्ट्रीयत्व तथा उसके यथार्थ रूप की ओर ध्यान आकर्षित किया करते थे। हिन्दू परंपरा की प्रेरणा तथा एकात्मता का परिपोष करनेवाला अर्थ वे सुलझा कर बताया करते थे।

श्री गुरुजी की यह दृढ़ धारणा थी कि राष्ट्रीय जीवन के हर क्षेत्र में हिन्दुत्व ही मानवता के कल्याणकारी जीवनमूल्यों का शक्तिशाली आधार है। इसी आधार पर हिन्दू जीवन की रचना होने पर ही राष्ट्र सही अर्थ में तेजस्वी होगा और स्वाभिमान से जी सकेगा। इसी तेजोमय धारणा से राष्ट्रजीवन के विभिन्न क्षेत्र व्याप्त हों, प्रभावित हों इसलिये वे सदैव प्रयत्नशील रहे। संघ के व्यक्ति निर्माण के कार्य को उन्होंने एक नया आयाम प्रदान किया।

हमने अनुभव किया है कि संघ का कार्य नैसर्गिक ढंग से उत्क्रांत होता गया। संघ का विचार संघस्थान के बाहर व्यापक रूप से पहुंचाने का काम भी अनायास और स्वाभाविक रूप से होता गया। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने राजनीतिक दल का कार्य करने के लिए कुछ कार्यकर्ताओं की माँग की। श्री गुरुजी ने सुयोग्य कार्यकर्ता देकर इस माँग की पूर्ति की। किन्तु संघ राजनीति से दूर रहा। राजनीति के क्षेत्र में पहुंचे संघ संस्कारित कार्यकर्ताओं ने राजनीति में राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति निष्ठा प्रस्थापित करने का प्रयास किया। इसी समय श्रमिक, शिक्षा, कृषी, सहकारिता तथा वनवासी क्षेत्रों और समाचार क्षेत्र में भी सेवाकार्य करने हेतु संघ के स्वयंसेवक अपनी-अपनी रुचि के अनुसार गए। स्वयंसेवक चाहे जिस कार्यक्षेत्र में हो, वहाँ उन्होंने राष्ट्रीय मनोभूमिका और संस्कार निर्माण करने का ही प्रयत्न किया।

इन सब कार्यों में संघ की भूमिका अपनी प्रभुसत्ता (डॉमिनेशन) या मोर्चा (फ्रन्ट) बनाने की न कभी थी, न है। अपेक्षा केवल यह है कि प्रत्येक स्वयंसेवक अपने जीवन में संघ-विचारों को वहन करे और अपने मूल शक्ति केन्द्र से उसका संबंध बना रहे।

संघ का स्वयंसेवक जहाँ भी हो वहाँ उसे अपना मित्र परिवार बढ़ाने तथा उसे संघ विचारों से संस्कारित करने का प्रयास करना चाहिये। साथ ही वह स्वयं अनुशासनहीन न बने। संघ इस बात की अपेक्षा नहीं करता कि संघ के कार्यकर्ता द्वारा संचालित क्षेत्र संघ के अधिकार क्षेत्र या नियंत्रण में रहें।

२ जुलाई १९५६ के साप्ताहिक 'पाञ्चजन्य' में श्री गुरुजी का डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के संबंध में एक लेख प्रकाशित हुआ था। इस लेख में श्री गुरुजी ने डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के साथ हुए वार्तालाप पर प्रकाश डाला है। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने जनसंघ की स्थापना की थी और सहकार्य के लिये सुयोग्य संघ कार्यकर्ताओं की मांग भी की थी। इस कारण श्री गुरुजी ने राजनीतिक दल और संघ के परस्पर संबंध तथा इस विषय को लेकर मन में उत्पन्न होनेवाले संभ्रम आदि का स्पष्टीकरण इस महत्वपूर्ण लेख में किया है। श्री गुरुजी ने लिखा है:

"डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की संघ संबंधी अपेक्षाओं का विचार कर मुझे उन्हें स्वाभाविक रूप से सतर्क करना पड़ा। मैंने उन्हें स्पष्ट रूप से बताया कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को राजनीति में नहीं घसीटना चाहिए, क्योंकि वह किसी भी राजनीतिक दल के आधीन रहकर कार्य नहीं कर सकता। उसका वास्तविक कार्य राष्ट्र के सच्चे सांस्कृतिक जीवन को पल्लवित करना है। उन्होंने इस स्थिति को समझा और इस तथ्य को स्वीकार कर लिया, पर साथ ही यह सम्मति प्रकट की कि नये राजनीतिक दल को भी किसी अन्य संस्था के आधीन नहीं रखा जा सकता। उसके उचित पोषण और विकास के लिए उसका पृथक् अस्तित्व आवश्यक है।"

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और प्रस्तावित दल के आपसी सम्बन्धों के सिलसिले में इन मूलभूत बातों पर एक मत हो गया। एक अन्य प्रश्न जिस पर सोच-विचार करना आवश्यक था- वह था दल का आदर्श क्या हो? जहाँ तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सम्बन्ध है- उसके निश्चित आदर्श और ढंग हैं। इसलिए यदि संघ के किसी स्वयंसेवक का सहयोग प्राप्त करना हो तो यह तभी मिल सकता है जब राजनैतिक दल भी उसी आदर्श के अनुसार कार्य करने को तैयार हो।

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने भी कहा कि वे हिन्दु राष्ट्र के आदर्श से पूर्णतः सहमत हैं और हिन्दु राष्ट्र को वैभव के उच्च शिखर पर ले जाना किसी लोकतंत्र की आधुनिक कल्पना के विरुद्ध नहीं समझते, क्योंकि हिन्दु राष्ट्र हिन्दुओं और अहिन्दुओं को पूर्ण

नागरिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रता का विश्वास दिलाता है, जब तक वे राष्ट्र विरोधी हलचलों में भाग न लें, अनुचित ढंग से सत्ता हथियाने का प्रयत्न न करें और राष्ट्र को उसके वैभव और महानता के उच्च शिखर से गिराने का प्रयत्न न करें।

जब इन बातों का निर्णय हो गया तब मैंने अपने कुछ सहयोगियों को जो बड़े विश्वस्त और अनुभवी थे- चुना। ये सहयोगी ऐसे थे जो नवीन दल की स्थापना का बोझ उठाने और अपनी निःस्वार्थ सेवाओं को अर्पण करने के लिए तैयार थे और इस नये दल को शक्तिशाली तथा संगठित आधार पर स्थापित करके इसे लोकप्रिय अखिल भारतीय राजनीतिक दल बनाने की योग्यता रखते थे।"

संघ के युवा तथा प्रौढ़ स्वयंसेवक आज अनेक संस्थाओं में कार्यरत हैं। उनमें से कुछ तो जनाधारित संगठन (mass organisations) हैं तथा कुछ क्षेत्र या कार्य विशेष के लिए सीमित हैं। कुछ नये संगठन खड़े भी हो सकते हैं। इन नयी या पुरानी संस्थाओं में काम करते समय यदि किसी ने ऐसा प्रश्न उपस्थित किया कि संघ और इस काम का क्या संबंध है तो श्री गुरुजी द्वारा दिये गये उपर्युक्त उत्तर की ओर अंगुलिनिर्देश किया जा सकता है। श्री गुरुजी उन स्वयंसेवकों की सदा सराहना किया करते थे जो विभिन्न क्षेत्रों में संघ की अपेक्षानुसार काम कर रहे थे। उदाहरण के तौर पर डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के सहकारी तथा सुविख्यात चिंतक पं. दीनदयाल उपाध्याय तथा भारतीय मजदूर संघ के प्रतिभाशाली शिल्पी श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी के नाम उल्लेखनीय हैं। साथ ही जशपुर में वनवासी कल्याण आश्रम की स्थापना करनेवाले श्री बालासाहेब देशपांडे तथा विवेकानन्द शिला स्मारक का भव्य निर्माण करनेवाले श्री एकनाथजी रानडे का भी स्मरण हो आता है।

संघ के जिन्हें जहाँ भेजा वहाँ वे डटकर खड़े हो गये और नवनिर्माण किया। स्वयंसेवकों का ऐसा व्यवहार पहले भी रहा है और आज भी है। संघ के स्वयंसेवक जिस किसी कार्यक्षेत्र में पहुँचे वहाँ की परिस्थिति, व्यक्ति, संस्थाओं, उनके उद्देश्य तथा कार्यप्रणाली को संघ के ध्येय के अनुरूप नींव से कलश तक उस संस्था विशेष के गठन और उसकी प्रगति का विचार उन्होंने किया। चिंतन, मनन, अभ्यास, प्रयोग, कल्पकता तथा प्रतिभा के द्वारा मार्ग बनाया, संस्था विकसित की और सामाजिक मान्यता अर्जित की। इसे ही संघ की मौलिक संकल्पना तथा राष्ट्रोत्थान के उद्देश्यों का विकासोन्मुख तथा व्यावहारिक स्वरूप कहा जा सकता है।

समाज का प्रत्येक व्यक्ति संघ शाखा में आएगा या आना चाहिए ऐसी कल्पना डॉ. हेडगेवार जी और श्री गुरूजी ने न कभी की, न प्रगट रूप से कहा। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति संस्कारित, देशभक्तिपूर्ण तथा प्रचीन हिन्दू परंपरा से प्रेरणा लेकर अपना जीवन व्यतीत करे।

उनकी कामना थी कि प्रत्येक हिंदू स्वतः को देशभक्ति के साँचे में ढाले और संगठित रहे। इन सारे नित्य बढ़नेवाले और संघ-प्रेरणा से चलनेवाले कामों की ओर देखने की संघ की भूमिका क्या है यह प्रश्न अनेकों के मनों में बार-बार उठता है। १९५० के बाद जैसे-जैसे समाज जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में स्वयंसेवक पहुँचने लगे थे वैसे-वैसे इन कार्यों से संघ का क्या निश्चित संबंध है और उसका स्वरूप क्या है इसकी चर्चा समाचार पत्र करने लगे थे। विशेषतः समाचार पत्रों की अधिक रुचि देश की राजनीतिक सत्ता-स्पर्धा के समाचारों में होने से भारतीय जनसंघ और संघ के बारे में वे बार-बार लिखा करते थे। उनकी धारणा रही है कि जनसंघ संघ का एक राजनीतिक मोर्चा (Front) है। श्री गुरुजी के समय जनसंघ के बारे में यह प्रचार किया जाता था कि उसमें संघ के प्रति निष्ठा रखनेवाले व संघ का नियंत्रण न चाहनेवाले ऐसे दो गुट हैं। इसलिये इस प्रश्न पर श्री गुरुजी ने समय-समय पर जो कहा या उन्होंने मार्गदर्शन किया, उस पर सरसरी दृष्टि डालना उचित होगा।

भाषावार प्रांतरचना के पूर्व के मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री पं. रविशंकर शुक्ल से श्री गुरुजी के घरेलू और आत्मीयता के संबंध थे। उन्हें श्री गुरुजी ने एक भेंट में स्पष्ट रूप से कहा था कि छोटे बच्चों को खेल खिलाने के लिये इतना बड़ा देशव्यापी संगठन हमने नहीं खड़ा किया है। इसके पीछे हमारा विशिष्ट उद्देश्य अवश्य है। अपने राष्ट्रजीवन के प्रत्येक अंगोपांग पर संघ के राष्ट्रीय विचारों का सम्पूर्ण प्रभाव डालना हमारे संघकार्य का मुख्य अद्देश्य है और वह हमने कभी भी छिपा कर नहीं रखा है। अनेक प्रसंगों पर बड़े-बड़े कार्यक्रमों में भी “Yes, we want to dominate every aspect of our national life with our ideology”- ऐसे सरल व स्पष्ट शब्दों में श्री गुरुजी संघ की आकांक्षा व्यक्त किया करते थे।

इस संदर्भ में १९५४ में सिंदी में कार्यकर्ताओं की जो प्रदीर्घ ऐतिहासिक बैठक संपन्न हुई उसमें श्री गुरुजी द्वारा व्यक्त किये गये विचार मूलगामी और हमेशा के लिए मार्गदर्शक हैं। दि. १४ मार्च की रात्रि में यह भाषण हुआ था। इस भाषण में शाखा कार्य और भिन्न-भिन्न क्षेत्र के नवीन कार्यों के परस्पर संबंधों की श्री गुरुजी ने

व्याख्या की थी और साथ-साथ शाखा कार्य की परिपूर्ण क्षमता पर विश्वास प्रकट किया था। इसलिए इस भाषण के महत्व का भाग यहाँ श्री गुरुजी के ही शब्दों में उद्-घृत करना समीचीन होगा।

"पिछले कुछ वर्षों से संघ कार्य के साथ-साथ और भी कुछ बातें चल रही हैं। उदाहरणार्थ कुछ वर्ष पूर्व अपने प्रयत्न से वृत्त-पत्र, पाठशालाएँ, दवाखाने आदि आरम्भ हुए हैं। यह कोई धंधे की दृष्टि से नहीं किए गए अपितु अपने कार्य के प्रचार के साधन के ही स्वरूप या उससे ही निकलनेवाले उपांग हैं। अनेक स्थानों पर जनसेवा के कार्य भी किए हैं। विचार आता है कि यह सब कार्य क्यों किए? क्या दैनंदिन शाखा के रूप में जो कार्य चलता है उसमें किसी त्रुटि का अनुभव करके यह कार्य किए हैं? हम तो कहते थे कि हमें वृत्तपत्रीय प्रचार से मतलब नहीं। तथाकथित रचनात्मक कार्यों में विश्वास नहीं। फिर इन सब प्रकार के कार्यों का अपने मूल कार्य से सामंजस्य क्या? सिद्धांत के रूप में यह मैं अवश्य कहूँगा कि संघकार्य स्वतन्त्र एवं सर्वांगपूर्ण है, उसकी पूर्ति के लिए इन बातों की आवश्यकता नहीं। इस सम्बन्ध में कोई विशेष युक्तिवाद देने की जरूरत नहीं। हम तो इसी विश्वास के आधार पर कार्य कर रहे हैं।"

"किन्तु प्रश्न पैदा होता है कि फिर नवीन क्षेत्रों में यह पदार्पण क्यों? हमें जीवन के सब क्षेत्रों पर वैचारिक आक्रमण करके काबू पाना है। संघकार्य में कोई त्रुटि मान कर पराभव के रूप में स्वीकार किये गये काम नहीं हैं। यदि यह सब पराभव में से उत्पन्न हुआ है तो इन्हे चलाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि पराभूत अन्तःकरण कुछ नहीं कर सकता, फिर उसका लाभ भी क्या होगा? किन्तु सत्य तो यह है कि यह हमारे किसी प्रकार के पराभव का परिणाम नहीं। यदि हम थोड़ा पीछे देखें तो ज्ञात होगा कि हमने वृत्तपत्र तो तब चलाये जब संघकार्य जोर-शोर से बढ़ रहा था, प्रतिबन्ध के रूप में कोई खण्ड नहीं पड़ा था। उस समय तो ऐसी स्थिति थी कि जहाँ कहीं खड़ें हों वहीं शाखा स्थापित हो जाती थी। मिट्टी को हाथ में लिया तो वह सोना हो जाता था। अतः कार्य की असफलता का अनुभव करके वृत्तपत्र नहीं चलाए, बल्कि सफलता की किसी मात्रातक अनुभूति के बाद आक्रमण की दृष्टि ,से ही उन्हें आरम्भ किया गया। हमारा हिन्दू राष्ट्र है। इसका संवर्धन और संरक्षण ही हमारे कार्य की दृष्टि नहीं अपितु उसका विकास और विस्तार भी हमारा लक्ष्य है। आत्मरक्षा कोई बड़ा ध्येय नहीं। यदि आत्मरक्षा भी करनी हो तो उसका सर्वोत्तम उपाय आक्रमण ही है। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भेजे गये कार्यकर्ता एक-एक क्षेत्र को जीतने हेतु प्रेषित सेनापति के समान हैं जिन्हें संघ के दैनंदिन कार्य से जीवन्त संबंध रख कर अपने त्याग, तपस्या,

श्रम तथा कौशल से हर क्षेत्र में नया आदर्ष उपस्थित करते हुए कार्य के महान् लक्ष्य की पूर्ति करना है।"

"वृत्तपत्रीय क्षेत्रों को ही लें। किस प्रकार आदर्शविहीन होकर वे चल रहे हैं! उनमें कितनी गन्दग़ी तथा कितना निम्नस्तर है! चारों ओर चलनेवाली इस बुराई पर आक्रमण करने के लिए ही हमने उसमें प्रवेश किया है। हमारे उन क्षेत्रों में काम करनेवाले कार्यकर्ताओं को जिनमें कई प्रचारक हैं और कई जीवन-निर्वाह योग्य अल्पतम वेतन लेकर कार्य करते हैं, उनको इसी दृष्टि से विचार करना चाहिए। कई बार जब मनुष्य कोई कार्य आरम्भ करता है तो उसे उसकी धुन सवार हो जाती है। बाकी की बातें वह भूल जाता है। तो अपना आदर्श, ध्येयवाद, जीवन की पद्धति संघ के सर्वसामान्य कार्य के अनुकूल बना कर ही उस कार्य को चलाना होगा। उसे ही संघ-कार्य मानकर चलना ठीक न होगा। यदि कोई सम्पादन करते हिए सोच ले कि मेरा तो यही एक कार्य है तो वह योग्य है जैसे कि किसी को रक्षक का कार्य दिया तो उसे वहाँ डटकर खड़े रहना है; फिर यहाँ बौद्धिक में क्या चल रहा है यह सोचने की आवश्यकता नहीं। किन्तु जब तक कोई आकस्मिक कारण न हो या इस प्रकार का निर्देश न दिया जाय तब तक, यह सब काम हमें नित्य चलनेवाले संघकार्य के साथ ही करने चाहिए। यह तो संघकार्य का Addition (सम्पूरक) है : Substitution (पर्याय) नहीं। बीमारी में मनुष्य को बिना भोजन रखा जा सकता है या पथ्य के रूप में उसे दलिया दिया जा सकता है। किन्तु स्वस्थ व्यक्ति को भोजन के स्थान में दलिया नहीं अपितु भोजन के साथ-साथ दलिया देना चाहिए। जो अपनी विचार परम्परा का मूल स्त्रोत है उसके साथ सम्बन्ध विच्छेद करके यदि कोई कदेगा कि मैं उसका प्रचार करुँगा तो यह सम्भव नहीं। मूल स्त्रोत के साथ जीता जागता सश्रद्ध सम्बन्ध रखना होगा। और फिर जहाँ भी जायें वहाँ यही सोच कर काम करें कि वहाँ संघकार्य के अनुरूप उच्चता, श्रेष्ठता, पवित्रता एवं आदर्शवादिता प्रकट हो जिस से हम उस क्षेत्र में भी कुछ क्रांति कर सकें और संघ के प्रति जमे हुए जन विश्वास में वृद्धि कर सकें। इसी से अन्य लोग भी अपना स्तर ऊंचा उठाने को बाध्य होंगे। कोई यदि यह सोचे कि वृत्तपत्र संघ का प्रचार करेंगे तो वह प्रवास के कार्यक्रम को प्रकाशित करने के अतिरिक्त और क्या कर सकते हैं? जहाँ तक संघ के विचारों का प्रश्न है उस में तो कोई नित्य बदलनेवाली बात नहीं। यह हमारा समाज हैस हमें इसको वैभवशाली बनाना है और इसके लिए संगठन करना है, यह सत्य है इसलिए हम बार-बार कहते हैं। इस में नवीनता कहाँ से लाएँ? इस प्रकार प्रचार की आवश्यकता मालूम न होने पर भी हमने फिर इन कामों में क्यों इतने कार्यकर्ता लगाए? क्यों इतना श्रम, द्रव्य तथा समय लगा रहे हैं? केवल इसी

विश्वास से कि अपने दिन प्रतिदिन के कार्य को चलाते हुए, उसमें वृद्धि करते हुए आगे बढ़कर अन्य क्षेत्रों में अधिकार कर सकें और वहाँ आदर्श स्थापित कर सकें।"

"इतना समझा तो संघकार्य के अतिरिक्त अन्य कार्यों का यथार्थ स्वरूप भलीभाँति समझा जा सकेगा। जनसंघ भी संघकार्य की किसी त्रुटि के पूर्ण करने के लिए नहीं या उसका ऐसा महत्व नहीं कि संघकार्य को कुछ कम करके भी उसे चलाया जाय। वह तो उसी दृष्टि से चला है कि राजनैतिक क्षेत्र में ऐसे कार्य का निर्माण किया जाय जो परस्पर ईर्ष्या, स्पर्धाविहीन एवं स्नेहपूर्ण रीति से, उत्कृष्ट रूप से चलते हुए हमारे जीवन के शुद्ध आदर्शों को व्यवहार में लाकर उस क्षेत्र के ऊपर संगठन का प्रभुत्व स्थापित करे, यहाँ तक कि उसके जैसा संगठन सम्पूर्ण शासन को भी अंगुलि-निर्देश से चला सके। वह यह न समझे कि चलो अब तो मैं आजाद हो गया तथा अन्य नेताओं के समान थोड़ा बहुत अपना डिम्-डिम् बजवा कर नाम कर लूँ तथा सुखचैन से अपना जीवन बिताऊँ। उन्होंने तो उस क्षेत्र में परिवर्तन करने का महनीय कार्य अपने उपर लिया है। उस निश्चय को भुला कर यदि राजनीति के आकर्षण में अपने जीवनादर्श को भ्रष्ट करने की गलती की तो बहुत बड़ी हानि होगी।"

"लोग यह भी पूछते हैं कि इनका संघ से सम्बन्ध क्या होगा? स्पष्ट ही उन्हें हमने विभिन्न क्षेत्रों को पादाक्रान्त करने के लिए भेजा है। दूसरे देश में रहनेवाला अपना राजदूत जिस नीति को अपने कार्य और व्यवहार का आधार बनाता है वही उनका भी होना चाहिये। वह वहाँ जाकर शादी-विवाह करके घर नहीं बसा लेता है, न अपने राष्ट्र से सम्बन्ध विच्छेद ही करता है, बल्कि अपने राष्ट्र के आदर्श की छाप उस देश पर कैसे पड़े तथा राष्ट्र के हितों का संरक्षण एवं संवर्धन कैसे हो इसी का प्रयत्न करता रहता है। वह राष्ट्र का प्रतिनिधि होकर जाता है। इसलिए अपने व्यवहार के सम्बन्ध में सतर्क रहता है कि कहिं उसके राष्ट्र के सम्बन्ध में उसके व्यवहार से कोई अनुचित धारणा न बन जाय। यहाँ भी संघकार्य की दैनंदिन उपासना में खण्ड नहीं पड़ना चाहिए। संघ के साथ अनेक राजनीतिक कार्यकर्ताओं का सम्बन्ध आया और उसने उन सबसे यही अपेक्षा की कि वह हमारी नित्य चलनेवाली शाखाओं में उपस्थित रहें। आज भी उस अवस्था में परिवर्तन नहीं आया। बाहर चाहे जितनी गर्जना और नेतृत्व करें किन्तु हमारी दक्ष आरम् करने की पात्रता नहीं जानी चाहिए। स्वयंसेवकत्व के भाव से छोटे से छोटा कार्य करने की अपनी तैयारी चाहिए और उसके लिए और कोई कारण ढूँढने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। राष्ट्र का भाव, उसकी प्रखर भावना, इसके संस्कार, शिक्षा और गुणों की उपासना की आवश्यकता सदैव बनी रहती है। यह तो हमारे जीवन का आधार है। हम कितना भा राजनीतिक कार्य करें किन्तु अपना

सम्बंध संघ से नहीं छोड़ना चाहिए बल्कि यही देखना चाहिए कि विविध क्षेत्रों में काम करने के परिणामस्वरूप संघकार्य का प्रत्यक्ष विस्तार कितना हुआ। हम वह अवस्था लाएँ कि बढ़ते-बढ़ते हम कह सकें कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ही हिन्दू राष्ट्र है। जिनको जनसंघ में कार्य करने के लिए दिया गया है, उनको जनसंघ का कार्य करने के लिए नहीं अपितु जनसंघ के द्वारा राजनीतिक क्षेत्र पर संघ का प्रभाव पैदा करने के लिए दिया गया है। सेनापति बाहर भेजा गया तो वह जो कुछ करता है उसका श्रेय भेजनावाले को है और उसका पोषण तथा नियंत्रण करने का कार्य भी भेजनेवाले का ही है। यही अन्योन्य सम्बंध रहना चाहिए। हम चाहे जहाँ रहें, हमारा जीवन संगठन के लिए समर्पित है और जितना ही हम इस स्वयंपूर्ण कार्य को बढ़ायेंगे उतनी ही मात्रा में अपने जीवन के आदर्श सभी क्षेत्रों में प्रकट करने में सफल होंगे। यही हमारे जीवन का व्यापक कार्य है और शाखा ही उस सब का मूल है। शाखा है तो सब कुछ है, शाखा नहीं तो क्या होगा? क्योंकि राष्ट्र निर्माण का चिरंतन कार्य और उस पर जीवन सर्वस्व न्योछावर करने की शक्ति और कहाँ है?"

"संघ ने जीतना किया है उसमें ही सब प्रकार के क्षेत्र समाप्त हो गए ऐसी बात नहीं। हम आगे भी बहुत कुछ करेंगे। मैं तो कई बार अपने गाँव के क्षेत्रों में चलने-वाली शाखाओं के स्वयंसेवकों के सम्बन्ध में यही पूछता हूँ कि उनमें अपने सहकारियों की अपेक्षा अन्तःकरण की भावना, देश परिस्थिति का ज्ञान, सबको लेकर चलने की योग्यता तथा नेतृत्व की पात्रता अधिक है या नहीं। समाज के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में किए जानेवाले आक्रमणों की यह पूर्व सूचना है। यदि समाज के सभी क्षेत्रों में हमें आक्रमण करना है तो सुसूत्र कार्य की दृष्टि रखनेवाली कितनी विशाल मानव शक्ति हमारे पास होनी चाहिए इसका हम विचार करें। इस दृष्टि को अपने सम्मुख रखकर इसकी पूर्ति के साधन बन कर ही हम सभी क्षेत्रों में काम करें।"

"कई बार लोग पूछते है कि क्या संघ सभी क्षेत्रों पर अंकुश (Domination) रखना चाहता है। मैं पूछता हूँ कि क्या कुछ लोगों को अपने कन्धों पर चढ़ा कर उनकी जय-जयकार करने और उनके चरण चूमने के लिए इतना परिश्रम किया गया है? भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भेजे गए कार्यकर्ता एक-एक क्षेत्र को जीतने के लिए भेजे गए सेनापति के समान है जिन्हें संघ के दैनंदिन कार्य से जीवंत सम्बन्ध रखकर अपने त्याग-तपस्या, श्रम तथा कौशल से हर क्षेत्र में नया आदर्श उपस्थित करते हुए संघ के महान् लक्ष्य की पूर्ति करनी है।"

“राष्ट्रजीवन के विभिन्न क्षेत्रों में चल रहे कार्यकलापों को सफल बनाने के लिए मार्गदर्शन करने तथा मूलतत्वों की जड़ तक पहुँच कर प्रभावी शर-संधान करने की प्रतिभा, बुद्धि तथा क्षमता श्री गुरुजी में थी। प्राचीन, वर्तमान तथा भूतकाल में देश की अवस्था क्या थी, क्या है और क्या रहेगी, इसके संबंध में उनकी दृष्टि प्रायः चमत्कारिक प्रतीत होती है क्योंकि जैसा वे कहते वैसे ही घटनाएँ घटती थीं। श्री गुरुजी का मार्गदर्शन सही अर्थ में भविष्य सूचक हुआ करता था। श्री गुरुजी की बुद्धि इतनी पैनी, मर्मग्राही तथा पारदर्शी थी कि कार्यकर्ता उनके दिशानिर्देश का पालन कर अवश्य ही सफल होते थे।”

१७.१ श्रमिक क्षेत्र में

श्रमिक क्षेत्र की ओर हम गौर करे। श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी १९५० में ‘इंटक’ में शामिल हुए। इसके पश्चात् श्री गुरुजी का समय-समय पर उन्हें जो मार्गदर्शन प्राप्त हुआ उसका सारांश बताते हुए श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी ने इस प्रकार कहा:-

“(१) जिस संस्था में आप कार्य हेतु जा रहे हो वहाँ के अनुशासन का पूर्णतः पालन किजिये। संस्थागत अनुशासन का पालन आपका प्रथम कर्तव्य होना चाहिए। यदा-कदा अनुशासन और आपकी विवेक बुद्धि में संघर्ष के आसार दिखाई दें तो अविलंब इस्तीफा दें।

(२) ट्रेड यूनियन के आंदोलनों के विषय में महात्मा गांधी और मार्क्स के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करें। काम और अध्ययन साथ-साथ होना आवश्यक है। इस समय मानसिक संतुलन बनाये रखना तो आवश्यक है ही, किन्तु अध्ययन का अभाव या छूट अनुचित होगी।

(३) कम्युनिस्ट ट्रेड यूनियन की कार्यपद्धति का भी अध्ययन करें।

(४) कार्य के निमित्त होनेवाले प्रवास में अपने मजदूर कार्यकर्ता के घर में ही निवास की व्यवस्था करें। इसे प्रथा का रूप दें। हम यदि गरीब परिवार में न रहे तो केवल किताबी जानकारी के द्वारा उनके सुख-दुःख की यथार्थ कल्पना हमें नहीं हो पाएगी। ऐसी स्थिति में मानसिक एकरूपता का होना असंभव होगा।

(५) ३० हजार मँगनीज मजदूरों के प्रतिनिधि के नाते इंटक के जनरल कौन्सिल के सदस्य के रूप में आपका चयन हुआ है। अब आप एक प्रश्न का सीधा और सही उत्तर दें। क्या आप इन तीस हजार मजदूरों पर उसी तरह प्रेम करते हैं जैसे आपकी माँ आप पर करती है?

(६) बुनकर काँग्रेस की सहायता करते समय राजनीतिक लाभ तथा सौदेबाजी का विचार कतई मन में न आने दें। अपना संपर्क क्षेत्र विस्तृत करते हुए बुनकरों की समस्याओं की सही जानकारी प्राप्त करना ही अपना उद्देश्य रहे। बुनकर को एक आर्थिक इकाई या अंग मानकर चलें। बुनकर चाहे सवर्ण हो या हरिजन या मुसलमान, उसके जाति-धर्म का कतई विचार न करे। बुनकर और उसकी समस्याएँ इसी परिधि में हम विचार करें तथा कार्य की दिशा तय करें।

(७) आर्थिक क्षेत्र की दृष्टि से शेड्यूल्ड कास्टस् फेडरेशन तथा अखिल भारतीय खेतीहर (भूमिहीन) संघ भी है। इस आर्थिक पहलू को यदि ध्यान में रखा तो बाकी के भूमिहीन मजदूरों के साथ समरस होने की इच्छा उनमें जागृत होगी और साथ ही सामाजिक कटुता भी कम होगी।"

किसी नये कार्य क्षेत्र में प्रवेश करते समय कौन सी सावधानियाँ बरतनी पड़ती हैं, किस अनुशासन तथा चारित्र्य की आवश्यकता रहती है इस संबंध में श्री गुरुजी द्वारा किये गये मार्गदर्शन का यह प्रातिनिधिक उदाहरण है।

भविष्य में संघ की योजनाओं के फलस्वरूप कार्यक्षेत्रों की संख्या बढ़ती गयी। कार्यकर्ता मार्गदर्शन प्राप्त करने हेतु श्री गुरुजी के पास आते थे और समस्या का उचित तथा समयानुकूल हल प्राप्त कर नये उत्साह के साथ अपने कार्यक्षेत्र की ओर अग्रसर होते थे। श्री गुरुजी के पास संघ बाह्य क्षेत्र से अन्य लोग भी आया करते थे। विद्यार्थी और शिक्षा यह तो श्री गुरुजी के प्रिय विषय थे ही।

श्री गुरुजी के प्रवास में आयोजित संघ कार्यकर्ताओं की बैठकों और विचारविनिमय में विशेषतः राजनीतिक क्षेत्र के कामों का प्रभाव अनेक बार प्रगट होता था। उन प्रसंगों के अनुरूप सौम्य या कठोर शब्दों में श्री गुरुजी मतप्रदर्शन करते थे। एक उदाहरण उल्लेखनीय है। सन् १९६७ के जून मास में पंजाब प्रांत के प्रमुख कार्यकर्ताओं और प्रचारकों की एक बैठक हुई। इस बैठक के समारोप के भाषण में श्री गुरुजी ने कहा

कि हाल ही में संपन्न हुए चुनाव के पश्चात् उत्तर भारत में अपनी ही मण्डली शासन में उच्च और महत्व के पदों पर आसीन है। भिन्न-भिन्न कामों के लिए उनके पास जाने की अपनी इच्छा होना बिल्कुल स्वाभाविक है। परन्तु मेरा ऐसा सुझाव है कि किसी भी संघकार्यकर्ता को अपने व्यक्तिगत काम के लिए उनके पास बिल्कुल नहीं जाना चाहिए। संघ-कार्य सर्वश्रेष्ठ है, सर्वोपरि है, ईश्वरीय कार्य है। उसके कार्यकर्ता का क्षुद्र बातों के लिए राजनीतिक कार्यकर्ताओं के सामने हाथ पसारना निन्दनीय है और अपने व्यक्तिगत काम के लिए उनके गले पड़ने से उनकी प्रामाणिकता और निष्पक्षता को आँच पहुँचने की भी संभावना रहती है। अपना कौशल्य, योग्यता और प्रामाणिकता का विश्वास जनता को दिलाने के लिए उन्हें पूरा अवसर मिलना चाहिए। यदि उसमें उनकी कुछ कमी रही तो होनेवाले परिणाम भी उन्हें भुगतने देना चाहिए।

राष्ट्रीय हित के सभी-प्रश्नों पर, उदाहरणार्थ असम, नक्सलवादी, कशमीर आदि के विभेदकारी आंदोलन, विदेशों का अनुकरण, राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रीय एकात्मता आदि विषयों पर जनसंघ के निर्वाचित विधानसभा सदस्यों को अत्यन्त दृढ़ता से बोलना चाहिए ऐसी सलाह श्री गुरुजी देते थे। जब प्रवास में स्थान-स्थान पर जनसंघ के कार्यकर्ता मिलने के लिए आते थे तब भी प्रचलित समस्याओं के संबंध में मार्गदर्शन मुक्त रूप से वे करते थे। अन्य क्षेत्रों में काम करनेवालों में मन का संभ्रम दूर कर संघ के मूलभूत कार्य और कार्यपद्धति का ज्ञान उनको करा देते थे। स्वयंसेवकों की बैठकों में जो प्रश्नोत्तर स्थान-स्थान पर हुआ करते थे उनमें से कुछ नमूने के तौर पर यहाँ उद्-घृत किये जा रहे हैं। उससे आज भी स्वयंसेवकों और कार्यकर्ताओं को उत्तम मार्गदर्शन प्राप्त होगा।

१७.२ कुछ प्रश्न व उत्तर

प्रश्नः- विद्यार्थी परिषद् का कार्य करते समय हमें किन बातों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए?

श्री गुरुजी- विद्यार्थी परिषद के कार्यकर्ता को अपने संगठन का कार्य करते हुए अपनी संस्था को संघ का वैचारिक व संगठनात्मक 'रिक्रूटिंग सेंटर' मानना चाहिए। विद्यार्थी परिषद् में काम करनेवालों को अपने संपर्क में आनेवाले विद्यार्थियों और अन्यों को भी निष्ठावान स्वयंसेवक बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रश्न:- अन्यान्य क्षेत्रों में काम करते समय कभी-कभी संघकार्य से मेल नहीं बैठता है। ऐसे समय क्या किया जाय?

श्री गुरुजी- यदि अपने को मूलकार्य का महत्व समझ में आया हो और वह दूसरों को समझाने का प्रयत्न हमने किया हो तो विरोध को टाल सकते हैं और समन्वय साध सकते हैं। We should capture all fields but we ourselves should not be captives.

प्रश्न:- अन्य क्षेत्रों में काम करने के कारण बहुत बार शाखा में जाना संभव नहीं होता है।

श्री गुरुजी- अनुपस्थित रहने का मौका आ सकता है परन्तु अपने अधिकारियों की अनुमति ली जाय और फिर उचित काम किया जाय परन्तु किसी भी परिस्थिति में संघकार्य की ओर दुर्लक्ष नहीं होना चाहिए। वह कार्य अविचल मानकर अन्य सब काम किये जायँ। फिर काम कोई भी हो सिनेमा या नाटक कंपनी का खेल भी, वह हो सकता है, परन्तु काम संघ का ही करना चाहिए। अन्य क्षेत्रों में काम करते समय कई बार लगाव पैदा हो जाता है और लगता है कि वहाँ तो बहुत आराम है और फिर संघ-कार्य से दूर रहने के लिए बहाना ढूँढा जाता है।

प्रश्न:- आंदोलन करते समय विभिन्न संगठनों को कौन सा विचार करना चाहिए?

श्री गुरुजी- आंदोलन करने के पूर्व हमें तत्व निश्चित करना चाहिए। कठिनाई यह है कि हम अधिकारों की ओर ध्यान देते हैं, कर्तव्य की ओर नहीं। कलकत्ता में अमेरिका द्वारा संचालित ट्रेड यूनियन कॉलेज द्वारा प्रकाशित एक पुस्तिका मुझे भारतीय मजदूर संघ के एक कार्यकर्ता ने दी थी। उस पुस्तिका में सब बातों की चर्चा है परन्तु श्रमिक काम के घण्टों में ईमानदारी से काम करेगा ऐसा कहीं भी उल्लेख नहीं है। अपना आधार तो कर्तव्य ही है। अपनी परंपरा ने अपने को केवल एक ही अधिकार दिया है और वह है अपने कर्तव्य के पालन का। विद्यार्थी गुरुजनों के प्रति आदर प्रकट करें इसके लिए कभी क्या किसी ने आन्दोलन किया है?

"सार्वजनिक कार्यक्रमों का एक प्रकार का नशा चढ़ता है, परन्तु ऐसे कार्यक्रम अच्छे हुए तो भी ऐसा नहीं समझना चाहिए कि उससे अपनी शक्ति बढ़ी है। मद्यपान से क्षणिक आवेश पैदा होता है, परन्तु शक्ति नहीं बढ़ती।"

सन् १९६६ के अप्रैल मास में श्री गुरुजी लालाहंसराज जी के साथ श्री गुलजारीलाल नन्दा से मिलने के लिए गये थे। नन्दा जी ने श्री गुरुजी पर आरोप किया कि वे राजनीतिक विषयों पर बोलते हैं। इस पर श्री गुरुजी ने उत्तर दिया, "अपनी राष्ट्रीय एकात्मता पर आघात करनेवाला जो भी विचार या कार्य होगा उसकी आलोचना करना मेरा कर्तव्य है। यदि शासकीय कार्य राष्ट्रीय एकात्मता को बाधा पहुँचाने की पद्धति से चलता हो तो मैं अवश्य उसकी आलोचना करूँगा।"

अन्यान्य क्षेत्रों में काम करनेवाले अपने स्वयंसेवकों का व्यवहार कोसा हो और वे अहंकारादि अवगुणों से कैसे अछूते रहें, यह विषय श्री गुरुजी बार-बार उठाया करते थे। सन् १९५४ की बात है। एक बैठक में श्री गुरुजी ने कहा, "अन्यान्य क्षेत्रों में काम करते समय जब गले में माला पड़ने लगती है और जय-जयकार सुनने को मिलता है, तब कार्यकर्ता की छाती फूल जाती है। उसे लगता है कि वह लीडर बन गया! मन को मोहित करनेवाले अहंकार का यह प्राथमिक स्वरूप है। संघ का कहना है कि अपने-अपने क्षेत्र में अवश्य नेतृत्व संपादन करें परन्तु श्रेष्ठ साधु-सन्तों के सामने अवश्य नतमस्तक होने का ध्यान रखें। यही अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का आदर्श है। सार्वजनिक जीवन में नाम कमाओ परन्तु संघ के परिवार में एक विनम्र स्वयंसेवक के नाते सदा अनुशासन की मर्यादा में रहो। अपना आचरण संतों और महात्माओं के संबंध में अनुशासनहीन रहा तो उससे हम राक्षस बनेंगे। कंस और जरासंध इसी कारण से राक्षस प्रवृत्ति के बने। निरोगी समाजजीवन को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। निरोगी समाजजीवन में प्रत्येक को अनुशासन का पालन करना चाहिए, अपने कर्तव्य का स्मरण रखकर योग्य रीति से आचरण करना चाहिए। इसके लिए संघशाखा में सब स्वयंसेवकों का कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़े रहना और अपनी दैनंदिन प्रार्थना कहना आवश्यक है।"

१७.३ राजनीतिक क्षेत्र के कार्यकर्ताओं के लिए

सन् १९५४ में ही विदर्भ के अकोला नगर में बोलते समय राजनीतिक क्षेत्र में पाँव कैसे फिसलते हैं इसका विवेचन करते हुए श्री गुरुजी ने कहा, "आजकल लोगों के

मस्तिष्क में चुनाव और सत्ता-स्पर्धा की राजनीति घुस गयी है। इस राजनीति के प्रभाव से मनुष्य मनुष्य न रहकर एक राजनीतिक पशु (Political animal) बनता जा रहा है। राजनीति का आज का अर्थ हो गया है निरन्तर समझौता और जोड़-तोड़ करना। ऐसी स्थिति में ध्येयनिष्ठ जीवन जीना राजनीतिक कार्यकर्ता को असंभव सा लगता है। श्रद्धेय महात्मा जी ने कहा था कि यदि गोहत्या जारी रही तो ऐसे स्वातन्त्र्य की मुझे इच्छा नहीं है। इतने निस्संदिग्ध शब्दों में गाय के विषय में अपनी श्रद्धा उन्होंने व्यक्त की थी। परन्तु राजनीति करते समय पं. जवाहरलाल नेहरु जी ने कहा कि गोहत्या मुसलमानों का सुप्रतिष्ठित अधिकार है (Well established right)। इसलिए कानून से गोहत्या रोकी नहीं जा सकती। राजनीति में मत-प्राप्ति के लिए अधिकाधिक लोगों को अनुकूल कर लेने की नीति को प्रधानता मिलती है और अपनी श्रद्धा और ध्येय को गौण स्थान प्राप्त होता है। मतों के लिए श्रद्धास्पद बातों की अवहेलना भी राजनीतिक खेल में लोग सहन करते हैं। इसीलिए अपने श्रेष्ठ पुरुषों ने "वारांगनैव नृपनीतिरनेकरूपा" कहा है।"

राजनीतिक श्रेत्र में काम करनेवाले स्वयंसेवकों के प्रश्नों को श्री गुरुजी द्वारा बहुत निस्संदिग्ध और संघ की दृष्टि को स्पष्ट करनेवाले उत्तर समय-समय पर दिये गये हैं। "जिन्हें राजनीतिक क्षेत्रों में रुचि है उन्हें उस क्षेत्र में ईमानदारी से काम करना चाहिए। स्वयंसेवक की दृष्टि लेकर हम किसी भी क्षेत्र में काम कर सकते हैं।" यह बतलाने के बाद "स्वयंसेवकों की दृष्टि क्या है" इसका मूलभूत विचार उन्होंने बतलाया। उन्होंने कहा, "अपना संघ-कार्य इस विचार से शुरु नहीं हुआ है कि लोग जो चाहते हैं वही हम करे। उल्टे समाज जीवन में जो त्रुटियां हैं, वे लोगों को समझा कर उनका निराकरण करने के लिए संघ का जन्म हुआ है। अपने स्वयं के जीवन में निर्भयता से हिन्दू जीवन का आविष्कार करते हुए लोगों में भी वे आदर्श संक्रान्त करने के लिए संघ का निर्माण हुआ है। लोगों की इच्छानुसार नाचने की अपेक्षा लोगों का जीवन संघ-विचारों से प्रभावित करने और उसमें परिवर्तन लानो का कार्य संघ कर रहा है। यही वास्तव में विधायक कार्य है। इस प्रकार के काम में समय अधिक लगना बिल्कुल स्वाभाविक है। मनुष्य जीवन में योग्य परिवर्तन लाने के लिए समय तो लगने ही वाला है। यदि काम शीघ्र हो ऐसी अपनी इच्छा हो तो कार्यकर्ताओं की संख्या बढ़नी चाहिए और प्रत्येक कार्यकर्ता अधिक समय देकर काम करनेवाला होना चाहिए।"

श्री गुरुजी आग्रहपूर्वक कहा करते थे कि भ्रष्टाचार का प्रश्न बहुत जटिल हो गया है, उसका संघकार्य ही उपचार है। उनका सुनिश्चित मार्गदर्शन था कि "सत्ताधारियों की भ्रष्टता रोकने का निर्णायक बल केवल सुसंगठित, शुद्ध राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत लोकशक्ति

में ही रह सकता है। वही शक्ति निर्णायक होती है। पहिले जिसे धर्म कहते थे उसी का प्रगट रूप संघ है। हमें सत्ताभिलाषा नहीं है। संपूर्ण राष्ट्र जीवन सुखी, समृद्ध करने की अपनी इच्छा है। राजनीतिक स्पर्धा में एक गुट बनाकर संघर्ष करते हुए बैठने के लिए अपना कार्य नहीं है। निग्रह-अनुग्रहक्षम प्रबल लोकशक्ति का निर्माण अपना कार्य है।"

१७.४शिक्षा क्षेत्र के बारे में

विद्यार्थियों में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता की समस्या का अध्ययन करने हेतु स्थापित एक उच्च-स्तरीय समिति द्वारा श्री गुरुजी को एक प्रश्नावली भेजी गयी थी। श्री गुरुजी ने बड़ी ही तत्परतासे उत्तर लिखे और अपनत्व के भाव से समिति की ओर भेजे। इस निमित्त शिक्षा की पुनर्रचना के विषय में उनके मौलिक तथा मूलग्राही रचनात्मक विचार स्पष्ट हो सके। श्री गुरुजी ने इस प्रश्नावली के उत्तर में लिखा कि विद्यार्थी संगठन विश्वविद्यालय के स्तर पर कार्य करें तथा राजनीतिक हस्तक्षेप से दूर रहें।

श्री छागला केन्द्रीय शिक्षा मंत्री थे। श्री गुरुजी की मुंबई में उनसे भेंट हुई थी। इस भेंट के समय शिक्षासुधार की दिशा क्या हो? इस विषय पर उनके बीच वार्तालाप हुआ। श्री. छागला महाविद्यालयों में से विद्याग्रहण कर बाहर निकलने वाले विद्यार्थियों से असंतुष्ट थे। श्री गुरुजी ने उन्हें बताया कि विद्यार्थियों में जो त्रुटियां, चारित्र्य का अभाव, स्वाभिमानशून्यता, अनुशासनहीनता आदि दोष दिखाई देते हैं, उसका कारण यह है कि उन्हें अपने देश का वास्तविक या सत्य इतिहास पढ़ाया नहीं जाता। यही आदर्शहीनता का तथा पेट-पानी हेतु स्वार्थी एवम् दिशाहीन बनने का एक मात्र कारण है। नौकरी शिक्षा का प्रधान लक्ष्य माना जाता है। इतिहास के योग्य अध्यापन से मातृभूमि के प्रति गौरव की भावना उत्पन्न हो सकती है। साथ ही अपने देश को गौरवशाली बनाने के लिए त्यागपूर्वक परिश्रम करने की आकांक्षा युवकों में निर्माण हो सकती है। किन्तु यह भी उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि आप जिस शासन के मंत्री हैं वह विद्यार्थियों को सत्य इतिहास पढ़ने के पक्ष में नहीं है।

राष्ट्रीय अनुशासन योजना के सूत्रधार श्री. जगन्नाथराव भोंसले से भी इसी प्रकार श्री गुरुजी का वार्तालाप हुआ था। इस चर्चा के दौरान श्री जगन्नाथराव ने प्रश्न पूछ कर चिंता व्यक्त की कि "हमारे पास साधन हैं, पैसा है, शासन की शक्ति है, फिर भी लगन के साथ काम करनेवाले निःस्वार्थ प्रवृत्ति के लोग-कार्यकर्ता क्यों प्राप्त नहीं होते? संघ के पास अपर्याप्त साधन हैं। 'सेंक्शन' कुछ नहीं है। सत्ताधारियों काविरोध विपुल प्रमाण

में है। फिर भी स्वार्थत्याग कर अनेक वर्षों तक या आजीवन, कार्य करनेवालों का प्रचंड समुदाय वह कैसे जुटा पाता है?" श्री गुरुजी ने उत्तर में कहा कि "संघ अपने कार्यकर्ताओं के मन में देशप्रेम की उत्कट भावना जगाता है। अपनी मातृभूमि के संबंध में विशुद्ध भक्ति की भावना जागृत किये बिना व्यक्तित्व में सद्-गुणों की निर्मिति तथा त्याग की प्रेरणा युवकों में निर्माण होना असंभव है।"

इन दो महानुभावों द्वारा श्री गुरुजी से की गयी पूछताछ और श्री गुरुजी द्वारा उन्हें दिये गये उत्तर का केवल उदाहरण के नाते उल्लेख किया गया है। श्री गुरुजी के देशव्यापी प्रवास में अनेक शिक्षा संस्थाओं में जाने और शिक्षकों, शिक्षाधिकारियों, पत्रकारों और अन्य भी जिज्ञासुओं से वार्तालाप के अनेक प्रसंग उन्हें प्राप्त होते थे। उनसे यह स्पष्ट दिखता है कि भारत में प्रचलित शिक्षा पद्धति और कुल शिक्षा विषयक शासकीय नीति के संबंध में वे अत्यन्त असंतुष्ट थे। विभिन्न स्थानों पर उनके द्वारा व्यक्त शिक्षा विषयक मतप्रदर्शन में साधारणतः निम्नलिखित बिन्दु प्रमुखता से रहते थे।

(१) आजकल जो शिक्षा दी जाती है इसमें आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के उत्तम अंश नहीं है या प्राचीन भारतीय पद्धति का भावात्मक आशय (Positive content) भी नहीं है। हमारा एक गौरवशाली प्राचीन इतिहास है और जीवन के विविध क्षेत्रों में हम उत्कृष्टता प्राप्त कर चुके थे, यह भी तरुण विद्यार्थी को मालूम नहीं रहता। विद्यार्थियों के सामने कुछ भी सकारात्मक या भावात्मक ध्येय न रखे जाने के कारण वह समय काटने के लिये हीन स्वरूप का कुछ तो भी पढ़ता रहता है इसका आश्चर्य लगना चाहिए।

(२) बिल्कुल प्राथमिक स्तर से ही विद्यार्थियों में योग्य आकांक्षा और दृष्टिकोण का संस्कार दिया जाना चाहिए। अपने अत्यंत श्रेष्ठ राष्ट्रपुरुषों के जीवन और ऐतिहासिक प्रसंगों का चित्रण करनेवाला विशाल प्राचीन औप आधुनिक साहित्य भण्डार अपने लिए उपलब्ध है। उसका शिक्षकों को इन संस्कारों के लिए उपयोग करना चाहिए। ऋषियों और योगियों की महान् परंपरा में पैदा होने का अभिमान बच्चों के मन में पैदा करना चाहिए। हमें हिन्दू नाम से जीना चाहिए, हिन्दू दिखना चाहिए और दुनिया हिंदू कहकर अपने को पहचाने, ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। जब अपनी परंपरा का गौरव मानेंगे तभी दुनिया की दृष्टि में भी गौरव के विषय बनेंगे। हम किसी की प्रतिलिपि- 'कार्बन कॉपी' – बनें यह जगत् की भी अपने से अपेक्षा नहीं है। जिसकी जड़ें ही उखाड़ डाली गयी हैं उस समाज का कोई भविष्य नहीं रहता है।

(३) राष्ट्रभक्ति के सुदृढ़ आधार के बिना मानवता और अंतरराष्ट्रीयता की बातें करना, दोनों से ही वंचित होना है। अपने राष्ट्रीय तत्वज्ञान और विरासत का विचार किया तो दिखाई देगा कि मानवता का परमोच्च कल्याण उसमें समाविष्ट है। इसनिए विद्यार्थियों को राषट्रीयता के पाठ देना याने मानवी मूल्यों को ही सुदृढ़ बनाना है।

(४) ऐसा प्रचार किया जाता है कि (Earn while you learn) पढ़ते समय कमाओ। परन्तु भारतीय विचार बिल्कुल उलटा है। हम कहते है 'कमाते समय भी सीखो' (Learn even while you earn) मनुष्य जीवन भर विद्यार्थी होता है यह हमारी संकल्पना जीवन-ध्येय से संलग्न है। दुर्भाग्य से परिस्थिति ऐसी है कि पाश्चात्य जगत् जब धीरे-धीरे विशुद्ध जड़वाद से अध्यात्म-विचार की ओर मुड रहा है तब हम उच्च और श्रेष्ठ जीवन से मात्र जड़वादी जीवन की दिशा में फिसलते जा रहे हैं।

(५) उपासना-सम्प्रदाय कोई भी हो विद्यार्थियों को चारित्रिक और यम-नियमों की शिक्षा देने पर जोर देना चाहिए।वैसे ही चित्त एकाग्र करने के लिए योग की भी थोड़ी बहुत शिक्षा आवश्यक है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में कुछ जानकारी और रोटी कमाने की शिक्षा ही केवल दी जाती है।

(६) संस्कृत भाषा की शिक्षा की घोर उपेक्षा वर्तमान शिक्षा प्रणाली की एक बहुत बड़ी कमी है। राष्ट्रीय एकात्मता के निर्माण में संस्कृत भाषा का जो योगदान है, उसका योग्य ज्ञान कहीं दिखाई नहीं देता है। स्वकीय भाषा (विभिन्न भारतीय भाषाएँ) के विषय में प्रेम और उसका विकास करने की उत्कट इच्छा ता अभाव सरकारी नीति में दिखाई देता है। संस्कृत मृतभाषा न होकर जीवन्त भाषा है, यह सत्य ध्यान में रहना चाहिए।

(७) हिन्दू शिक्षा पद्धति मनुष्य में विद्यमान विविध गुणवत्ताओं के आविष्कार में ही संतोष नहीं मानती। वह और आगे जाती है। अपने में जो एक शाश्वत शिव तत्व है उसका ज्ञान और उसका प्रगटूकरण हिन्दू शिक्षा पद्धति का मूलभूत उद्दिष्ट माना गया है।

शिक्षा और संस्कार के बारे में श्री गुरुजी को दो बातें बहुत अनिष्टकारी और चिन्ताजनक लगती थीं। पहिली बात थी घर के अभिभावकों का आचरण और दूसरी बात, ईसाई मिशनरियों की शालाओं में हिन्दू बालकों के मन पर हिन्दू परंपरा की श्रेष्ठ

विभूतियों या देवी-देवताओं के प्रति पैदा की जानेवाली घृणा की भावना। एक अच्छे सुशिक्षित घर की तरुण गृहिणी को रसोई घर में अपने नन्हें बच्चे को सुलाते समय बिल्कुल अभद्र गाना गाते हुए उन्होंने सुना था। यह घटना बतलाकर वे पूछते थे, "बच्चे अपने माता-पिता का ऐसा अशिष्ट व्यवहार यदि देखते होंगे और स्वाभाविकतः उनका अनुकरण करते होंगे तो नयी पीढ़ी अपने जीवनादर्शों से क्यों नहीं भ्रष्ट होगी?"

ईसाई शिक्षा संस्थाओं की विकृत शिक्षा का दुष्परिणाम बच्चों के मन पर किस प्रकार होता है इसका उदाहरण श्री गुरुजी देते थे। आठ-नौ साल का एक लड़का छुट्टियों में घर आया हुआ था। जन्माष्टमी का उपवास करने को जब उसके माता-पिता ने उससे कहा, तब उसने कहा, "ऐसे व्यभिचारी मनुष्य का जन्मदिन आप क्यों मनाते हैं? हम ईसामसीह का जन्मदिन क्यों न मनाएँ?" आठ-नौ साल का एक लड़का अपने पिताजी से ऐसे प्रश्न पूछेगा इसकी क्या आप कल्पना भी कर सकते हैं? इसे रोकने का एक ही उपाय है, हिन्दू साधु-संतों द्वारा सुसंस्कार प्रदान करनेवाली शिक्षा-संस्थाएँ प्रारंभ करना। परन्तु सरकारी नीति के कारण उन प्रयत्नों पर जो बन्धन आते हैं उससे श्री गुरुजी को दुःख होता था। एक बार उन्होंने कहा, "ऐसी शिक्षा संस्थाएँ काम कर रही हैं, परन्तु उन्हें ऐहिक शिक्षा देने को बाध्य किया जा रहा है। विद्यार्थियों में ऐहिकता का वातावरण पुष्ट करने के लिए ही प्रोत्साहन दिया जाता है। अपनी धार्मिक संस्थाएँ बहुत हैं, परन्तु उनका दृष्टिकोण अत्याधिक उदार है। हमें लगता है कि राष्ट्रभक्ति से प्रेरित होकर काम करना शिक्षा की प्रथम आवश्यकता है। दृष्टिकोण में विशालता बाद में आ सकती है। बिल्कुल चुने हुए व्यक्ति ही ऐसी संस्थाएँ चलाने के लिए उपयोगि साबित हो सकते हैं। अन्यथा थोड़े अधिक पैसे अन्यत्र प्राप्त होने के लोभ से व्यक्ति संस्था छोड़कर चले जायेंगे। सेवा-भावी संस्थाएँ चलाने के लिए उत्कट राष्ट्रभक्ति से प्रेरित मनुष्य ही चाहिए जिनके लिए पैसे के लक्ष्य गौण हों। सच्ची चिंता ऐसे कार्यकर्ता प्राप्त होने के संबंध में ही रहती है।"

श्री गुरुजी के सर्वस्पर्शी तथा समुद्र समान गहरे-अथाह ज्ञान और चिंतन का लाभ सभी को हुआ करता था। किन्तु श्री गुरुजी के सम्मुख तो प्रत्यक्ष संघ की शाखा का कार्य ही था। एक बार राष्ट्रजीवन के अंतर्गत जो कार्य चलते हैं उनसे संघ का क्या संबंध है यह स्पष्ट करते समय उन्होंने श्रीमद्-भगवद् गीता के नौवें अध्याय के दो श्लोक उद्-घृत किये थे। वे श्लोक थे-

मया ततमिदं सर्व जगदव्यक्तमूर्तिना

मत्स्थानि सर्वभूतीनि न चाहं तेष्ववस्थितः ।।४।। अ.९

अर्थः- मुझ निराकार परमात्मा से यह सब जगत् (जल से बरफ के सदृश) परिपूर्ण है और सब भूत मेरे अन्तर्गत संकल्प के आधार पर स्थित हैं किन्तु वास्तव में मैं उनमें स्थित नहीं हूँ।

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य में योगमैश्वम्।

भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ।।५।। अ.९

अर्थः- वे सब भूत मुझमें स्थित हैं; किन्तु मेरी ईश्वरीय योगशक्ति को देख कि भूतों का धारण-पोषण करनेवाला और भूतों को उत्पन्न करनेवाला भी मेरा आत्मा वास्तव में भूतों में स्थित नहीं है।

इनके साथ ही,

सर्वेन्द्रियगुणाभासं, सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।

असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ।।१४।। अ.१३

अर्थः- वह सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जाननेवाला है, परन्तु वास्तव में सब इन्द्रियों से रहित है तथा आसक्तिरहित होने पर भी सबका धारण-पोषण करनेवाला और निर्गुण होने पर भी गुणों को भोगनेवाला है।

यह श्लोक भी उद्-घृत किया करते थे। संघ के 'योगैश्वर्य' का आकलन जिन्हें नहीं हो पाता, वे गलतफहमी के कारण संघ के अंतःस्थ हेतु को न समझते हुए आरोप मढ़ते जाते हैं।

श्री गुरुजी का मानना था कि राजनीति का अधिकार जीवन के सभी क्षेत्रों पर न रहे। राजनीति समाज की धारणा करनेवाले धर्म से, अर्थात् समाज धारणा तथा मानवी संबंधों के शाश्वत नियमों से जुड़ी रहे और प्रत्येक क्षेत्र से सुसंवाद बनाए रखे। संघ का स्वयंसेवक चाहे जहाँ भी कार्यरत हो, उसे राष्ट्रधर्म की जागृति का विस्मरण न हो, यह उनकी साग्रह अपेक्षा रहा करती थी। श्री गुरुजी किसी भी संघबाह्य क्षेत्र के बंधन में

जकड़े जाना पसंद नहीं करते थे। संघ के अतिरिक्त किसी भी अन्य कार्य की गुत्थी में अटके रहना उनका स्वभाव नहीं था। प्रथम संघ कार्य, बाद में अन्य विचार।

संघ का नित्यकार्य करते हुए भी श्री गुरुजी राष्ट्रीय महापुरुषों का स्मरण करानेवाले प्रसंग या हिन्दुत्व का स्वाभिमान जागृत करनेवाले कार्यकलापों में बड़े उत्साह से भाग लेते थे। आध्यात्मिक सद्-गुणों के आधार पर ही भारत का पुनरुत्थान संभव है ऐसी श्री गुरुजी की श्रद्धा होने के कारण विवेकानंद जन्म शताब्दी, विवेकानंद शिला स्मारक समिति की स्थापना, अरविंद जन्म शताब्दी आदि कार्यों में भाग लेकर उन्होंने अपना दायित्व निभाया। श्री गुरुजी के हृदय में स्वामी विवेकानंद और उनके सद्-गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस के विषय में असीम आत्मीयता और श्रद्धा थी। स्वामी विवेकानंद के गुरुबंधु श्री स्वामी अखंडानंद से ही श्री गुरुजी ने दीक्षा ग्रहण की थी। अतएव रामकृष्ण मिशन से उनके दीर्घकालीन संबंध थे। परिणामतः हिन्दुओं के पुनरुत्थान का यह कार्य आगे हढ़ने की तीव्र इच्छा उनके अंतर्मन में होना स्वाभाविक ही था। इसी कारण १९६३ में विवेकानंद जन्मशताब्दी के कालखंड में स्वामी विवेकानंद की जीवनी का वर्तमान देशस्थिति के संहर्भ में नया अर्थ प्रतिपादित कर उनके जीवनकार्य को प्रकाशित करनेवाले भाषण श्री गुरुजी ने दिये। कन्याकुमारी के निकट जिस चट्टान पर विवेकानंद को अपने जीवनकार्य का साक्षात्कार हुआ था, वहाँ एक भव्य स्मारक खड़ा करने की एक सुन्दर कल्पना उन दिनों के संघ के तमिलनाडु के प्रांत प्रचारक श्री दत्ताजी डिडोलकर के मन में स्फुरित हुई। श्री गुरुजी को यह योजना स्वाभाविक रूप से जँच गई और शीघ्र ही वहाँ पर एक भव्य स्मारक के निर्माण की योजना तैयार हुई। संकल्प घोषित हुआ और इस योजना को कार्यान्वित करने की जिम्मेवारी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तत्कालीन सरकार्यवाह श्री एकनाथ जी रानडे पर सौंपी गई। देश भर में हजारों स्वयंसेवकों ने स्वामी जी के प्रखर हिन्दुत्ववादी विचारों का प्रचार किया। सैंकड़ों सार्वजनिक कार्यक्रमों व साहित्य वितरण के साथ-साथ स्मारक निर्माण हेतु आवश्यक धनसंग्रह भी किया गया।

विवेकानंद शिला स्मारक का भव्य निर्माण पूर्णत्व की सीमा पर पहुँचते तक श्री गुरुजी का बहुत बारीकी से उस ओर ध्यान था। जब कभी दक्षिण के दौरे पर वे जाते, इस निर्माण कार्य की प्रगति देखने उनके चरण इस पावन शिला की ओर चल पड़ते। वे विभिन्न क्षेत्रों से लाये गए प्रस्तरों की कलात्मक गढ़ई को निहारते और सूचना देकर आगे बढ़ते। समुद्र की लहरों का संगीत सुनते हुए वे हर विभाग को बड़े चाव से देखते और प्रसन्न दिखाई देते। श्री गुरुजी के अंतर्मन का खिंचाव आध्यात्मिकता की ओर ही होने के कारण इस सुप्त भाव को दृश्य स्वरूप प्राप्त होते देख श्री गुरुजी का

मुखमंडल अंतर में उदित अध्यात्म सूर्य के तेज से आलोकित हो उठता था। एक स्वप्न को साकार होते धेख आनंदविभोर होना उनके लिए स्वाभाविक बात थी।

संघ के बौद्धिक वर्गों में श्री गुरुजी रामकृष्ण-विवेकानंद के जीवन के उद्-बोधक प्रसंग बड़ी रोचकता से पिरोते थे। जब और जहां संभव हो साधु, संत, संप्रदाय प्रमुख, महंत या मठाधीशों से वे भेंट करते। हिन्दू समाज की परिस्थिति के संबंध में उनसे वे चर्चा किया करते थे। ऐसे अवसरों पर श्री गुरुजी इन साधु-समत-महंतों से सानुग्रह कहते कि वे व्यक्ति या संस्थागत अहंकार का त्याग कर एकत्र आने की चेष्टा करें क्योंकि युगानुकूल धर्म-जागृति करने की आज आवश्यकता है। वे इन महानुभावों को उनके धार्मिक और सामाजिक दायित्व से अवगत करा देते। श्रृंगेरी कामकोटि के शंकराचार्य पू. चन्द्रशेखर भारती याने अध्यात्मिक क्षेत्र की महान् विभूति का श्री गुरुजी पर प्रेम था। इसका एक सूचक उदाहरण है कि जब श्री गुरुजी के माता-पिता शंकराचार्य जी के दर्शनार्थ मठ में पहुँचे तब एकान्त और मौन को भंग कर उन्होंने श्री भाऊजी और श्रीमती ताई की आस्थापूर्वक पूछताछ की। पेजावर मठ के श्री विश्वेश तीर्थ श्री गुरुजी की प्रेरणा से ही हिन्दू जागरण के कार्यक्षेत्र में उतरे। आज के वातावरण में पेजावर के पीठाधिपति हिन्दू समाज में चैतन्य प्रदान करनेवाली एक शक्ति माने जाते हैं।

१७.५वैश्विक हिन्दुमंच का शुभारंभ

श्री गुरुजी का धार्मिक क्षेत्र से निकटतम संबंध था। धर्मभाव के जागरण की अनिवार्य आवश्यकता के सम्मिलित प्रभाव तथा प्रेरणा से श्री गुरुजी के मन में एक कल्पना साकार हुई।

इस कल्पना को मूर्त स्वरूप देने का दायित्व संघ के श्रेष्ठ प्रचारक श्री शिवराम शंकर उपाख्य दादासाहब आपटे के कमधों पर सौंपा गया। श्री आपटे जी के सहकार्य से आगे की रूपरेखा बनाकर प्रयत्न शुरु हुए। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप १९६४ में कृष्ण जन्माष्टमी के मुहूर्त पर 'विश्व हिन्दू परिषद्' की स्थापना करने का निर्णय लिया गया।

मुम्बई में पवई स्थित स्वामी चिन्मयान्द के सान्दीपनि आश्रम में आयोजित प्राथमिक बैठक में विश्व हिन्दू परिषद की अस्थायी समिति की घोषणा की गयी। सिख पंथ के नेता मास्टर तारासिंह तथा विदर्भ के लोकप्रिय संतपुरुष तुकडो जी महाराज भी इस बैठक में उपस्थित थे।

श्री गुरुजी ने श्री दादा साहब आपटे को विश्व हिन्दू परिषद् के कार्यभार के लिए नियुक्त करते समय कौम सी सूचनाएं दीं इसका विचार करना उचित होगा। श्री गुरुजी ने कहा, "देश-विदेश में सर्वत्र अनेक हिन्दू परिवार बसे हुए हैं। संसार में यत्र-तत्र बिखरे हुए इन हिन्दू बंधूओं के लिए भारत में एक सांस्कृतिक अधिष्ठान के रूप में किसी संस्था का होना नितान्त आवश्यक है। भारत के प्रमुख, प्रतिष्ठित, धर्म-संस्कृति पर श्रद्धा रखनेवाले सत्-पुरुषों से आप मिलिये। उनसे विचार विमर्श किजिए। उन्हें इस नये संकल्पित कार्य के अनुकूल बनाइये। किन महानुभावों से मिलना, चर्चा करना, इसकी सूची बनाइये। कुछ नाम मैं भी सुझाऊंगा। आप हिन्दू महासभा के श्री वि.घ. देशपांडे जी से भी संपर्क करें।"

"विश्व के हिन्दूओं के लिये आवश्यक इस कार्य को राजनीति से सर्वथा दूर ही रखें। साथ ही हिन्दू महासभा या अन्य किसी भी दल के मंच का इस कार्य के लिये उपयोग न करने की सावधानी बरतें। यदि ये दोनों शर्तें श्री. देशपांडे जी को मान्य हों तो ही उनका इस संकल्पित कार्य की दृष्टि से उपयोग हो सकेगा।"

दि. 29 अगस्त १९६४ को सांदिपनी आश्रम में संपन्न हुई इस बैठक में नई संस्था के संबंध में सभी अंगों पर विस्तार से विचार किया गया। संस्था का नाम क्या हो? यह विचार प्राथमिक चर्चा का विषय रहा। 'विश्व' शब्द पर सबकी सहमति थी। किन्तु 'सनातन', 'आर्य', 'धर्म', 'हिन्दू', 'सम्मेलन' और 'परिषद्' आदि शब्द संस्था के नाम रखे जायँ या नहीं, इस मुद्दे पर मतभिन्नता प्रगट हुई। इस संबंध में श्रद्धेय श्री तुकडो जी महाराज द्वारा प्रगट किया हुआ विचार सर्वमान्य हुआ। श्री तुकडो जी महाराज ने कहा, "भारत में हम सनातन, हिन्दू, आर्य आदि नाम लेकर आपस में झगड़ते ही हैं। इस कारण 'विश्व हिन्दू' शब्द का प्रयोग यथार्थ तथा ग्राह्य माना जाय।" सभी ने इस मत से सहमति दर्शाई।

श्री गुरुजी ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। अन्त में आमंत्रितों को संबोधित करते हुए श्री गुरुजी ने कहा,

"यदि हम संस्था के नाम में 'धर्म' शब्द का अंतर्भाव करते हैं तो हमारे कार्य की मर्यादा केवल धर्म से संबंधित विचार तथा उसके अनुसरण तक ही सीमित रह जायेगी। हमें तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों का व्यापक विचार तथा

पुरस्कार करना है। हिन्दू समाजजीवन को सभी दृष्टि से सुदृढ़-बलसंपन्न कर उन्हें हिन्दू जीवन के आदर्शों से प्रेरित करने की अपना इच्छा है। इस कारण अपनी संकल्पित संस्था के नाम में 'धर्म' शब्द का प्रयोग न हो। उसी प्रकार 'सम्मेलन' शब्द से कार्य का यथार्थ बोध नहीं होता। बल्कि 'परिषद्' शब्द मुझे योग्य प्रतीत होता है।"

श्री गुरुजी के इन विचारों, सुझावों से सभी सहमत हुए। फलतः 'विश्व हिन्दू परिषद्' नामकरण सर्वसम्मति से स्वीकृत होकर इस संकल्पित संस्था का प्रथम चरण पूर्ण किया गया। विशव के सभी हिन्दुओं के लिये आधारभूत सिद्ध होनेवाली इस विश्वव्यापी संस्था के कार्यारंभ में ही प्रत्येक छोटी-बड़ी बातों की ओर श्री गुरुजी का कितनी बारीकी से ध्यान था, अपने अंतःकरण के भावों को अन्य सहकारी कार्यकर्ताओं तक संक्रमित करने की उनकी कितनी क्षमता थी, इसका परिचय उपस्थित महानुभावों को हुआ। श्री गुरुजी की अलौकिक प्रेरणा से सभी प्रभावित हुए थे।

'विश्व हिन्दू परिषद्' का नामकरण बोने के पश्चात सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया कि परिषद् की विधिवत् स्थापना १९६६ में कुंभ मेले के पावन अवसर पर एक 'वैश्विक हिन्दू सम्मेलन' का तीर्थराज प्रयाग में आयोजन कर की जाय। हिन्दू इतिहास में इस घटना का असाधारण महत्व है। आधुनिक इतिहास में विश्व हिन्दू परिषद् की स्थापना धर्म, संस्कृति, संस्कार सामाजिकता और संसार के समस्त हिन्दुओं को अपना भावात्मक तथा सांस्कृतिक मंच प्राप्त कराने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। जिस समाज में भिन्न-भिन्न संप्रदाय, जाति-उपजाति ते लोग विद्यमान हैं तथा जो संसार में बिखरा हुआ है, अभिसरण शून्य बना हुआ है, ऐसे हिन्दू समाज को 'विश्व हिन्दू परिषद्' के रूप में एक समान मंच उपलब्ध हुआ।

दि. २२, २३, २४ जनवरी १९६६ के त्रि-दिवसीय सम्मेलन के अवसर पर विश्व भर से प्रयाग में आये हिन्दुओं के लिए यह सम्मेलन अभूतपूर्व उत्साह और हिन्दू एकात्मता की अनुभूति देनेवाला सिद्ध हुआ।

इस परिषद् के स्थापना के पूर्व श्री दादा साहब आपटे ने व्यापक रूप से प्रवास किया था। श्री आपटेजी ने विभिन्न स्थानों पर अपने-अपने मर्यादित क्षेत्र में कार्यरत धर्मगुरु, मठाधीश, महंत तथा धार्मिक, सामाजिक क्षेत्र के कार्यकर्ताओं से भेंट कर उन्हें विश्व हिन्दू परिषद् के उद्देश्यों और कार्यकलापों से अवगत कराया था। श्री गुरुजी भी

अपने नित्य प्रवास में मान्यवरों तथा विभिन्न क्षेत्रों के कार्यकर्ताओं से वार्तालाप कर परिषद् की सफलता के लिए प्रयत्नशील थे।

श्री गुरुजी ने परिषद् की सफलता का श्रेयभाजन स्वतः को न मानते हुए बताया कि संपूर्ण विश्व के हिन्दू प्रतिनिधियों को एक परिषद् के रूप में आमंत्रित करने की कल्पना मूलतः हिन्दू महासभा के एक कार्यकर्ता ने प्रगट की थी। किंतु इस संबंध में श्री गुरुजी का अभिप्राय था कि इस प्रकार की परिषद् का गठन किसी भी राजनीतिक दल के द्वारा न हो। राजनीति से परे और हिन्दू समाज के हितार्थ कार्यरत संस्था ही इसे मूर्तरूप प्रदान करे, यह उनकी धारणा थी।

आश्चर्य की बात है कि जिन्होंने इस कल्पना को प्रथम प्रस्तुत किया, उनसे कोसों आगे श्री गुरुजी की प्रतिभा का विस्तार हुआ। मूल कल्पना बहुत बड़े पैमाने पर हिंदु सम्मेलन करने की थी। पर श्री गुरुजी की इच्छा थी कि इस परिषद् का अस्तित्व तात्कालिक न हो। सम्मेलन की सफलता से प्रसन्नचित्त होकर बाद में निष्क्रिय होना उन्हें पसंद नहीं था। श्री गुरुजी ने इसी बात को ध्यान में रखा और इसी दिशा में शीघ्रता से कार्यकर्ता आगे बढ़ें ऐसी प्रेरणा उन्हें दी।

विश्व हिन्दू परिषद् का यह मंच सचमुच अतीव भाग्यशाली था। संघ तथा श्री गुरुजी की प्रेरणा से देश में अनेक कार्य प्रारंभ हुए, फले फूले, किन्तु प्रेरणा शक्ति और चैतन्यमूर्ति के रूप में श्री गुरुजी व्यक्तिशः जहाँ उपस्थित रहे वह केवल विश्व हिन्दू परिषद् का मंच ही था। वहाँ भी नेता के रूप में नहीं अपितु विनम्र कार्यकर्ता के रूप में रहे। सांदीपनि आश्रम की बैठक के समय श्री गुरुजी ने व्यक्तिशः हर उपस्थित मान्यवर की सुविधाओं की ओर ध्यान दिया था। आमंत्रित महानुभाव मुझसे बड़े और अधिक योग्यता प्राप्त हैं, यही विनम्र भाव उनके मन में था। स्वतः के व्यक्तित्व के संपूर्ण-निःशेष विलय का इससे अधिक प्रभावशाली अनुभव या उदाहरण दुर्लभ ही होगा।

प्रयाग में अपने समारोप के भाषण में श्री गुरुजी ने स्वतः के बारे में जो कहा उसे सुनकर सहस्त्रों श्रोतागण गद्-गद् हो उठे थे। श्री गुरुजी ने कहा था, “वस्तुतः मुझे यहां आकर कुछ बोलने का कोई प्रयोजन नहीं था। किन्तु दो माह पूर्व श्रीमत् द्वारका पीठाधीश्वर श्री शंकराचार्य महाराज ने मुझे आज्ञा दी कि मुझे इस अवसर पर कुछ बोलना आवश्यक है। मैंने क्षमा याचना करते हुए उनसे कहा था कि मेरा काम तो

मंडप को बुहारना और उसे साफ सुथरा रखना ही है। मैं बड़ी रुचि से यह काम करता रहुंगा क्योंकि मैं एक स्वयंसेवक हूँ। मेरा इससे अधिक कुछ करना धृष्टता होगी। किन्तु श्री शंकराचार्य महाराज की अवज्ञा भी कैसे करता? उनकी आज्ञा का पालन करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था। कुछ प्रसंग, कुछ बातों ऐसी होती हैं, जिनका पर्याय नहीं होता। इसी कारण मैं आप जैसे महानुभावों की सेवा करने हेतु यहां उपस्थित हुआ हूँ।"

इन विनम्र भाव-भीने उद्-गारों को सुनकर किसी को पांडवों के राजसूय यज्ञ के पर्व पर भोजनोत्तर पत्तल उठानेवाले तथा महाभारत युद्ध के समय अर्जुन के घोड़ों का खरारा करनेवाले 'माधव' (श्रीकृष्ण) का स्मरण हुआ हो तो कोई आश्चर्य नहीं। उपस्थित साधु-संतों के मनः पटल पर यही चित्र संकित हुआ होगा।

इस परिषद् की संपूर्ण व्यवस्था की ओर श्री गुरुजी का ध्यान केन्द्रित था। मंडप में उनकी चहल-पहल चैतन्य निर्माण करती। कहां कोई त्रुटि न रह पाए इसलिए अन्य कार्यकर्ताओं को सूचना देना, स्वयं दूसरे के काम में हाथ बँटाना, साथ ही एक ही मंच पर आसीन जगद्-गुरुओं, महंतों तथा धर्माचार्यों के बीच सामंजस्य बना रहे, इस ओर भी विशेष ध्यान देना, यह उनका आचरण-परखनेवालों के लिए आदर्श था। श्री गुरुजी तो सर्वसाधारण स्वयंसेवक की भांति ही कार्यरत थे।

श्री गुरुजी की एक और विशेषता इस परिषद् में दृष्टिगोचर हुई। किसी प्रश्न या प्रस्ताव पर मतभेद होता हुआ दिखाई दिया तो श्री गुरुजी विनम्रता से समन्वय साध लेते थे। धर्मपीठों के मूर्धन्य आचार्यों के उपदेश पर यथोचित भाष्य करते हुए भिन्न मत-मतांतरों में भी समानता का अंतस्थ सूत्र किस तरह विद्यमान है, यह वे स्पष्ट कर देते थे। श्री गुरुजी की दक्षता, प्रेमाग्रह विनम्रता और समन्वय साधने की कला के कारण परिषद् को एक विधायक दिशा प्राप्त हुई। एक आयाम प्राप्त हुआ जिसके साक्षात्कार से उपस्थित आचार्यों के ध्यान में यह बात भी आई कि धर्मग्रन्थों में राष्ट्रपुरुष की सेवा ही अभिप्रेत है।

युगानुकूल धर्मविचारों के एकमत से ग्राह्य होने का आनन्द सब ओर प्रकट हुआ। अन्य किसी हुरुष द्वारा यह कार्य हो पाना कठिन था। संसार में यत्र-तत्र बिखरे हुए आत्मविस्मृत और निष्प्रभ जीवन जीनेवाले, हिन्दू धर्म की जन्मभूमि भारत से आधार तथा मार्गदर्शन की प्राप्ति से प्रदीर्घ काल तक वंचित और हीन भाव से ग्रसित

भारतवासी हिन्दुओं में एक तेजोमय परिवर्तन की संजीवनी का संचार करने की उत्कटतम आकांक्षा यदि श्री गुरुजी के मन में न होती, साथ ही इस ईश्वरीय कार्य में वे अपने 'अहं' की भावना को निःशेष विलिन म कर पाते तो यह प्रयाग का सम्मेलन ऐसा अनुपम यश शायद ही प्राप्त कर पाता।

विश्व हिन्दू परिषद् की स्थापना एक नवयुग निर्माण करनेवाली घटना है। यह परिषद् याने संघ कार्य का विश्वव्यापी प्रस्तुतीकरण ही था, ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा। हिन्दू पुनरुत्थान के लिए न केवल भारत में अपितु भारत के बाहर भी कोई छोटा-मोटा काम करना हो तो उसके लिए वैश्विक हिन्दू परंपरा का सूत्र ग्रहण कर काम करने के लिए एक असीम सुविधा परिषद् के रूप में उपलब्ध हुई। परिषद् का कार्य संघपद्धति से ही हो ऐसा आग्रह नहीं था। परिषद् किन कार्यों को करे इस संबंध में श्री गुरुजी ने प्रयाग के उपने भाषण में मार्गदर्शन किया दै। सूत्र रूप से उस भाषण का सार यहां उद्-घृत किया जाता है।

१७.६ परिषद् के प्रमुख सूत्र

(१) प्रदीर्घ पराधीनता, आत्मविश्वास शून्यता, परानुकरण और हीनताबोध के फलस्वरूप 'न हिन्दुः न यवनः' ऐसी संस्कारहीन अवस्था को प्राप्त समाज को धीरे-धीरे अपने धर्म, तत्वज्ञान तथा आचरण परंपरा की श्रेष्ठता का बोध कराकर धर्म की पुनः प्रतिष्ठापना का प्रयत्न किया जाय। प्रारंभिक रूप में न्यूनतम संस्कार प्रदान करने की व्यवस्था की जाय। इन न्यूनतम संस्कारों का स्वरूप विद्वान् मंडली तय करे।

(२) विदेश में बसे हिन्दू बंधू हिन्दू ही रहना चाहते हैं। किन्तु ज्ञान तथा संस्कारों की उचित व्यवस्था न होने कारण इस भावना की पूर्ति नहीं हो पाती। संस्कारहीनता के फलस्वरूप अवेंछनीय पश्चिमी सभ्यता के आदी होने का भय उत्पन्न हे रहा है। अतः हमारे इन विदेशी परिवारों के लिए संस्कार तथा ज्ञान प्रदान करने की व्यवस्था हो।

(३) हम तो अपने देश में ही स्वतः को हिन्दू कहने से कतराते हैं। हीनभाव से हम ग्रस्त हैं। 'मैं हिन्दू हूँ। एक हिन्दू होने के नाते भारत की पुण्य पावन परंपरा की रक्षा, संवर्धन तथा प्रसार-प्रचार करना मेरा परम पवित्र कर्तव्य है और इसे पूर्ण करने के लिये मैं अग्रसर रहूँगा,' ऐसा कहने का साहस सर्वत्र निर्माण होना आवश्यक है। विदेश में बसे हिन्दू बंधूओं के मन में विश्वास निर्माण हो और वे गर्व से कह सकें कि अपना

एकमात्र आधार भारत का हिन्दू समाज है। इसके लिए अपने देश में वैसा वातावरण निर्माण करना होगा। इस दृष्टि से गोहत्या बंद होना आवश्यक है। इसके साथ ही हमें चाहिए कि हम हिन्दुत्व का और हिन्दू होने का अभिमान रखें। हम हिन्दू के नाते सारे संसार में भ्रमण करें।

(४) हम किसी भी संप्रदाय का विरोध नहीं करते। इसका अर्थ है कि हमें जो कुछ करना है वह प्रामाणिकता, प्रेम तथा चरित्र की शुद्धता के बलबूते पर तथा मानवता के प्रति ममत्व और प्रेम भाव से करना होगा। संप्रदाय के नाम पर स्वार्थ की प्रवृत्ति को बढ़वा देना ठीक न होगा। व्यभिचार और विनाश का दामन हम न पकड़ें यही मेरा आग्रह है। हिन्दू धर्म सर्वसंग्राहक है, इसको हम न भूलें।

(५) सनातन धर्म के मायने हैं हमारा महान्, चिरंजीवी, सिद्धान्तमय आचार धर्म। अपनी परंपरा में निर्मित बौद्ध, जैन, सिख आदि सभी पंथ इसकी परिधि में अंतर्भूत हैं। जैन संप्रदाय के एक श्रेष्ठ मुनि ने अपना मत व्यक्त करते हुए जो कहा कि, "जो स्वयं को हिन्दू नहीं कहता, वह जैन भी कैसे रह सकता है," वह सत्य है। अपने सभी संप्रदाय एक ही परंपरा से निर्मित हुए है। इन संप्रदायों के बीच सामंजस्य की भावना निर्माण कर समग्र समाज को वैभवसंपन्न बनाना हमारा कर्तव्य है।

(६) पहाड़ों और जंगलों में रहनेवालो हमारे वनवासी बंधु दुःखी हैं। उनके दुःख का कारण हमारा वह समाज है जो स्वतः को समझदार तथा उच्चवर्गीय मानता है। इस वनवासी समाज पर अनेक वर्षों से अन्याय होता रहा है। अपने समाज का अभिन्न संग होने के कारण हमें हर प्रकार से उनकी सहायता कर अपनी भूल का परिमार्जन करना चाहिए।

विश्व हिन्दू परिषद् के अधिवेशन के सफलतापूर्वक समाप्त होने के फलस्वरूप श्री गुरुजी ने जो भावना अपने भाषण में व्यक्त की, उसे उन्हीं के शब्दों में लिखना उचित होगा। श्री गुरुजी ने कहा था, "ढाई दिन का यह प्रसंग स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है ऐसा मैं मानता हूं। हम सभी के लिए यह अवसर अत्यंत भाग्यशाली है। विगत अनेक वर्षों से सोया हुआ हमारा भाग्य अब जाग उठा है। अब सारे विश्व में उसका डंका बजेगा और ऊँचाई पर उसका ध्वज लहराएगा। स्वामी विवेकानंद के समान महापुरुष ने सारे संसार में संचार कर कहा था कि वह दिन दूर नहीं जब विश्व के मस्तक पर हमारा ध्वज लहराएगा। ऐसा होगा इसमें कोई संदेह नहीं।"

प्रयाग में संपन्न अधिवेशन की सफलता के पश्चात् गुजरात, महाराष्ट्र, असम आदि राज्यों में विश्व हिन्दू परिषद् के प्रादेशिक सम्मेलन संपन्न हुए। श्री गुरुजी इन सभी अवसरों पर उपस्थित थे। १९७० में असम के जोरहट नामक नगर में जो महासम्मेलन हुआ था, उसमें महिलाओं के लिये एक विशेष कार्यक्रम की योजना की गयी थी। नाग प्रदेश की रानी गाइडिंल्यू इस कार्यक्रम में विशेष रूप से उपस्थित थीं। श्री गुरुजी ने इस अवसर पर उपस्थित महिलाओं को संबोधित करते हुए बताया कि मातृशक्ति समाज को अपना संस्कारधन देने हेतु प्रयत्नशील रहे। श्री गुरुजी का मार्गदर्शन महिलाओं की दृष्टि से बहुत ही प्रभावशाली रहा।

श्री गुरुजी द्वारा दिया गया भाषण पूर्वोत्तर क्षेत्र (असम, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड, मणिपुर, त्रिपुरा और अरुणाचल के समावेश से बना क्षेत्र) में होनेवाली संभाव्य घटनाओं की पूर्वसूचना देनेवाला सिद्ध हुआ। साथ ही इन संकटों का सामना किस प्रकार किया जाय, इस संबंध में भी मार्गदर्शन किया गया। घुसपैठ के द्वारा असम को मुसलमानों की सर्वाधिक संख्यावाला प्रान्त बनाने का षड्यंत्र रचा जा रहा है, केन्द्र का एक मुस्लिम हितचिंतक मंत्री इन घुसपैठियों को फुसला रहा है, ऐसी चेतावनी भी उन्होंने दी। यह भी बताया कि हाल ही में निर्मित 'मेघालय' प्रान्त में ईसाइयों द्वारा उपद्रव खड़ा हो सकता है। श्री गुरुजी ने मेघालय की निर्मिति न की जाय ऐसी सूचना शासन को दी थी किन्तु किसी के दबाव में आकर मेघालय का निर्माण हुआ। श्री गुरुजी ने जो भविष्यवाणी की थी वह सत्य सिद्ध हुई।

इस प्रत्याशित संकट का मुकाबला करते समय हिन्दू समाज को क्या करना होगा, इसे स्पष्ट करते हुए श्री गुरुजी ने कहा-

(१) जनगणना के समय मुसलमान अपनी संख्या बढ़ाचढ़ाकर बताते हैं। ऐसा न हो, इसके लिए सतर्क रहकर सावधानी बरतें। हर हिन्दू को चाहिए कि वह अपनी गणना हिन्दू के नाते ही करे। ट्रायबल, विशेषपंथ या पहाड़ी जाति के नाम से अपना बोध न कराएँ, केवल 'हिन्दू' ही लिखें।

(२) मेघालय में रहनेवाले सभी पहाड़ी तथा वनवासी हिन्दू संगठित होकर अपना नेतृत्व निर्माण करें। हिन्दुओं का अहित चाहनेवाले तत्व अपने समाज में दरार निर्माण कर अल्पसंख्यक ईसाइयों को अपने से अधिक प्रभावशाली बनाने की चेष्टा कर

रहे हैं; इसलिये हमें चाहिए कि हम इस षड्यंत्र की धज्जियां उड़ा दें और नियंत्रण के सूत्र अपने हाथों में लें। इस कठिन समस्या का निवारण सुसूत्र हिंदु एकता पर ही निर्भर है।

(३) विश्व हिन्दू परिषद् के एक कार्यकर्ता के नाते हम एक 'गाँव' चुने। तत्पश्चात् इस गाँव से निरंतर संपर्क बनाए रखें। इस गाँव में बसनेवाले अपने समाज बंधुओं की शिक्षा, धर्म जागृति और उनकी पारिवारिक समस्याओं को हल करने के लिए सहायता करें। उनके साथ हिलमिल कर रहें। उनके साथ बैठकर खाना-पीना करें। ऐसा करने से उनमें विश्वास का भाव जागेगा और समरसता की भावना निर्माण होगी।

(४) प्राप्त धन का व्यय समाजको श्रेष्ठतम अवस्था प्राप्त कराने के लिए ही किया जाय। इस प्रकार सर्वंकष प्रयत्न होने पर अहिन्दु शक्ति परास्त होगी और भारतमाता के शक्तिशाली अंग के नाते अपना यह प्रदेश सामर्थ्य के साथ खड़ा रहेगा।

इस प्रकार श्री गुरुजी ने एक ऐसा विश्वास कार्यकर्ताओं के हृदय में उत्पन्न किया जिसके सुपरिणाम विगत अनेक वर्षों के परिश्रमों के फलस्वरूप आज प्रत्यक्ष में दिखाई दे रहे हैं।

१७.७श्री गुरुजी ने भी जयघोष किया

विश्व हिन्दू परिषद् के समावेशक व्यासपीठ का उपयोग हिन्दू समाज के विभिन्न गुटों में बढ़ी हुई दरारें पाट कर स्नेहमय समरसता की भावना जगाने में होने लगा है, यह देख कर श्री गुरुजी को बहुत आनन्द होता था। एक बार दक्षिणांचल प्रचारक और संघ के सहसरकार्यवाह श्री यादवराव जोशी जी से यह प्रश्न पूछा गया कि, "श्री गुरुजी ३३ वर्ष तक सरसंघचालक थे। उनके इस कार्यकाल का एकाध प्रसंग क्या आप बतला सकेंगे जब उन्हें निरतिशय आनंद प्राप्त हुआ?" इस पर यादवराव जी ने तत्काल उत्तर दिया कि सन् १९६९ में उडुपी में कर्नाटक प्रदेश विश्व हिन्दू परिषद् का दो दिवसीय सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलन में समस्त धर्माचार्यों द्वारा इस आशय का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किया गया कि धर्मशास्त्रों में अस्पृश्यता या अन्य किसी प्रकार ऊँच-नीच भाव का यत्किंचित भी समर्थन नहीं है, सब हिन्दू भाई-भाई हैं, कोई भी पतित नहीं है। यह प्रस्ताव पारित होते ही श्री गुरुजी का हृदय आनंद से उमड़ पड़ा। वे कह उठे, धन्य है! धन्य है! यह ऐतिहासिक क्षण धन्य है। उसका स्वागत प्रचण्ड

जयघोष और तालियों की गड़गड़ाहट से हो ऐसी सूचना उन्होंने कार्यवाही का संचालन करनेवाले कार्यकर्ता श्री सूर्यनारायण राव को दी। भाषणों का क्रम अल्पकाल के लिए खण्डित हुआ और अपने को न रोक पाते हुए श्री गुरुजी ने सम्मेलन के संचालक से कहा कि सभी प्रतिनिधियों से कहो, "तालियाँ बजाओ"। जय घोष का आवाहन करने के लिए श्री गुरुजी ने स्वयं तालियाँ बजायीं और जयघोष किया। उनका चेहरा उस समय आनन्द से खिल उठा था। ऐसी आनंदविभोर अवस्था में उन्हें मैंने कभी नहीं देखा था। मुझे लगता है कि वह उनके संघजीवन के (Finest hour) आनन्द का सर्वोत्तम क्षण था। सम्मेलन संपन्न होने पर हम लोग विमान तल पर गये। वहाँ पर भी मुझे एक ओर ले जाकर उन्होंने मुझसे कहा, "यादवरावस यह सम्मेलन और इस सम्मेलन की कार्यवाही ऐतिहासिक माननी पड़ेगी। इस सम्मेलन में हुए विचार विनिमय और भाषणों का विस्तृत ब्यौरा भारत की अपनी सभी भाषाओं में प्रसिद्ध होना चाहिए। उसकी हजारों प्रतियाँ छपवाकर उन्हें सर्वत्र प्रसृत करना चाहिए।" उडुपी में, "अस्पृश्यता को धर्म में स्थान नहीं है" इस आशय का जो निस्संदिग्ध प्रस्ताव विविध पंथों के धर्माचार्यों और शंकराचार्यों की सहमति से सम्मत हुआ, वह सम्मत होने के लिए श्री गुरुजी कम से कम ६-७ वर्षों से प्रयत्नशील थे। जैन, बौद्ध, सिख, वीर शैव धर्मगुरुओं से और धर्माचार्यों से उन्होंने प्रदीर्घ चर्चा की थी। उन सब प्रयत्नों के सफल होने की साक्षी उडुपी सम्मेलन ने दी। पूज्य पेजावर मठाधीश ने सभी को एक नया मंत्र दिया- 'हिन्दवः सोदराः सर्वे'। उनके बाद के पत्रों और वक्तव्यों में भी उन्हें जो अतीव संतोष हुआ, उसका प्रतिबिम्ब दिखाई देता है।

यह सत्र श्री भरणय्या की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ था। वे हरिजन थे, वे सेवानिवृत्त अधिकारी भावावेग से गद्-गद् हो गये।

सत्र समाप्ति के बाद मंच से नीचे उतरते ही श्री भरणय्या ने श्री गुरुजी को अपने बाहुपाश में बाँध लिया। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। कुछ क्षण बाद रुँधे स्वर से उन्होंने कहा, "यह बड़े सौभाग्य की बात है कि हम लोगों के लिए आपने यह कार्य अपने हाथों में लिया है।" श्री गुरुजी ने कहा, "मुझ अकेले ने नहीं सम्पूर्ण हिन्दू समाज ने इस समस्या का भार लिया है।"

श्री गुरुजी के जीवन काल में ही विश्व हिन्दू परिषद् का कार्य अनेक देशों में प्रारंभ हो चुका था। अब तो यह कार्य दृढ़मूल हो कर विश्व भर फैल चुका है। इसका आधार है अपने वे स्वयंसेवक जो व्यापार या नौकरी के कारण विदेशों में बसे हुए हैं। श्री गुरुजी

चाहते थे कि विश्व में फैले अपने स्वयंसेवकों का न केवल परस्पर "संपर्क बना रहे अपितु संघ या विश्व हिन्दू परिषद् के संस्कारों के अनुकूल और अनुसार ही उनकी जीवन शैली रहे।" किसी अन्य संस्था का गठन कर यदि यह संभव हो तो तदर्थ श्री गुरुजी की सम्मति अवश्य रहेगी। आकांक्षा एक ही है कि विदेशस्थ हिन्दुओं का सूत्र अखंड रहे। श्री गुरुजी ने विदेशों में बसे हिन्दूओं से संपर्कसाधन का कार्यभार दिल्ली संघ कार्यालय के जेष्ठ प्रचारक श्री चमनलाल जी के कंधों पर सौंपा। पत्र-व्यवहार तो पहले से ही निरंतर होता था।

ब्रह्मदेश से श्री गुरुजी को अतिथि के नाते आमंत्रण प्राप्त हुआ था किन्तु शासकीय नेताओं की इच्छा प्रतिकूल होने के कारण श्री गुरुजी वहाँ न जा सके। श्री दादा साहब आपटे उन सभी देशों का दौरा कर आए जहाँ अपने हिन्दू बसे हुए हैं। कालांतर में संघ के एक प्रचारक श्री लक्ष्मणराव भिडे की विशेष नियुक्ति विदेश में हिन्दू संगठन का कार्य करने के लिए की गयी।

विदेश में बसे हिन्दू बंधुओं से निरंतर संबंध, हिन्दू आदर्श और विदेशी जीवन शैली का प्रभाव आदि विषयों के संबंध में उद्-बोधक तथा बृहद् पत्र व्यवहार किया गया। विश्व हिन्दू परिषद् विदेशों में चल रहे अनेक हिन्दू संस्थाओं एवं हिन्दू जागृति के कार्यों का एकमात्र मंच था। लंदन में १९७० में जन्माष्टमी के अवसर पर गोपाल कृष्ण मंदिर का उद्-घाटन संपन्न हुआ। श्री गुरुजी ने इस प्रसंग पर एक विस्तृत संदेश भेजा था। विदेशों में बसे हिन्दूओं का मार्गदर्शन ही इस संदेश का मुख्य सार था। नागपुर में इस संदेश का ध्वनिमुद्रण श्री गुरुजी की आवाज में किया गया था और लंदन में कार्यक्रम के अवसर पर उसे उपस्थित श्रोताओं को सुनाया गया। विदेशों में विश्व हिन्दू परिषद् का काम सुचारु तथा वर्धिष्णु रूप से चल रहा था। साथ ही भारत में इस विधायक, रचनात्मक कार्य के सैकड़ों केन्द्र खोले गये थे। १९७९ में दूसरा जागतिक सम्मेलन प्रयाग में आयोजित किया गया और बहुत बड़े पैमाने पर उसे प्रोत्साहन भी प्राप्त हुआ। १९८२ में सम्पन्न राष्ट्रव्यापी हिन्दू सम्मेलन विश्व हिन्दू परिषद् के तत्वाधान में ही सफल हुए थे। इनमें मतांतरित हिन्दुओं को वापस लेने के धार्मिक कर्तव्य का स्मरण दिलानेवाला मंत्र 'न हिन्दू पतितो भवेत्' गूँज उठा। १९६६ में विश्व हिन्दू परिषद् की स्थापना कर श्री गुरुजी ने हिन्दू जगत् की जिस आवश्यकता की पूर्ति की थी, भविष्य ने काल की कसौटी पर उस निर्णय को सही सिद्ध कर दिखाया।

विश्व हिन्दू परिषद् की भाँति अन्य संस्थागत तथा संगठनात्मक कार्य श्री गुरुजी की प्रेरणा से ही गतिशील हो पाए। इन कार्यों की वृद्धि हुई, प्रभाव बढ़ा किन्तु इसके मूल में श्री गुरुजी का अथक परिश्रम ही है यह बात तब ध्यान में आती है जब हम उनके द्वारा लिखे गए सहस्त्रों पत्रों को पढ़ते हैं। श्री गुरुजी ने अनगिनत लोगों को पत्र लिख कर धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक कार्य करने हेतु प्रवृत्त किया। अनेकानेक गुणवान कार्यकर्ताओं को अपने गुणों का उपयोग समाजहित में करने की प्रेरणा दी, कार्यशक्ति को दिशा प्रदान की।

ग्रंथ लेखक, ग्रंथालय संचालक, कवि, दैनिक, साप्ताहिक प्रकाशित करने की इच्छा रखनेवाले, सेवाकार्य में रुचि रखनेवाले, अध्यात्म के मार्ग पर चलने के लिए उत्सुक विरागी, भजन पूजन करनेवाले, सेवा से निवृत्त कर्मचारी, राजनीतिज्ञ आदि अनेक लोग प्रत्यक्ष भेंट कर या पत्र व्यवहार द्वारा श्री गुरुजी से मार्गदर्शन की अपेक्षा किया करते थे। श्री गुरुजी से परिचित हर व्यक्ति जानता था कि वे कोई सत्ताधारी नहीं हैं प्रत्युत स्वयं अपरिग्रह का व्रत लिए हुए प्रचारक हैं। श्री गुरुजी स्वयं अपने आप में मूर्तिमान् तत्व थे। उनकी कथनी और करनी एकरूप थी। इसीलिये लोग श्री गुरुजी से मार्गदर्शन की अपेक्षा करते थे। भौतिक रूप से उनके पास दूसरों को देने के लिए कुछ भी नहीं था। जो था वह असीम-अथाह ज्ञान, प्रेम, देशभक्ति, धर्म-प्रवणता और धार्मिक, अध्यात्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में पारदर्शी, निरपेक्ष दिशादर्शन कराने की असीम शक्ति।

श्री गुरुजी भी अपना दायित्व समझकर समाज और राष्ट्र का हित-अहित देख कर उपाय और परहेज बताया करते थे। कभी-कभी कड़वा सच कहने में भी वे हिचकिचाते नहीं थे। कटुसत्य का दर्शन कराते समय उनके हृदय में स्थित स्नेहभाव का भी अनुभव होता था। संभ्रमावस्था में पड़े अनेक लोग प्रश्न पूछकर श्री गुरुजी से मार्गदर्शन की अपेक्षा रखते थे। सामाजिक समस्याओं के साथ ही पारिवारिक समस्याएँ भी उनके सामने रखी जातीं और परिवार के मार्गदर्शक बुजुर्ग के नाते वे हल बताते और उसका सम्मान भी रखा जाता। श्री गुरुजी के संभाषण और पत्राचार में कभी निराशा दिखाई नहीं दी। उनकी धारणा थी कि परिश्रम, विश्वास, समभाव और समविचार के द्वारा संकट दूर किया जा सकता है। श्री गुरुजी के पत्रों का यदि अवलोकन करें तो हमें दिखाई देगा कि उनका ईश्वर पर अटूट विश्वास था, भक्ति थी। भगवान पर श्रद्धा, मानसिक संतुलन, हिन्दू जीवनधारा के अमरत्व पर विश्वास ये गुण उनके पत्रांकित अक्षरों में कूट-कूट कर भरे हुए हैं। व्यस्ततम कार्यक्रमों में से समय निकाल कर समाज की सज्जन शक्ति को फूल की भाँति खिलाने का जो महान् कार्य भेंट-मुलाकात

और पत्रों के माध्यम से उन्होंने किया, वह बेजोड़ है। उनकी दृष्टि में न कोई व्यक्ति मामुली या उपेक्षणीय था, न ही कोई सत्कार्य! पत्र भी उनके ही हस्ताक्षर में लिखे जाने के कारण पाठक के हृदय को उनकी आत्मीयता छू जाती।

*

१८ कैंसर की अशुभ छाया

श्री गुरुजी अनुशासन के बहुत ही पाबंद थे। पूर्व नियोजित कार्यक्रम अस्वस्थता के कारण स्थगित किये जाने या विलंब से प्रारम्भ होने की कोई घटना १९४० से १९७० के तीस वर्षों के प्रदिर्घ कालखंड में नहीं घटी। एक बार तेलंगना के आंदोलन के कारण सभी रास्ते बंद कर दिये जाने से बड़ी मुश्किल से वे कार से हैदराबाद के बाहर निकल पाये। किंतु नेल्लूर के संघ शिक्षा वर्ग में पहुँच पाना फिर भी संभव नहीं हो पाया। वर्षा के कारण रेलें बंद थीं। अनेक वैकल्पिक मार्ग भी सोचे गए किन्तु कोई रास्ता नहीं निकल पाया। इसका श्री गुरुजी के मन पर बहुत असर रहा। बाद में जुलाई की बैठक में उन्होंने कहा कि, "एक रास्ता बाद में ध्यान आया। यदि उससे जाता तो शायद पहुँच जाता। मैं नहीं पहुँच पाया, यह मेरी अक्षमता का द्योतक है।" वे निरंतर प्रवास कर स्वयंसेवकों तथा जनसभाओं का उद्-बोधन किया करते थे अखंड कार्यरत समर्पित जीवन ही श्री गुरुजी की साधना थी।

ऐसी स्थिति में यदि उन्हें विश्राम करने के लिए बाध्य किया जाता तो उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगता था। शारीरिक व्यथा शांति से सहना, किसी को इस कष्ट का पता भी न चलने देना, शरीर में बुखार चाहे जितना हो फिर भी नियोजित कार्यक्रम सुचारु रूप से संपन्न करना श्री गुरुजी का नित्य स्वभाव बन गया था। शारीरिक कष्ट को भी प्रकृति मानकर प्रसन्नचित्त रहना और चैतन्य से वायुमंडल भर देना, यही उनकी साधना का फल था। ऐसा प्रतीत होता था मानों कोई अदम्य आंतरिक शक्ति उनकी देह से सारे कर्म करवा रही है।

श्री गुरुजी शरीर से छरहरे बदन के थे, आहार सीमित, किन्तु दिन भर चलते रहते थे। कार्यक्रमों का ताँता लगा रहता। फिर भी कार्यक्रमों के फलस्वरूप या अन्य किसी कारण से थकावट का नाम भी उनके होठों पर नहीं आता था। सदैव प्रसन्न, विनोद बुद्धि जागृत तथा स्मरण शक्ति आश्चर्यकारक। संघकार्य ठीक चल रहा है या नहीं इस ओर संपूर्ण ध्यान, किन्तु व्यक्तिगत सुख-दुःख की ओर से आँखें बंद, मानों उनका आंतरिक व्यक्तित्व और शरीर भिन्न हो। हर समय अन्यों के सुख-दुःख की पूछताछ किन्तु स्वतः के बारे में सर्वथा मौन!

श्री गुरुजी के दैनिक आचरण से सभी अवगत थे। किन्तु दि. ७ अप्रैल १९७० (शक संवत् १८९२) की वर्ष प्रतिपदा के अवसर पर नागपुर में उपस्थित होते हुए भी श्री

गुरुजी उत्सव में स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण भाषण न दे सके। यह सुनकर सभी व्यथित हुए। विगत ३० वर्षों में जो बात नहीं हुई थी, उसे होते देख लोगों के मन में भय की अशुभ भावना स्पर्श कर गई। दि. ६ अप्रैल को श्री गुरुजी असम तथा केरल का दौरा पूर्ण कर नागपुर लौटे थे। किन्तु उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। प्रतिपल उन्हें देखनेवालों को ऐसा लगता कि श्री गुरुजी शरीर का संतुलन खो रहे हैं। कहीं वे गिर न जायें। डॉक्टरों द्वारा की गई परीक्षा से भी कोई निश्चित अनुमान नहीं निकल पाया। दैनिक कार्यक्रम नित्य के अनुसार ही चलते रहे। दि. २८ अप्रैल से देश के १९ संघ शिक्षा वर्गों के लिए प्रदीर्घ दौरा प्रारंभ होनेवाला था। प्रत्येक वर्ग में तीन बौद्धिक तथा स्वयंसेवकों की बैठक की नित्य की परिपाटी थी। श्री गुरुजी ने प्रवास करने की ठान ली थी। निश्चय अटल था। तीस वर्षों की अनुशासित परंपरा निभानी थी।

श्री गुरुजी नियोजित कार्यक्रम के अनुसार दौरे पर चल पड़े। एक प्रान्त से दूसरे प्रांत की ओर दौरा होता रहा। सभी कार्यक्रम सुचारु रूप से चलते रहे। किन्तु किसी के ध्यान में एक बात आयी की श्री गुरुजी की छाती पर एक गाँठ उभर आयी है। बाद में पता चला कि यह गाँठ तो अगस्त १९६९ से ही थी। एक प्रसंग विशेष के कारण इस तथ्य का पता चला। श्री गुरुजी की एक पुराने संन्यासी मित्र से भेंट हुई। इन मित्र महोदय ने जब श्री गुरुजी को स्नेहभरा आलिंगन दिया तब अधिक जोर देकर छाती से दबाते समय जेब में रखी फाउन्टन पेन श्री गुरुजी की छाती पर बनी गाँठ पर ऐसी चुभी कि उन्हें इस आकस्मिक वेदना को सहना कठिन हो गया। अपार सहनशक्ति के धनी होते हुए भी श्री गुरुजी सिहर उठे।

इस गाँठ पर प्राथमिक उपचार के हेतु एक लेप लगाया गया। इसके पूर्व भी एक गाँठ आई थी, किन्तु होमिओपैथी के उपचार से वह दब चुकी थी। इस कारण दुबारा प्रगट हुई यह गाँठ भी ठीक हो जाएगी ऐसा विश्वास था किन्तु ऐसा न हो पाया। संघ शिक्षा वर्ग के निमित्त जब श्री गुरुजी प्रवास कर रहे थे तब उनकी बगल में भी एक गाँठ उभर आई। दि. २ मई को इस गाँठ के अस्तित्व का पता चला। बार-बार गाँठ का उभरना कोई अच्छा लक्षण नहीं था। इस समय श्रद्धाभाव हृदय में संजोनेवाले पुणे के सुविख्यात धन्वंतरी डॉ. नामजोशी मे उनकी डॉक्टरी जाँच करवाई। सभी वैद्यकीय परीक्षणों के साररूप निर्णय ने डॉ. नामजोशी के मन में विद्यमान अशुभ आशंका की पुष्टि कर दी। रोग था कैन्सर याने कर्करोग।

डाक्टरों द्वारा कैन्सर का पता लगाए जाने के कुछ वर्ष पहले की बात है। मंगलूर के वैद्य श्री श्रीनिवास प्रभु ने, जो स्वयं योगसाधक भी थे, श्री गुरुजी की छाती का चित्र बनाकर बायें कंधे से छाती के दूसरे कोने तक रेखा खींचकर कहा कि इस जगह कैन्सर हो सकता है! आगे चलकर इसी जगह पर वह हुआ। पूरे शरीर में श्री गुरुजी को दर्द हुआ करता था, उसका मूल उन्होंने कुंभक प्राणायाम में दोष होना बताया। श्री गुरुजी बादमें कहा, "पहली बार इन्होंने ही रोग के मूल का संकेत दिया था।" परन्तु इस सम्भावित कैंसर को रोकने की न ही वैद्य जी के पास दवा थी और न ही डाक्टरों को इस रोग के लक्षण दिखाई दिये।

कार्यकर्ता डॉ. नामजोशी की ओर देखकर मन ही मन अपेक्षा कर रहे थे कि वे कहेंगे, "चिंता करने का कोई कारण नहीं है। सब ठीक हो जाएगा।" किन्तु डाक्टर साहब का सहमा हुआ चेहरा देखकर निराशा के काले बादल उनके मनों पर मंडराने लगे। स्वयं श्री नामजोशी अस्वस्थ से हो गए। उन्होंने कर्करोग की आशंका व्यक्त की इसलिए उनका आग्रह था कि श्री गुरुजी को मुम्बई ले जाकर उनकी और अधिक गहराई से जाँच की जाय। किन्तु श्री गुरुजी ने अपना दृढ़संकल्प व्यक्त करते हुए कहा कि संघ शिक्षा वर्ग के कार्यक्रम में उनके स्वास्थ्य के कारण कोई विघ्न आना उचित नहीं है, प्रवास तथा वर्ग के सभी कार्यक्रमों में वे पूर्वनियोजित योजना के अनुसार ही भाग लेंगे। फिलहाल निजी स्वास्थ्य की ओर ध्यान देने के लिए उनके पास समय नहीं था।

श्री गुरुजी अगले प्रवास के लिए पुणें से चल पड़े। विदाई के समय कार्यकर्ताओं के मन में फिर से चिंता के बादल घिर आए। श्री गुरुजी सदा के भाँति अविचल रहे। उनके मुखमंडल पर उभरा हास्य मानों स्वयंसेवकों व कार्यकर्ताओं से कह रहा था, "अरे भाई, शरीर की चिंता छोड़ो, संघकार्य को बढ़ाओ।" कार्यक्रमानुसार श्री गुरुजी दि. १८ मई को मुम्बई पहुंचे। कार्यकर्ताओं ने चुपके से टाटा मेमोरियल हॉस्पिटल के विख्यात कैन्सर तज्ञ डॉ. प्रफुल्ल देसाई को फोन द्वारा सूचना दी। कार्यकर्ताओं और डॉ. देसाई के अनुरोध पर राजी होते ही श्री गुरुजी की पुनः जाँच कराई गयी। बहुत तर्क-वितर्क, सोच-विचार और पुनरावलोकन के पश्चात् डॉ. देसाई ने भी कैन्सर की ही शंका व्यक्त की। इस निर्णय को सुनकर भी श्री गुरुजी शांत ही रहे। कोई आंतरिक व्यथा चेहरे पर प्रगट नहीं हुई।

"यह कैन्सर का रोग किस हद तक फैला हुआ है और वह ठीक भी होगा या नहीं?" श्री गुरुजी ने डॉ. देसाई से पूछा। डॉ. देसाई ने कहा, "यह तो शल्यक्रिया के समय ही

पता चल सकेगा। शल्यक्रिया न कराना याने धोखा मोल लेना होगा, हानिकारक होगा। मैं चाहता हूँ कि आप शल्यक्रिया के लिए सम्मति दें।"

डॉ. देसाई का ज्ञानगर्भित निर्णय सुनकर, श्री गुरुजी ने कुछ क्षण सोचा और शल्यक्रिया के लिए सम्मति इस शर्त के साथ दी कि वह संघ शिक्षा की समाप्ति पर जून के अंतिम सप्ताह में होगी। दि. १ जुलाई का दिन शल्यक्रिया के लिए निश्चित किया गया।

संघ शिक्षा वर्ग का प्रवास चल रहा था। सभी कार्यक्रम संघ परिपाटी के अनुसार आनंदमय वातावरण में चलते रहे- बौद्धिक, चर्चा संघहितैषियों से भेंट, हास्य विनोद आदि। ये कार्यक्रम होते देख कोई सोच भी नहीं सकता था कि श्री गुरुजी कैन्सर जैसे जानलेवा रोग से ग्रस्त हैं। ऐसा आभास भी श्री गुरुजी के व्यवहार में दृष्टिगोचर नहीं होता था। जिससे माना जा सके कि जिन पर कैन्सर के लिए शल्यक्रिया होने जा रही है, जो मृत्यु की कृष्ण छाया से घिरे हुए हैं, वे यही हैं।

इस समय सामाजिक वातावरण भी स्वस्थ नहीं था। राजनीतिक उथलपुथल के कारण समाज आंदोलित था। कॉंग्रेस का विभाजन होकर श्रीमती इंदिरा गांधी के हाथ में सत्ता सूत्र आ चुके थे। सत्ता का शस्त्र हाथ में आते ही संघ पर प्रतिबंध लगाने की भाषा जोश-खरोश के साथ बोली जाने लगी। संघ पर प्रतिबंध के लिए वातावरण का गर्म होना आवश्यक था। नियति ने शासन का साथ दिया। स्थान-स्थान पर मुसलमानों ने दंगे-फसाद शुरु कर दिये। किन्तु प्रचार यह किया गया कि इन दंगों की जड़ में संघ का हाथ है। इस गलत प्रचार की आग को संघविरोधी नेताओं ने हवा दी। उनका प्रयत्न था कि आग जलती रहे और लोग संघ से घृणा करने लगें।

किन्तु श्री गुरुजी अविचलित रहे और स्वयंसेवकों के समक्ष दिये गये अपने भाषणों में इन असामाजिक घटनाओं का अन्वयार्थ स्पष्ट करते रहे। उन्होंने कहा कि अपना संगठन अधिक विशाल, सुदृढ़ तथा शक्तिशाली बनाना ही इस गलत प्रचार का सही उत्तर दोगा। किन्तु बाहरी समाज में प्रकट रूप से उन्होंने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

प्रवास के क्रम में श्री गुरुजी दि. ११ जून १९७० को दिल्ली पहुँचे। दिल्ली में आते ही उन्होंने उपर्युक्त अपप्रचार की ईंट का जवाब पत्थर से देने की ठान ली। इस हेतु एक

पत्रकार परिषद् का आयोजन किया गया। देश-विदेश के पत्रकार इस महत्वपूर्ण पत्रकार परिषद् में उपस्थित थे। वातावरण जिज्ञासा से ओतप्रोत था। पत्रकारों ने आड़े-टेढ़े प्रश्न पूछे किन्तु सभी प्रश्नों के सुलझे हुए उत्तर शांत रहकर श्री गुरुजी ने दिये। संघ पर लगनेवाले प्रतिबंध की संभावना से जुड़े प्रश्नों का उत्तर देते हुए श्री गुरुजी ने कहा, "जो लोग संघ पर प्रतिबंध लगाना चाहते हैं उन्हें मैं बताना चाहूँगा कि यह कदम उनके हित में कदापि नहीं होगा।"

आवश्यक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कर समाज और सरकार को सतर्क करने के पश्चात् श्री गुरुजी ने संघ शिक्षा वर्ग के लिए प्रयाण किया। २७ जून को कलकत्ता का वर्ग समाप्त हुआ। अपने आश्वासन के अनुसार वे कलकत्ता से सीधे मुम्बई पहुंचे। दि. २९ जून को पुनः परीक्षण करने के बाद दि. ३० को उन्हें टाटा मेमोरियल हॉस्पिटल में शल्यक्रिया के हेतु भरती कर लिया गया।

१८.१ शल्यक्रिया

दि. १ जुलाई। प्रातः ९-४५ का समय। श्री गुरुजी को ऑपरेशन थिएटर में प्रविष्ट किया गया। डॉ. देसाई ने गाँठ का टुकड़ा काटा, परीक्षणार्थ भेजा। कैन्सर है या नहीं? अनंत कुशंकाएं. आशाएं थिएटर के अन्दर और बाहर खड़े चिंतित कार्यकर्ताओं के मुख पर दिखाई दे रही थीं। जीवनदाता शल्यकर्मी एक ओर तैयार तथा बाहर आशा-निराशा का संघर्ष। कुछ समय बीता और परीक्षण की रिपोर्ट डॉ. प्रफुल्ल देसाई को दिखाई गयी। रिपोर्ट ने कहा, 'कैंसर है'। और डाक्टर देसाई ने शरीर का कैन्सरग्रस्त भाग शल्यक्रिया कर समूल नष्ट करने की क्रिया प्रारंभ की। काट-छाँट की गति बहुत तेज थी। अपेक्षा से अधिक कैन्सर की व्याप्ति थी। सभी गाँठे समूल निकाल दी गईं। श्री गुरुजी के हृदय में छुपी और कई वर्षों से उनकी छाती को कुतरने और असहनीय वेदना देनेवाली ये गाँठें शल्यकर्मी के शस्त्रों के आघात होते ही बगल की ट्रे में गिर पड़ी। लगभग तीन घंटे तक यह ऑपरेशन चलता रहा। पसलियों के नीचे कितनी गहराई तक छाती को कैन्सर ने कुरेदा था इसकी कल्पना करना असंभव था। डॉ. देसाई ही इस अंदर की बात को आश्चर्यविमूढ होकर जान पाए थे।

दोपहर १ बजे श्री गुरुजी उनके कमरे में लाया गया। उस समय वे लगभग बेहोशी की अवस्था में थे। सामान्य रोगियों को शल्यक्रिया के बाद जी मचलाना या असहनीय वेदना का कष्ट होता है। किन्तु श्री गुरुजी को ऐसा कोई कष्ट नहीं हुआ। दोपहर ३.३०

बजे उन्होंने चाय पी। दूसरे दिन भोजन भी किया। द्रव पदार्थ बह जाने के लिए जो नलियां शरीर में लगाई गई थीं, वे भी तीसरे दिन निकाल दी गयीं।

स्वास्थ्य की पूछताछ के लिए लोगों का आना-जाना प्रारंभ हो गया। चंद दिनों में ही अस्पताल के अन्य रोगियों की पूछ-ताछ हेतु श्री गुरुजी निकल पड़े। अन्यों को दिलासा देना, आश्वस्त करना, हौसला बढ़ना यही उनका उद्देश्य था। प्रार्थना के लिए श्री गुरुजी समीप ही लगनेवाली शाखा में भी जाने लगे।

प्रतिवर्ष जुलाई में नागपुर में होनेवाली कार्यकारिणी की बैठक इस वर्ष १० से १२ जुलाई तक मुम्बई में संपन्न हुई। दि. ११ को श्री गुरुजी कुछ समय के लिए बैठक में आए। इस तरह तीन सप्ताह बीते। शल्यक्रिया के कारण हुआ घाव तेजी से ठीक हो रहा था।

अस्पताल में रहने का प्रयोजन अब समाप्त हो गया था। डॉक्टर मंडली भी समाधान और खुशी का अनुभव कर रही थी।

दि. २६ जुलाई को श्री गुरुजी ने रुग्णालय से बिदाई ली। रुग्णालय के वास्तव्य काल में उन्होंने अनेकों को अपना बना लिया था। मनुष्य जुटाने का कार्य यहाँ भी जारी था। जो भी डॉक्टर, सेवक परिचारक तथा अन्य कर्मचारी उनके पास आते, श्री गुरुजी उनके सुख-दुःख की पूछताछ किया करते थे। अपने बारे में कुछ भी न कहने या चिंता करनेवाले श्री गुरुजी द्वारा समीप के कर्मचारियों और अन्य अनजान लोगों की पितृतुल्य वात्सल्यभाव से चिंता किये जाते देखकर वे लोग भावविभोर हो जाते थे। अस्पताल से बिदाई लेकर जब श्री गुरुजी निकले तब देखनेवालों की आँखों में आंसू टपक पड़े। इतने अल्पकाल में श्री गुरुजी प्रत्येक संपर्कित रुग्ण के परिवार के अंग बन चुके थे। जिन्होंने जीने की आशा ही छोड़ दी थी उनमें भी जीवित रहने की आशा निर्माण कर वे धीर गंभीर कदमों से बाहरी जगत् में आए। श्री गुरुजी की अनुपस्थिति में हर किसी को लग रहा था मानों उसका अपना उनसे दूर चला गया है।

डॉ. प्रफुल्ल देसाई, जिन्होंने श्री गुरुजी पर शल्यचिकित्सा की थी, संघ से परिचित नहीं थे। किन्तु श्री गुरुजी ने जिस सहजता के साथ शल्यक्रिया के समय सानंद सहकार्य दिया, उसे देखकर तो वे आश्चर्यचकित हो गये। डॉ. देसाई ने अपने विचारों और भावनाओं को लेख में शब्दबद्ध कर रखा है। वे लिखते हैं, “श्री गुरुजी की ६५ वर्ष

की आयु का विचार करने पर वे इतनी गहरी और प्रदीर्घ शल्यक्रिया का सामना कैसे कर पाएंगे यह प्रश्न मेरे मन में था। किन्तु जिस शांति, साहस और सहकार्य से उन्होंने सारी बातें हँसमुख रहकर सहीं, वह एक अद्-भूत घटना थी। दूसरे ही दिन वे चलने फिरने लगे। वे तीन सप्ताह अस्पताल में रहे। इस कालखंड में मुझे उनके व्यक्तित्व तथा मानसिकता या मन का अध्ययन करने का अवसर मिला। श्री गुरुजी मुझसे यह जानना चाहते थे कि कैन्सर ने उनके शरीर में कितनी जगह व्याप्त कर रखी है और शल्य क्रिया के उपरान्त वे कितने वर्ष जी पाएंगे। इस संबंध में वे वास्तविकता जानने के लिए इच्छुक थे। मैंने उन्हें वास्तविकता से अवगत कराया। साथ ही वे कितने काल तक जीवित रहेंगे यह भी बताया।"

"मेरी स्पष्टोक्ति सुनकर श्री गुरुजी ने कहा, "वाह! बहुत अच्छा! इसका अर्थ है कि मेरे पास काफी समय है जिसमें मुझे बहुत सारे काम निपटाने हैं।" डॉक्टर को सर्वोपरि सहकार्य देनेवाले वे एक असामान्य रोगी थे। अत्यंत क्रूर, निर्दय तथा जानलेवा शारीरिक और मानसिक वेदनाओं का जिन्होंने धीरज से और संतुलन न खोते हुए संघर्ष कर सामना किया, अपने देशवासियों के संबंध में जिनकी धारणाएँ और निष्ठाभाव उत्कट थे और जिनकी पूर्ति के लिए वे अंत तक अविचलित रहे, कृश तथा दुर्बल शरीर रचना होते हुए भी एक प्रचंड कार्यशक्ति के जो धनी थे, जिनका जूझने का साहस, हिम्मत तथा अनुशासन आदि बेजोड़ थे, जिन्होंने अनिष्ट की पूर्व कल्पना कर शुभ शक्ति जागृत की, ऐसे श्री गुरुजी एक असामान्य पुरुष थे। ऐसे महापुरुष के सत्संग का, अल्पकालीन ही क्यों न हो, मुझे लाभ हुआ असे मैं अपना अहोभाग्य मानता हूँ।"

अस्पताल के बाहर आने पर श्री गुरुजी लगभग एक सप्ताह तक मुम्बई में ही रहे। दि. ३ अगस्त को रेल से वे नागपुर के लिए रवाना हुए। श्री गुरुजी पर की गयी शल्य चिकित्सा तथा उनके स्वास्थ्य में हो रहा सुधार की वार्ता सर्वत्र फैल चुकी थी।

श्री गुरुजी को कैन्सर की बाधा हुई है, इसका जब लोगों को पता चला था तब से ही सारे चिंतित थे। स्वयंसेवकों, अधिकारियों तथा संघप्रेमी जनता के लिए यह एक भारी सदमा था। किन्तु श्री गुरुजी के स्वास्थ्य पर मँड़राने वाली मृत्यु की छाया के काले बादल छँट चुके हैं और वे नागपुर की ओर प्रस्थान कर रहे हैं, यह सुनकर स्वयंसेवकों में आनंद की लहर दौड़ गयी। लोग फूले नहीं समाए। अपने-अपने ढंग से स्वयंसेवकों ने आनंद व्यक्त किया। मुम्बई से नागपुर की ओर प्रयाण करने के पूर्व वहाँ

श्रीसत्यनारायण पूजा का भव्य आयोजन किया गया। लगभग २० हजार लोग तीर्थप्रसाद ग्रहण करने के लिए पधारे थे।

नागपुर की ओर जब रेलगाड़ी चली तब प्रायः हर स्टेशन पर स्वयंसेवक तथा नागरिकगण श्री गुरुजी को जी भर कर देखने हेतु आँखो में आनंदाश्रु लेकर उपस्थित थे। नागपुर पहुंचने पर श्री गुरुजी माननीय बाबासाहब घटाटे के बंगले पर ही कुछ समय तक ठहरे। दि. १३ अगस्त को रक्षाबंधन का उत्सव हुआ। इस उत्सव में श्री गुरुजी ने खड़े रहकर ४५ मिनट तक ओजस्वी भाषण दिया। वही मँजी हुई जलप्रपात सी अखंड, ओजपूर्ण, विचारों, जानकारियों से परिप्लुत भाषा! कोई सोच भी नहीं सकता था कि डेढ़ माह पूर्व जिनके कैन्सर जैसे जानलेवा रोग से ग्रस्त शरीर पर गंभीर शल्यक्रिया का सफल प्रयोग किया गया, वे यही श्री गुरुजी हैं। सभी श्रोता स्तंभित से रह गये। अभूतपूर्व वाणी और अविस्मरणीय दृश्य!

दि. २२ अगस्त को मुम्बई में डॉ. देसाई ने श्री गुरुजी की पुनः जांच की और समाधान व्यक्त किया। किन्तु दि. २१ और २२ को श्री गुरुजी के शरीर में बुखार था। बुखार भरे शरीर से काम करने और करवाने का उनका पुराना अभ्यास था। फिर वही रवैया। श्री गुरुजी ने बुखार की ओर ध्यान नहीं दिया। दि. २२ को संध्या समय गोरेगांव (मुम्बई का एक उपनगर) में स्वयंसेवकों का एकत्रीकरण पूर्व नियोजित था। श्री गुरुजी प्रार्थना के लिए पहुँचे। वस्तुतः खार (उपनगर) के रामकृष्ण मिशन में श्री गुरुजी का निवास था किन्तु निकट की किसी शाखा में जाने से उन्होंने इन्कार किया। गोरेगांव शाखा में प्रार्थना प्रारंभ हुई। कुछ ही क्षणोपरान्त ऐसा दिखाई दिया कि श्री गुरुजी शरीर संतुलन खो रहे हैं, थोड़े डगमगा रहे हैं। डॉ. आबाजी थत्ते और एक स्वयंसेवक ने देखा कि वे दीवार का आधार ढूँढ रहे हैं। पलार्ध में वे दोनों दौड़े और श्री गुरुजी को सम्हाल लिया। प्रार्थना के बाद वे बेहोश हो गये। स्वयंसेवक चिंतित हो गये।

इस समय यह पता चला कि श्री गुरुजी की एक बगल में छेद बन गया है और उसमें से पानी और मवाद बह रहा है। इस 'अल्सर' पर उपचार किया गया। फलस्वरूप दि. २४ को बुखार भी उतर गया। श्री गुरुजी इसी दिन इन्दौर जाना था। न जाने की सूचना दी गयी किन्तु श्री गुरुजी कार्यक्रम पर अडिग थे। दि. २५ को वे इन्दौर पहुंचे। इन्दौर में प्रांत संघचालक तथा आयुर्वेदज्ञ पं. रामनारायण शास्त्री की देखभाल में श्री गुरुजी एक मास तक रहे। उनके गुरुबंधु श्री. अमूर्तानंदजी महाराज भी उनके साथ थे।

श्री गुरुजी का बायाँ हाथ सूजन के कारण फूला हुआ है यह बात हर किसी के ध्यान में आती थी। श्री गुरुजी चिंतित थे, हाथ की सूजन के लिये नहीं, अपितु जिस विवेकानंद शिला स्मारक की निर्मिति के प्रेरणास्त्रोत वे स्वयं थे, वह पूर्ण होकर अब उद्-घाटन की घड़ी निकट आ चुकी थी। दि. ४ सितंबर १९७० को कन्याकुमारी में महामहिम राष्ट्रपति श्री गिरि द्वारा इस अनुपमेय स्मारक का उद्-घाटन होनेवाला था। श्री गुरुजी इस समारोह में सम्मिलित होना चाहते थे। किन्तु यह संभव न हो पाया।

दि. २४ सितंबर को श्री गुरुजी मुम्बई पहुंचे और डॉ. प्रफुल्ल देसाई से अपने शरीर स्वास्थ्य की जाँच करवाई। डॉक्टर ने समाधान व्यक्त किया। डॉ. देसाई ने बताया, "हाथ पर आई सूजन, शल्यक्रिया की सफलता का चिन्ह है। इस कारण चिंता न करे। यथासमय मुम्बई आकर अपने स्वास्थ्य की जाँच कराना और नियमित रूप से जख्म का ड्रेसिंग करवाना अत्यंत आवश्यक है।"

१८.२ नित्यक्रम फिर से प्रारम्भ

श्री गुरुजी ने प्रवास के बारे में पूछा। डॉ. देसाई ने कहा कि अब प्रवास तथा अन्य कार्यक्रम वे कर सकते हैं, केवल सावधानी बरतना आवश्यक है। अपने स्वास्थ्य की स्थिति सम्हालते हुए ही यह सब करना ठीक होगा।

श्री गुरुजी इसी सम्मती की प्रतिक्षा में थे। अपने कार्य के लिए कितना समय शेष है यह वे जानते थे। उन्हें जल्दी थी एक- एक काम समाप्त करने की। मृत्यु के साथ अब उनकी स्पर्धा प्रारंभ हो चुकी थी। श्री गुरुजी ने अपने शरीर की चिंता कभी नहीं की, न ही वे मृत्यु से भयभीत थे। उन्हें चिंता केवल संघकार्य की थी। डॉ. देसाई ने श्री गुरुजी के स्वास्थ्य के संबंध में जो मत व्यक्त किया उसे सुनकर कार्यकर्ता प्रसन्न थे। वे श्री गुरुजी के पुनरागमन का आनंद मना रहे थे।

श्री गुरुजी २९ सितंबर को नागपुर आए। नित्यानुसार पत्र लेखन, शाखा, लोगों से मिलना-जुलना आदि कार्यक्रमों में उनका समय बीतने लगा। किसी ने यदि स्वास्थ्य संबंधी पूछताछ की तो वे एक ही वाक्य कहा करते, 'मेरा स्वास्थ्य ठीक है। आप चिंता न करें।' पत्रोत्तर में भी वे यही वाक्य लिखा करते थे। इस वर्ष का विजयादशमी महोत्सव दि. ९,१० अक्टूबर को सरदार वल्लभभाई पटेल के सेवा निवृत्त सचिव श्री. वी. शंकर की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। हमेशा की तरह विदेशी आक्रमण की

संभावना तथा अंतर्गत दृष्टि से राष्ट्र को बलवान बनाने की आवश्यकता उन्होंने प्रतिपादित की। नागपुर के सभी काम निपटाकर दि. २३ को वे प्रवास के लिए निकल पड़े। इस समय वे अति प्रसन्न और शांत थे।

सामान्यतः हम देखते हैं कि लोग तत्वज्ञान बहुत बताते हैं किन्तु उसे आचरण में उतारते समय स्वतः को माहिर समझनेवाले भी आपबीती के समय हतबल हो जाते हैं। भय से ग्रस्त हो अपने जीवित रहने की चिंता करते दिखाई देते हैं। श्री गुरुजी इस नियम के अपवाद सिद्ध हुए। उन्होंने अपना प्रिय वेदान्त जीवन में उतारा। तत्वज्ञान और व्यवहार में अंतर तो दूर रहा, उन्होंने संपूर्ण एकात्म समरसता प्रगट कर दिखाई, वह भी अनायास, स्वाभाविक रूप में। शल्य चिकित्सा के उपरान्त रुग्णालय से बिदाई लेते समय श्री गुरुजी ने डॉक्टर देसाई से कहा था, "मर्त्य मानव को चाहिए कि वह अपने स्वास्थ्य की अनावश्यक चिंता न करे। हर जीवित प्राणी कभी न कभी जाने ही वाला है। इसलिए मनुष्य कितने काल तक जीवित रहा, इससे भी अधिक महत्व इस बात का है कि उसने किस तरह जीवन व्यतीत किया। मेरे सामने एक कार्य है। मुझे इस कार्य को पूर्ण करना है। इस कारण मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि वह मुझे अन्त तक स्वस्थ रखे।"

इसके बाद श्री गुरुजी के जीवन का अंतिम पर्व शुरु हुआ। मृत्यु का स्मरण कर, उसके कदमों की आहट सुनकर भी उन्होंने अपना समय 'काम समाप्त' करने में ही व्यतीत किया। श्री गुरुजी को ऐसे शरीर के प्रति कोई आसक्ति नहीं थी जो काम करने योग्य न हो।

शल्यक्रिया के तत्काल बाद श्री गुरुजी ने जो निरंतर प्रवास जारी रखा उससे हमें ज्ञात होता है कि उन्हें कार्य की गति बढ़ने की कितनी और किस लिए चिंता थी। २३ अक्टूबर से ७ दिसम्बर तक के ४५ दिनों के प्रवास की ओर हम ध्यान दें तो हमें यह सत्यानुभूति होगी। तीन दिन मुम्बई, तीन दिन बंगलौर-प्रांत प्रचारकों की बैठक, तीन दिन नासिक, तीन दिन पुणे, पुनः चार दिन मुम्बई, नागपुर में अल्पकाल निवास, तुरन्त दिल्ली, यहाँ से मुम्बई होते हुए कर्नाटक के प्रांतीय अधिवेशन के लिए जाना, बाद में पंढरपूर। सोलापुर से मुम्बई और नागपुर वापस। इस प्रवास में सर्वत्र बैठकें, सभा संबोधन, कार्यकर्ताओं से भेंट, कार्य के बारे में पूछताछ, मार्गदर्शन, भविष्य में होने जा रहे कार्यक्रमों का प्रारूप तैयार करना आदि बातें होती रहीं।

१२ नवंबर को दिल्ली में रामलीला मैदान पर २० हजार गणवेशधारी स्वयंसेवकों के सम्मुख श्री गुरुजी का भाषण हुआ। शाम को डेढ़ हजार प्रतिष्ठित नागरिकों के समुदाय द्वारा श्री गुरुजी का स्वागत किया गया। इस समय तक श्री गुरुजी के कैन्सर को लेकर कम्युनिस्टों ने अपने प्रचार माध्यम से एक समाचार हवा में उछाल दिया था कि गुरुजी कैन्सर से बीमार हैं और उनके अनुचरों में सरसंघचारक के पद के विए स्पर्धा शुरु हो गई है। इस कारण मान्यवर नागरिकों से बातचीत करते समय हास्य विनोद के रूप में श्री गुरुजी ने कहा, "मैं जीवित हूँ। संघ विरोधियों की इच्छापूर्ति नहीं हो सकी इस का मुझे खेद है, दुःख है।" शल्यचिकित्सा के बाद हुई श्री गुरुजी की यह भेंट दिल्लीवासियों के लिए बहुत ही आनंदप्रद रही। बहुत लोग श्री गुरुजी से व्यक्तिगत मिले। इस डेढ़ मास के निरंतर प्रवास तथा कार्यक्रमों का ब्यौरा देने का एक मात्र कारण यह है कि श्री गुरुजी के कार्यकलापों की तूफानी गति हमारे ध्यान में आवे। डॉ. देसाई ने श्री गुरुजी को साधारणतः तीन वर्ष का समय बतलाया था। अतः किन योजनाओं को पूर्ण करने की आवश्यकता है इसका प्रारूप बनाकर उसे पूर्ण करने में १९७३ तक वे अविरत जुटे रहे और पूर्व नियोजित प्रवास तथा कार्यक्रम पूर्ण किये। अपवाद स्वरूप एक घटना १९७२ की है। १९७२ के उत्तरार्ध में महाकौशल, महाराष्ट्र और विदर्भ इन तीनों प्रांतों का प्रवास करना संभव नहीं हुआ। इस समय कारण भी प्रबल था।

उपचार की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप गले में दर्द, खाना-पीना असंभव, बोलना भी कठिन, फिर प्रवास करना तो निरर्थक ही था। इस संबंध में महाराष्ट्र के प्रांत संघचालक श्री. बाबाराव भिडे को लिखे एक पत्र में श्री गुरुजी ने लिखा, "मैं तीन प्रांतों का प्रवास नहीं कर पाया। यह क्षतिपूर्ति किस तरह और कब हो पाएगी इसके बारे में सोचने के लिए डॉ. आबा थत्ते को कहा है। अन्य प्रांतों के कार्यक्रमों की पुनर्रचना कर इन तीन प्रांतों के लिए समय निकालना होगा।" पूर्व नियोजित प्रवास न करना श्री गुरुजी को कतई पसंद नहीं था। किन्तु इस समय प्रवास करना असंभव ही था। प्रवास स्थगित करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था।

श्री गुरुजी मृत्यु की यत्किंचित भी चिन्ता न करते हुए जीवन का प्रत्येक क्षण कार्य की प्रगति के लिए व्यतीत करना चाहते थे। किन्तु नियति ने उनपर एक के बाद एक आघात करना शुरु कर दिया था। श्री गुरुजी के पुराने सहकारी एक के बाद एक संसार छोड़ कर जाने लगे थे। असहनीय चिरवियोग का दुःख उन्हें सहना पड़ता था।

सहस्त्रों ऐसे परिवार थे जिनसे श्री गुरुजी के घरेलू संबंध थे। इन परिवारों में जिस किसी की मृत्यु हो जाती तो श्री गुरुजी को पत्र द्वारा पता चल जाता। श्री गुरुजी सर्वाधिक व्यथित हुए श्री. बाबासाहब आपटे की आकस्मिक मृत्यु के कारण। श्री. बाबासाहब आपटे संघसमर्पित ज्येष्ठतम कार्यकर्ता थे। संघ के पहले प्रचारक, प्रकांड पंडित, महान् कर्मयोगी बाबासाहब आपटे डॉ. हेडगेवार के साथ ही कार्यारंभ करनेवाले ज्येष्ठ कार्यकर्ता थे। देशभर संचार कर संघकार्य की वृद्धि करना ही उनका ध्येय था। दि. २७ जुलाई १९७२ रात में, बिस्तर पर नींद के आहोश में ही वे परलोक सिधार गये। इस दुःखद घटना के समय श्री गुरुजी नागपुर में नहीं थे। वे इन्दौर में थे। प्रयत्न करने के उपरान्त भी वे अन्त्य दर्शन करने में सफल नहीं हो पाए। यह आघात श्री गुरुजी के लिए असहनीय था।

प्रत्यक्ष संघकार्य में रत श्री. बाबासाहब आपटे, श्री भैयाजी शहादाणी और पं. बच्छराज जी व्यास जैसे मोहरे एक के बाद एक खो देने का दुःख शायद कम था इसीलिए नियति ने एक और गहरा आघात श्री गुरुजी पर किया। जिन पर श्री गुरुजी का अप्रतिम प्रेम था उन धार्मिक क्षेत्र में कार्यरत श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार की मृत्यु। श्री गुरुजी उन्हें भाईजी कहा करते थे। भाईजी 'कल्याण' मासिक तथा गोरखपुर के गीता प्रेस के ज्येष्ठ चालक थे। श्री गुरुजी पर भाई जी की मृत्यु का परिणाम बहुत ही गहरा रहा। श्री गुरुजी ने ऐसे सभी साथ छोड़कर चल बसे सहयोगियों के रिश्तेदारों, परिवारों को पत्र लिखकर या भेंट देकर उन्हें सान्त्वना दी। सैंकड़ों की संख्या में पत्र लिखे गये। श्री गुरुजी स्वयं अपनी आयु का एक-एक दिन गिन रहे थे, जीते जी अधिकाधिक कार्यवृद्धि कर सफलता का कलश देखना चाहते थे और उन्हें ही इतने आघात सहने पड़े। किस तरह सहा होगा इतना दुख-भार श्री गुरुजी ने?

अपनी देह के बारे में एक विलक्षण अलिप्तता का भाव श्री गुरुजी के मन में था। जो देह निःशेष होने वाला है, जिस का अंततोगत्वा क्षय होना निश्चित है, शरीर के बारे में वे मन से विलग हो गए थे। केवल एक साधन के रूप में कार्य की पुष्टि के लिए वे शरीर का उपयोग कर रहे थे। एक समय पंजाब प्रांत के सहसंघचालक श्री धर्मवीरजी ने श्री गुरुजी को पत्र लिखकर भावभीनी भाषा में उनके स्वास्थ्य के संबंध में पूछताछ की। पत्रोत्तर में श्री गुरुजी ने लिखा, "आपका मुझ पर जो असीम प्रेम है, उसी के फलस्वरूप आप चिंतित दिखाई देते हैं। कृपया अपनी उत्कट भावनाओं पर काबू रखिए। मन को संयमित करें, चिंता को मन में स्थान न दें। शीघ्र ही मैं प्रवासार्थ बाहर निकल रहा हूँ। आप के सुखद सहवास का लाभ मुझे प्राप्त होगा ऐसी मैं अपेक्षा करता हूँ।"

इसी कालखंड में श्री गुरुजी किसी न किसी निमित्त हुए प्रवास की अवधि में अनेक तीर्थक्षेत्रों व देवस्थानों के दर्शन कर आए। अनेक सत्पुरुषों व साधु संतों से वे मिले। १९६८ में कैन्सर की शल्यक्रिया के पूर्व जब वे बद्रीनारायण स्थित संकीर्तन भवन के उद्-घाटन के निमित्त वहाँ पहुँचे तब झूंसी आश्रम के प्रमुख श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी भी श्री गुरुजी के साथ थे। श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी श्री गुरुजी को हृदय से चाहते थे, प्रेम करते थे। उनका श्री गुरुजी से पत्रव्यवहार भी सतत होता रहता था। दि. ५ मई १९७३ को श्री गुरुजी ने ब्रह्मचारी जी को एक हृदयस्पर्शी तथा भावोत्कट पत्र लिखा। बद्रीनारायण के इस प्रवास में ही श्री गुरुजी ने ब्रह्मकपाल तीर्थ पर स्वतः का श्राद्धकर्म अपने हाथों कर लिया था। श्री गुरुजी की दृष्टि से उन्हें आनंद विभोर होने का अवसर श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी के मुखारविन्द से भागवत कथा सुनने का

भाग्यलाभ होने पर ही प्राप्त हुआ। भागवत कथा सुनते समय उनकी आँखों से प्रेमाश्रु झरने लगते थे। इस संस्मरणीय घटना का वर्णन एक साक्षी के नाते श्री रज्जु भैया ने लिख रखा है। १९७१ के अक्टूबर में महाराष्ट्र प्रदेश का दौरा करते समय श्री गुरुजी ने कोल्हापुर, तुलजापुर, जालना के निकट स्थित श्रीराम, वेरूल स्थित घृष्णेश्वर आदि देवी-देवताओं के दर्शन लिए। साथ ही स्वामी स्वरूपानंद, नाना महाराज आर्वीकर, श्री बाबा महाराज तराणेकर आदि सत्पुरुषों से भेंट की। स्वामी स्वरूपानंद से भेंट होने के उपरांत श्री गुरुजी के मुखमंडल पर कृतार्थता का आनंद, तेज आलोकित हुआ था, ऐसा उनके साथ उपस्थित मंडली बताती हैं।

गोवा स्थित देवस्थानों के साथ ही श्री गुरुजी ने ११ मार्च १९७२ को पांडिचेरी के अरविंदाश्रम को जाकर माताजी के दर्शन किए। यह भेंट निःशब्द थी। अनूठी। वाचा के बिना मौन संभाषण। इस भेंट का बहुत ही भावभीना वर्णन श्री गुरुजी ने इन्दौर के वास्तव्य में दिया था। दि. २३ मार्च १९७२ को एक लक्षणीय धार्मिक कार्यक्रम कानपुर के दीनदयाल स्मारक विद्यालय में संपन्न हुआ। श्री गुरुजी के हाथों छह फीट ऊँची ताँबे की धातु से बनी श्री हनुमान जी की खड़ी मूर्ति विधिवत् प्रतिष्ठापित की गयी। इस समय संपूर्ण विधि-पूजा, होम हवनादि के समय श्री गुरुजी पीतांबर पहने हुए थे। इसी उत्सव में श्री गुरुजी का 'परिपूर्ण मानव' विषय पर बहुत ही संस्मरणीय भाषण हुआ। इस भाषण को सुनकर एक वृद्ध मान्यवर ने कहा, 'आज मुझे ज्ञान के महासागर का दर्शन हुआ'।

इस वर्ष ११ मार्च को ही विजया एकादशी का मुहूर्त आया। यह तो श्री गुरुजी की वर्षगाँठ का दिन था! श्री गुरुजी ने इस दिन अपना सारा समय मद्रास के रामकृष्ण आश्रम में ध्यान, नामस्मरण तथा प्रार्थना करने में व्यतीत किया। संघ समर्पित जीवन प्रारंभ होने के बाद श्री गुरुजी को कभी ध्यान धारणा हेतु एकांत का लाभ नहीं हो सका था। वे केवल समष्टि रूप भगवान् की अर्चना अहर्निश किया करते थे। किन्तु लगता है कि जीवनान्त के इस कालखंड में उनका मौलिक आध्यात्मिक आकर्षण अनंत ईश्वर की ओर अधिकाधिक बढ़ता जा रहा था। जिस कार्य को करने का आदेश उन्हें दिया गया था वह कार्य तो श्री गुरुजी ने अपना सर्वस्व अर्पण कर तत्वज्ञान और व्यवहार के परस्परावलंबी पूरक गुणों से खरे सिक्के की भाँति निभाया था। अब तो शरीर का अन्त होने का समय उनके दृष्टिपथ में था। आत्मा अपने नश्वर चोले को छोड़ने की तैयारी कर रही थी। इसीलिए उनकी गति तेज हो गयी थी। हर मनोनीत काम निपटाने या सबल हाथों में सौंपने के लिए समय से दस कदम आगे द्रुतगति से वे चल रहे थे। काल उनका पीछा कर रहा था। किन्तु श्री गुरुजी ने पीछे मुड़कर उसकी ओर देखा तक नहीं! उन्हें बहुत सारे काम निपटाने थे। नये कामों का बीजारोपण करना था! ईश्वर भी उन्हें अंगुलिनिर्देश कर बुला रहा था। किन्तु श्री गुरुजी आत्मानंद में इतने लीन थे कि शारीरिक पीड़ा होते हुए भी वे उस ओर ध्यान नहीं देते थे। उनकी यह अनुभूति अविछिन्न थी, अभंग थी। योग सम्मेलन के लिए शुभसंदेश देने हेतु उन्होंने जो पत्र भेजा था वह बहुत कुछ कह जाता है। वे लिखते हैं –

"सर्वश्रेष्ठ बात यह है कि जब मन को निर्विकार और सर्वदृष्टि से रिक्त करने की शक्ति प्राप्त होती है तब हृदय में नित्य उत्साहपूर्ण और सक्षम रहकर थकान या उबासी उत्पन्न न होने देते हुए प्रचंड कार्य करने की क्षमता प्राप्त होती है तथा मानव जीवन का देवदुर्लभ लक्ष्य प्राप्त कर असीम प्रसन्नता और अखंड आनंद की उपलब्धि होती है।" यह विवेचन तो उनके व्यक्तिगत अनुभूति का ही निचोड़ है। देहत्याग करने के एक माह पूर्व जो पत्र श्री गुरुजी ने श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी को लिखा था उसमें उनके अंतिम दिनों की मानसिकता का प्रगटीकरण होता है। श्री गुरुजी ने लिखा है, "मैं इतना भाग्यवान् नहीं हूँ कि आपके मुख से भगवान श्रीकृष्ण का लीला चरित्र संपूर्णतः श्रवण कर पाऊँ। किन्तु मन ही मन मैं भगवान का स्मरण करता रहता हूँ। यह मेरा अहोभाग्य है कि इसके अतिरिक्त मुझे कोई अन्य काम नहीं है। आराम कुर्सी पर पड़े-पड़े भगवन्नाम स्मरण का आनंद लेता रहता हूँ। यदि ऐसा न किया तो 'प्रयाणकाले कफवातपित्तः, कंठावरोधे स्मरणं कुतस्ते' ऐसी अवस्था में जीवन नौका डूब जाएगी।"

अध्यात्मवाद, जिसके बारे में उनके मन में अपार श्रद्धा थी, हिन्दू पुनरुत्थान का शाश्वत आधार है ऐसा उनका मानना था। किसी की ईश्वरभक्ति के विषय में यदि कोई स्वयंसेवक अनुदार उद्-गार निकाले, मखौल उड़ाए, तो श्री गुरुजी नाराज़ हो जाते। एक छोटी सी घटना से यह बात स्पष्ट होगी।

१९७२ की घटना है। मथुरा में ग्रीष्मकालीन संघ शिक्षा वर्ग चल रहा था। अनौपचारिक वार्तालाप के क्रम में किसी ने मत प्रदर्शन किया कि श्रीमती इंदिरा गांधी का तिरुपति जाकर दर्शन करना महज़ मत (वोट) आकर्षित करने का दिखावा मात्र है। यह आरोप 'अनुदार' (अनचैरिटेबल) है, ऐसा तुरन्त प्रत्युत्तर देकर श्री गुरुजी ने कहा, "श्रीमती गांधी पर इस प्रकार के उदात्त संस्कार हुए हैं। उनकी माता श्रीमती कमला नेहरु तो अतीव श्रद्धावान थीं। वे नित्य नियमानुसार बेलूर मठ में नन्हिं इंदिरा को साथ लेकर जाया-करती थीं। अनेक ज्येष्ठ स्वामियों को यह बात ज्ञात है। अपना समाज धर्मप्रवण है, और श्रीमती गांधी ने तिरुपति के मंदिर में जाकर देवता की परंपरागत पद्धति से जो अर्चना कि उस क्रिया से उन्होंने जनता की अध्यात्मिक श्रद्धा दृढ़कर लोकनेता का कर्तव्य ही तो निभाया है।" राजनीतिक स्पर्धा का जिसे स्पर्श भी नहीं हुआ हो ऐसे अजातशत्रु तथा निर्मल मन से ही ऐसे उद्-गार निकल सकते हैं। पं. नेहरु विदेश जाते समय इंदिरा गांधी को साथ ले जाते हैं यह आक्षेप भी अनुदार है ऐसा कहकर उन्होंने बताया कि पं. नेहरु के जीवन में उनका निकटतम स्नेही और कौन बचा है? अतः यदि वे अपनी पुत्री को साथ ले जाते हैं तो क्या गलत करते हैं?

श्री गुरुजी पर हुई शल्य चिकित्सा के ढ़ई साल बाद के कालखंड में जो ऐतिहासिक घटनाएँ देश में हुई उनके बारे में भी श्री गुरुजी सतर्क थे। अपने प्रवास में वे राष्ट्र की स्थिति से स्वयंसेवकों. कार्यकर्ताओं और नागरिकों को अवगत कराते रहते और संघकार्य की आवश्यकता पर जोर देते। किसी गुट विशेष के विरोध से विचलित न होते हुए हिन्दुओं में सद्-भाव, आत्मश्रद्धा वे अपनी वाणी से जागृत करते थे। श्री गुरुजी ने संघ पर प्रतिबंध लगाने की भाषा बोलनेवालों का मुँह अपने तर्कशुद्ध विचारों से बंद कर दिया था। उसी प्रकार अनेक विपक्षी विचारकों ने संघ के अनुकूल पैरवी करते हुए सरकारी नीति की धज्जियां उड़ा दी थीं। ऐसे मान्यवरों में भूतपूर्व सेनापति जनरल करिअप्पा, हिन्दुस्थानी आंदोलन के श्री मधु मेहता, फायनेन्शिअल एक्सप्रेस के श्री गो. म. लाड प्रभूति का समावेश है। श्री लाड ने कहा, 'संघ तो सौ नंबरी सोना है' (R.S.S. is pure gold)। इस कारण प्रतिबंध की भाषा मौन हो गयी। दिसंबर १९७० में संसद विसर्जित कर चुनाव की घोषणा कर दी गयी।

इस चुनाव में इंदिरा काँग्रेस को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। विरोधी पक्षों में निराशा छा गई। चुनाव में पराभूत होने के कारण विपक्षियों का मन बेजान सा हो गया था। श्री गुरुजी का इस जय-पराजय से कोई सरोकार नहीं था। उन्हें इस बात का खेद हुआ करता था कि चुनाव प्रचार बहुत ही निचले स्तर पर किया जाता है और परिणामतः कटुता बढ़ जाती है। रिश्वत लेने-देने पर कोई निर्बंध नहीं रह पाता। अनुचित, असैद्धान्तिक, असामाजिक तौर तरीकों को नाहक बढ़ावा मिलता है। श्री गुरुजी व्यथित होकर कहते, "चुनाव में होनेवाली इन अनैतिक बातों के कारण राष्ट्र की शक्ति, नैतिकता तथा राष्ट्रभावना का विनाश होता है। केवल चुनाव के समय स्वार्थवश होनेवाला यह व्यवहार तो निरा राष्ट्रद्रोह, देशद्रोह है। इस दिशा में कोई विचार करता दिखाई नहीं देता।"

इस दूषित चुनावी वातावरण की ओर इंगित कर संघकार्य की आवश्यकता सिद्ध करने हेतु एक कार्यकर्ता को उन्होंने लिखा, "यह सारा अनुचित, अनैतिक घटते देखकर अपनी जिम्मेदारी का अनुभव अधिक तीव्रता से होता है। इस विषाक्त वातावरण को शुद्ध कर देश को एकसंघ तथा समर्थ बनाने की क्षमता अपने संघ कार्य में ही है। इसलिए अपना सर्वस्व अर्पण कर वातावरण निर्दोष बनाने के लिए घर-घर पहुँचकर शुद्ध राष्ट्रीय भाव जागृत करते हुए राष्ट्र को एक सूत्र में गूँथना अपना प्राथमिक कर्तव्य है, इसे ध्यान में रखना आवश्यक है।"

१८.३ पूर्वी पाकिस्तान में अत्याचार के समय

चुनाव के समय उड़ी धूल अब जमीन पर स्थिर हो चुकी थी। वातावरण शांत था। किन्तु पाकिस्तानी संकट के बादल सर पर मँडराना क्रमशः शुरु हो गया था। पाकी सेनापति याह्याखान ने पूर्व पाकिस्तान (आज का बांगला देश) में पशुवत् अत्याचारों का कहर मचा दिया था। परिणामतः लाखों विस्थापित आश्रय पाने के लिए भारत आने लगे। निराश्रितों का भारत पर बोझ दिन प्रति दिन बढ़ने लगा। अवामी लीग के सशस्त्र प्रतिकार के फलस्वरूप गृह-युद्ध की स्थिति पूर्व पाकिस्तान में निर्मित हो गयी। इस पृष्ठभूमि पर संघ शिक्षा वर्ग का प्रवास करते समय श्री गुरुजी ने अपने प्रत्येक भाषण में पूर्व से हो रहे आक्रमण के कारण उपस्थित परिस्थिति के बारे में सतर्कता का इशारा दिया। २८ जून १९७१ को अपना प्रवास पूर्ण कर श्री गुरुजी नागपुर लौटे। इस समय तक परिस्थिति बहुत ही गंभीर बन चुकी थी। निर्वासितों की संख्या ३० लाख तक पहुँच चुकी थी। संघ की प्रेरणा से सहायता कार्य 'वास्तुहारा सहायता

समिति' के माध्यम से पहले ही प्रारंभ हे चुका था। संघ ने सहायता आंदोलन चलाकर, शिविरों में अनाज, वस्त्र-प्रावरण तथा औषधियों का व्यापक प्रबंध किया।

दि. ८, ९, १० जुलाई १९७१ को नागपुर में हुई केन्द्रीय कार्यकारिणी की बैठक में श्री गुरुजी ने बांगला देश की परिस्थिति के संबंध में एक प्रस्ताव पारित करवाकर शासन को आश्वासन की पूर्ति करने का आवाहन किया। सेना का प्रयोग (मिलिटरी ऍक्शन) कर अवामी लीग को सहयोग देते हुए पूर्व पाकिस्तान याह्याखान के चंगुल से मुक्त करवाने तथा विस्थापितों को पुनः पूर्व पाकिस्तान में वापस भेजने की मांग देश में जोर पकड़ रही थी। श्री गुरुजी ने स्वयंसेवकों को सतर्क रहकर देशरक्षा के कार्य में जुट जाने और अन्य प्रयत्नों में सहायता देने के लिए कहा। इस सूचनानूसार सभी क्षेत्रों में स्वयंसेवक सतर्क रहे और जनता का मनोबल बढ़ने का कार्य उन्होंने किया। अक्तूबर में जब श्री गुरुजी पंजाब गए तब उन्हें ज्ञात हुआ कि जनता का मनोबल उत्तम है, स्वयंसेवक बारीकी से हर छोटी-मोटी जानकारी रखते हुए सेवाकार्यों में रत हैं, और सेना भी तैयार खड़ी है।

अंततोगत्वा ३ दिसंबर १९७१ को पाकिस्तान का आक्रमण शुरु हुआ। इस समय नागपुर में तरुण स्वयंसेवकों का शिविर चल रहा था। श्री गुरुजी ने पाकिस्तान द्वारा किये गये आक्रमण और नागरिकों के दायित्व के संबंध में एक वक्तव्य तुरन्त प्रकाशित किया। इस वक्तव्य की लाखों प्रतियाँ स्वयंसेवकों ने घर-घर जाकर बाँटी और युद्ध प्रयत्नों के संबंध में लोगों को सजग रखने का कार्य किया। दि. ४ दिसंबर १९७१ के इस वक्तव्य में श्री गुरुजी ने कहा-

“यह युद्ध की घड़ी है। आक्रामक शत्रु सेना अपनी सीमा पर आ धमका है। इस संकट की गंभीरता को सोचकर शासनकर्ता और विभिन्न पक्षोपपक्षों के नेता परस्पर मतभेदों से ऊपर उठकर एक राष्ट्रीयत्व की भावना से संगठित हो इस आक्रमण को परास्त कर अपने राष्ट्र को विजय प्राप्त करा दें। आज इसी प्रमुख विषय को प्राथमिकता देने की आवश्यकता है, इस बात को हम समझें। पक्ष निरपेक्ष दृष्टि से राष्ट्रहित का ही सदैव चिंतन करनेवाले संघ के स्वयंसेवकों को भी मेरा यही आवाहन है।”

नागरिकों को किस तरह युद्ध प्रयत्नों में सहायता करनी चाहिए इसका भी श्री गुरुजी ने इस पत्रक में मार्गदर्शन किया था। युद्ध प्रारंभ होने के कारण इस प्रकार का वक्तव्य निकालना आवश्यक था। किन्तु इस घटना के पूर्व ही १९७० की विजयादशमी से ही वे

नागरिकों और स्वयंसेवकों को जागृत रहने का आवाहन कर रहे थे। दि. १० अक्तुबर को नागपुर के विजयादशमी के महोत्सव में, दि. २२ नवंबर को दिल्ली के स्वयंसेवकों के एकत्रीकरण में, ८ जुलाई १९७१ को नागपुर के गुरुपौर्णिमा उत्सव में, दि. २४ अक्तूबर को जम्मू की सार्वजनिक सभा में, २६ नवंबर को जयपुर के सार्वजनिक कार्यक्रम में श्री गुरुजी ने जो भाषण दिये उनका ठीक अध्ययन करने पर एक बात स्पष्ट हो जाती है कि श्री गुरुजी ने भावी आक्रमण का संकेत एक द्रष्टा के नाते जान लिया था। उनकी भविष्यवाणी खरी उतरी। देश भर से २ लाख स्वयंसेवक सहायता कार्य में सेना की पिछाड़ी सम्हाल रहे थे और जनता की सुरक्षा में भी जुटे थे। सहायता के इस कार्य में स्वयंसेवकों ने कोई कसर बाकी नहीं रखी।

बांगला देश स्वतंत्र होने पर श्री गुरुजी ने इस घटना का स्वागत अवश्य किया था किन्तु इससे खुश होकर सावधान न रहने पर धोखा हो सकता है, ऐसी चेतावनी भी दी थी। इस चेतावनी में हमें उनकी दूरदर्शिता का साक्षात्कार होता है। संयोग की बात है कि जब पाकी सेना ने बांगलादेश में शरणागति स्वीकार की, उस समय श्री गुरुजी बंगलौर में एक पत्रकार परिषद में वार्तालाप कर रहे थे। पत्रकारों ने युद्ध के बारे में तथा भविष्य में संभवनीय घटनाओं के संबंध में लगभग एक घंटे तक प्रश्नों की भरमार की। श्री गुरुजी ने इन प्रश्नों की बौछार का बड़ी प्रसन्नता से उत्तर दिया। सभी उत्तर स्पष्ट और निःसंदिग्ध थे। देशभर निरंतर भ्रमण, लोगों से भेंट, चर्चा, सूत्रों से जानकारी, प्रत्यक्ष घटनास्थन से संपर्कित जनता से सीधा संपर्क और स्थान-स्थान पर कार्यरत स्वयंसेवकों से प्राप्त समाचारों के कारण श्री गुरुजी की जानकारी अनुभव-सिद्ध थी और द्रष्टा तथा मातृभूमि से समरसता के कारण प्रश्न चाहे कितना भी पैना क्यों न हो, श्री गुरुजी का उत्तर सटीक और सत्य जानकारी से परिपूर्ण रहता था।

अन्यत्र एक स्थान पर श्री गुरुजी ने कहा कि पाकिस्तान का विभाजन हुआ, इस कारण हर्षोन्मत्त होने का कोई कारण नहीं। इतिहास में हमने पढ़ा है कि हमारे देश में बहमनी राज्य के पाँच टुकड़ों में बँट जाने के बावजूद भी उनका रुख हिन्दू सत्ता के विरुद्ध ही था। १९७१ के बाद बांगला देश में हुए परिवर्तन इस बात के परिचायक हैं कि वहाँ प्रजातंत्र तथा सैक्युलैरिजम की कब्र पर सेना की तानाशाही चली। बांगलादेश से निर्वासितों का लगातार आना और मुसलमानों की घुसपैठ अब भी शुरु है।
बांगलादेश का युद्ध समाप्त होने पर दि. २२ दिसम्बर को श्री गुरुजी ने श्रीमती इंदिरा गांधी का अभिनंदन करने हेतु उन्हें पत्र लिखा था। इस पत्र के अन्त में उन्होंने लिखा था, “देश की एकात्मता, परिस्थिति का यथार्थ संकल्प इसी तरह सदैव रहना चाहिए।

केवल आपात्कालीन स्थिति में ही नहीं अपितु राष्ट्रोत्थान के हर कार्य के समय इस संकल्प की आवश्यकता है।"

"अपने देश की गौरवशाली एकात्म शक्ति निर्माण करने में संलग्न राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इस कार्य में सदैव आपके साथ है और हमेशा रहेगा। राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते समय आप इन आवश्यकताओं की ओर ध्यान देंगी और अपनी राष्ट्रीय तथा आंतर्राष्ट्रीय नीति का निर्धारण करेंगी, ऐसा मुझे विश्वास है। आपके नेतृत्व में भारत की इसी तरह समृद्धि होती रहे, गौरव की अभिवृद्धि होती रहे यही मेरी कामना है।"

मार्च में हुई अखिल भारतीय कार्यकारी मण्डल की सभा में युद्ध में प्राप्त विजय के बारे में एक प्रस्ताव भी पारित किया गया। बांगला देश के गौरवशाली विजय पर्व के परिणामस्वरूप १९७२ में संपन्न विधान सभा चुनावों में श्रीमती इन्दिराजी के पक्ष ने सर्वाधिक यश प्राप्त किया।

युद्धबंदी के पश्चात् श्री गुरुजी का मत था कि पश्चिमी सीमा पर सेना को पर्याप्त छूट नहीं मिल पाई। १९७२ की जुलाई में पाकिस्तान के साथ जो 'शिमला समझौता' हुआ, वह तो प्राप्त विजय पर पानी फेरनेवाला ही था। इस समझौते के अनुसार भारतीय सेना द्वारा जीता हुआ सारा प्रदेश भारत-सरकार ने छोड़ दिया। सेना को वापस आना पड़ा। आजाद काश्मीर का प्रदेश भारत का अविभाज्य अंग है, ऐसी आवेशयुक्त घोषणा रक्षा मंत्री ने की थी। एक इंच भी सेना पीछे नहीं हटेगी ऐसा आश्वासन भी उन्होंने दिया था। किन्तु राजनीति का पाँसा पलट गया और शिमला में समझौता किया। १९६५ की अपेक्षा भारत का यह विजयपर्व अधिक महत्वपूर्ण था। इस विजय का लाभ समझौता वार्ता के समय राष्ट्रहित में उठाया होता तो कहा जा सकता था कि सेना के वीर जवानों को न्याय प्राप्त हुआ, उनके बलिदानों का सम्मान रखा गया। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। भारतीय सेना को सभी जीता प्रदेश छोड़कर लौटना पड़ा। श्री गुरुजी ने इस शिमला समझौते पर तीखी टिप्पणी की। युद्धबन्दी की घोषणा करते समय जो अपेक्षाएँ थीं उनमें से एक भी पूर्ण न हो पायीं। कश्मीर का प्रश्न भी खुला रहा और पाकिस्तान की अकड़ भी बनी रही। एक बार इस संदर्भ में बोलते समय श्री गुरुजी ने सत्ताधारी नेताओं की अविवेक पूर्ण नीति की कड़ी आलोतना करते हुए कहा, "शत्रु को शेष नहीं रखना चाहिए, इस रणनीति के सूत्र के अनुसार भारत का आचरण नहीं है। परिणामतः देश को संकट की खाई में बार-बार गिरना पड़ता है। जीतकर भी मुँह की खानी पड़ती है।"

इस तरह १९७१ का मसला समाप्त हुआ। शासन की राजनीति, उसके तौर तरीके दिशाहिन सिद्ध हुए। फिर भी श्री गुरुजी अपनी ओर से भारत को एकात्म रखने का प्रयास अखंड रूप से कर ही रहे थे। हिन्दू आदर्शवाद ही प्रेरणा का स्त्रोत बने- इस मंत्र का उच्चार, पुनरुच्चार करते हुए देशभर भ्रमण करते रहे। भारत के राजनीतिक जीवन में उथल-पुथल मची हुई थी। इस कारण श्री गुरुजी की आश्वासक, प्रेरक वाणी लोग श्रद्धा से सुनते थे। किन्तु यह वाणी और कितने काल तक सुनने को मिलेगी? इस प्रश्न का उत्तर तो नियति के गर्भ में ही था।

*

१९ अंतिम अभ्यास वर्ग

श्री गुरुजी का प्रवास निरंतर चल रहा था। संघ की परिपाटी के अनुसार आयोजित सभी कार्यक्रमों में वे भाग ले कर स्वयंसेवकों का मार्गदर्शन करने, राष्ट्र स्थिति के बारे में उद्-बोधन करने आदि सारे कार्यक्रम सुचारु रूप से चला रहे थे। श्री गुरुजी का उत्साह देखते ही बनता था। यह उनका स्वभाव था। जब भी वे नागपुर में होते तो विश्राम करने के स्थान पर अहर्निश कार्यरत रहा करते थे। मुम्बई के डॉ. देसाई के द्वारा श्री गुरुजी के स्वास्थ्य की जाँच निश्चित अंतराल से होती रहती। किन्तु श्री गुरुजी दिनोंदिन दुर्बल होते जा रहे थे। कभी-कभी उन्हें कमजोरी का भी अनुभव होता।

डॉ. प्रफुल्ल देसाई एलोपॅथी की दवाइयाँ और पं. रामनारायण शास्त्री म शास्त्री आयुर्वेद की दवाइयाँ देकर श्री गुरुजी का शरीरयंत्र कार्यक्षम बनाए रखने का प्रयास कर ही रहे थे। किन्तु श्री गुरुजी वास्तविकता से अवगत थे। १९७२ की बात है। श्री गुरुजी जनवरी के माह में उत्तर प्रदेश का दौरा कर रहे थे। प्रवास और कार्यक्रमों की भरमार, फिर प्रवास! विश्राम का नाम नहीं। इन अत्याधिक व्यस्त कार्यक्रमों के फलस्वरूप वे थकावट का अनुभव कर रहे थे। सेरठ से अलीगढ़ तक मोटर के प्रवास-काल में श्री गुरुजी ने कार्यकर्ताओं से कहा, "अरे भाई, कुछ तो सोचो। मुझे इधर से उधर दौड़ा रहे हो।" अपना शरीरबल दिन प्रति दिन क्षीण होता जा रहा है, ऐसी भावना उन्होंने व्यक्त की। गोवा के प्रवास में भी उन्होंने कहा, " 'मैं थकान का अनुभव कर रहा हूँ।" २५ जुलाई से १८ अगस्त तक श्री गुरुजी को इन्दौर में पं. रामनारायण शास्त्री के निवास स्थान पर विश्राम करना पड़ा। इस के बाद सितम्बर के अन्त में वे राजस्थान गये। वहाँ ४ अक्टूबर को उन्हें बुखार आया। किन्तु बुखार को साथ लेकर उन्होंने अजमेर का कार्यक्रम संपन्न किया और जोधपुर होते हुए श्री गुरुजी जयपुर पहुँचे।

जयपुर में श्री गुरुजी का स्वास्थ्य इतना बिगड़ा कि कार्यकर्ता चिंतित हो गये। श्री गुरुजी को नींद नहीं आती थी। खाँसी तो थी, शौच के लिए भी बार-बार जाना पड़ता था। थकावट बढ़ रही थी। दि.९ दिसम्बर को वे अधिक अस्वस्थ दिखाई दिये। १०३ डिग्री बुखार था। फिर भी पूर्वनियोजित बैठक स्थगित न करने की सूचना श्री गुरुजी ने दी। अब तो उनके लिए बोलना भी दूभर हो गया था। शब्दोच्चार ठीक से नहीं हो पाता था। अन्ततः प्रार्थना के पश्चात बैठक समाप्त की गयी।

श्री गुरुजी का बुखार १०५ डिग्री तक बढ़ गया था। श्री गुरुजी की यह अवस्था देखकर डॉक्टरों ने कार्यकर्ताओं को डाँट फटकार करते हुए कहा, “आप उनके स्वास्थ्य पर इतना अत्याचार क्यों कर रहे हैं?” अर्थात् इस प्रश्न का उत्तर कौन दे पाता? सौभाग्यवश दि. १० दिसम्बर को बुखार उतर गया। सुबह की चाय लेते समय श्री गुरुजी ने कार्यकर्ताओं से कहा, “अपने मन और मस्तिष्क का सन्तुलन खोने का यह मेरा पहला अवसर है। इसके पूर्व जीवन में ऐसा कभी नहीं हुआ।” श्री गुरुजी का स्वास्थ्य अब संतुलित था। सुबह के समय प्रचारकों की बैठक निर्विघ्नता से संपन्न हुई। स्थानीय कार्यकर्ता मे श्री गुरुजी को दो दिन विश्राम करने के लिए कहा किन्तु उन्होंने इस आग्रह को विनम्रता से नकारते हुए अगले प्रवास की तैयारी की। नियोजित समय पर हवाई जहाज से वे मुम्बई पहुँचे। बिदाई के समय जयपुर के संघचालक को प्रेमालिंगन देकर कार्यकर्ताओं से भी उन्होंने पूछतीछ की। इसके बाद श्री गुरुजी के चरण राजस्थान की भूमि को कभी स्पर्श नहीं कर पाए! जयपुर में जो बैठक प्रकृति ठीक न होने के कारण वे ले नहीं पाए थे उसके कारण श्री गुरुजी बहुत ही व्यथित थे। बाद में लिखे पत्र में उन्होंने इस व्यथा को व्यक्त किया।

किन्तु इस प्रकार स्वास्थ्य के कारण कब तक अवरोध सहा जा सकेगा? यह प्रश्न श्री गुरुजी के मन में बार-बार उठता। निरंतर प्रवास कर कार्यक्रम पूर्ण करने की शक्ति अब उनमें शेष नहीं थी। डॉ. देसाई की दी हुई स्वास्थ्य की काल मर्यादा अब समाप्त होने जा रही थी। तब श्री गुरुजी ने निश्चय किया कि हिन्दू परंपरा के अनुसार अपने प्रमुख कार्यकर्ताओं से आखिरी बार बातचीत कर ली जाय। यह विचार मन में अंकुरित होते ही श्री गुरुजी ने महाराष्ट्र के ठाणे नगर में अखिल भारतीय कार्यकर्ताओं का एक अभ्यास वर्ग आयोजित करने का निश्चय किया। प्रत्यक्ष संघकार्य में रत प्रचारक, अधिकारी तथा राष्ट्र जीवन के सभी क्षेत्रों में कार्य कर रहे स्वयंसेवकों को भी इस अभ्यास वर्ग के लिए आमंत्रित किया गया था। दि. २८ अक्तूबर से ३ नवंबर तक संपन्न हुए इस वर्ग में उपस्थित कई कार्यकर्ता श्री गुरुजी की अवस्था देखकर अत्यन्त दुःखी हुए थे। मन अशुभ कल्पना से कंपित हो उठा था। श्री गुरुजी जिस मानसिक पीड़ा और व्याकुलता से संघ की कार्यपूर्ति के संबंध में अपने विचार रखते उसे सुनकर ऐसा प्रतित हुआ मानों ये उनके अंतिम विचार हैं! यह उनका देहरूप अंतिमं दर्शन है! यह अमृत वाणी, यह देवदुर्लभ नेतृत्व अब मन के स्मृतिमंदिर में समाधिस्थ होने जा रहा है। कार्यकर्ताओं के हृदयों को हिला देनेवाली यह बैठक थी। सभी व्यथित थे।

१९.१ व्यापक चिंतन मंथन

ठाणे का वर्ग, जो पूज्य पांडुरंग शास्त्री आठवले जी के तत्वज्ञान विद्यापीठ में सम्पन्न हुआ था, मानो किसी गुरु ने पार्थिव देह का त्याग कर अनंत में विलीन होने के पूर्व अपने शिष्यों को तत्वबोध, दिशाबोध तथा शंकाओं का अंतिम निराकरण करने हेतु ही लिया था। संघ का हिन्दू जीवनादर्श पर अधिष्ठित शाश्वत विचार ही श्री गुरुजी ने स्पष्टरूप से रखा। आधुनिक कहलानेवाली विचारधारा तथा वैश्विक संदर्भ में हिन्दू जीवनविचार कितना महत्वपूर्ण, आचरणीय, शाश्वत, बलशाली तथा सर्वोपरि सुख संपदा प्रदान करनेवाला है, यह बात तुलनात्मक पद्धति से उदाहरण और संदर्भ देते हुए श्री गुरुजी ने इतनी पारदर्शिता से समझाई कि श्रोता आश्चर्यमुग्ध होकर रह गये। हिन्दू जीवन पद्धति में निहित मानव कल्याण की क्षमता के बारे में कोई संदेह शेष नहीं रहा। कार्यकर्ता निःशंक हो गये। श्री गुरुजी ने प्रतिपादन किया कि इसी तत्व की नींव पर आधारित जीवन के हर कार्यक्षेत्र का प्रारूप बनाया जाय।

इस वर्ग में सर्वप्रथम प्रश्न जो उपस्थित किया गया वह यह था कि हम 'हिन्दू' 'हिन्दू' का निरंतर उद्-घोष किस लिए करते हैं? देश की परिस्थिति तथा वातावरण की ओर देखते हुए 'हिन्दू' शब्द का त्याग क्यों न करें? 'भारतीय' या अन्य किसी अनुरूप शब्द को हम क्यों न अपनाएं? ऐसा करने से संघ पर सांप्रदायिकता का आरोप नहीं लग पाएगा। संकुचित और सांप्रदायिक इन विशेषणों का प्रयोग समाज में हमेशा सुनाई देता है, इस कारण यह शंका विचारार्थ रखी गयी। श्री गुरुजी ने स्वयं इस प्रश्न को उठाया और परामर्श के रूप में कहा, "यह सत्य है कि 'हिन्दू' के संबंध में अनेक प्रकार के भ्रम निर्माण करने के प्रयास किये गये हैं। कुछ क्षेत्रों में विभिन्न स्वार्थ से प्रेरित होकर हिन्दू को मुस्लिम विरोधी, क्रिश्चियन विरोधी, जैन और हरिजन विरोधी मानकर अपप्रचार किया जाता है। यह प्रचार किसी ठोस जानकारी पर आधारित नहीं होता। धर्म, संस्कृति, इतिहास का अध्ययन कर सोचा होता तो ऐसे असत्य आरोप नहीं मढ़े जाते। इस्लाम और ईसाई पंथ पैदा होने के पूर्व से ही हिन्दू विचारधारा और जीवनपद्धति का अस्तित्व है। फिर हिन्दू का अर्थ मुस्लिम-विरोधी कैसे हो सकता हैं? सिख, जैन आदि मत तो 'हिन्दू' क् अंतर्गत ही हैं। स्वतः को हिन्दू न माननेवाले लोगों के बारे में तो यही कहना पड़ेगा कि वे स्वयं को हिन्दू न मानकर अपने ही हाथ-पाँव काटने पर तुले हुए हैं। हिन्दू किसी का भी विरोधी नहीं है, हिन्दू विचार प्रणाली पूर्णतः भावात्मक (Positive) प्रणाली है, न कि निषेधात्मक (Negative)।"

इस देश के राष्ट्र जीवन के लिए 'हिन्दू' के स्थान पर कोई अन्य पर्यायवाची

शब्द प्रयुक्त किया जाय ऐसा कुछ लोगों का मानना है। इस संबंध में श्री गुरुजी ने कहा, "मान लिजिए कि कोई पर्यायवाची शब्द ढूँढ भी लिया। किन्तु क्या इस शब्द के काराँ मूल अर्थ में परिवर्तन हो जाएगा? क्या हिन्दू के मूलार्थ में बदलाव आएगा? 'आर्य' शब्द का अर्थ भी वही है जो 'हिन्दू' शब्द से ध्वनित होता है। कुछ लोग कहते हैं कि 'भारतीय' शब्द का प्रयोग हो, किन्तु इस शब्द को चाहे जैसा झुकाओ, मरोड़ो, निचोड़ वही निकलेगा जो 'हिन्दू' शब्द में है। फिर निःसंदिग्ध होकर हम 'हिन्दू' शब्द का ही प्रयोग क्यों न करे? 'हिन्दू' शब्द अब प्रचलित हो गया है। हम जब अपने राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति का विचार करते हैं तब वह हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू समाज के संरक्षण का ही अर्थबोध कराता है। यदि हमने 'हिन्दू' शब्द को त्याग दिया तो 'राष्ट्र' नाम की कोई चीज, कोई अस्मिता शेष नहीं रहेगी। अपना समाज दो पाँवों पर चलनेवाले मनुष्य प्राणियों का समूह ही रह जाएगा। यदि हिन्दू शब्द के बारे में किसी के मन में शंका हो तो उसकी वाणी में बल नहीं रहेगा। इस कारण संपूर्ण निश्चय के साथ हमें कहना है कि "हम हिन्दू हैं। यह हमारा हिन्दू धर्म, संस्कृति और समाज है।" इसी नींव पर हमारा राष्ट्र सदियों से खड़ा है। इसी राष्ट्र का जीवन भव्य, दिव्य, स्वतंत्र तथा समर्थ बनाने के लिए ही हमारा जन्म हुआ है। इस विषय में हम कोई समझौता नहीं करना चाहते।"

संघकार्य के स्वरूप का वर्णन करते हिए श्री गुरुजी ने कहा, "संघ का कार्य सर्वव्यापी है। किन्तु सर्वव्यापकता किसे कहते हैं? प्रकाश सर्वव्यापक होता है किन्तु प्रकृति के सभी कार्य वह सम्पन्न नहीं करता। प्रकाश अंधःकार का नाश कर मार्ग दिखाता है। हमें इस तत्व को भलीभांति समझ लेना चाहिए। अन्यथा गड़बड़ होगी। प्रत्येक कार्य में यदि हम संघ के नाते हस्तक्षेप करने लगे तो हमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए एक-एक प्रबंध लिखना पड़ेगा। यदि ऐसा हुआ तो समाज को संगठित करने का जो मूलभूत कार्य है, वह बंद पड़ जाएगा। हम केवल प्रबंधों के धनी बने रहेंगे।इस कारण हमने राष्ट्रजीवन का एक व्यापक सिद्धान्त सामने रखा है। और इस सिद्धान्त के आधार पर ही हर क्षेत्र के कार्यकर्ता प्रत्येक कार्य की रचना करें।"

भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धांतो की चर्चा करते हुए श्री गुरुजी ने कहा, "अपनी संस्कृति में संपूर्ण समाज को एक जीवमान (जैविक) शरीर के रूप में माना गया है। सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपाद्" – याने हजारों मस्तक, हजारों आँखें, हजारों पाँववाला पुरुष, ऐसा वर्णन किया है। मूलतः यह ईश्वर का ही वर्णन है। किन्तु हमारे लिए तो समाज ही परमेश्वर है। यह एक विराट् समाजपुरुष है।

"इस समाजपुरुष के अनेक मुख, अनेक हाथ, आँखें, पाँव हैं। इसी विराट् समाजपुरुष की आराधना करने के लिए हमें बताया गया है। दूसरी बात यह है कि इस विराट् मानव शरीर के प्रत्येक अंश में एक ही चैतन्य प्रवाहित होता है। इस चेतना शक्ति को चाहे जो नाम दो, कोई फर्क नहीं पड़ता। सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात उसकी अनुभूति की है। इस चैतन्य की अनुभूति का साक्षात्कार होने से ही हमारे व्यवहार-कामकाज-क्रियाकलाप अपेक्षानुसार सुचारु रूप से चल सकेंगे। आर्थिक दृष्टि से उत्पादित उपभोग की सामग्री इस विराट् पुरुष के लिए ही है, ऐसा हम सोचें। समाज की विराट् पुरुष के रूप कल्पना कर उसमें ओतप्रोत चिरंतन अस्तित्व की अनुभूति करना हमारे भारतीय चिंतन की विशेषता है।"

"चिंतन की दिशा से यदि हम भटक गए तो संपूर्ण मानव जाति के सुख की कल्पना सफल नहीं होगी। एक सीधा प्रश्न पूछा जा सकता है कि जो कुछ उपलब्ध है वह सब को प्राप्त हो ऐसा विचार भला क्यों किया जाय? केवल अपने तक सीमित विचार क्यों न करें? दूसरे को सुख मिले या दुख, हमें चिंता करने का क्या कारण है? इन दुःखियों का हमसे क्या संबंध है? भारत के बाहरी देशों की भौतिक विचारप्रणाली के अनुसार यदि हम यह मान लें कि हम पंचमहाभूतों से बने भिन्न-भिन्न पिंड मात्र हैं, मुझमें और अन्य जीवों में कोई आंतरिक संबंध महां है, तब ऐसी स्थिति में दूसरों के सुख-दुःख की भावना अपने मन में उत्पन्न होने का कोई कारण नहीं।"

अन्य देशों में से प्रचलित विचार प्रणालियों में निहित अपूर्णता स्पष्ट करते हुए श्री गुरुजी मे कहा, "आधुनिक विश्व की विचार प्रणालियाँ भी यही मानती हैं कि संपूर्ण समाज के कल्याण का विचार हमें करना चाहिए। उन्हें यह पूछने की आवश्यकता है कि उनके चिंतन में एकत्व की जो कल्पना है, उसका आधार क्या है? व्यक्ति व्यक्ति में वे किस प्रकार का नाता मानते हैं? उनका परस्पर संबंध क्या, कैसा और क्यों है? दूसरों के सुख-दुःख की समान अनुभूति का कौन सा आधार है? महत्व का आधार देनेवाला वह सूत्र कौन सा है? विदेशों की या पश्चिमी देशों की विचारधारा में सैद्धातिक रूप से इस विषय में कोई ठोस विचार नहीं है। भारतबाह्य देशों में एक ही तत्व मान्य किया गया है कि सब लोग अलग-अलग उत्पन्न हुए हैं और एक-दूजे का कोई आंतरिक संबंध नहीं है। इस कारण एक के द्वारा दूसरे की चिंता करने का कोई कारण नहीं है। जब हर कोई भिन्न हो तो भला एक दूजे की चिन्ता क्यों करें? इस विचारधारा में 'समाज' शब्द का प्रयोग अवश्य किया गया है किन्तु 'समाज' का अर्थ, अनेक लोगों का स्वार्थ का एकत्रीकरण ही माना गया है। इसी मर्यादित दृष्टिकोण से स्वार्थपूर्ति के लिए परस्पर समझौता हुआ और समाज बना। विदेश की विचारधारा में

समझौता है, किन्तु आंतरिक दृष्टि से सब को एक सूत्र में गूँथनेवाला, समान सुख-दुःख की चेतना का अनुभव करा देनेवाला सूत्र उनके पास नहीं है।"

"यह सूत्र ही अपना अस्तित्व है। अपने अस्तित्व में ही यह सूत्र निहित है। हमारे शरीर, इच्छा-आकांक्षाएँ, चाहे भिन्न-भिन्न क्यों न हों, सब के अंदर एक ही चिरंतन अस्तित्व है। मूलगामी एकता ता वही प्रमुख कारण है। इसी मौलिक तत्व के कारण ही संबंध के भाव जागते हैं। प्रेम तथा द्वेष की भावना भी इसी एकात्म भाव के आविष्कार हैं। सबका मिलकर एक अस्तित्व-'समाज' का ही रूप हैता है, इस बात को हम ध्यान में रखें।"

श्री गुरुजी ने आगे कहा, "इस एकात्मता या एकत्व की भावना के हृदय में विराजमान होते ही 'समाज' का अस्तित्व बनता है और यह लमाज सिखी कैसे हो सकेगा यह विचार जागृत होता है। इसी भाव के फलस्वरूप हम ऐसी 'व्यवस्था' निर्माण करने का प्रयास करते हैं जीसमें सबका समान स्वार्थ हो। इस प्रक्रिया में हमें स्वतः का स्वार्थ छोड़ना पड़ेगा। अपने संपूर्ण अस्तित्व के विरुद्ध तथा स्वत्व के विपरीत होने के कारण स्वार्थसंग्रह करना आत्महत्या के समकक्ष पाप ही होगा। इसलिए हमें स्वार्थत्याग करना होगा। स्वार्थत्याग में ही हमारा हित है।"

"यह विचार जिस जीवन सिद्धान्त में अंतर्भूत हैं उस जीवनप्रणाली का नाम 'हिन्दू' जीवन प्रणाली है। संपूर्ण जगत् में इतनी गहराई से व्यक्ति विशेष के अस्तित्व के आधार की खोज अन्यत्र कहीं दिखाई नहीं देती। हिन्दुत्व की यह विश्वमानव को दी हुई देन है। इसी आधार पर संपूर्ण समाज की धारणा होती है। व्यक्ति-व्यक्ति के अंतःकरण में इस एकात्मता को जागृत करना हमारा पहला कर्तव्य है।"

"सैंकड़ों वर्षों के इतिहास ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि इसी प्रकार की विचारप्रणाली में स्थिरता है। संसार में मानवकल्याण के लिए जो भिन्न-भिन्न विचार चल रहे हैं वे लंबे समय तक टिकनेवाले नहीं हैं। जागतिक परिस्थिति में बदलाव आते ही कालप्रवाह की प्रबल लहरों के थपेड़ों के प्रहार जब आघात करते हैं तब वे या तो बदल जाते हैं या नष्ट है जाते हैं। हिन्दू जीवनपद्धति यह मानती है कि सभी में एक सत् तत्व विराजमान है और सबको जोड़नेवाली वह कड़ी है। एक ही अस्तित्व भिन्न-भिन्न रूपों में अभिव्यक्त होता है, इस कारण प्रत्येक व्यक्ति मात्र को उसकी पसन्द और चाह के अनुरुप उत्तम जीवन जीने की सुविधाएँ, साधन आदि प्राप्त करा देना हमारा कर्तव्य है।

यह हमारा स्थायी विचार है। इसी कर्तव्य भावना के परिणामस्वरूप मनुष्य विचार करेगा कि हम आवश्यकता से अधिक जीवनावश्यक वस्तुओं का संग्रह न करें, क्योंकि आवश्यकता पूर्ति से अधिक साधनों पर हमारा अधिकार नहीं है, समाज का अधिकार है। जो अधिक संग्रह होगा वह समाज के हितार्थ ही होगा। इस धारणा को दृढ़ करना ही हिन्दू विचार जागृति का दूसरा नाम है।"

"अन्य राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था पद्धतियों का विचार इसी निकष पर हमें करना होगा। समाज जीवन की मूल रचना का आधार भी यही है। व्यवस्था चाहे जो हो, समाज जीवन की धारणा ही उलका उद्देश्य है। किन्तु दुर्भाग्य से हमने इस मूलभूत सिद्धांत को त्याग दिया और उसके दुष्परिणाम हमारे सामने हैं। दरिद्रता चारों ओर फैली दिखाई देती है। लोग भ्रम के शिकार होकर इस का दोष हिन्दू जीवन पद्धति के मत्थे मढ़ते हैं। किन्तु यह सत्य नहीं है। हिन्दू जीवन पद्धति का विस्मरण होने के कारण ही यह परिस्थिति निर्माण हुई है। अछूत वृत्ति (स्पृश्यास्पृश्य भाव) को हिन्दू जीवनपद्धति का परिणाम मानना गलत बात है। हिन्दू दीवन पद्धति का त्याग तथा विस्मरण इन दोषों की जड़ है, मूल कारण है।"

"समाज व्यवस्था का विचार बुद्धिमान् चिंतकों के लिए चर्चा और वादविवाद का विषय है। संघ का अर्थात् हिन्दूओं का इस संबंध में क्या विचार है, इसका विवेचन करते हुए श्री गुरुजी ने कहा, "ऐसी सामान्य धारणा दिखाई देती है कि जिसे आधुनिक (मॉडर्न) जीवन कहा जाता है वह सुखपूर्ण है। साथ ही इस सुख को अधिकाधिक मात्रा में पाने की स्पर्धा भी क्रियाशील है। सुख देनेवाले साधनों को प्राप्त करने की होड़ लगी हुई हम देखते हैं। इन सुखोपभोगियों को अनिर्बंधित, निरंकुश समाज जिसे 'स्वैर समाज' कहते हैं, चाहिए। इसे उन्नत समाज का लक्षण माना जाता है। किन्तु हमें यह समझ लेना चाहिए कि 'परमिसिव' विचार की छाया में 'समाज' नाम की वस्तु ही समाप्त हो जाती है। शेष बचती है केवल 'प्रतिस्पर्धा सिद्धान्त'। इसे हम निरंकुश उपभोग के लिए एकत्रीकरण हेतु किया हुआ समझौता कह सकते हैं। अर्थात् 'समाज' समझौते का फल ही माना जाएगा।"

"इस सामाजिक समझौते के साथ स्पर्धा जुडी हुई है। लोगों का मानना है कि स्वस्थ स्पर्धा के कारण प्रगति होती है। किन्तु मेरी दृष्टि से कोई स्पर्धा स्वस्थ (Healthy) नहीं होती। निःस्वार्थ स्पर्धा का होना असंभव है। प्रारंभ में विशुद्ध प्रतीत होनेवाली स्पर्धा में शीघ्र ही विकृतियाँ दिखाई देने लगती हैं। स्वस्थ स्पर्धा अपने को अच्छा

बनने की प्रेरणा देती है किन्तु स्वतः को अच्छा बनाने की अपेक्षा दूसरों को बुरा बनाने का प्रयत्न होता है। स्वतः को ऊँची बनाने की बजाय दूसरों को नीचे खींचने की स्पर्धा शुरु हो जाती है। इस स्पर्धा का अन्त परस्पर संघर्ष में होता है।"

"आज विश्व में जो संघर्ष हो रहे हैं, उनकी जड़ में यह स्पर्धा की भावना ही है। दूसरों का सुख छीनकर, नष्टकर, स्वतः को समृद्ध करने की इच्छा ही इन संघर्षों का मूल कारण है। पाश्चात्य देशों में उत्पन्न 'स्वैराचरण' और 'प्रतिस्पर्धा' की तत्वहीन भावनाओं से मनुष्य को सुख प्राप्त होना असंभव है।"

"इसलिए हमें मूलगामी विचार करना पड़ेगा कि आखिर मनुष्य जीवन का लक्ष्य का है? क्या ऐशोआराम, भौतिक सुखोपभोग ही मनुष्य जीवन के एक मात्र लक्ष्य हैं? सामान्यतः सबका एक ही मत है कि सुख की प्राप्ति ही मनुष्य का प्रधान लक्ष्य है। किन्तु सुख क्षीण हुआ कि वह दुख का कारण बन जाता है। इसलिए मनुष्य चाहता है कि सुख चिरंतन हो। सुखपूर्ण जीवन का भी कभी अन्त न हो। चिरंतन सुख की यह इच्छा मनुष्य को आकर्षित करती रहती है।"

"मनुष्य शरीरधारी होने के कारण शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति उसे करनी ही पड़ती है। इन आवश्यकताओं में ऐसे अनेक उपभोग हैं जिन्हें अमान्य या तिरस्कृत नहीं माना जा सकता। विचारकों कामत हैं कि शरीर तथा मन द्वारा उपभोग की प्रवृत्ति को नकारने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यक यह है कि इस प्रवृत्ति का समाधान करने में ही मनुष्य स्वतः को डुबो न दे। यह सुख सर्वोपरि नहीं है और त्याज्य भी नहीं है।"

"सुखी होना ही मनुष्य का लक्ष्य है। प्रत्येक जीव मात्र स्थिर सुख की कामना करता है। सुख के अमरत्व का स्वप्न वह संजोता है। किन्तु चिरंतन सुख की कल्पना सामान्य मनुष्य नहीं कर पाता। अपनी इंद्रियों की वसना तृप्त करने में ही सुख निहित है, ऐसा मानकर मनुष्य इस सुख के पीछे भागता रहता है। मनुष्य विचारशील प्राणी होने के कारण इंद्रिय सुख के समाधान के लिए वह नये-नये उपायों, साधनों की खोज करता रहता है। मनुष्य का पहला प्रयत्न अन्य प्राणियों के समान ही होता है। इंद्रियों का सुख। ईश्वर ने इंद्रियों की रचना ही ऐसी की है कि वे सुख के लिए बाहर की ओर दौड़ती रहती हैं। इस कारण अंदर मुड़कर, अंतर्मुख होकर सच्चे सुख की खोज करने के लिए वह तैयार नहीं होता। विचार करने पर ऐसा दिखाई देता है कि इंद्रियजन्य सुख दुःखान्त होते हैं। इसीलिए मनुष्य विचार करता है कि चूंकि मुझमें चिरंतन-

शाश्वत सुख की इच्छा विद्यमान है तो फिर वह कहीं न कहीं होना ही चाहिए। यदि वह बाहर न हो तो भीतर होगा ही। जिसे सच्चा सुख माना गया है, क्या वह मनुष्य के शरीरांतर्गत है? मन या हृदय में है? ऐसा प्रश्न उसके मन में उत्पन्न होता है। मनुष्य अनुभव करता है कि अनेक चीजें हैं जो तात्कालिक रूप में उपभोग की इच्छा तो अवश्य पूर्ण करती हैं किन्तु कुछ समय बाद ही उन्हें पाने की भावना पुनः उत्पन्न होती है। तात्कालिक तृप्ति और अनन्त इच्छा, यही इन्द्रिय सुखों का लक्षण है। यह सुख तात्कालिक होता है। बढ़ते हुए उपभोग के साथ सुख की आकांक्षा-अभिलाषा भी वृद्धिंगत होती है और जहाँ अभिलाषा है, कामना है, वहीं सुख कैसे मिलेगा? मनुष्य पुनः विचार करता है कि यदि अभिलाषा की तृप्ति में सुख नहीं तो आखिर वह है कहाँ? "

"इस संबंध में भारतीय विचारकों का मत है कि सुख अपने अंदर ही है। अपने भीतरी व्यक्तित्व में निहित है। बाह्य वस्तुओं में सुख नहीं है। वास्तविक सुख प्राप्त करने हेतु अपने पूर्वजों ने गंभीर चिंतन तथा आत्मानुभव के आधार पर कुछ मार्गदर्शक बातें बताई हैं। सर्वप्रथम एक तत्व निश्चित रूप से सामने रखते हुए उन्होंने कहा कि जो मन अस्वस्थ और अस्थिर है, उसे सुख का अनुभव कभी नहीं होगा। सुख प्राप्ति के लिए मन का शांत, स्थिर होना आवश्यक है। मन की सतह पर उठनेवाली तरंगों को उठने से रोकना होगा। पानी पर जब तरंग उठती हैं, लहरें निर्माण होती हैं, तब उसमें हमारा चोहरा दिखाई नहीं देता। पानी की सतह पर जब कोई तरंग नहीं उठती तब हमें सब कुछ दिखाई देता है। मन की भी यही स्थिति है। मन के स्थिर होने पर ही अपना मूल रूप उसमें दिखाई देता है। मन यदि अस्थिर हो तो सुख की अनुभूति असंभव है। इसलिए प्रथम मन को शांत करना आवश्यक है।"

"इस आधार पर हम विचार करें कि उन प्रगतिशील देशों में, जहाँ स्पर्धा, ईर्ष्या, द्वेष कटुता तथा दूसरों के सुख को देखकर उत्पन्न होती शत्रुता विद्यमान है, क्या वहाँ मनुष्य का मन शांत और स्थिर रह सकता है? ऐसी स्थिति में वासनाओं का ज्वारभाटा रोका नहीं जा सकता? फिर सुख कैसे मिलेगा? इसलिए हमें भारत में शिक्षा दी जाती है कि दूसरे का सुख-ऐश्वर्य देख कर उसके बारे में मन में ईर्ष्या का भाव उत्पन्न न हो। उसका अभिनंदन करते हुए हम अपनी प्रगति का प्रयत्न करें। दूसरों को दुःखी कर स्वयं सुखी बनने का विचार हमारे मन को अशांत बना देगा। शरीर के सुख के लिए भौतिक सामग्री जुटाते समय अन्य देशों का अंधानुकरण करना उचित न होगा। साथ ही दूसरों के दुःख में स्वतः का सुख ढूँढ़ना भी गलत है। दूसरे का दुःख देखकर अपने मन में करुणा उत्पन्न होनी चाहिए, दुःखी को सुखी बनाने का

प्रयत्न होना चाहिए। ऐसा करने से एक विशेष संतुष्टि का अनूठा अनुभव और सुख तो प्राप्त होता ही है, किन्तु साथ ही सुख की निःस्तब्ध अवस्था भी प्राप्त होगी। स्पर्धात्मक जीवन में यह विशुद्ध सुख नहीं मिल सकता।"

'स्वैर समाज' तो सभी दृष्टि से हानिकारक है। नियमविहीन अवस्था का वर्णन तो हमारे पुराणों में भी है। किन्तु पौराणिक काल में ऐसा अनुभव हुआ कि नियमहीनता से अनाचार-दुराचार ही बढ़ा। इसीलिए ऐसा सोचा गया कि नियम बनाकर उन नियमों के अनुसार ही मनुष्य को चलाना चाहिए। 'स्वैर समाज' अनाचार को बढ़ावा देनेवाली और मनुष्य को मनुष्य का शत्रु बनानेवाली है।

"इसीलिए हमारे शास्त्रों और पूर्वजों ने बताया है कि असीम उपभोग की लालसा और उसके तुष्टीकरण के लिए स्पर्धा या होड़ से सुख प्राप्त नहीं होता। इस के लिए जीवन में संयम की आवश्यकता है। व्यक्ति और समाज के नाते भी संयम आवश्यक है। समाज को संयमित रखना आसान काम नहीं है। इसके लिए अपने यहाँ चार पुरुषार्थों की कल्पना की गयी है। व्यक्ति और समाज की दृष्टि से संयमशील जीवन तथा कर्तव्यों का विचार किया गया है। धर्म व्यक्ति और समाज का नियंत्रण करता है। धर्म द्वारा नियंत्रित होने से ही अर्थ और काम की आराधना होती है और इसीसिए उपभोग, सत्ता, धन, संपत्ति तथा ऐशो-आराम की साधना धर्म द्वारा ही नियंत्रित रहनी चाहिए और यह नियंत्रण प्रस्थापित करते समय मोक्ष की कामना निरंतर मन में रहने से अपने को सुखमय स्वरूप की मूल अनुभूति होगी। इस कामना का अर्थ है, चौथा पुरुषार्थ मोक्ष। पहले और चौथे पुरुषार्थ के नियंत्रण में ही हमारा जीवन व्यतीत हो। उपभोग के साधन इन दो पुरुषार्थों के नियंत्रण में रहने चाहिए। नदी का पानी दो किनारों के बीच से बहता है, इसी कारण हम उसका उपयोग कर पाते हैं; और नदी जब किनारे की मर्यादा को लाँघकर बहने लगती है तब वह विध्वंस का कारण बनती है। उसी प्रकार उपभोग की नदी का भी धर्म और मोक्ष दो किनारों के बीच से बहना ही सुखकारक होगा। इसीलिए प्रथम और चतुर्थ पुरुषार्थ के बीच से बहनेवाली जीवनधारा निश्चित कर व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन से संबंधित भौतिक उपभोगों का विचार करना चाहिए। साथ ही उसके अनुसार सामाजिक व्यवस्था होनी चाहिए।"

"यह कल्पना संपूर्ण मानव जाति को सुख देनेवाली है। स्पर्धा से उत्पन्न अनिष्टता पर रोक लगाकर तथा भौतिक सुखों पर संयम का अंकुश रखते हुए अंतिम लक्ष्य की ओर ध्यान केन्द्रित कर हमने अपना जीवन व्यतीत किया तो ही हम वास्तविक सुख के

धनी हो सकते हैं। व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में संतोष और सुख पाने का यही एक योग्य मार्ग है। यह विचार यदि हमें मान्य है तो ही हम आज की परिस्थिति में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्य समूचे संसार के सम्मुख रखने में समर्थ हो सकेंगे।"

*

२० महाप्रयाण

ठाणे का अभ्यास वर्ग सुचारु रूप से चल रहा था। श्री गुरुजी स्वास्थ्य ठीक न होते हुए भी कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन कर रहे थे। कार्यकर्ता मंत्रमुग्ध होकर श्री गुरुजी की अमृतवाणी सुनते और चाहते कि यह मेधावी ज्ञानप्रपात अपने मस्तिष्क पर इसी करह बरसता रहे। किन्तु श्री गुरुजी की शारीरिक अस्वस्थता और पीड़ा का विचार मन में आते ही कार्यकर्ताओं के हृदय दुःख से भर जाते थे। वे मन ही मन प्रार्थना करते कि श्री गुरुजी को स्वास्थ्यलाभ हो और देश को उनके मार्गदर्शन से लाभान्वित होने का भाग्य प्राप्त हो। किन्तु इच्छा और इच्छाओं की पूर्ति के बीच नियति का अदृश्य खेल चलता रहता है। इस खेल के नियम मनुष्य के नियंत्रण में नहीं होते। ईश्वरेच्छा बलीयसी! जो सत्य है उसे मानते, स्वीकारते हुए मनुष्य को सत्य की ओर ही चलना पड़ता है।

ठाणे का अभ्यासवर्ग जब चल रहा था तब श्री गुरुजी प्रतिदिन मुम्बई जाकर चाचा रुग्णालय में डीप एक्स-रे का उपचार भी ले रहे थे। बैठक में बोलते समय श्री गुरुजी को गले में बहुत पीड़ा होती थी। असहनीय दर्द होता था। वे जानते थे कि उनके पास समय कम और काम ज्यादा है। इस धरती से उठने के पूर्व उन्हें अधिकाधिक विचार व्यक्त करने का अवसर मिलना आवश्यक है यह जानकर उन्होंने शारीरिक वेदनाओं को निगलकर जो कहना था सो कह डाला। ठाणे का वर्ग समाप्त होने के पश्चात् दि. ११ तक वे मुम्बई में ही रहे।

डीप एक्स-रे के उपचार के परिणामस्वरूप श्री गुरुजी का गला भुँज सा गया था। बोलना और भोजन करना कठिण हो गया था। डॉक्टरों ने सलाह दी कि श्री गुरुजी 'मौन' धारण करें। भला यह कैसे संभव था? श्रद्धालु परिचित गण, कार्यकर्ता अन्य स्थानों से आएँ तो उन्हें बोलना पड़ता था। श्री गुरुजी भेंट करने हेतु आए कार्यकर्ताओं, अभ्यागतों की पूछताछ करते थे। यह उनकी पद्धति थी। ऐसे समय वे अपनी व्यक्तिगत वेदनाओं की ओर दुर्लक्ष किया करते थे। इसी कालखंड में तीन प्रांतों के प्रवास स्थगित कर दिये गये थे। बोल नहीं पाते, लिख तो सकते हैं। इस कारण श्री गुरुजी ने देश के कोने-कोने तक, दूरदराज स्थानों तक पहुँचनेवाले अनगिनत पत्र लिखे।

श्री गुरुजी 'डॉ. मुंजे जन्म शताब्दि समिति' के अध्यक्ष थे। स्वतः के हस्ताक्षर में लिखे परिपत्रक भेज कर कार्य को श्री गुरुजी ने गति प्रदान की। डॉ. मुंजे की मूर्ति का अनावरण करने की प्रार्थना करनेवाला पत्र जनरल करिआप्पा को भेजा।

स्मारक समिति में सम्मिलित होने के लिए जिन-जिन लोगों से प्रार्थना की गई थी उनमें से एक प्रमुख नाम श्री राजाजी का था। श्री राजाजी ने प्रथम यह कहते हुए इन्कार कर दिया कि धनसंग्रह के मामलों में उनके अब तक के अनुभव बहुत कटु रहे हैं। किंतु ज्योंहि उन्हें श्री गुरुजी का व्यक्तिगत पत्र दिया गया त्योंहि उन्होंने अपनी स्वीकृति प्रदान करते हुए कहा कि "यदि श्री गोलवलकर उस समिति में हैं तो मुझे पूरा विश्वास है कि धन के व्ययादि की व्यवस्था उचित ढंग से ही की जायेगी।" यह घटना स्वयं इतना कुछ कह जाती है कि उसके विशेष महत्व को अलग से समझाने की कोई आवश्यकता नहीं।

गले का कष्ट धीरे-धीरे कम हुआ। भोजन भी बिना वेदना के होने लगा। स्वास्थ्य में दृष्टिगोचर इस सुधार को देखते ही श्री गुरुजी का मन प्रवास करने के लिए तैयार हो गया। वे प्रसन्न हुए, मानों प्रवास ही उनका जीवन हो!

श्री गुरुजी ने एक बार विनोद में कहा था, "रेल का डिब्बा ही मेरा पता और मेरे चारों ओर फैला समाज ही मेरा घर है।" विनोद में कही बातें भी उनके जीवन में सत्य का प्रतीक थीं। नित्य प्रवास, नित्य जनसंपर्क तथा राषट्रहितकारी उद्-बोधन ही उनका जीवनकार्य था।

श्री गुरुजी का प्रवास पुनः प्रारंभ हुआ। दि. २ दिसंबर से १३ दिसंबर तक श्री गुरुजी इन्दौर में पं. रामनारायण शास्त्री के निवास स्थान पर गुरुबंधु श्री अमूर्तानंदजी महाराज के सहवास में रहे। विश्राम किया। विश्राम करते हुए भी कौन सा काम जल्दी से निबटाना है, प्रारंभ किये गये कार्यों में से कौन सा अभी अधूरा है इसका श्री गुरुजी ने चिंतन किया। तत्पश्चात् नागपुर लौटकर डॉ. मुंजे की मूर्ति के अनावरण समारोह में भाग लिया। जनरल करिआप्पा के रवाना होते ही श्री गुरुजी कर्णावती में आयोजित शिविर के लिए चल पड़े। दि. २ को श्रेत्र प्रचारकों की बैठक के लिए वे वापस नागपुर आए। दि. ८ के बाद महाकोशल, विदर्भ, हरियाणा, पंजाब, कर्नाटक, तमिलनाडु और आन्ध्र का प्रवास तथा संघ के अतिरिक्त अन्य कार्यक्रमों को भलीभांति समाप्त कर श्री गुरुजी दि. २० फरवरी के नागपुर लौटे।

योजना के दूसरे खंड में बंगाल, असम तथा बिहार राज्य का प्रवास निश्चित हुआ था। बंगाल का प्रवास समाप्त होते ही श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी के आग्रह पर एक विशेष कार्यक्रम हेतु वे काशी गये। वह फाल्गुन कृष्ण एकादशी का दिन था। श्री गुरुजी का जन्म दिवस। इसी निमित्त अनेक प्रमुख कार्यकर्ता काशी में उपस्थित थे। कार्यक्रम का स्वरूप बड़ा ही मनभावन था। अपने नेता की वर्षगांठ! जिसने अपने हाथों स्वयं का श्राद्धकर्म भी संपन्न कर डाला हो, उस निर्मोही की वर्षगांठ और वह भी श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी और पं. राजेश्वर शास्त्री द्रविड़ जैसे दो ज्येष्ठ. महान् व्यक्तित्वों की उपस्थिति में। श्री गुरुजी के स्वास्थ्य के बारे में तो सभी जानते थे। इस कारण वातावरण में गंभीरता के साथ ही भावुकता चरम सीमा पर थी। श्री गुरुजी ने श्री प्रभुदत्त जी तथा पं. राजेश्वर जी के चरणों पर मस्तक रख उनका आशीर्वाद ग्रहण किया। श्री माधवराव देशमुख ने श्री गुरुजी के स्वास्थ्य लाभ हेतु रुद्रयाग का आयोजन किया था। सभी का अनुरोध था कि इस रुद्रयाग की समाप्ति श्री गुरुजी द्वारा पूर्णाहुति डाल कर हो। इस प्रेमाग्रह का श्री गुरुजी ने आदर किया। लगभग दो घंटे तक श्री गुरुजी द्वारा पूर्णाहुति विधि संपन्न करवायी गयी।

श्री गुरुजी को ऐसे कार्यक्रमों में विशेष रुचि नहीं रहती थी। स्व्स्थ्य के लिए ऐसे प्रयोजन संभवतः उन्हें निरर्थक लगते थे। किंतु कार्यकर्ताओं की भावनातुष्टि के लिए वे मान जाया करते थे। मान भले ही जाते हों किन्तु मन को बाहर से अलिप्त रखकर। इस समय श्री गुरुजी की गिरती हुआ स्वास्थ्य देखकर कार्यकर्ता व्यथित हुए। श्री गुरुजी अगले प्रवास के लिए चल पड़े। उन्हें भला कौन रोकता? उन्हें रोकने की शक्ति, साहस किसी में भी नहीं था। प्रवास दुर्गम प्रदेश में होने से कठिन था। श्री गुरुजी मन ही मन जान चुके थे कि अब फिर से प्रवास व कार्यकर्ताओं से भेंट शायद ही हो पाये! यह प्रवास समाप्त कर वे नागपुर आए। और लग गया प्रवास को पूर्ण विश्राम! इसके बाद नागपुर के बाहर उनके कदम नहीं पड़े। कालपुरुष ने राँची में ही श्री गुरुजी को आगाह कर दिया था। इशारा मिल चुका था। साँस फूलने के कारण उन्हें राँची स्टेशन पर डिब्बे में ही विश्राम करना पड़ा था। फरवरी मास में बंगलूर में सार्वजनिक सभा में पूरे एक घंटे खड़े होकर उन्होंने अंग्रेजी में भाषण दिया था। यह जानते हुए कि यह मेरा अंतिम प्रवास है- उन्होंने फोटो आदि का भी कोई विरोध नहीं किया।

विदाई

नागपुर आते ही पुनः उपचार प्रारंभ किये गए। वायुमंडल चिन्ता से भर गया था। यह जानते हुए भी कि अब कोई लाभ नहीं है, श्री गुरुजी कार्यकर्ताओं की इच्छा का आदर रखा। डॉक्टरी इलाज को उन्होंने मान्यता दी। डॉ. प्रफुल्ल देसाई की सलाह के अनुसार इंजेक्शन लगाये गये। १४ मार्च को श्री गुरुजी का अंतिम प्रवास समाप्त हुआ। उसी तरह उनका अंतिम भाषण २५ मार्च को हुआ। प्रसंग था अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा की बैठक का। श्री गुरुजी बैठकर ही बोले। सारी शक्ति बटोर कर वे बोलने का प्रयास कर रहे थे। देखने, सुननेवालों से श्री गुरुजी की यह दशा देखी नहीं जा रही थी। सारे ही अस्वस्थ, स्तंभित और भाव विव्हल थे। प्रायः सभी की आँखों में आँसू थे। श्री गुरुजी ४० मिनट तक बोले। अपने इस अंतिम भाषण में उपस्थित कार्यकर्ताओं को आश्वस्त करते हिए श्री गुरुजी ने कहा,

“संगठन की स्थिति का हमें अब और भी विचार करना पड़ेगा। विभिन्न कार्यक्षेत्रों जैसे- विद्यार्थी, राजनीति, मजदूर आदि में अपने कार्यकर्ता कार्य कर रहे हैं। इन कार्यों की रचना, संविधान, नियम, व्यवहार आदि भिन्न प्रकार के हैं, फिर भी अपना स्वयंसेवक वहाँ संगठन की धारणा लेकर जाता है और उसे वहाँ प्रस्थापित करने का प्रयत्न करता है। हम सभी को इस बात का विचार करना चाहिए कि इस प्रकार की प्रत्यक्ष चेष्टा वहाँ होती है या नहीं।”

“ये सब जो भिन्न-भिन्न काम हैं, उन सबका उद्दिष्ट एक ही है कि यह देश अपना दै, यह समाज अपना है, यह राष्ट्र अपना है तथा इस राष्ट्र का श्रेष्ठ जीवन निर्माण करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों के ये सब कार्य हैं। अपने सामने यह राष्ट्र न हो तो बाकी के व्यवहारों से भला हमें क्या करना है?”

“कुछ लोग कहेंगे कि यदि हमने अपना हिन्दू राष्ट्र का विचार कहा तो सभी लोग उसे मानेंगे। परन्तु इस सत्य की उद्-घोषणा को कुछ लोग आज मानें या न मानें उससे कुछ बिगड़ता नहीं। हमारा दृष्टिकोण स्पष्ट हो और उसके सम्बन्ध में अपने मन का पूर्ण विश्वास हो तो आग्रहपूर्वक प्रतिपादन करने पर सच बात को लोग मानने लग जावेंगे। हम सभी का अनुभव है और मुझे भी ऐसा विश्वास है कि लोग मानते हैं।”

“साथ ही हमें ध्यान रखना चाहिए कि शाखा के बिना हम भिन्न-भिन्न कार्य नहीं कर पायेंगे। जहाँ अपनी शाखा अच्छी प्रकार से चलती है वहाँ पर कोई भी कार्य उठाया तो हम उसे निश्चयपूर्वक सफल कर सकते हैं। अतः संघ शाखा के कार्यक्रम, उलकी आचार

पद्धति, स्वयंसेवकों का व्यवहार, स्वयंसेवकों का स्वभाव तथा उनका गुणोत्कर्ष आदि बातों की ओर हम ध्यान दें और उनका प्रसार तथा दृढ़ीकरण करने का एकाग्र चित्त से प्रयत्न करें।"

"इतना यदि हम करेंगे तो सब क्षेत्रों में विजय प्राप्त करेंगे और जितना यह कार्य सुदृढ़ता से चलेगा और उसे हम एक अन्तःकरण से करेंगे उतना अपने लिए सर्वदूर विजय ही विजय है।"

इसी भाषण में श्री गुरुजी ने आगे कहा- वह दो वर्ष बाद ही सामने आ गया। जब १९७५ में देश में आपात्काल लगाकर सभी नागरिकों के मूलाधिकार को निलम्बित कर, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर भी प्रतिबन्ध लगाकर देश में तानाशाही लाने का कुचक्र रचा गया था। श्री गुरुजी द्वारा किया गया मार्गदर्शन आगे की परिस्थितियों में कैसा उपयोगी हुआ- इससे श्री गुरुजी की दूरदर्शिता ध्यान में आती है। अपने भाषण में श्री गुरुजी ने कहा था-

"आज देश में ऐसी परिस्थिति निर्माण की जा रही है जिसके अन्तर्गत कुछ मुठ्ठी भर सत्ताधारी हों और शेष सम्पूर्ण समाज गुलाम बन कर रहे। मानव की प्रतिष्ठा का जो भाव रहना चाहिए था वह अब कहाँ रहा है? वह तो गुलाम याने पालतू कुत्ता हुआ जा रहा है। उसके अन्दर कोई नैतिकता नहीं रही है। मार भी पड़ी तो उस स्थिति में रोटी के लिए लार भी टपकायेगा।

इस स्थिति में मनुष्य तथा राष्ट्र की अस्मिता और चरित्र जागृत करने तथा राष्ट्र की प्रतिष्ठा को सब प्रकार से अक्षुण्ण रखने में समर्थ समाज की संगठित शक्ति खड़ी करने का बहुत बड़ा दायित्व हमारी ओर आया है। यह अपने कार्य के विस्तार और दृढ़ीकरण से ही संभव है।"

इस भाषण के समाप्त होते ही अनेक कार्यकर्ता आँखों में आँसू लिए श्री गुरुजी के निकट आए। श्री गुरुजी उन के मन की अवस्था जानते थे, किन्तु हास्य-विनोद के साथ बातचीत कर कार्यकर्ताओं के आँसूओं से बोझिल मन को शांत करने का ही उनका प्रयास रहा। संभवतः इसी बैठक के समय श्री गुरुजी ने ज्येष्ठ कार्यकर्ताओं की सलाह लेकर मा. बालासाहब देवरस का नाम सरसंघचालक के नाते निश्चित किया होगा।

दि. २६ मार्च को श्री गुरुजी महाल कार्यालय के निकट स्थित मोहिते संघस्थान पर प्रार्थना के लिए गए। विगत 33 वर्षों में श्री गुरुजी बिना प्रार्थना किए कभी रहे नहीं। दि. २६ मार्च की यह प्रार्थना अंतिम ही सिद्ध हुई। दि. २७ से अपने कमरे के निकट बनी छत पर खड़े होकर ही प्रार्थना करने को उन्हें विवश होना पड़ा। दि. २६ से तो वे स्वतः के हाथों स्नान भी नहीं कर पा रहे थे। दि. ३ अप्रैल १९७३ को अमावस थी। इसके पूर्व दि. २ को श्री गुरुजी ने स्वतः के हस्ताक्षर में तीन पत्र लिखे और कार्यालय प्रमुख श्री. पांडुरंग क्षीरसागर जी के हाथों सौंप दिये। स्वास्थ्य कभी गिरता, कभी ठीक रहता था। श्री गुरुजी दवाइयाँ लेते किन्तु उनका मन इन उपचारों से परे था। अलिप्तता की भावना से वे सब कुछ स्वीकार कर रहे थे, अन्यों की मनःशांति व समाधान के लिए।

कलकत्ता के स्वयंसेवक डॉ. सुजित धर पखवाड़े में एक बार श्री गुरुजी का स्वास्थ्य-परिक्षण करने हेतु आया करते थे। दि. २६ को श्री गुरुजी ने डॉ. सुजित धर से कहा, “इस शरीर को टिकाये रखने का प्रयत्न क्यों करते हो? और कितने दिन उसे रख पाओगे?” डॉ. धर भला क्या कहते? दि. ३० को फिर से एक्स-रे निकाला गया। डॉ. धर को यह एक्स-रे निर्दोष लगा। सब की आशाएं पल्लवित हुई। श्री गुरुजी भी बहुत प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। कुछ दिनों बाद वे चलने लगे। कमरे में टहलने लगे। शरीर का संतुलन भी ठीक था। कदम डगमगाते नहीं थे। यह सुधार १९ मई तक टिका रहा। श्री गुरुजी को फिर से साँस फूलने का कष्ट होने लगा। डॉक्टर तथा वैद्यों की दृष्टि से दवाइयों की योजना उत्तम थी, किन्तु श्री गुरुजी का शरीर दवाइयों का साथ नहीं दे रहा था। दवाइयों का कोई असर दिखाई नहीं दे रहा था। संभवतः अंतस्थ आत्मिक चैतन्य अब शरीर में बंदी बनकर रहने के लिए उत्सुक नहीं था।

नागपुर का संघ शिक्षा वर्ग प्रारंभ हो चुका था। देश में अन्यत्र भी वर्ग चल रहे थे। श्री गुरुजी का वर्ग में जाना असंभव था। इसी कारण वे चिन्तित थे। स्वयंसेवकों से वे मिलना चाहते थे। अन्ततः ऐसी योजना बनाई गयी कि दि. १६ से वर्ग में तृतीय वर्ष के लिए आए हुए स्वयंसेवक प्रान्तशः श्री गुरुजी से मिलें। यह बैठक २०-२५ मिनट तक चला करती थी। परिचय तथा श्री गुरुजी का पाँच मिनिट तक बोलना, यह बैठक का स्वरूप था। श्री गुरुजी अपने पाँच मिनिट के भाषण में स्वयंसेवकों को जी जान से, दृढ़ता से संघकार्य करने का भावभीना आवाहन किया करते। उनका प्रत्येक शब्द स्वयंसेवकों के हृदय को स्पर्श कर जाता था। दि. २६ तक श्री गुरुजी को विशेष कष्ट नहीं हुआ। किन्तु बाद में पुनः साँस फूलने लगी।

श्री गुरुजी के स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ करने के लिए विभिन्न प्रान्तों से संघ के कार्यकर्ता तथा अन्य क्षेत्रों में कार्य करनेवाले महानुभावों का आना प्रारंभ हुआ। अनगिनत लोग आते और अपना श्रद्धाभाव व्यक्त करते। श्री गुरुजी का जनसंपर्क विशाल था। कितने परिवार, कितने लोग, गिनती करना असंभव! श्री गुरुजी के बारे में जो श्रद्धाभाव सुप्त था वह अब प्रगट हो रहा था। संघ के बाहर भी अनेक विख्यात मान्यवरों से उनका परिचय था। इस सुप्त श्रद्धा-सरस्वती की धारा अब दृश्यमान हो रही थी। श्री गुरुजी एक-दो वाक्यों से अधिक बोल नहीं पाते थे। सारा देश श्री गुरुजी के स्वास्थ्य के संबंध में चिंतित था। न जाने कितने लोगों ने यज्ञ किये, मंदिरों में प्रार्थनाएँ कीं, जपजाप किये, व्रत रखे। भावना एक ही थी, श्री गुरुजी हमारे बीच स्वस्थ हो कर रहें, उनकी ओजस्वी वाणी का मार्गदर्शन सारे देश को प्राप्त होता रहे।

द. ३१ मई को श्री गुरुजी की सांस भारी चलने लगी। उनके मुँह से सूचक उद्-गार निकल ने लगे। राष्ट्र सेविका समिति की संचालिका वंदनीय मौसी केलकर ३ जून को भेंट करने आईं तब श्री गुरुजी ने उनसे कहा, “मैं अब पूर्ण रूप से तैयार हूँ।” अर्थ स्पष्ट था। अब मैं ईश्वर के बुलावे की बाट जोह रहा हूँ, अपनी ओर से मैं तैयार बैठा हूँ। इस के अतिरिक्त इन शब्दों का दूसरा भाव और क्या हो सकता था?

दि. ४ जून का रात्रि का समय। श्री बाबूराव चौथाईवाले मालिश के लिए तेल की बोतल लेकर आए। बोतल हाथ पर औंधाई किन्तु तेल न गिरा। बोतल में तेल ही नहीं था। श्री गुरुजी ने, जो यह दृश्य देख रहे थे, हँसते हुए कहा, “तेल खत्म हुआ? ठीक ही है। अब कल कौन तेल लगानेवाला है?” इसका गर्भित अर्थ जानकर श्री चौथाईवाले चौंक गये। श्री गुरुजी उत्तराभिमुख होकर कुर्सी में बैठा करते। इस समय इनकी कमल सी सुंदर आँखें अधखुले फूल सी, अर्धोन्मीलित दिखाई देतीं। ईश्वर के निजधाम का ध्यान करनेवाले योगी के समान वे दिखाई देते।

दि. ४ को बिस्तर पर न सोते हुए वे कुर्सी पर ही बैठे रहे। शरीर के कवच से मुक्त होने का दिन उनकी दृष्टि से निश्चित हो चुका था। ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी दि. ५ जून १९७३। श्री गुरुजी ने प्रातःकाल स्नान किया। आसन पर बैठकर संध्या की। साँस लेना दूभर होने के कारण डॉ. आबाजी थत्ते ने ऑक्सीजन देने का प्रयास किया। किन्तु श्री गुरुजी ने एक हाथ ऊपर करते हुए कहा, “अरे आबा, आज घंटी बज रही है। यह रहने दो।” श्री आबाजी थत्ते आवाक् रह गये। असमंजस में पड़े वे श्री गुरुजी का मानसरोवर सा शांत मुख मंडल निहारते रहे। श्री गुरुजी ने अपने हाथ-पाँव के नाखून निकाले।

बाद में वे कुर्सी पर बैठे, किन्तु इसके पूर्व ही हमेशा उनके साथ रहनेवाला कमंडलु उन्होंने दाईं ओर रखा। श्री गुरुजी हमेशा यह कमंडलु बाईं ओर रखा करते थे। प्रवास के लिए प्रस्थान करते समय ही वह दाईं ओर रखा जाता था। डॉ. थत्ते जी को यह संकेत बहुत वेदनादायक लगा। श्री गुरुजी को वेदना हो रही थी। वे बहुत ही बेचैन थे। डॉ. थत्ते जी के आधार से वे लघुशंका (पेशाब) के लिए गये। हाथ पाँव धोए। शायद उन्हें लगा हो कि भगवान के पास साफ सुथरा शरीर लेकर ही जाना चाहिए।

डॉक्टरों ने दोपहर को ही बतला दिया था कि श्री गुरुजी का स्वास्थ्य नियंत्रण के बाहर हो गया है। सुधार होना कठिन हैं। श्री बालासाहब देवरस को संदेश भेजा गया। संध्या समय श्री गुरुजी को कुर्सी में बैठाकर ही प्रार्थना करने के लिए कहा गया। ७-३० बजे चाय आई किन्तु श्री गुरुजी ने मना कर दिया। रात को आठ बजे वे श्री बाबूराव चौथाईवाले का आधार लेते हुए लघुशंका के लिए स्नानगृह में गए। हाथ पाँव धोकर श्री गुरुजी ने ११ बार कुल्ले भरे। वे लगातार कुल्ले भरते गए। यह देखकर श्री बाबूरावजी ने श्री गुरुजी के हाथ से पानी भरा लोटा लेकर बगल में रख दिया और उन्हें उठाया। किन्तु लौटते समय एकाएक श्री गुरुजी ने अपनी गर्दन श्री बाबूरावजी के कंधों पर टिका दी। एक हाथ से उन्हें आधार देते हुए दूसरे हाथ से बाबूरावजी ने दरवाजा खोला। श्री गुरुजी एक कदम भी आगे बढ़ा न सके। श्री गुरुजी की निरंतर सेवा में रहनेवाले श्री विष्णुपंत मुठाल ने यह देखा और वे दौड़कर श्री गुरुजी के पास आए। दोनों ने उन्हें उठाया और कुर्सी पर बिठा दिया। आँखें बंद, हलचल बंद, केवल मंद श्वसनक्रिया चालू।

डॉ. थत्ते दौड़ कर आए। अन्य डॉक्टरों को फोन किये गए। डॉक्टरों ने सलाह दी, “अब कोई लाभ नहीं हो सकता। उन्हें शांत चित्त से बिदा होने दें।” धीरे-धीरे क्रिया मंद, मंदतर होने लगी। मुद्रा प्रसन्न दिखाई दी। रात के ९ बजकर ५ मिनट हुए ही थे कि एक प्रदीर्घ अंतिम साँस बाहर निकली। श्री गुरुजी की आत्मा देह के कारावास से मुक्त हो गई थी।

चारों ओर कार्यकर्ता थे। सभी की आँखों में आँसुओं की बाढ़। इस बाढ़ को रोक पाना सर्वथा असंभव था। कार्यकर्ताओं ने श्री गुरुजी का पार्थिव शरीर सीढ़ियों से नीचे लाकर एक बड़े कमरे में सावधानी से रखा।

श्री गुरुजी अब अपने बीच नहीं रहे, यह वार्ता तेज हवा की भाँति नागपुर नगर में फैल गई। आकाशवाणी केन्द्रों ने श्री गुरुजी के देहान्त का दुःखद समाचार प्रमुखता से प्रसारित किया। अब तो सारे देश में यह समाचार विदित हो चुका था। रात्रि ९.३० बजे कार्यालय के बाहर भारी भीड़ इकठ्ठा हुई। जिसे पता चलता वही दौड़ा आता अपने प्रिय नेता के अंतिम दर्शन के लिए। बाहर के गाँवों से हजारों की संख्या में स्वयंसेवक आने लगे। दि. ६ को नागपुर के महाल विभाग स्थित डॉ. हेडगेवार भवन के अहाते में शोकाकुल, श्रद्धालु नागरिक, स्वयंसेवक सहस्त्रों की संख्या में उपस्थित थे। सभी मौन, गंभीर। अपने दुःख को रोक पाना सभी को असंभव सा हो गया था। श्री बालासाहब देवरस दोपहर को पहुंचे। श्री गुरुजी को देखते ही वे रुद्धकंठ हो उठे। पुष्पमाला अर्पण करते समय तो वे बेकाबू होकर रो पड़े। श्री गुरुजी के पार्थिव शरीर पर पुष्पमालाओं का अंबार लग गया था। एक ओर गीता पाठ अखंड रूप से चल रहा था।

श्री गुरुजी द्वारा श्री पांडुरंगपन्त क्षीरसागर को दिये गये तीन पत्र सब के सम्मुख खोले गये। लिफाफे में बंद पत्रों में अंकित श्री गुरुजी का भावविश्व सभी को अंतर्मुख करता हुआ प्रगट होने लगा। वातावरण में नीरव शांति भरी हुई थी। एक पत्र में श्री गुरुजी ने संघ के सरसंघचालक के नाते नेतृत्व का भार श्री बालासाहब देवरस के कंधों पर सौंपा था। महाराष्ट्र प्रान्त संघचालक श्री बाबासाहब भिडे ने यह पत्र दूर ध्वनिक्षेपक पर गंभीर आवाज में पढ़ा। अन्य दो पत्र स्वयं श्री बालासाहब देवरस ने पढ़कर सुनाए। एक पत्र में श्री गुरुजी ने आज्ञा दी थी कि उनका कोई स्मारक न बनाया जाय। और दूसरे पत्र में श्री गुरुजी ने अत्यंत विनम्रता से भावभीने शब्दों में, दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की थी, जिसे सुनकर तो उपस्थित जनसमुदाय का हृदय विव्हल हो उठा। आँखों में आँसू भर गए। सहस्त्रों कंठों से सिसकियों की करुण ध्वनि निकल पड़ी।

क्या लिखा था श्री गुरुजी ने? असामान्य होते हुए भी एक सामान्य व्यक्ति की भूमिका निभाई थी। क्षमा याचना की थी। श्री गुरुजी ने अति विनम्र भाव से लिखा था, "मुझ से जाने अनजाने में यदि किसी के हृदय को ठेस पहुँची हो, दुःख हुआ हो तो मैं हाथ जोड़कर सबसे क्षमा माँगता हूँ।" अपने भाव अधिक स्पष्ट करने हेतु श्री गुरुजी ने संत तुकाराम का एक अभंग लिखा था:

शेवटची विनवणी। संतजनी परिसावी

विसर तो न पड़ावा। माझा देवा तुम्हासी।।

आता फार बोलो कायी। अवघे पायी विदित

तुका म्हणे पड़तो पाया। करा छाया कृपेची।।

भावार्थ:-

श्री तुकाराम महाराज अंतिम समय में पंढरपुर में जाकर विठोबा के दर्शन करने में असमर्थ थे। अतः पंढरपुर जा रहे संतों से वे निवेदन करते हैं-

अंतिम ये प्रार्थना। संतजन सुने सभी।।
विस्मरण न हो मेरा। कहें प्रभु से सभी।।
अधिक और क्या कहूँ। विदित सभी श्रीचरणों में।।
तुका कहे पैरों पड़ूँ। रहूँ सदा कृपा की छाँह में।।

भावार्थ:-

हे संतगण, मेरी यह अंतिम विनती कृपया
प्रभु तक पहुँचायें कि उन्हें मेरा विस्मरण न हो।
अधिक क्या कहूँ? सभी तो श्रीचरणों में विदित है।
तुकाराम प्रभुचरणों में माथा टेककर कहता है
कि तेरी कृपा की छाँह मुझ पर सदा बनी रहे।

श्री बालासाहब देवरस का कंठ यह अभंग पढ़ते-पढ़ते अवरुद्ध हो गया था। एक-एक शब्द वे कठिनाई से पढ़ पा रहे थे। विनम्रता तथा करुण रस की यह परिसीमा थी। इस समसार के अनेक महापुरुष अपने अहं को साथ ले चल बसे। किन्तु श्री गुरुजी का यह उदाहरण सादगी की अनुपम गाथा है। 'मैं नहीं, तू श्रेष्ठ' यही विनम्र भाव इस पत्र से ध्वनित हो रहा था।

कार्यालय के बाहर खड़े सहस्त्रों स्वयंसेवकों तथा नागरिकों की मानसिक अवस्था श्री बालासाहब देवरस के समान ही दिःख से ओतप्रोत थी। महायात्रा की तैयारी हो चुकी थी। एक ट्रक पर श्री गुरुजी का पार्थिव शरीर रखा गया। नूतन सरसंघचालक श्री बालासाहब देवरस द्वारा पुष्पमाना अर्पण करने के बाद महायात्रा प्रारंभ हुई। श्री

बालासाहब और श्री गुरुजी पर असीम प्रेम करनेवाले सहस्त्रों कंठों से रुदन की ध्वनि फूट पड़ी।

अंत्ययात्रा रेशीमबाग की ओर चलने लगी। रामधुन, 'भारत माता की जय', 'श्री गुरुजी अमर रहें' इन धीर गंभीर घोषणाओं से आकाश गूँज उठा। श्री गुरुजी के पार्थिव शरीर के पीछे अपार जनसागर उमड़ पड़ा था। सभी पैदल चल रहे थे, भारी कदमों से। श्री गुरुजी का पार्थिव देह वहन करनेवाला मात्र एक ट्रक ही इस महायात्रा में था। तीन लाख से अधिक लोग इस महापुरुष को बिदाई देने इस महायात्रा में सम्मिलित हुए थे। ५-४५ बजे निकली यह महायात्रा ७-४५ को रेशीमबाग पहुँची।

संघ के प्रथम सरसंघचालक डॉ. हेडगेवार के स्मृतिमंदिर के सम्मुख चंदन की चिता रची गयी थी। श्री गुरुजी का पार्थिव शरीर चंदन की चिता पर रखा गया। पुणे के श्री वासुदेवराव गोलवलकर ने मंत्राग्नि दी। चंदन की चिता से ज्वालाएँ आकाश की ओर उठने लगीं। देखते ही देखते चंदन की भगवे रंग की लपटों ने श्री गुरुजी के पार्थिव शरीर को अपने अंक में लपेट लिया। निरंतर ३३ वर्ष तक संघकार्य के लिए समर्पित एक दधीचि का देह साथ लेकर ज्वालाएँ दिव्यलोक में केशवधाम की ओर चल पड़ी। स्मृति मंदिर भी इन लपटों से आलोकित हो गया। डॉ, हेडगेवार जी की प्रतिमा की साक्षी से उनके चरणों के पास जलती अग्नि ज्वालाओं में एक समिधा बनकर श्री गुरुजी की आत्मा को निश्चित रूप से शांति मिली होगी।

इस समय वातावरण शांत, गंभीर, शोकमग्न था। बीच-बीच में सिसकियों की आवाजें सुनाई देती थीं। कुछ ही देर बाद भगवा ध्वज फहराया गया। संघ की प्रार्थना अवरुद्ध कंठों से कही गई। 'भारत माता की जय' की घोषणा हुई। शाखा विकिर होने की आज्ञा। और अपने प्रिय नेता को अग्नि के अधीन कर भारी हृदय से स्वयंसेवक तथा नागरिक अपने-अपने घरों की ओर लौटे।

अब रेशीमबाग में दो चैतन्यरुपी महापुरुष थे। एक पू. डॉ. हेडगेवार स्मृतिमंदिर के ऊपरी भाग पर मूर्तिरूप में बैठे हुए और दूसरे, चंदन की चिता पर समिधा बन जले दधीचि श्री गुरुजी पार्थिव देह के अवशेष के रूप में। डॉक्टरजी के मुख मंडल पर भाव था कि मेरा चयन सार्थक हुआ। मेधावी माधव ने संघ की गरिमा विश्वव्यापी बनायी और देश के लिए निरपेक्ष त्याग कर स्वयं तत्वरूप हो गये।

और संभवता श्री गुरुजी को भी श्री केशव के चरणों को स्पर्श कर निजधाम की ओर अग्रसर होने में समाधान प्राप्त हुआ होगा। चिता धू-धूकर जल रही थी। प्रार्थना के स्वर अभी भी वातावरण में गूँज रहे थे।

ऐसा लग रहा था मानों श्री गुरुजी संघगीत की पंक्ति गा रहे हों –

"माँ तेरी पावन पूजा में, मैं केवल इतना कर पाया"।

*

२१ बादलों से घिरा सूर्य

श्री गुरुजी जब तक जीवित थे तब तक उनके व्यक्तित्व को विवादों में घेरने का निरन्तर प्रयास होता रहा। वास्तव में उनका जीवन चरित्र इतना पारदर्शी था कि कोई भी उनके जीवन की खुली किताब को पढ़ सके। श्री गुरुजी के हृदय में राष्ट्रहित के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। सब कुछ राष्ट्रार्पण, 'मैं नहीं, तू ही' भाव मन-हृदय में धारण कर वे कार्यरत रहे। किन्तु राजनीति या दलगत स्वार्थ की दृष्टि से ही जिन लोगों ने श्री गुरुजी को देखा उन्हें वे सांप्रदायिक, जातिवादी, प्रतिगामी, सत्ता के भूखे या उत्पाती और हिंसाचारी दिखाई दिये। मुसलमान और ईसाइयों के द्वेष्टा तथा उनके घोर विरोधी के रूप में उनकी प्रतिमा निर्माण करने का भी भरसक प्रयास किया गया।

२१.१ हिन्दुत्व का जागतिक दर्शन

प्रश्न यह है कि श्री गुरुजी के विचारों में विवादास्पद मुद्दे या तत्व कौन से थे? उन तत्वों या विचारों को विवादास्पद किसने बनाया? और आज यदि उन्हिं विवादास्पद विचारों की धार पैनी हो गई हो, तो उसका क्या कारण हो सकता है? इस सभी प्रश्नों के मुँहतोड़ जवाब काल ने दे दिये हैं। हमें इन उत्तरों के माध्यम से यह अनुभव होगा कि श्री गुरुजी के अथक परिश्रम के फलस्वरूप भारतवर्ष में एक आवश्यक परिवर्तन हो सका। इस पर्वर्तन को प्रत्यक्ष में लाकर, उसमें निहित मौलिक विचार सुप्रतिष्ठित कर इस देश को उन्होंने नष्ट होने से बचाया है। अपनी आध्यात्मिक गुण संपदा, विद्वत्ता, प्रखर बुद्धिमत्ता, ओजस्वी वक्तृत्व और अपनी समस्त शक्ति दाँव पर लगाकर भारतीय मन संस्कारित करने का जो कार्य श्री गुरुजी ने किया वह सर्वथा अतुलनीय है, बेजोड़ है। उनके जीवन की हर हलचल इसी एकमेव उद्देश्य से प्रेरित रहा करती थी।

पराधीनता के कालखंड में ब्रिटिशों से लड़ना ही एक प्रमुख प्रेरणा थी। इस प्रेरणा के आवरण में कई बातें छुप जाती थीं। संपूर्ण समाज के सम्मुख एक ही शत्रु (One common enemy) था, अंग्रेज! इस कारण समाज में निहित आंतरिक भेद दृष्टिगोचर महां हो पाते थे। किन्तु स्वाधीनता प्राप्त होते ही एक जबरदस्त प्रवाह बह निकला। यह प्रवाह था हिन्दुओं के अहिन्दूकरण का। यह प्रवाह मतांतरण का नहीं था किन्तु हिन्दू होकर भी स्वतः को हिन्दू मानने में लज्जाबोध की प्रवृत्ति का था। हिन्दू तथा हिन्दुत्व से संबंधित बातों को तिरस्करणीय मानना, देश की अवनति के लिए हिन्दू संस्कृति को दोष देना, पाश्चात्यों का अंधानुकरण करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना,

ऊपरी भेदों को महत्व देकर एकात्म हिन्दुत्व के अंतस्थ सत्य सूत्र को नगण्य मानना, राजनीतिक स्वार्थ हेतु अहिन्दू अल्पसंख्यक समाज का अमर्याद अनुनय करना, संस्कारों की परंपरा का टूटना आदि तथ्यों से यह प्रवाह बना था। आज भी यह प्रवाह अस्तित्व में है। किन्तु तब तो हिन्दू या हुन्दुत्व से संबंधित तत्वों का उपहास करते हुए हिन्दू होकर भी हिन्दुत्व को नकारने की प्रवृत्ति को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। 'हर हर न हिन्दुर्न यवनः' जैसी त्रिशंकु अवस्था धारण कर हिन्दुत्व के स्वाभिमान से च्युत होने को पंथनिरपेक्षता कहा जाने लगा था।

हिन्दू अस्मिता छिन्नविछिन्न करने के इस विघातक कार्य में ईसाइ मिशनरी, कम्युनिस्ट प्रचारक, समाजवाद के अभिनिवेशी पुरस्कर्ता, आधुनिक शिक्षा प्राप्त विद्वद्-गण तथा सत्ता के भूखे राजनीतिज्ञ भिन्न-भिन्न हेतुओं से एकत्रित होकर हिन्दुत्व का विरोध करने में जुटे हुए थे। दुर्भाग्य से निर्भय होकर देश की विशुद्ध राष्ट्रीयता का उद्-घोष करनेवाला तथा अपनी प्राचीन हिन्दू परंपरा की महानता को आत्मविश्वास से बतानेवाला अग्रणी नेता सार्वजनिक जीवन में विद्यमान नहीं था। संघ की व्याप्ति काफी सीमित थी।

ऐसी सर्वथा विपरित परिस्थितिमें श्री गुरुजी खंडित भारत के सामाजिक जीवन के मंच पर प्रगट हुए। श्री गुरुजी ने इस अराष्ट्रीय प्रवृत्ति के प्रवाह को न केवल रोका अपितु उसे हिन्दुत्व के स्वाभिमान की दिशा देने में वे सफल रहे। इस समय देश के अहिन्दूकरण, अराष्ट्रीयकरण और विघटनात्मक (de-Hindunisation, de-nationalisation and disintegration) प्रवृत्तियों की अनर्थकारी प्रक्रिया कार्यरत थी। श्री गुरुजी प्रतिपादित किया करते थे कि इस विघटनात्मक अवस्था में देश नष्ट हो जाएगा। श्री गुरुजी के ओजस्वी प्रतिपादन में प्रायः भावात्मक (Positive) अभिनिवेश प्रमुखता से रहा करता था। हिन्दू परंपरा की गौरवशाली विशेषताएँ, आधुनिक जगत् को भी दिशाबोध कराने की क्षमता, हिन्दू जीवनादर्श की बेजोड़ उत्तुंगता तथा भारतवर्ष के वैश्विक जीवनकार्य (World Mission) के संबंध में जब वे तर्कसंगत और प्रभावकारी विवेचन किया करते तब सुननेवाले मंत्रमुग्ध हो जाते। श्री गुरुजी के भाषण में हृदय की टीस के साथ ही ओजस्वी वक्तृत्व, तर्कसंगत तथा सभी विषयों को स्पर्श करनेवाली गहन ज्ञान से भरी जानकारी तथा ठोस सबूत और प्रजातंत्र से लेकर तानाशाही तक की विचारधाराओं का संपूर्ण ज्ञान रहने के कारण उनके प्रतिपादन की प्रभावोत्पादकता श्रोताओं को विचार करने के लिए बाध्य कर देती थी। श्री गुरुजी की वाणी श्रोताओं में स्वत्व की भावना जागृत करती थी।

श्री गुरुजी ने राष्ट्र के पुनरुत्थान का जो मंत्र नगरों, ग्रामों तथा दुर्गम पहाड़ी घाटियों में गुंजित किया वह निश्चित ही अमोघ था, असाधारण था। हताश हिन्दू मन में चैतन्य का संचार करनेवाला था। आज 'मैं हिन्दू हूँ' इस स्वाभिमानपूर्ण अनुभूति से प्रेरित लाखों लोग जम्मु-दिल्ली से कोचीन-कन्याकुमारी तक आसानी से एकत्र आ सकते हैं, यह बात श्री गुरुजी के उस प्रयास का ही परिणाम है जिसमें उन्होंने अहिन्दूकरण का प्रतिकार कर हिन्दुत्व का विधायक स्वाभिमान जागृत किया था।

२१.२ सामाजिक विवादों से परे

आद्य-सरसंघचालक डॉ. हेडगेवार ने जब कहा था कि "यह अपना हिन्दू राष्ट्र है" तब लोगों ने उन्हें पागल कहा था। १९४७ में देश ब्रिटिशों की पराधीनता से मुक्त होने के पश्चात् स्वतः को ज्येष्ठ विचारक तथा शीर्षस्थ नेता मानने वालों ने संघ की 'हिन्दू राष्ट्र' की भाषा को जातिवातक, सांप्रदायिक, प्रतिगामी, देश को तोड़ने एवं विभक्त करनेवाली तथा अंध पुनरुत्थानवादी बताकर घोर अपप्रचार किया गया। संघ को नष्ट करने का प्रयास भी किया गया। परंतु हिन्दू राष्ट्र की यही भाषा सत्य, राष्ट्र को जीवनशक्ति प्रदान करनेवाली तथा देश का मस्तक गर्व से उन्नत करनेवाली है, ऐसा हिम्मत से कहनेवालों का एक प्रचंड संगठित स्वरूप श्री गुरुजी ने अपने जीवनकाल में ही आसेतुहिमाचल निर्माण कर दिखाया। इस कार्य की महत्ता केवल शब्दों में प्रगट करना शब्दशक्ति के लिए असंभव है। वह अवर्णनीय है। अखंड, अविरत प्रवास कर देश के चप्पे-चप्पे में हिन्दुत्व का तेजस्वी भाव केवल एक व्यक्ति द्वारा जागृत किया जाना अपने आप में एक अनोखा और एकमात्र उदाहरण है। हिन्दू साम्प्रदायिकता और प्रतिगामिता जैसे गालीसूचक शब्द श्री गुरुजी की महान् कर्तृत्वशक्ति के कारण निरर्थक, बेतुका होकर प्रति प्रहार की तरह उन्हीं पर उलटे पड़े जिन्होंने इन शब्दों को हिन्दुत्व को नष्ट करने हेतु प्रक्षेपित किया था।

श्री गुरुजी का व्यक्तित्व विवादास्पद बनानेवालों ने यह दिखाने का प्रयत्न किया श्री गुरुजी जातिभेद, वर्णभेद तथा हिन्दू समाज की पुरानी कालबाह्य रूढ़ियों और कर्मकाण्डों के कट्टर समर्थक हैं, पुरस्कर्ता हैं। श्री गुरुजी को सनातन धर्माभिनिवेश के फलस्वरूप आधुनिक समाज रचना व समान आकांक्षाओं का न तो ज्ञान है, न अनुभूति। आज भी अनेक लोग श्री गुरुजी द्वारा प्रतिपादित विधानों को तोड़ मरोड़ कर संदर्भ-रहित रूप में प्रस्तुत करते दिखाई देते हैं। संघ पर आरोप-प्रत्यारोप करते रहना इन विरोधियों का कार्यक्रम है। किन्तु संघ एक ऐसी गेंद है जिसे जितना दबाओं उतनी ही वह ऊँची उछलती है। सरकार ने तीन प्रतिबंधों के कदम से संघ को नष्ट

करना चाहा किन्तु संघ की जड़ें देशभक्ति के अमृत में भीगी और मातृभूमि में गहरी पैठी होने के कारण संघ का वृक्ष नष्ट तो हुआ नहीं, किन्तु एक विशाल वटवृक्ष बन गया। इस वटवृक्ष को दृढ़मूल करने का कार्य श्री गुरुजी ने ही किया यह अकाट्य सत्य है।

समाचार पत्रों में जो धूल उड़ाई गयी उसमें एकमात्र हेतु यही सिद्ध करना था कि श्री गुरुजी पुराण-मतवादी है और संघ उसी पुरानी विस्मृत संस्कृति को पुनः स्थापित करना चाहता है। श्री गुरुजी का केवल इतना ही कहना था कि मनुष्य का मनोविज्ञान, इसकी शारीरिक, बौद्धिक, भावनिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं तथा मानव जीवन के चरम लक्ष्य का अवधान रखकर ही हमारे पूर्वजों ने अपने समाज की रचना की थी। वह प्रदीर्घ काल तक चली। फलस्वरूप भारत में अत्यंत श्रेष्ठ तथा सुसंस्कृत जीवन का निर्माण हुआ। काल-अर्थात् समय के साथ यदि यह समाज रचना विकृत बनी हो तो हमें कालसंगत नई रचना निर्माण करनी होगी। इस नव-निर्माण का दायित्व हमारा होगा। हमें उसे निभाना पड़ेगा। 'युगानुकूल' इस शब्द का उपयोग उसके अन्वयार्थ के साथ ही वे किया करते थे। वे कहा करते थे कि भगवद्-गीता ने भी कर्मकाण्डों के विषय में युगानुकूल, क्रांतिकारी विचार प्रगट किया है। अपने पूर्वजों पर अकारण घृणास्पद आरोप करना वे उचित नहीं मानते थे। श्री गुरुजी पुराण-मतवादी अर्थात् पुराने विचारों का आग्रह रखनेवाले थे यह कहा गया। किन्तु ये सारे आरोप बेसिर-पैर के और तथ्यहीन थे। उन्होंने एक बात आग्रहपूर्वक अवश्य कही कि जो नयी रचना हमें समाजहित के लिए कार्यान्वित करनी हो उसका आधार परंपरा से चल रहे जीवनमूल्य हों ताकि मनुष्य अखण्ड आनंद तथा अंतिम मोक्ष का लक्ष्य प्राप्त कर सके।

२१.३ सर्वसमावेशक दृष्टि

ठाणे के अभ्यासवर्ग में उन्होंने समाजवाद, साम्यवाद, पूँजीवाद, प्रजातंत्र आदि वर्तमान वादों का विश्लेषण कर अन्त में बताया था कि हिन्दू विचार ही मानव को सुख-समृद्धिपूर्ण जीवन प्रदान कर सकता है। अस्पृश्यता की कल्पना तो इमके मन को स्पर्श भी नहीं कर पाती थी। श्री गुरुजी ने परिपूर्ण मानव की हिन्दू कल्पना को अत्यंत प्रभावोत्पादक शब्दों में आधुनिक जगत् के सामने रखा। आध्यात्मिक आधार पर मानव संबंधों का विचार भारत की मानवता को प्रदत्त चिरंतन तथा महत्वपूर्ण देन है तथा वर्तमान जगत् की समस्या अन्य किन्हीं भी उपायों से हल नहीं हो सकती,

इस सिद्धांत पर वे अडिग थे, निःशंक थे। हिन्दू समाज में इसी मूलभूत प्रेरणा को जागृत करने में वे जीवनभर कार्यरत रहे।

'सब में एक ही आत्मा' की अनुभूति करना ही जिसके जीवनकार्य की मंगल प्रेरणा हो वह भला किसी का द्वेष क्यों करे? किसी का बुरा क्यों चाहे? श्री गुरुजी के मन में केवल प्रेम था, द्वेष नहीं। ईसामसीह, मोहम्मद पैगंबर आदि बाहरी संप्रदाय निर्माताओं के विषय में वे अतीव आदर भाव से बोला करते थे। श्री गुरुजी की टीका-टिप्पणी उनके विध्वंसक, पशुवत्, असहिष्णु और राष्ट्रविघातक प्रवृत्ति पर ही हुआ करती थी।

प्रख्यात पत्रकार डॉ. जीलानी तथा सरदार खुशवन्त सिंह के साथ हुआ श्री गुरुजी का वार्तालाप सर्वपरिचित है। 'मुस्लिम तथा क्रिश्चन प्रॉब्लेम' या 'मायनारिटि प्रॉब्लेम' को हल करने का उनका मार्ग और सत्ता को हथियाने हेतु तुष्टीकरण की नीति अपनानेवालों का मार्ग, इनमें मूलभूत अंतर था। खिलाफत आंदोलन के समय से ही जो चाटुकारिता की नीति अपनाई गई उसका दुष्परिणाम देशविभाजन के रूप में प्रगट हुआ। श्री गुरुजी का मानना था कि देश के राष्ट्रीय अर्थात् हिन्दू जीवनप्रवाह में सबको एकरूप होना चाहिए।

पं. जवाहरलाल नेहरु मिश्रित संस्कृति के पक्षधर थे। उनका मानना था कि भारत की संस्कृति को केवल हिन्दू संस्कृति कहने से सबके साथ लेकर चलना कठिन हो जाएगा। १९५७-५८ के कालखण्ड में श्री नेहरु जी से भेंट होने पर वार्तालाप के समय गंगा के प्रवाह का उदाहरण देते हुए श्री गुरुजी ने कहा कि गंगा के प्रवाह में अनेक छोटे-छोटे प्रवाह आकर मिल जाते हैं किन्तु प्रवाह गंगा का ही रहता है, उसका नाम नहीं बदलता। हिन्दू संस्कृति का एक विराट् प्रवाह है। उसमें अनेक मत-मतांतरों के प्रवाह समानिष्ट हैं। उन्हें हिन्दू संस्कृति से भिन्न नहीं माना जा सकता। नेहरु जी के उदार मतों की जड़ हिन्दू संस्कृति में ही है। श्री गुरुजी ने यह सारी बातें प्रसन्नचित्त हो नेहरु जी से कही थीं। मतभेदों के कारण श्री गुरुजी के मन में कटुता लेशमात्र भी नहीं रहा करती थी। कार्यकर्ताओं को इस भेंटवार्ता का विवरण देते समय श्री गुरुजी ने कहा था, "नेहरु जी शुद्ध हिन्दी बोलते हैं। मुझे लग रहा था कि कहीं मैं उर्दू या अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग न कर बैठूँ।" इस प्रकार गुणों को सराहने का उनका स्वभाव था।

संघ हिन्दू समाज का ही संगठन क्यों है? इस प्रश्न का अनेक बार दिया गया उनका उत्तर बहुत ही मर्मग्राही है। श्री गुरुजी का उत्तर है कि पहले हम अपना घर ठीक कर

लें क्योंकि वह हमारी पहली आवश्यकता है। अन्य लोगों को शामिल करने का प्रश्न स्वाभाविक रूप से भविष्य के विकास का (Evolution) है। ऐसा एक भी उदाहरण अपलब्ध नहीं है जब श्री गुरुजी के संबंध में आए ईसीई या मुस्लिम बंधुओं ने उन्हें धर्मान्ध या फेनेटिक कहकर अपनी नाराजी व्यक्त की हो। उपासना पंथों की विविधता पर श्री गुरुजी ने कभी आक्षेप नहीं किया। इस दृष्टि से हिन्दू ही वास्तविक रूप से 'सेक्यूलर' है, इसी तथ्य को वे सामने रखते। अन्य लोग उसी दृष्टिकोण को अपनाएँ, ऐसा प्रतिपादन वे हमेशा किया करते थे। मानवता की दृष्टि से सेवाकार्य करते समय श्री गुरुजी ने पांथिक पृथकता को सदैव त्याज्य माना। सेवाकार्य का संबंध विस्थापित, अकालपीड़ित, बाढ़गस्त, भूचाल-ग्रस्त. दीनदुखी या रोगियों से था, उपासना पंथ या जाति, धर्म को प्राथमिकता देकर सेवाकार्य किया गया हो ऐसी एक भी घटना उद्-घृत नहीं की जा सकती। मानवता की सेवा का अर्थ, केवल मानवताकी विशुद्ध धर्म-पंथ रहित भावना से की गयी सेवा है, यही उनकी भावना थी। संकटकालीन अवस्था में धर्म, पंथ देखकर सेवा करना अमानवीय होगा।डूबनेवाला हिन्दू है या ईसाइ या मुसलमान, ऐसा न सोचकर वह मनुष्य है, मानव है, यह सोचना आवश्यक है। हिन्दू संस्कृति की यही सीख है। श्री गुरुजी का मन सर्वार्थ से हिन्दू था। उनका चारित्र्य प्रत्यक्ष-मूर्तिमंत हिन्दू चारित्र्य था। ऐसे उत्तुंग मनुष्य को स्वार्थ के लिए विवादास्पद सिद्ध करने का प्रयत्न भला कैसे टिक पाएगा?

२१.४ समग्र हिन्दू जीवन-दृष्टि

राष्टीय अस्मिता के जागरण द्वारा देश का पुनरुत्थान करने का श्री गुरुजी के प्रयासों का निरंतर विकृतीकरण करने का काम स्वतः को मार्क्सवादी कहलानेवाले सांप्रदायिक लोगों ने ही प्रमुखता से किया। वैचारिक तथा तात्विक स्तर पर इस जड़वादी संप्रदाय की टीका-टिप्पणी करते समय श्री गुरुजी ने कभी दयाभाव नहीं दर्शाया। तर्कों का कठोर कुठाराघात कर उन्हें परास्त करने में वे संकोच नहीं करते थे। इसका एक महत्वपूर्ण कारण है। अपने देश में इहवादी, समाजवादी या काँग्रेसवादी कहलानेवाले लोग भले ही रहे हों फिर भी भारतीयता से सर्वथा विलग विचारदर्शन देने का दावा किसी ने नहीं किया। उनका कार्यक्षेत्र आर्थिक या परिस्थितिजन्य कार्यपूर्ति तक ही मर्यादित था। तात्कालिक उपाय सुझाने के अतिरिक्त उनके पास कोई चिंतन नहीं था। धर्म कर्म घर के बाहरी मामलों में दखल न दे इतना ही वे लोग कहा करते थे। रूस से लायी गयी साम्यवादी विचारधारा अपनानेवालों का ऐसा दावा था कि उनका विचार जागतिक स्तर का है तथा सभी प्रकार के सामाजिक रोगों का वही रामबाण-उपाय है। मार्क्सवाद एक संपूर्ण जीवनदर्शन है। इस जीवन-दर्शन को मान्यता देने और अपनाने

का अर्थ था भारत द्वारा अध्यात्म पर आधारित जीवनमूल्योंका त्याग और मनुष्य की एक आर्थिक प्राणी के रूप में मान्यता। मार्क्सवाद का सिद्धांत भारतीय जीवनदर्शन के सर्वथा विपरीत है। श्री गुरुजी का कहना था कि राष्ट्र को अन्य देश के लोगों का गुलाम बनाकर परावलम्बी बनाने से यह हिन्दू राष्ट्र नहीं रह पाएगा।

धर्मविरोधी, जड़वादी, हिंसाचारी, तानाशाही का समर्थन करने वाला असहिष्णु मार्क्सवाद भारत के लिए किस तरह घातक हो सकता है और उसके कारण शाश्वत हिन्दू विचार की किस तरह घुटन होगी, यह बात श्री गुरुजी अधिकारपूर्वक देश भर में बताया करते थे। उन्होंने साम्यवाद का खोखलापन सिद्ध करते हुए यह भी बताया कि साम्यवाद की जन्मभूमि रूस में ही वह असफल सिद्ध हुआ है और उसमें से परस्पर विरोधी प्रवाह फूट रहे हैं।

मानव के स्वभावधर्मानुसार सहूलियतें देने के लिए अब कम्युनिस्ट देशों को बाध्य होना पड़ रहा है। राष्ट्रीयता का आधार वे भी छोड़ नहीं पाए। राष्ट्रप्रेम ही किसी राष्ट्र के सर्वांगीण विकास का मूल आधार हो सकता है इस तथ्य को अब रूस मे स्वीकार किया है। द्वितीय महायुद्ध के समय जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया। रूस के परास्त होने के लक्षण स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। पर रूस अपने सैनिक तथा जनता में राष्ट्र चेतना उत्पन्न कर सका। अपनी पितृभूमि के लिए (Fatherland) किया हुआ उसका आवाहन सफल रहा। श्री गुरुजी यह उदाहरण देकर कम्युनिस्टों को निरुत्तर कर देते थे। पर १९६२ में जब चीन का भारत पर आक्रमण हुआ था तब पश्चिम बंगाल में कम्युनिस्टों ने उसका परोक्ष ढ़ंग से स्वागत किया था।

श्री गुरुजी सरकार और समाज को सावधान करने हेतु हमेशा कहा करते कि अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत को चाहिए कि वह किसी भी सत्ता गुट में खींचे जाने से स्वतः को बचाए। वे कहा करते कि साम्यवाद तो अपने को रूस के खूँटे से बांधने की कोशिश करेगा, इस कारण हमें सावधानी बरतनी चाहिए। साथ ही एक और सत्य वे सामने रखते थे। समाज का 'श्रमिक' और 'अन्य' ऐसा संघर्षात्मक वर्गीकरण हिन्दू दर्शन के विरुद्ध है। द्वेष भावना उभाड़कर-भड़काकर सुख-शांतिपूर्ण समाज-रचना नहीं हो सकती। संपूर्ण समाज के सुख का या समाज के संपूर्ण सुख का विचार विभक्त रूप में नहीं प्रत्युत संयुक्त रूप में ही करना चाहिए। विविधता को नकारना ठीक नहीं है। विविधता को मानते हुए प्रत्येक व्यक्ति के लिए विकास का अवसर प्रदान करनेवाला हिन्दू

विचार ही श्रेष्ठ है, इस प्रकार का मौलिक तथा समर्थ प्रतिपादन मार्क्सवाद की धज्जियाँ उड़ते समय श्री गुरुजी ने किया।

मानना होगा कि भारत में मार्क्सवाद को निष्प्रभ करने में श्री गुरुजी के तात्विक तथा राष्ट्रीयता पर आधारित वैचारिक आक्रमणों का योगदान महत्वपूर्ण तथा मौलिक था। उनका कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति की जरुरतें पूरी हों, विषमता की खाई को पाटा जाय तथा अनिर्बंध संचय करने पर रोक लगाई जाय। यह पृष्ठभूमि होने पर भी यदि कम्युनिस्ट श्री गुरुजी पर नाराज हों या उन पर आरोप-प्रत्यारोप करते रहें तो यह मानना पड़ेगा कि उनका सोच कम्युनिस्ट पोथीवाद से ऊपर नहीं उठ सका।

२१.५ चुनावों के बारे में चेतावनी

श्री गुरुजी को विवादास्पद बनाने के लिए चुनाव को भी एक अस्त्र बनाया गया। स्वाधीनता प्राप्त होते ही अपने संपूर्ण जीवन पर चुनाव बुरी तरह छा गये। राजनीति और सत्ता स्पर्धा का रंग पूरे समाज पर चढ़ गया। चुल्हे तक राजनीति का प्रवेश हो गया। समाज़ का कोई अंग राजनीति से अछूता नहीं रहा। छोटे-छोटे देहातों में भी राजनीति ने लोगों के बीच में मतभेदों की दीवारें खड़ी कर दीं। गाँव गुटों में बँट गये। लोग आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सरकार का मुँह ताकने लगे। परिणामतः स्वयंप्रेरणा क्रमशः क्षीण होती गयी। कार्यकर्ता और नेताओं की दृष्टि से तो 'राजनीति निरपेक्ष' ऐसा कुछ बचा ही नहीं। 'सेवा' भी मतसापेक्ष बनकर रह गयी। इस परिस्थिति के कारण संघ के समान बलशाली संगठन की सहायता प्राप्त हो ऐसी इच्छा अनेकों के मन में निर्माण हुई। इस कालखंड में श्री गुरुजी ने संघ को राजनीति की दलदल से संपूर्णतः अलग रखा। राजनीति से अलग रहने के कारण ही संघ सुचारु रूप से टिका रह सका और बढ़ता गया। संघ के आद्य सरसंघचालक डॉ. हेडगेवार जी ने प्रारंभ से ही दो प्रमुख सूत्र परहेज के रूप में अपनाए थे और कार्यकर्ताओं तथा अन्य स्वयंसेवकों को इन सूत्रों का कठोरता से पालन करने का आग्रह रखा था। ये दो सूत्र थे हिन्दू राष्ट्र का प्रखरता से प्रतिपादन तथा किसी भी परिस्थिति में इस विषय के बारे में समझौता नहीं करना और सत्ता स्पर्धा और दैनंदिन राजनीति से अलग रहना।

श्री गुरुजी ने न केवल इन सूत्रों को अबाधित रखा अपितु उनके समर्थन में समर्थ भाष्यकार की भूमिका निभाई। अनेकों ने संघ और भारतीय जनसंघ का संबंध जोड़कर दोनों के एकरूप और परस्परपूरक होने का प्रयत्नपूर्वक प्रचार किया। एकाध बार अखबारों की सुर्खियों में ऐसी खबरें छापी गईं कि श्री गुरुजी चुनाव में खड़े हो रहे हैं। किन्तु श्री गुरुजी दृढ़ता से यही प्रतिपादन करते रहे कि नित्य परिवर्तनशील दैनिक राजनीति से जुड़ा कोई भी संगठन राष्ट्र निर्माण का शाश्वत काम नहीं कर सकता। प्रत्यक्ष जनसंघ के नेताओं को भी श्री गुरुजी ने सचेत करते हुए कहा था कि यदि वे सोचते हैं कि संघ के स्वयंसेवक वालंटियरों की तरह जनसंघ का काम करेंगे तो वे इस अपेक्षा को अपने मन से निकाल दें। जो स्वयंसेवक अन्यान्य क्षेत्रों में कार्यरत हों वे यह समझ लें कि उनका व्यवहार संघ का विचार ध्यान में रखकर ही हो।

श्री गुरुजी का कार्य मूलतः राष्ट्र पुनर्निर्माण का था। राजनीतिज्ञ और राष्ट्र नवनिर्माता ऐसा दुहरा स्वरूप उनका कदापि नहीं था। फलस्वरूप निर्भयता से सत्य बोलने, सत्य कटु होने पर भी देशहित के लिए उसे उजागर करने और समाज को योग्य मार्गदर्शन

करने के लिए वे स्वतंत्र थे। श्री गुरुजी ने राजनीतिक दबावों से समझौता कभी किया ही नहीं। राष्ट्र के लिए हानिकारक नीतियों पर टीका-टिप्पणी करते समय तथा राष्ट्र के हित में कोई पर्याय सुझाते समय उन्होंने काँग्रेस या जनसंघ, कम्युनिस्ट मजदूर आंदोलन या भारतीय मजदूर संघ ऐसा विचार कभी मन में आने ही नहीं दिया। स्व. लाल बहादुर शास्त्री जी जब केन्द्र में गृहमंत्री थे, तब श्री गुरुजी की उनसे भेंट हुई। इस मुलाकात के पूर्व शास्त्री जी के सम्मुख प्रदर्शनकारियों ने 'हिन्दुओ जागो' ऐसे बैनर्स दिखाये थे। असम में हो रहे घुसपैठियों के अवैध प्रवेश के विरोध में हजारों आंदोलनकारियों ने यह प्रदर्शन किया था। स्वाभाविक रूप से असम का प्रश्न चर्चा में उपस्थित हुआ। शास्त्रीजी ने सरकार की ओर से अपनी अड़चने बताई। शास्त्रीजी का कहना था कि असम में अवैध प्रवेश करनेवाले मुसलमान घुसपैठिये स्थानीय मुसलमानों में घुलमिल जाते हैं। फलतः उन्हें खोज कर वापस भेजना कठिन हो जाता है। श्री गुरुजी ने इस अड़चन को दूर करने हेतु उपाय सुझाते हुए कहा कि असम के मूल नागरिकों को सूचित किया जाय कि जो इन घुसपैठियों को आश्रय देंगे उनसे सख्ती से निपटा जाएगा। शासन उन्हें माफ नहीं करेगा। यदि वे न मानें तो उन्हें खदेड़ दिया जाय। साथ ही उनसे मतदान का अधिकार छीन लिया जाए। श्री गुरुजी ने शास्त्री जी को सलाह तो दी, किन्तु यह भी कहा कि आप यह काम शायद नहीं कर सकेंगे क्योंकि कांग्रेस पार्टी के चुनाव गणित में हजम होनेवाली यह बात नहीं है। आखिर वही हुआ। इस समस्या की उग्रता निरंतर बढ़ती ही गई। मुसलमानों के लिए समान नागरिक कानून (कॉमन सिविल कोड) के संबंध में अपनी मतभिन्नता श्री गुरुजी ने स्पष्ट रूप से व्यक्त की थी। उसी प्रकार भारतीय मजदूर संघ के नेता से बातचीत करते हुए श्री गुरुजी ने दृढ़तापूर्वक कहा था कि "सामूहिक सौदेबाजी खुली राहजनी ही है (कलेक्टिव बार्गेनिंग इज़ हायवे राबरी)"।

श्री गुरुजी ने स्वतः को तथा संघ को राजनीति से अलिप्त रखा। पृथकता से भरे भेदभाव के विचारों को तनिक भी मन में न रखते हुए एकरसता की भावना से राष्ट्र का विचार किया। इसी कारण राष्ट्रीय एकात्मता के दिव्य साक्षात्कार से अनुप्राणित हुई सुवा शक्ति का वे निर्माण कर सके। जिसे राष्ट्र निर्माण करना है उसे सर्वप्रथम मनुष्य की विचार करना पड़ता है, मनुष्य को भ्रष्ट कर कुर्सी हथियाने का नहीं! इसीलिए श्री गुरुजी ने आजीवन निःस्वार्थ, चारित्र्य संपन्न, मातृभूमि की विशुद्ध भक्ति से अभिमंत्रित तथा कल्याणकारी हिन्दू-गुणों से संपन्न मनुष्य स्थान-स्थान पर निर्माण करने हेतु भगीरथ प्रयत्न किया। हिन्दू परंपरा में निहित उदात्त विचारों और भावनाओं को फूल की तरह खिलाया। साथ ही स्वार्थ, भोगवाद की वासनाओं के कीचड़ से बाहर आने का पुरुषार्थ से भरा आवाहन किया, जिजीविषा (जीना और विजय प्राप्त करने की इच्छा) जागृत की। यदि ऐसा न होता तो संघ के सैकड़ों प्रचारक, तन-मनधन अर्पण

कर कार्य में जुटे गृहस्थाश्रमी, विविध क्षेत्रों में विधायक सेवाकार्य करनेवाले गुणसंपन्न कार्यकर्ता अपने देश को भला कैसे प्राप्त होते? निराधार समाज आधार के लिए किसका मुँह ताकता?

२१.६ विरोधियों के प्रति भी सद्-भाव

अपने स्वार्थपूर्ण सत्ता की राजनीति में श्री गुरुजी एक अड़ंगा हैं, संघ किसी भी प्रलोभन का शिकार नहीं होता, कोई आतंक या दहशत संघ के मन को नहीं डराता, यह सब देखकर श्री गुरुजी तथा संघ को विवादास्पद सिद्ध करने का प्रयत्न निहित स्वार्थवाले लोग करें तो आश्चर्य की बात नहीं है। यही कहना पड़ेगा कि श्री गुरुजी के समान महापुरुष के अंतःकरण में निहित मातृभूमि की दिव्यता तथा हिन्दू आदर्शवाद से अनुप्राणित आकाश सी विशालता उन्हें विवादास्पद बनानेवालों को दिख न सकी या दिखाई देते हुए भी स्वार्थवश इन लोगों ने इस गुणसागर की अनदेखी की। मतभेद भले ही हों, फिर भी 'वयं पंचाधिकं शतम्' ये इस महान् जगन्मित्र की आत्मा के शब्द थे। गांधीजी की दुर्भाग्यपूर्ण हत्या के पश्चात् संघ को नष्ट करने के लिए हिंसक भावना से संघ पर आक्रमण हुआ तब 'किसी भी परिस्थिति में शांत रहो' यह श्री गुरुजी का आदेश था। संघ पर लगा प्रतिबंध हटने के पश्चात् भी उन्होंने कहा, 'वे भी अपने ही हैं। भूल जाओ। उन्हें क्षमा करो।' राष्ट्र पर बीते हर संकट की घड़ी में श्री गुरुजी अग्रसर रहा करते थे। सहायता प्रदान करने के लिए उनका हाथ सबसे पहिले आगे रहा करता था।

कर्तव्य भावना की प्रबलता के कारण सेवा करने के लिए सदा तत्पर रहने की बात वे कहा करते थे। सेवा भी मूक, ढिंढोरा पीटकर या विज्ञापन बाजी करके नहीं। किये हुए त्याग की कीमत वसूल करने की बात भी नहीं। इस संबंध में एक संस्मरणीय प्रसंग ग्वालियर में हुआ।

मई १९७२ की घटना है। 'राष्ट्रीय सुरक्षा मोर्चा' नामक एक पुस्तक श्री गुरुजी को भेंट की गयी। भारत-पाक युद्ध के समय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवकों द्वारा किए गए कार्य की जानकारी इस पुस्तक में संग्रहित की गयी थी। पुस्तक के पन्ने उलटकर श्री गुरुजी ने कहा, "इस प्रकार की पुस्तक को मैं स्वीकार नहीं कर सकता। यदि कोई पुत्र अपनी माता की सेवा करने के पश्चात् कहे कि मैं इस सम्बन्ध में विज्ञापन देना चाहता हूँ, तो क्या यह उचित होगा? स्वयंसेवकों ने अपनी मातृभूमि की सेवा के लिए जो कुछ किया वह तो उनका स्वाभाविक कर्तव्य था। फिर ऐसी सेवा का प्रचार

किसलिए?" भारत विभाजन के समय तथा देश में समय-समय पर उत्पन्न संकटकालीन अवस्थाओं में संघ के स्वयंसेवकों ने असीम त्याग कर अपना कर्तव्य निभाया, बलिदान भी किया। सब को सहायता दी। जाने माने उच्चपदस्थों को भी सहायता पहुँचाई। किन्तु इस सेवा से लाभ उठाने का प्रयत्न श्री गुरुजी ने कभी नहीं किया। संघ द्वारा की गयी सेवा का मूल्यांकन किसी ने किया है या नहीं इसकी संघ ने कभी चिंता नहीं की। सेना के अधिकारियों ने संघ द्वारा की गई सेवा की सराहना की। सेनाधिकारियों के पूछे जाने पर श्री गुरुजी ने उन्हें बताया, "संघ ने जो कुछ भी किया वह केवल कबड्डी खेलकर।" श्री गुरुजी का उत्तर सादगी भरा था।

हिन्दूत्व का रीजनीति के लिए लाभ उठाने का विचार श्री गुरुजी ने कभी नहीं किया। उनका मानना था कि विश्व हिन्दू परिषद् भी किसी राजनीतिक दल से अपने को न जोड़े। सरदार वल्लभ भाई पटेल ने श्री गुरुजी व संघ को कॉंग्रेस में आने की प्रार्थना की थी किन्तु श्री गुरुजी ने उसे नकार दिया था।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री गुरुजी और स्वाधीनता प्राप्त होने के पश्चात् अखंड रूप से सत्ता में रही कॉंग्रेस के बीच मैत्रीपूर्ण, खुले मन के सामंजस्यपूर्ण तथा परस्पर पूरक संबंध नहीं रहे, यह देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य रहा। इसमें एक ही अपवाद था श्री लाल बहादुर शास्त्री का, जो अल्प काल ही रहा।

श्री शास्त्री और श्री पटेल से श्री गुरुजी के सामंजस्यपूर्ण संबंध थे किंतु इसका अर्थ यह नहीं था कि उनमें पूर्ण मतैक्य था, बल्कि यह मानना अधिक उचित होगा कि श्री गुरुजी की देशभक्ति, सामाजिक विचारों का उदारीकरण तथा भविष्य में आनेवाले संभावित संकटों का पूर्वानुमान और राष्ट्र को सचेत करने के उनके प्रयत्नों में जो प्रामाणिकता दिखाई दी उससे श्री. शास्त्री तथा श्री पटेल प्रभावित थे।

१९४९ में संघ पर से लगा प्रतिबंध उठने के पश्चात् श्री गुरुजी ने जब प्रवास किया तब वे भिन्न-भिन्न मतों के अग्रणी महानुभावों या नेताओं से मिले। इनमें थे डा. बाबासाहब आंबेडकर, श्री. गोपाल स्वामी अय्यंगार, श्री काका साहब गाडगील, डॉ. एम. के. दर और अन्य अनेक। सुख-दुःख के प्रसंगों में पत्र व्यवहार करते समय मतभेदों का विचार उनके मन में कभी उठा ही नहीं। संघ स्वयंसेवकों के परिवार में कोई दुःखद घटना होने पर श्री गुरुजी जिस आत्मीयता से पत्र लिखा करते थे उसी आत्मीयता से श्री फिरोज गाँधी की मृत्यु के पश्चात् सद्-भावना से भरा एक पत्र

उन्होंने पं. जवाहरलाल नेहरु को भी लिखा था। श्री गुरुजी जगन्मित्र थे, न केवल भावना से बल्कि प्रत्यक्ष कृति से भी।

श्री गुरुजी की मत था कि यदि देशसेवा की प्रामाणिक भावना हो और मन शुद्ध तथा साफ हो तो सहकार्य के लिए भूमिका उपलब्ध हो सकती है। प्रधानमंत्री पं. नेहरु ने संघ विरोधी प्रचार बहुत किया और सत्ता में आने के बाद श्रीमती इंदिरा गाँधी ने तो संघ का विरोध करने में पं. नेहरु को भी पीछे छोड़ दिया। श्रीमती इन्दिरा गाँधी अपने पिताजी से संघ विरोध में दो कदम आगे ही थीं। किन्तु श्री गुरुजी ने संयम नहीं खोया। स्वाभिमान और निर्णय- स्वातंत्र्य गँवाकर सत्ताधारियों से श्री गुरुजी कभी नहीं बोले। १९४८ में संघ पर प्रतिबंध लगा था। इस प्रतिबंध से संबंधित जो पत्र व्यवहार श्री गुरुजी ने सरकार से किया था वह इस तथ्य का साक्षी है। किसी की झूठी प्रशंसा करना उनका स्वभाव नहीं था। यद्यपि श्री गुरुजी की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी से भेंट होने का संयोग कभी नहीं आया फिर भी इंदिराजी के बारे में श्री गुरुजी हमेशा आदरभाव रखकर ही बोलते थे।

१९७१ में युद्ध के पश्चात् श्री गुरुजी ने श्रीमती इंदिरा गाँधी के विषय में एक उल्लेख किया था जो उनकी उदारता तथा आदरयुक्त भावना का श्रेष्ठ उदाहरण है। प्रसंग था ४ फरवरी १९७३ का, जिस दिन श्री गुरुजी बंगलौर में आयोजित एक विशाल जनसभा को संबोधित कर रहे थे। श्री गुरुजी ने, “हमारी समाजवादी और पंथनिरपेक्ष प्रधानमंत्री” ऐसा इंदिराजी का उल्लेख कर आगे कहा, “उन्हें और अन्य लोगों को ऐसा कहना पड़ा कि हमारे देश की पाँच हजार वर्ष पुरानी परंपरा है और हम किसी की धमकी के आगे झुकनेवाले नहीं।” “हम भी तो यही कहते हैं। संघ की सदस्यता पुरुषों तक ही मर्यादित है किन्तु हमारी प्रधानमंत्री इंदिराजी ने एकदम ऐसा कुछ कहा मानों वे संघ की ही एक घटक हैं, सदस्या हैं। तात्पर्य, संघ जिस भावना को जागृत करने का विगत अनेक वर्षों से प्रयत्न कर रहा है उन्हीं भावनाओं का प्रगटीकरण प्रधानमंत्री ने किया और इन विचारों को सुनकर मुझे बहुत आनंद हुआ है।”

मद्रास की एक महिला का मत था कि श्री गुरुजी स्त्रियों से नहीं मिलते। उनसे बोलते तक नहीं। इस संबंध में बोलते समय श्री गुरुजी ने कहा, “उनका कहना ठीक ही है। मैं न किसी स्त्री से मिलता हूँ और न बोलता हूँ। यह वास्तविकता है। मैं बोलता हूँ, मिलता हूँ स्त्री में अभिव्यक्त होनेवाले मातृत्व से।” ऐसे विशुद्ध हृदय से सांस्कृतिक उत्थान के लिए किया गया आवाहन यदि भारतीय जनमानस को छू जाय, उसे

संस्कारित करे और हिन्दू जीवन की ओर देखने का यतार्थ दृष्टिकोण प्राप्त हो जाए तो क्या यह स्वाभाविक नहीं है?

श्री गुरुजी जनसभाओं में बोलते थे और उनका शब्द प्रभावोत्पादक रहा करता था। किन्तु राष्ट्र जागरण का उनका मुख्य माध्यम राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, उसके कार्यकर्ता और स्वयंसेवक ही थे। संघ के अभ्यास वर्ग, संघ शिक्षा वर्ग तथा स्वयंसेवकों के एकत्रीकरण के अवसर पर श्री गुरुजी द्वारा दिये गये भाषण विपुल प्रमाण में उपलब्ध हैं। इन भाषणों में प्रायः उन गुणों का विवरण रहा करता है जो हर किसी स्वयंसेवक या कार्यकर्ता में होने आवश्यक हैं। अपनी परंपरा में गुणों को किस तरह महत्वपूर्ण माना गया है, इसका रोचक विवरण श्री गुरुजी किया करते थे। श्री गुरुजी का एक सूत्र था कि कार्यकर्ता यदि गुण संपन्न हों तो काम सुचारु रूप से हो सकता है।

२१.७सद्-गुणों की उपासना करें

'राजनीतिक' या 'प्रतिक्रियावादी' हिन्दू रहने में कोई अर्थ नहीं है। हिन्दू परंपरा ने जो गुण-संपदा भूषणास्पद व गौरवशाली मानी हैस उसे अपना कर वास्तविक रूप में हिन्दू बनने का प्रयत्न हमें करना चाहिए इस बात पर उनका आग्रह रहा करता था। श्री गुरुजी को संघ की जो प्रतिमा अपेक्षित थी वह थी गुणसंपन्न स्वयंसेवकों का प्रभावशाली संघ। श्री गुरुजी की मातृभूमि के संबंध में धारणा थी कि वह समष्टि रूप परमेश्वर और समस्त सद्-गुणों की जननी जगन्माता है। वे हमेशा कहा करते थे कि हर कार्यकर्ता तो हिन्दू जीवनधारा के संबंध में ज्ञान होना चाहिए। साथ ही व्यक्ति विशेष की दृष्टि से कार्यकर्ता निरहंकारी, विनम्र, परिश्रमी, निर्भय, अन्यों के सुख-दुःख से एकरूप होनेवाला, शरीर से बलवान, सबके मन, हृदयको भानेवाला, तत्वपालन में दृढ़, विश्वासपात्र, स्नेह से परिपूर्ण, सच्चरित्र तथा नेतृत्व करने में पात्रता का धनी होना चाहिए। गुणसंपन्नता के बारे में यही उनकी धारणा थी। अपनी प्राचीन परंपरा में से उदाहरण देकर कथाएँ सुनाकर इन गुणों का महत्व वे स्वयंसेवकों को बताया करते थे, उनके मनों को संस्कारित किया करते थे।

श्री गुरुजी कहते थे कि अपने भारत के हजारो वर्षो के इतिहास में जो असंख्य श्रेष्ठ पुरुष हो चुके हैं उनकी जीवन कथाओं में संस्कारों का समृद्ध भण्डार है। बचपन से ऐसे चरित्रों का विस्तृत पठन होने से और प्रत्येक प्रसंग का योग्य बोध ग्रहण करने की तीक्ष्ण बुद्धिमत्ता रहने से इन कथाओं का भरपूर उपयोग श्री गुरुजी के भाषणों में देखा जाता था। श्री गुरुजी का वक्तृत्व श्रोताओं की दृष्टि से निराला अनुभव रहता था।

उनकी तर्कशुद्धता, ओजस्विता, भावनोत्कटता और उदात्त सद्-गुणों के आवाहन का विलक्षण संगम श्रोताओं पर परिणाम कर जाता था। लक्षावधि लोग मन्त्रमुग्ध होकर राष्ट्रीय समस्याओं को स्पर्श करनेवाले और एक नयी दृष्टि प्रदान करनेवाले अमोघ वक्तव्यों का श्रवण करते रहते।

अब तो श्री गुरुजी को विवादास्पद सिद्ध करनेवाले शब्द हवा में विलीन हो गए हैं। जिन महान् सत्यों का निर्भय प्रतिपादन श्री गुरुजी ने आजीवन किया वे आज नहीं तो कल प्रस्थापित होते दिखाई देंगे, यह बात पत्थर की लकीर की तरह स्पष्ट है। इसके साथ ही यह विश्वास भी है कि श्री गुरुजी का कृतज्ञतापूर्ण स्मरण भविष्य में पीढ़ी दर पीढ़ी होता रहेगा।

*

२२ राष्ट्र की श्रद्धांजलि

श्री गुरुजी के निधन के पश्चात् उनके चरित्र एवं व्यक्तित्व को उजागर करनेवाली श्रद्धा एवं प्रशंसा की जो वर्षा हुई- उससे यह बात स्पष्ट हो गई कि उनके पार्थिव शरीर के भस्मीभूत होने के साथ ही इनकी तेजस्विता को आच्छादित किये हुए वाद-विवादों के बादल हटकर उनका उज्ज्वल चरित्र एवं राष्ट्रजीवन के लिए किया गया उनका योगदान पूरी गरिमा के साथ चमक उठा। श्री गुरुजी एक महान् राष्ट्रीय दर्शन एवं जीवनोद्देश्य के प्रभावी प्रवक्ता थे। उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को प्रकट करनेवाले राष्ट्रजीवन के अनेक प्रमुख सन्तों, राजनैतिक व अन्य नेताओं तथा समाचार पत्रों के श्रद्धासुमन बहुत कुछ कह जाते हैं। अपनी परिपाटी से हटकर संसद के दोनों सदनों ने संसद के किसी भी सदन के सदस्य न रहनेवाले श्री गुरुजी को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

संत को सन्तों की श्रद्धाञ्जलि

आचार्य विनोबा भावे ने अपनी भावनाएँ व्यक्त करते हुए कहा कि उनका दृष्टिकोण व्यापक, उदार और राष्ट्रीय था, वे हर चीज पर राष्ट्रीय दृष्टि से विचार करते थे। उनका आध्यात्म में अटूट विश्वास था, और सभी धर्मों के लिए उनके हृदय में आदर भाव था। उनमें संकीर्णता लेश-मात्र नहीं थी, वे हमेशा उच्च राष्ट्रीय विचारों से कार्य करते थे। वे इस्लाम, मसीही आदि धर्मों को बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे और यह अपेक्षा करते थे कि भारत में कोई अलग न रह जाय।

पुरी के जगद्-गुरु शंकराचार्य स्वामी निरञ्जन देव तिर्थ ने कहा कि श्री गोलवलकर जी ने धर्मप्राण भारत से गोहत्या के कलंक को मिटाने के लिए सदैव आगे रहकर प्रयास किया। हिन्दू संगठन के वे आकांक्षी थे तथा हमें उनके इस महान् लक्ष्य की पूर्ति कर उनकी आकांक्षा को साकार रूप देना चाहिए। काञ्चीकाम कोटि पीठ के शंकराचार्य स्वामी जयेन्द्र सरस्वती ने कहा कि श्री गोलवलकर जी जीवन के अन्तिम क्षणों तक हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति तथा राष्ट्र की सेवा के लिए अथक प्रयत्न करते रहे। वे सफेद कपड़े में एक तपस्वी संत थे। धर्मसंघ के संस्थापक स्वामी करपात्री जी ने कहा कि उनकी उत्कृष्ट राष्ट्रभक्ति तथा समर्पित भाव से राष्ट्र और समाज-सेवा के क्षेत्र में किये गये कार्य प्रेरणादायी रहेंगे।

जैन संत आचार्य तुलसी ने अपनी श्रद्धाञ्जलि में कहा कि उनमें सक्रियता, संगठन शक्ति और भारतीय संस्कृति का अनुराग था। वे समालोचक और गुणग्राही दोनों एक साथ थे। वे राष्ट्रीय चरित्र पर बल देते थे। जैन आचार्य मुनि सुशील कुमार जी ने

गुरुजी को 'संस्कृति के महामानव' के रूप में वर्णन करते हुए कहा कि आज देश जिस कठिन परिस्थिति से गुजर रहा है उसमें श्री गोलवलकर गुरुजी का रहना अत्यन्त आवश्यक था। समूचा राष्ट्र अपने देश और संस्कृति के लिए की गई उनकी सेवा के लिए सदैव ऋणी रहेगा।

२२.१ नेताओं के श्रद्धासुमन

राष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरि ने कहा कि श्री गोलवलकर अपने ढंग से अत्यन्त निष्ठापूर्वक आजीवन देश की सेवा करते रहे। वे धर्म में निष्ठा रखनेवाले व्यक्ति थे और उनमें संगठन की अपूर्व क्षमता थी। लोकसभा अध्यक्ष श्री गुरुदयाल सिंह ढिल्लों ने कहा कि श्री गुरुजी अपने व्यक्तित्व, विद्वत्ता एवं अपने ध्येय के प्रति अथाह निष्ठा के बल पर जनजीवन में, विचारकों के बीच प्रमुख रूप से माने जाते थे। राज्यसभा अध्यक्ष तथा उपराष्ट्रपति श्री गोपालस्वरूप पाठक ने कहा कि श्री गुरुजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्रसेवा में लगाया। वे गहरी धार्मिकता वाले व्यक्ति थे और हिन्दू संस्कृति और सभ्यता में सुधार के लिए उन्होंने तल्लीन होकर कार्य किया। देश की प्रधानमंत्री और सदन की नेता श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अपने भाव प्रकट करते हुए कहा, "जो सदन के सदस्य नहीं थे ऐसे एक प्रतिष्ठित व्यक्ति श्री गोलवलकर जी नहीं रहे। वे विद्वान् थे, शक्तिशाली आस्थावाले व्यक्ति थे। अपने प्रभावी व्यक्तित्व और विचारों के प्रति अटूट निष्ठा के कारण राष्ट्रजीवन में उनका महत्वपूर्ण स्थान था।"

संगठन कांग्रेस के श्री श्यामनन्दन मिश्र ने कहा कि वे बड़े मनीषी थे, चिन्तक थे, तपःपूत थे। भारतीय वाङ्-मय के बड़े ज्ञाता थे और मुझे ऐसा लगता है कि वे बड़े कर्मयोगी और आत्मज्ञानी थे। उनका चरित्र और व्यक्तित्व प्रेरणा का स्त्रोत था। सोशालिस्ट पार्टी के श्री समरगुहा ने कहा कि वे देशभक्त थे और उन्होंने राष्ट्रीय कार्यों में देशभक्ति, समर्पण और सेवा के भाव हजारों तरुणों में विगत ४० वर्षों तक संचारित किए। समाजवादी नेता श्री एस.एम. जोशी ने कहा कि श्री गोलवलकर के निधन से एक तपस्वी की जीवन ज्योति बुझ गयी।

रक्षामंत्री श्री जगजीवन राम ने कहा कि भारत ने सरसंघचालक श्री गोलवलकर की मृत्यु से एक ऐसा नेता खो दिया है जो संगठन की योग्यता रखता था तथा जिसमें राष्ट्रीय हित को लेकर कष्ट उठाने की क्षमता थी। अकाली दल के नेता तथा जत्थेदार श्री संतोष सिंह ने कहा कि श्री गुरुजी एक महापुरुष थे। उनके जैसे व्यक्ति अमर होते हैं। श्री गुरुजी के देहावसान से सिख्ख सम्प्रदाय को भारी क्षति हुई है। उनके सामने

खड़े होकर हिन्दू-सिख का भेद-भाव खत्म हो जाता था। शिवसेना के श्री बाल ठाकरे ने कहा कि किसी जहाज का नायक की भाँति श्री गोलवलकर जी संघ को अनेक संकटों से कुशलतापूर्वक आगे बढ़ाते ही गये।

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के कामरेड श्री तकी रहमान ने कहा कि यद्यपि मैंने श्री गुरुजी के दर्शन कभी नहीं किये तथापि देश के उज्ज्वल भविष्य के उनके आदर्श में विश्वास रखनेवालो में श्री गुरुजी की प्रेरणाशक्ति को मैंने अनुभव किया है। पटना के एक कांग्रेसी नेता श्री हाफीजुद्दीन कुरैशी ने कहा, "वे वास्तव में महापुरुष थे। दूर से देखनेवाले लोग उनके बारे में गलत धारणा बना लेते थे। वे साम्प्रदायिक नहीं थे, वे मुस्लिम विरोधी भी नहीं थे। मुस्लिम विरोध के नाम पर आज तक मुसलमानों को संघ के नाम पर बरगलाया जाता रहा है। श्री गुरुजी समान अधिकारों और धार्मिक स्वतन्त्रता के पक्षधर थे।"

राष्ट्रीय सेविका समिति की संचालिका श्रीमती मावशी केलकर ने कहा कि भारत की हिन्दुत्वनिष्ठ शक्ति का मानबिन्दु चला गया है, हिन्दु राष्ट्र की इससे अपरिमित क्षति हुई है। भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष श्री लालकृष्ण आडवाणी ने अश्रुपूरित श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा कि गुरुजी आधुनिक युग के स्वामी विवेकानन्द थे। जो महान् व विशाल भारत के निर्माण के लिए दृढ़संकल्प व निष्ठा के साथ प्रयत्नशील थे। देश के लाखों युवकों के लिए गुरुजी अटल देशभक्ति और निःस्वार्थ त्याग के प्रेरणादायक प्रतीक थे। श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने श्री गुरुजी को अपनी श्रद्धाञ्जलि व्यक्त करते हुए कहा कि आत्मविस्मृत हिन्दू समाज को स्वत्व का साक्षात्कार कराके श्री गुरुजी ने उसे संगठित, शक्तिशाली तथा आत्मविश्वास से परिपूर्ण बनाने के राष्ट्रकार्य के लिए अपने शरीर का कण-कण और जीवन का क्षण-क्षण समर्पित कर दिया। यह उनकी अखण्ड साधना तथा अद्वितीय संगठन कुशलता का ही परिणाम है कि हिन्दू समाज आज जागृत हो गया है और अपने ऊपर होनेवाले किसी भी आक्रमण का प्रतिकार करने में सक्षम है।

पटना की शोक सभा में अपने उद्-गार व्यक्त करते हुए लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि श्री गुरुजी आध्यात्मिक विभूति थे। यह एक बड़ा बोध है कि हम भारतीय हैं, हमारी हजारों वर्ष पुरानी परम्परा है, भारत का निर्माण भारतीय आधार पर ही होगा। चाहे हम कितने ही माडर्न क्यों न हो जायं, हम अमरीकी, फ्रेंच, इंग्लिश, जर्मन नहीं कहला सकते, हम भारतीय ही रहेंगे। यह 'बोध' है राष्ट्रीयता का बोध, जिसे सहस्त्रों नवयुवकों में जगाया था पूज्य गुरुजी ने।

२२.२समाचार पत्रों की श्रद्धाञ्जलि

देशभर के अंग्रेजी व हिन्दी के ही नहीं वरन् विभिन्न भाषा-भाषी पत्रकारों के भी लगभग इसी प्रकार के विचार लेखों व अग्रलेखों द्वारा प्रकट किये गये। उनमें से कतिपय लेखों में यह बात जरूर सामने आई थी कि वे श्री गुरुजी के विचारों से भिन्न मत रखते थे किन्तु राष्ट्रजीवन के लिए श्री गुरुजी के विभिन्न प्रकार के योगदान की उन्होंने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की थी।

लखनऊ के दैनिक 'पायनियर' ने लिखा कि श्री गुरुजी का समर्पित जीवन था। दृढ़ देशभक्त श्री गुरुजी को संकुचित अथवा साम्प्रदायिक कहना उनके साथ अन्याय करना है। यह उनका ही सिद्धान्त था कि आक्रमणों का सामना करने में समर्थ और शक्तिशाली राष्ट्र तब ही बन सकता है जब राष्ट्र को एकसूत्र में गूँथा जाए।

मायावती स्थित रामकृष्ण आश्रम के 'प्रबुद्ध भारत' ने लिखा कि श्री गुरुजी के देहत्याग के बाद उनके प्रति विवाद समाप्त होकर राख में मिल गया और उनका निर्मल चरित्र उस राख में से उठकर दमक उठा। गोलवलकर जी का जीवन एक खुला हुआ ग्रन्थ है जिसे सभी पढ़ सकते हैं। हो सकता है आप कई मुद्दों पर उनसे सहमत न हों परन्तु आज इसका कोई महत्व नहीं रहा। महत्व इस बात का है कि आज आप उनमें एक ऐसे व्यक्ति और चरित्र का दर्शन कर रहे हैं जो निष्कलंक, निस्वार्थ और निर्भय रहा। वे अपने लिए नहीं, पूर्णतः सबके लिए जिए। भला ऐसी बात इस विश्व में कितने लोगों के लिए कही जा सकती है? इससे भी अधिक श्री गोलवलकर जी ने जो सबसे बड़ी सेवा भारत और उसके लोगों की की, वह है उनके द्वारा किया हुआ वाणी और व्यवहार में उन विशेष मूल्यों का संरक्षण, जिनकी राष्ट्र के अस्तित्व और उसके सुव्यवस्थित विकास के लिए आवश्यकता है। जबकि जाने माने राजनीतिक नेतागण, नदी-योजनाओं, औद्योगीकरण, परिवार-नियोजन, जीवन-स्तर आदि की बातें कर रहें थे, तब वे अनुशासन, शक्ति, निर्भयता, चरित्र, निःस्वार्थ सेना, गतिशील देशभक्ति की शिक्षा दे रहे थे जिसके बिना उपर्युक्त आधुनिक लक्ष्य भारत को उज्ज्वल भविष्य कदापि प्रदान नहीं कर सकते।

वाराणसी के दैनिक 'आज' ने लिखा कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर संकीर्ण साम्प्रदायिकता का आरोप नहीं लगाया जा सकता। संघ को सक्रिय राजनीति से दूर रखने का श्रेय श्री गोलवलकर के व्यक्तित्व तथा राष्ट्र-सेवा-संबंधी उच्च आदर्श को ही

है। गुरुजी अपने बाह्य और अन्तःस्वरूप दोनों दृष्टियों से ऋषितुल्य प्रतीत होंगे। जब वे हिन्दू राष्ट्र की चर्चा करते थे तब हिन्दुत्व की उनकी धारणा स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामकृष्ण तथा श्री अरविन्द घोष की हिन्दुत्व की कल्पना से ओतप्रोत हुआ करती थी।

त्रिवेन्द्रम् के मलयालम दैनिक मातृभूमि के अनुसार श्री गुरुजी का कार्य इस बात का प्रमाण है कि केवल नारेबाजी से कहीं अधिक ऊँचे स्तर पर युवकों को विस्तृत उच्च सेवा के लक्ष्य की ओर प्रेरित किया जा सकता है। जो उनकी विचारधारा को स्वीकार नहीं करते तथा उसकी आलोचना करते हैं, उन्हें भी उनके जीवन की शुद्धता, समर्पण भाव, लगन और प्रामाणिकता के समक्ष नतमस्तक होना पड़ता है।

मलयालम पत्र मनोरमा दैनिक ने लिखा कि श्री गुरुजी की मृत्यु से एक शक्तिशाली व्यक्ति भारतीय जीवन में काल के परदे के पीछे लुप्त हो गया है। उन्होंने अनुशासनबद्ध तथा सुदृढ़ नवयुवकों की पंक्तियाँ निर्माण कीं।

त्रिवेन्द्रम के ही दैनिक मलयालम एक्सप्रेस के अनुसार .... 'सर्वसंग परित्याग ही सिद्धि और विनम्रता ही उत्थान' इस ध्येय पर अविचल निष्ठा रखनेवाली अपने देश में एक परंपरा है। इस ऋषि-परंपरा का यह भी दृढ़ संकल्प है कि राजसत्ता प्राप्त करने के स्थान पर समाज-शक्ति को संगठित करके देश को आगे बढ़ाया जाना चाहिए। वर्तमान आधुनिक युग में भी यह परंपरा आबाध गति से चल रही है यह बात राजा राममोहन राय, श्री रामकृष्ण देव, स्वामी विवेकानन्द, गांधी जी और श्री गोलवलकर जी के जीवनों से स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाती है।

रांची के साप्ताहिक 'रांची एक्सप्रेस' ने लिखा कि आधुनिक काल में देश में गाँधी जी के बाद श्री गोलवलकर ही ऐसे व्यक्ति थे जिनके व्यक्तित्व व कृतित्व ने लाखों लोगों को प्रभावित किया।

मद्रास के दैनिक तमिल 'दिनमणि' के अनुसार उन्होंने संघ प्रमुख के नाते जो सेवा की वह अद्वितीय है। ईश्वर भक्ति, राष्ट्रभक्ति, त्याग भावना, अनुशासन का भाव भरने तथा दुखियों का दुख दूर करने तथा समाज के जागरुक प्रहरी के नाते कर्तव्य दक्ष रहने का भाव जाग्रत करने का जो कार्य उन्होंने किया है वह अतुलनीय है। कल्कि साप्ताहिक ने लिखा कि गुरुजी अपने ध्येय के लिए संघर्ष करनेवाले महापुरुष थे तथा उसके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था।

मद्रास के दि मेल ने लिखा कि संस्कार, मातृभूमि के प्रति प्रेम तथा स्वाभिमान पर उनका हिन्दू राष्ट्र आधारित था।

हैदराबाद के दैनिक 'दि डेक्कन क्रानिकल' ने लिखा कि 'श्री गोलवलकर जी के रूप में अनेक आदर्श एक साथ अभिव्यक्त हुए थे। उनमें हिन्दुत्व अपने श्रेष्ठतम रूप में प्रकट हुआ था। स्वामी विवेकानन्द के समान ही वे भारत की आत्मा की साकार मूर्ति थे। वे सच्चे राष्ट्रवादी थे जो पाश्चात्य मतवाद एवं प्रेरणा के लिए विदेशों की ओर नहीं ताकते थे।'

बंगलौर के कन्नड़ दैनिक 'प्रजावाणी' के अनुसार उनके द्वारा प्रतिपादित 'हिन्दू राष्ट्र' संप्रदायवाचक नहीं राष्ट्रवाचक था। उनकी धारणा थी कि भारत को अपनी मातृभूमि मानकर उसकी संस्कृति, परंपराओं के प्रति श्रद्धा, गौरव रखनेवाले सभी भारतीय हिन्दू हैं।

मणिपाल, कर्नाटक के दैनिक 'उदयवाणी' ने लिखा कि राष्ट्रधर्म हेतु संस्कृति के लिए अपना जीवन ही समर्पित कर इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी भी त्याग के लिए प्रस्तुत एक पीढ़ी का निर्माणकर ईश्वर के साथ ईश्वर बने माधव सदाशिव गोलवलकर मानों शताब्दियों में एक बार प्रकाशित होनेवाली चेतना है। ऐसों से राष्ट्र जीवन धन्य होता है, इतिहास चमकता है।

मुम्बई के दैनिक 'टाईम्स ऑफ इण्डिया' के अनुसार श्मश्रुयुक्त श्री गुरुजी अपने जीवनकाल में जहाँ अपने लोखों अनुयायियों के लिए हिन्दुत्व के त्राता एवं विवेकानन्द के रूप में पूज्य थे वहाँ उनके असंख्य आलोचक उन्हें हिन्दुत्व के तानाशाह के रूप में देखते थे। फिर भी इतना तो सत्य है कि श्री गुरुजी एक शक्ति दूत थे जो ऐसा सशक्त और संगठित भारत चाहते थे जो अपने उज्ज्वल भूतकाल के गौरवबोध से युक्त और अपनी ऐतिहासिक अस्मिता को न खोते हुए आगे बढ़ने हेतु तत्पर हो।

मुम्बई के ही मराठी दैनिक 'महाराष्ट्र टाईम्स' के अनुसार गोलवलकर गुरुजी के पीछे तो संघ की शक्ति थी परंतु उसका राजनैतिक सौदेबाजी करने के लिए उपयोग करने की कल्पना उन्हें स्वप्न में भी नहीं आई। कांग्रेस में सम्मिलित होने का सरदार पटेल का आवाहन गुरुजी ने विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया था। अपनी निष्ठा के प्रति प्रामाणिक रहकर आजीवन समाजसेवा करनेवाले व्यक्ति अब कहाँ हैं?

मुम्बई के साप्ताहिक ‘ब्लिट्ज’ के अनुसार उनकी विचार प्रणाली पुनरुत्थानवादी थी या जातीयवादी, यह विवाद्य विषय है परंतु जिस एकाग्र भाव से उन्होंने संघ का संगोपन किया उस पर कोई भी व्यक्ति आक्षेप नहीं कर सकता। उनका वैयक्तिक जीवन सन्यस्त था तथा उनकी संगठन क्षमता अद्वितीय थी। अपने ध्येय पथ पर चलते हुए उनके हृदय में आलस्य नहीं था, शब्दों की कमजोरी नहीं थी तथा भौहों पर थकान नहीं थी। यह उचित होगा कि अन्यान्य राजनैतिक नेतागण उनके उदाहरण को अपनाएँ जो पूर्णतया समर्पण भाव का रहा है।

मुम्बई के लोकसत्ता ने लिखा कि राजसत्ता का मोह छोड़ना बड़े-बड़े लोगों के लिए असम्भव है। इसलिए सत्ता सम्पादन की स्पर्धा में किसी भी देश के दल और विभिन्न राष्ट्र रस लेते हैं। सरसंघचालक ने सत्ता से मुँह मोड़ लिया था और उसके अनुसार स्वयं आचरण कर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्य की दिशा निश्चित की थी।

मुम्बई के ही मासिक ‘मदर इण्डिया’ के अनुसार व्यास, वाल्मिकि, रामदास, तुकाराम, विवेकानन्द एवं हजारों ऋषियों के ढाँचे में यह व्यक्तित्व ढला था।

क्या ऐसे व्यक्ति की मृत्यु हो सकती है? नहीं! अपने तिरोधान से उनकी स्मृति से अपने जीवन में हमारे हृदयों में देवत्व का भाव जागृत होता है। ऐसे ऋषि हमसे कभी अलग नहीं होते। वे सदैव जीवित रहते हैं तथा दिन-प्रतिदिन हमारे और निकट आते रहते हैं। अन्य ऋषियों के समान ही श्री गुरुजी भी सनातन हिन्दू धर्म के ही पुत्र थे, जिनका तादात्म्य श्री परमेश्वर के साथ है- और जिनका शुभाशिर्वाद इस पुरातन भूमि को सदैव प्राप्त है। ऐसे व्यक्ति समय-समय पर हमें उच्चादर्शों की प्रेरणा देने हेतु हमारे बीच आते रहते हैं।

पुणे के दैनिक ‘केसरी’ के अनुसार भगवान द्वारा बताये गये आत्मा के भगवत् स्वरूप को उन्होंने राष्ट्र की आत्मा से एकरूप और उसी सनातन राष्ट्र के चरणों पर अपना शरीर पुष्प अर्पित किया। गंगा अंत में जाकर जिस प्रकार सागर में मिलती हैं ठीक उसी तरह उनकी विशुद्ध कार्यगंगा जनसागर में समा गई और उससे एकाकार हो गई।

पुणे के ही साप्ताहिक ‘माणूस’ के अनुसार सत्ता से अलिप्त रहकर राजसत्ता पर अंकुश रखनेवाला यति वर्ग है, ऐसी भारतीयों की राजनीति तथा समाज रचना के संबंध में अति प्राचीन काल से चली आ रही अत्यंत प्रिय कल्पना रही है। यद्यपि इस कल्पना

का अर्वाचीन काल में गांधीजी ने उद्-घोष किया था तथापि उस कल्पना को साकार करने हेतु किसी ने प्रयत्नों की पराकाष्ठा की हो तो वे श्री गोलवलकर गुरुजी थे।

सकाल पुणे ने लिखा कि उनकी कार्यनिष्ठा, समाजहित की लगन, देशभक्ति के विषय में उनके प्रतिद्वन्द्वी भी संदेह नहीं कर सकते हैं। त्यागपूर्ण और समर्पित जीवन का आदर्श उन्होंने सामने रखा है। असाध्य रोग से जूझते हुए भी उन्होंने अपना कठोर व्रत अन्त तक निभाया।

अहमदाबाद के दैनिक 'गुजरात समाचार' के अनुसार श्री गोलवलकर जी के देहावसान से देश ने राष्ट्रवाद का एक प्रबल पुरस्कर्ता खो दिया है। जनसत्ता अहमदाबाद ने लिखा कि मालवीय तथा स्वामी विवेकानन्द ने भारतीयत्व के विषय में जिस प्रकार के उपदेश दिये थे उसी धरोहर की श्रृंखला को चालू रखनेवाले तथा स्वदेशी और भारतीयत्व के सम्बन्ध में देश के वर्तमान नेताओं में वे ही अकेले एक ज्योतिर्धर थे।

जयपुर की 'राजस्थान पत्रिका' ने उनका उल्लेख 'एक अद्-भुत और प्रखर व्यक्तित्व' के नाते से करते हुए लिखा कि उनका अपना एक दर्शन था और इस प्रयास में उनका देश की एक बड़ी संख्या ने साथ दिया। हिन्दू राष्ट्रवाद का कट्टरता से विरोध करनेवाले भी उनकी विद्वत्ता के प्रशंसक थे।

जयपुर के नवज्योत हेराल्ड ने लिखा कि कुछ राजनीतिक दलों द्वारा किये गये अपप्रचार के स्थान पर श्री गुरुजी पान्थिक कट्टरवाद तथा अन्ध जातिवाद से एकदम अलग थे। उन्होंने जीवन पर्यन्त सनातन हिन्दू धर्म की अमूल्य निधियों के प्रसार हेतु अथक परिश्रम किया। उनकी इच्छा थी कि भारतवासी यह समझें कि वे ऐसे नैतिक, आध्यात्मिक तथा धार्मिक परम्पराओं के उत्तराधिकारी हैं जो सभ्यताओं की दृष्टि से सबसे पुरानी है।

चंढीगढ़ स्थित 'दि ट्रिब्यून' के अनुसार 'यदि व्यक्तित्व मनुष्य के लिए पुष्प की सुगंध के समान है तो स्वर्गीय श्री गोलवलकर जी का व्यक्तित्व निश्चित ही असामान्य था।'

दिल्ली के दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के अनुसार 'विगत दो वर्षों के अंतर्गत सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक दृष्टि से हमारे देश में ऐसे व्यक्तियों का उदय हुआ है जिनकी महीयता का आभास पाने के लिए विराट् शब्द जुड़ता है। गुरु गोलवलकर उन्हीं विराट् व्यक्तियों में से एक थे।'

दिल्ली के इण्डियन एक्सप्रेस ने लिखा कि वे भारतीय इतिहास के प्रगाढ़ अध्येता थे तथा देश की उत्तर तथा पश्चिमी सीमाओं की सुरक्षा के सम्बन्ध में अत्यन्त चिंतित रहते थे। वे उन इने-गिने व्यक्तियों में से थे जो भारत-विभाजन की कल्पना को आत्मसात नहीं कर सके। वे चाहते थे कि भारत के मुसलमान भारत की मुख्य जीवनधारा से एकरूप हो जायें।

पञ्जाब केसरी- जालंधर ने लिखा कि संघ के कार्यों में गुरुजी की आस्था का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि देहान्त के पहले साढ़े सात बजे तक वह स्वयं को स्वस्थ अनुभव कर रहे थे और उन्होंने स्वयंसेवकों के साथ दैनिक प्रार्थना भी की।

साप्ताहिक दिनमान ने लिखा कि अपने जीवन में उन्होंने इस बात का प्रयास किया था कि हिन्दू समाज में विभिन्न पंथों के आचार्य मिलकर एक रस समाज के लिए सर्वसम्मत मार्ग तय करें।

कलकत्ते के दैनिक सन्मार्ग ने लिखा- "वस्तुतः उनकी मृत्यु से भारत ने एक महान् नेता, उपदेष्टा और पथदर्शक खो दिया। दिन्दू धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए उनकी सेवाओं की बहुत बड़ी आवश्यकता थी। राष्ट्रीयता के सजग प्रहरी के रूप में वे सदैव राष्ट्रीय भावनाओं को जगाने की चेष्टा में संलग्न रहे।"

समाज दैनिक, कटक का कथन था, "भारत का अतीव गौरवमय चित्र आँखों के सामने रखकर वर्तमान परिस्थिति में उसकी जो दुर्दशा हुई है उससे उसे ऊपर उठाकर पुनः उस गौरवपूर्ण स्थान पर स्थापित कराना, यह था उनके जीवन का महान् व्रत।...... अभूतपूर्व संगठन-शक्ति होने के कारण शिवाजी के समान भारत को दृढ़, बलिष्ठ और शक्तिशाली बनाने का स्वप्न उन्होंने हमेशा अपने सामने रखा।"

'आलोक' साप्ताहिक, गुवाहाटि के अनुसार "आत्मविस्मृत हिन्दू समाज को जगाने के लिए उन्होंने जागरण की जो अखण्ड धारा प्रवाहित की वह भारत में चिरकाल प्रवाहित होती रहेगी।"

*

२३ स्नेहिल मार्गदर्शक

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक के नाते श्री गुरुजी को जो सफलता प्राप्त हुई वह निःसंदेह अलौकिक है। किन्तु इस सफलता का निश्चित रहस्य क्या है? क्या श्री गुरुजी का मेधावी, ओजपूर्ण वक्तृत्व इस यश का मूल कारण है? या लोखों भारतवासीयों के अंतःकरण को प्रभावित करने की क्षमता रखनेवाला, महासागर की भाँति असीम और अथाह उनका ज्ञान भंडार? या उनके मुखमंडल पर आलोकित आध्यात्मतेज की आभा?

गहराई से सोचने के पश्चात् हमें इस तथ्य का ज्ञान होता है कि इन गुणों में से एक या अनेक गुण धारण करनेवाले अनगिनत लोग समाज में विद्यमान हैं या भूतकाल में हुए हैं। हिन्दुत्व का स्वाभिमान रखनेवाले या हिन्दू राष्ट्र की भाषा बोलनेवाले भी बहुत लोग थे। यह हिन्दुत्व का विचार कोई नयी खोज नहीं थी। श्री गुरुजी में कौन सी बात थी जिसके परिणामस्वरूप लोग उन्हें जी-जान से चाहते थे, हृदय से प्रेम करते थे? इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है जो आद्य सरसंघचालक डॉ. हेडगेवार तथा श्री गुरुजी पर समान रूप से लागू होता है।

२३.१ समाज के साथ एकरस, एकरूप

एक वाक्य में यदि कहा जाय तो श्री गुरुजी ने भारतभर भ्रमण कर समाज के हृदय पर स्नेहामृत का सिंचन किया और इसी कारण उनके संपर्क में आए लोगों ने उन्हें प्रेम दिया, उनके बारे में भक्तिभाव रखा, उन्हें अपना श्रद्धास्थान बनाया। श्री गुरुजी के अन्य अलौकिक गुणों के कारण इसकी शोभा और बढ़ गई, बस! श्री गुरुजी की मूल प्रवृत्ति एकांतवास तथा ध्यान-धारणा की ओर थी। हिमालय की पहाड़ियों, गुफाओं की ओर उनका अध्यात्म प्रवण मन आकर्षित हुआ करता था। अध्यात्म के गूढतम वातावरण में रहकर ध्यान-धारणा, योगादि क्रियाओं से आत्मा की मुक्ति का व्यक्तिगत रूप से उन्होंने न केवल प्रयास किया किन्तु यौगिक-आध्यात्मिक शक्ति भी अर्जित की थी। किन्तु नियति के गर्भ में माधव का नहीं, अपितु संपूर्ण हिन्दू समाज और समस्त विश्व के भी उद्धार का मार्ग उनके माध्यम से प्रदर्शित होता था। इसी कारण डॉ. हेडगेवार जी के संपर्क में आते ही श्री गुरुजी ने व्यक्तिगत मुक्ति की ओर से पूर्णतः पीठ फेर ली।

संघकार्य के लिए अपना सर्वस्वार्पण कर श्री गुरुजी ने संघकार्य का व्रत लिया था और उसे देह शांत होने तक निभाया। अब समष्टि-समाज ही उनका भगवान बना, मातृभूमि आराध्य देवता बनी और संपर्क में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को वे चिदंश के (ईश्वर का अंश) रूप में देखने लगे, उसे सेवाभाजन मानने लगे। भक्ति और साधना की सीढ़ी 'आत्मनिवेदन' या 'सर्वस्व समर्पण' वे पहले ही पार कर चुके थे। अब वह समर्पण मातृभूमि के चरणों में हुआ। आत्मनिवेदन होने पर भक्त भगवान से भिन्न नहीं रहता। दोनों एकरस, एक रूप हो जाते हैं। अभेद निर्माण हो जाता है। श्री गुरुजी समाज से अलग नहीं रहे। उनका व्यक्तित्व समाज में विलीन हो चुका था। एक बार 'धर्मयुग' साप्ताहिक ने श्री गुरुजी से अपने हस्ताक्षर युक्त ध्येयवाक्य देने का अनुरोध किया। श्री गुरुजी ने उत्स्फूर्त होकर केवल चार शब्द लिखे- 'मैं नहीं, तू ही!' बस! चार शब्दों में विश्व कल्याण का महामंत्र था! मनुष्य जब स्वतः को पूर्णतः मिटाकर समाज से एकरस, समरस हो जाता है, अहंकार सहित सभी व्यक्तिगत विकार नष्ट कर अपने आराध्य ध्येय से एक रूप हो जाता है तब वह आकाश के समकक्ष विशाल बनता है। वह स्वयं ही आकाश बन जाता है। इस मानसिकता में उसे स्वतः के लिए कोई अपेक्षा शेष नहीं रहती। वह स्वतः के लिए कुछ भी नहीं चाहता। वह ईश्वर का ही काम करता है। स्वार्थ का लोप होने के कारण काम, क्रोधादि विकारों की बलि वह नहीं होता। निर्भय निर्वैर बनने के फलस्वरूप प्रेम और करुणा के विशाल अथाह सागर का रूप उस के अंतःकरण को प्राप्त होता है।

'स्नेह झरे आगे, अक्षर चले पीछे' (पुढा स्नेह पाझरे, मागुता येती अक्षरे) ऐसा इस अवस्था का वर्णन संत ज्ञानेश्वर जी ने किया है। इसी अवस्था का प्रत्ययकारी अनुभव श्री गुरुजी के जीवन में आता है। एक बार श्री गुरुजी ने स्वतः के प्रारंभिक जीवन के बारे में कहा था कि उनमें विद्वत्ता का अहंकार था। उनकी वाणी भी बहुत तीखी और पैनी थी। वादविवाद करते समय अनेक प्रमाण देकर अपने प्रतिस्पर्धी को युक्तिवाद से पराभूत करने में उन्हें बहुत आनंद आया करता था। किन्तु जब श्री गुरुजी डॉक्टर जी के सम्मुख विनम्रता से नतमस्तक हुए और एक कुशल संगठक के नाते ध्येयनिष्ठ डॉक्टर जी के अद्वितीय गुणों को निकट से निहारा तब उन्होंने स्वतः के स्वभाव को प्रयत्नपूर्वक बदला। 'स्वभावो दुरितक्रमः' यह मत डॉक्टर जी ने झूठा सिद्ध कर दिखाया था। श्री गुरुजी ने भी इसी आदर्श को दुहराया। ये दोनों महापुरुष स्वतः के बारे में अत्यंत कठोर थे। अपनी देह की ओर उन्होंने लाड़-प्यार और मोह से कभी देखा ही नहीं। शारीरिक व्यथा तथा श्रम की कभी परवाह तक नहीं की। शरीर में बुखार होता, शरीर थका हुआ होता, किन्तु चुंकि डॉक्टर जी संघकार्य को ही प्राथमिकता देकर उसमें इतने समरस हो जाया करते थे कि शरीर की ओर ध्यान देने के लिए उनके पास समय ही नहीं रहता था। खून का पानी होते तक वे संघकार्य में जुटे रहे। बुखार की

बेहोशी में भी उनके मुँह से 'संघ' के, देश के बारे में ही शब्द निकला करते थे। स्वयं श्री गुरुजी इस के साक्षी थे। इसी क्रम को श्री गुरुजी ने भी चरितार्थ किया। श्री गुरुजी ने तो कैन्सर की शल्यक्रिया के पश्चात् अपने शरीर से संघ के ईश्वरीय कार्य के लिए निष्ठुरता से कार्य करवाया। किन्तु अन्यों के संबंध में 'मृदूनि कुसुमादपि' सा व्यवहार हुआ करता। लाभ की अपेक्षा न करते हुए प्रेम करना उनका स्थायी भाव था। श्री गुरुजी ने प्रचंड लोक संग्रह किया इस प्रेमभाव के सहारे और उन्हें स्वतः के और संघ के साथ बाँध रखा इसी विशुद्ध प्रेम बंधन से। प्रेम से संसार जीता जा सकता है, यह डॉक्टर जी और श्री गुरुजी ने सिद्ध कर दिखाया है। वे लोगों को ढाल सके क्योंकि उन्होंने लोगों के हृदयों में प्रवेश कर लिया था। तर्क और बुद्धि की सीमाओं को लाँघ कर वे प्रेम की सिद्धावस्था को प्राप्त कर सके थे, जिसके सहारे एक-एक के हृदय में उन्होंने ईश्वर भाव, श्रद्धा तथा समस्त सत् शक्तियां जागृत करने में सफलता पाई।

इसलिए कहना पड़ता है कि श्री गुरुजी ने लोगों को जीता उन्हें अपने अटूट स्नेह सूत्र में बांधकर। श्री गुरुजी प्रतिवर्ष दो बार संपूर्ण भारत का दौरा किया करते थे। यह क्रम 33 वर्षों तक अखंडरूप से चलता रहा। नये-नये लोग उनके संपर्क में आते और उनके ही होकर रह जाते थे। व्यक्तिगत भेंट और परिचय पर उनका ध्यान अधिक रहा करता था। केवल भाषण देने या वादविवाद करने से किसी को कार्य प्रवृत्त करना संभव नहीं यह वे जानते थे। मनुष्य प्रेम और संपर्क से गढ़ा जा सकता है। इसका जीता जागता आदर्श द्दय पर अधिकार करने की क्षमता रखनेवाला उनका स्नेहपूंज व्यक्तित्व था। श्री गुरुजी का व्यक्तित्व एक आश्वासक छाया थी जिसमें उनके प्रेमभाजन लोग शान्ति का अनुभव करते थे।

श्री गुरुजी ने लगभग 75 बार कश्मीर से कन्याकुमारी और मुम्बई से गुवाहाटी तक प्रवास किया था। इस प्रवास के समय अनेक लोगों के घर उनका निवास रहा। वे कभी आलीशान होटल में नहीं रहे। जिस घर में वे रहे वह उनका ही होकर रह जाता। श्री गुरुजी न कभी उस घर को भूलते, न ही घर वाले आबाल वृद्ध उन्हें। नन्हें बच्चे उन्हें अपना बुजुर्ग मानते, उनके साथ खेलते थे। इतना विद्वान, जिसका स्वतः का कोई परिवार नहीं, जो एक विशाल संगठन का नेता है, अपने बडप्पन को भुल कर बच्चों के साथ खेलता है यह देख कर बड़ों को सुखद आश्चर्य लगता था। ऐसे अवसर पर तात्विक चर्चा को कोई स्थान नहीं रहता। सुख-दुःख की चर्चा होने लगती। इस समय वाणी में मधुरता, खिलाड़ी वृत्ति,कभी नटखटपन भी होता था। बहुत मशहूर मेहमान आए हैं इस कारण घर में कोई तनाव, दबाव नहीं रहता था। अपने कारण किसी को असुविधा न हो इसकी ओर दक्षतापूर्वक वे ध्यान रखा करते थे। गरीब की झोंपड़ी और धनवान का प्रासाद उनके लिए एक से ही थे। दोनों स्थानों पर वे एक ही समभावना

से रहे। जब वे प्रस्थान करते तब बड़ों के चरणों को छूकर उनके आशीर्वाद की कामना करते। ऐसे अवसर पर बड़ों की आँखों में आँसू न छलकें तो ही आश्चर्य।

श्री गुरुजी एक बार मध्यप्रदेश में नर्मदा के तट पर स्थित मोहीपुरा नामक वनवासी देहात में गए थे। उनके गुरुबंधु श्री अमूर्तानंद महाराज का वहाँ आश्रम था। आश्रम के नाम पर एक छोटी सी कुटिया थी। इस कुटिया में श्री गुरुजी ठहरे थे। भोजन का समय हुआ। इन्दौर से पं. रामनारायण शास्त्री जी भोजन के उत्तमोत्तम व्यंजन लाए थे। इसमें मेवा-मिठाई भी थी। किन्तु अमूर्तानंद महाराज ने कहा कि यहाँ ग्रामवासियों का आतिथ्य ही स्वीकारना होगा। श्री गुरुजी ने इस सूचना को मान्य करते हुए श्री शास्त्री जी द्वारा लाए गए पदार्थ वनवासी बंधुओं में बाँटने के लिए कहा। एक ग्रामीण के घर भोजन के लिए एक पंक्ति में बैठे। आंगन गोबर से लीपा गया था, साफ सुथरा था। जमीन पर ही सब लोग बैठे। श्री गुरुजी बड़े प्रेम से वनवासी बंधुओं द्वारा परोसा हुआ साधारण भोजन आनंदपूर्वक सेवन कर रहे थे, पत्तल पर परोसे हुए पदार्थों की प्रशंसा कर रहे थे। विदुर के घर रुखा-सूखा खाकर श्रीकृष्ण और शबरी द्वारा दिये बेर खाकर राम जैसे तृप्त हुए थे वैसे ही श्री गुरुजी भी हुए। श्री गुरुजी जब उस गाँव से बिदा हुए तब सभी ग्रामवासियों की आँखों से वियोग के आँसू बह रहे थे।

श्री गुरुजी की आत्मीयता ही वह विलक्षण शक्ति थी जो सम्पर्क में आनेवालों के हृदयों में स्नेह भाव जगा देती थी। यह आत्मीयता ही उनके अमर्याद लोकसंग्रह का एक प्रभावी किन्तु सहज-साधारण माध्यम था, निरा स्वदेशी, एकात्मता की प्रत्यक्ष अनुभूति में से सिद्ध और दिखावटी भेदों के ऊपर उठने की क्षमता रखनेवाला। जबलपुर में श्री गुरुजी के एक मित्र थे। वे साम्यवादी (कम्युनिस्ट) दल में थे। किसी ने श्री गुरुजी से पूछा, “आप इस साम्यवादी मित्र के घर क्यों निवास करते हैं?” श्री गुरुजी ने कहा “वह मेरा पुराना मित्र है जब मैं संघ में नहीं था और यह मित्र कम्युनिस्ट नहीं था। स्नेह के संबंध कभी भंग नहीं करने चाहिए। मनुष्य में परिवर्तन हो सकता है। क्यों न हम आशा करें कि एक दिन मेरा यह मित्र भी संघ के विचार का होगा?”

२३.२मतभेद होने पर भी मनभेद नहीं

श्री गुरुजी का कहना रहता था कि मतभेद रहे तो भी परस्पर के संबंध में शत्रुता का या कटुता का भाव न रहे और वैसा ही उनका व्यवहार भी रहता था। एक बार लाल किले के मैदान पर सरदार पटेल जयन्ती समारोह की सभा थी। डॉ. राधाकृष्णन् सभा

के अध्यक्ष थे। सभा में श्री गुरुजी का भाषण हुआ। अन्य वक्ताओं में डॉ. राम मनोहर लोहिया भी एक थे। कार्यक्रम समाप्त होने पर डॉ. लोहिया जी से उनकी भेंट हुई तब उन्हें श्री गुरुजी ने दोनों भुजाओं में समेट कर स्नेहपूर्ण आलिंगन दिया। फिर दोनों का स्नेहयुक्त संभाषण शुरु हुआ। देखनेवालों को ऐसा लगा कि दो जानी दोस्त बहुत दिनों के बाद परस्पर गले मिल रहे हैं। "आप से मिलने की बहुत दिनों की इच्छा आज पूरी हो रही है" ऐसा कहकर और हाथ में हाथ डालकर दोनों ने मार्गक्रमण किया। यह दृश्य देखकर लोगों को बहुत आश्चर्य लग रहा था क्योंकि सबको ज्ञात था कि श्री गुरुजी और डॉ लोहिया के विचार और मत परस्पर मिलते नहीं। किसी ने इस विषय में डॉ. लोहिया को छेड़ा तब लोहिया जी बोले, "श्री गुरुजी के संबंध में मैंने बिल्कुल गलत धारणा बना ली थी परन्तु आज उनसे प्रत्यक्ष भेंट होने के पश्चात् मुझे बहुत आनंद हो रहा है।" करपात्री जी महाराज का उदाहरण भी लक्षणीय है। जब-जब महाराज से भेंट होती थी तब उन काषायवस्त्रधारी संन्यासी को श्री गुरुजी साष्टांग दण्डवत् करते थे।

श्री गुरुजी की व्यवहारनीति इस तरह भेदों को लाँघकर दूसरों के हृदय में प्रवेश करनेवाली, स्नेहमयी, प्रेम संबंधों को प्राणों से भी अधिक प्रिय माननेवाली थी। तत्व और व्यवहार उनके जीवन में एकरूप हो गए थे। श्री गुरुजी ने 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना को अपने जीवन में चरितार्थ किया था। प्रायः बड़े-बड़े नेता तत्वों को ग्रंथों तक ही सीमित कर देते हैं, मानो उनका व्यक्तिगत जीवन से संबंध ही न हो। परंतु श्री गुरुजी की गणना उन नेताओं में होती है जो तत्व जिए और तत्वों से एकरूप हो गये। तत्व के मूर्तिमंत उदाहरण स्वयं बन गए।

२३.३परिवार का ही भाव

एक बार एक दंपति श्री गुरुजी से भेंट करने आए। श्री गुरुजी ने उनके पुत्र के स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ की और कहा, "उसका ऑपरेशन जर्मनी में हुआ था ना?" यह सुनकर किसी ने उनसे पूछा, "आप इतनी छोटी-छोटी बातें ध्यान में कैसे रख पाते हैं?" हम शायद कल्पना भी नहीं कर पाएँगे ऐसा उत्तर श्री गुरुजी ने दिया। वे अपनी अद्-भूत स्मरणशक्ति का बखान कर सकते थे। किन्तु नहीं! श्री गुरुजी ने स्वाभाविक सहजभाव से कहा, "मेरे परिवार की ऐसी घटना भला मैं कैसे भूल सकता हूँ? चाहे जितनी पुरानी क्यों न हों।" इस उत्तर में निहित, 'मेरा परिवार' इन शब्दों ने श्री गुरुजी के जीवन का, हृदय का यथार्थ दर्शन करा दिया। सुननेवाले क्षणभर के लिए अंतर्मुख हो गए। हर परिवार उनका था और वे उस परिवार के। हर एक के साथ उनके संबंध प्रेमभाव से परिपूर्ण थे। यह स्नेह, प्रेम अथाह था। इस स्नेह के महासागर में जात-

पाँत, प्रांत, भाषा, पक्ष, पंथ आदि सारे भेद डूब जाते थे। केवल स्नेह के तेजःपुंज मोती सतह पर हाथ लगते! श्री गुरुजी के बारे में श्रद्धाभाव उत्पन्न हो जाता था अनायास बिना प्रयास। श्री गुरुजी के जीवन का यह अंश इतना हृद्य, आकर्षक और बोधप्रद था कि जो ज्ञान शब्दों से मिलना असंभव है वह अनायास उनके आचरण से मिल जाता था।

श्री गुरुजी जहाँ भी निवास करते उनके इर्द गिर्द यदि कोई वीमार हो तो उसकी पूछताछ वे अवश्य करते थे। औषधोपचार के संबंध में भी वे जानकारी प्राप्त किया करते थे। श्री गुरुजी को होमियोपैथी का अच्छा खासा ज्ञान था। कभी-कभार वे होमियोपैथी की दवा भी सुझाते थे। श्री गुरुजी जिस मकान में ठहरते वहाँ प्रसन्नता से वातावरण भर जाता था। उनकी हँसी मुक्थ रहा करती थीं। कंठध्वनि तो सितार की स्वर लहरियों जितनी प्रभावकारी थी। हास्य-विनोद के क्या कहने, वह एक स्वतंत्र विषय है। वातावरण को ठहाके की हँसी से हलका-फुलका बनाना श्री गुरुजी की एक और विशेषता थी। श्री गुरुजी चाहते थे कि प्रत्येक गाँव के संघचालक इस ममत्व को अपनाएं और देखें कि संघ का कार्य कैसे नहीं बढ़ता। उनका आत्मविश्वास था कि कार्य बढ़ेगा ही।

श्री गुरुजी ने एक बार एक गाँव के सुप्रतिष्ठित और वयोवृद्ध सज्जन से संघचालक का पद स्वीकार करने की प्रार्थना की। वृद्ध सज्जन ने पूछा, “संघचालक के नाते आपकी मुझसे क्या अपेक्षाएँ रहेंगी?”

“आप कल्पना कीजिए कि आप एक संयुक्त परिवार के प्रमुख हैं। आपके परिवार में लड़के, लड़की, नाती, पोते हैं, तो परिवार प्रमुख के नाते आप का कर्तव्य या काम क्या होगा?” श्री गुरुजी ने सहज भाव से उनसे प्रश्न पूछा।

“मैं उनके पालन-पोषण की ओर ध्यान दूँगा।” वृद्ध ने कहा।

“क्या आप उनसे आपस में झगड़ने देंगे?” श्री गुरुजी का प्रश्न।

“नहीं, कदापि नहीं। मैं उन्हें आपस में झगड़ने नहीं दूँगा।” वृद्ध ने कहा।

“अपने परिवार के लड़के-लड़कियाँ पढ़ लिखकर बड़े हों, इस ओर आप ध्यान देंगे या नहीं?” श्री गुरुजी ने पूछा।

“अवश्य। मैं उनके भविष्य की चिंता करूँगा।” वृद्ध सज्जन।

“क्या आप इस ओर भी ध्यान देंगे कि उनके जीवन में स्थैर्य प्राप्त हो?” श्री गुरुजी का एक और प्रश्न।

“जी हाँ, इस ओर भी मैं ध्यान दूँगा।” वृद्ध का उत्तर।

“आप के लड़के गुणवान हों, इस ओर भी आप ध्यान देंगे न?” श्री गुरुजी।

“जी, यह मेरा कर्तव्य बनता है,” वृद्ध ने उत्तर में कहा।

“संघ को आप अपना परिवार ही समझें। आपको यही सब संघ के लिए करना होगा।” श्री गुरुजी ने अन्त में कहा।

यह संवाद काफी कुछ कह जाता है। संघ के परिवार के प्रमुख के नाते कौन-सी नैतिक जिम्मेदारियाँ निभानी पड़ती हैं और इस संबंध में श्री गुरुजी की अपेक्षाएं, मान्यताएँ क्या थीं, इस बात का ज्ञान उपर्युक्त प्रसंग से स्पष्ट है जाता है। संघ में अधिकार पद का अर्थ है जिम्मेदारी निभाना। परिवार को प्रसन्न, सुखी और प्रगतिशील बनाना। यहाँ शारीरिक कष्ट और समय का हिसाब नहीं रखा जाता। आत्मियता व स्नेह से मनुष्य को जोड़ना और उन्हें संस्कारित करने के लिए स्वयं को चंदन सा घिसना, यही संघ कार्य है। जो सुख-दुःख में भागीदार बनता है, वादविवाद के झंझट में न पड़ते हुए अपने दक्ष व्यवहार से लोगों के हृदय जीतना जानता है, वही कार्यकर्ता है। श्री गुरुजी ने अपने स्वतः के उदाहरण द्वारा सभी प्रश्नों के उत्तर दे रखे हैं। स्वयंसेवकों की पूछताछ करना, संदेश पहुँचाना, समस्याओं का समाधान करना तो श्री गुरुजी का स्वभाव था। समाज की भक्ति, समाजपुरुष की सेवा, इन शब्दों में श्री गुरुजी ने कितना अर्थ भर रखा था, यह बात हमारे ध्यान में आती है। उनके मन में उपकारकर्ता का भाव कभी नहीं रहता था।

गरिब, दुःखी पीड़ितों के रूप में भगवान अपने को सेवा का मौका देता है, इस अवसर का लाभ उठाते समय हमें भगवान का ऋणी बनकर रहना चाहिए यही रामकृष्ण परमहंस द्वारा सिखाया हुवा भाव श्री गुरुजी ने अपनाया था। नियति ने श्री गुरुजी की योजना शायद इसीलिए की थी कि वे अपने आचरण का आदर्श प्रस्तुत करते हुए

अपने संगठित प्रयासों से धर्म जागृति करें और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को हजम करते हुए अध्यात्म की नींव पर समर्थ भारत के निर्माण का अपना स्वप्न साकार कर सकें। विवेकानन्द के मानों वे मूर्त प्रतिरूप थे। भारत के नियत जीवन कर्तव्य का वही बोध, निर्विकल्प से सगुण मूर्त स्वरूप की ओर मुड़ा हुआ वही जीवन प्रवाह, वही योगारूढ़ अवस्था, वही बुद्धि की धारणा शक्ति, वही वैराग्य,वही सादगी, वही प्रसन्नता, तेजस्विता, अमृत पुत्रों को वही आवाहन! फर्क केवल इतना कि श्री गुरुजी ने संन्यासी के भगवे वस्त्र कभी नहीं पहने तथा चतुर्थाश्रम दर्शानेवाला दूसरा नाम भी धारण नहीं किया क्योंकि संघ संन्यासियों का संगठन नहीं है। वह तो संपूर्ण समाज को हिन्दू अस्मिता के सूत्र में गूँथ कर समगठित रूप में खड़ा करने की आकांक्षा संजोनेवाला कार्य है। वह सर्वस्पर्शी है।

२३.४अदम्य आत्मचेतना

श्री गुरुजी में संकटों को सहने की प्रह्-लाद जैसी शक्ति थी, आत्म समर्पण था। ध्येय के बारे में अनुभूतिजन्य श्रद्धा थी। 'उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत' यह पुरुषार्थ श्री गुरुजी ने चरितार्थ कर दिखाया था। प्रत्येक कार्यकर्ता इस भावना से प्रेरित होकर यदि कार्य करे तो समष्टिरूप भगवान निश्चित रूप से प्रसन्न होगा, यह विश्वास श्री गुरुजी ने जगाया था। इस कारण प्रतिकूल परिस्थिति के नाम से रोना-धोना उन्हें निरर्थक लगता था। हम काम नहीं करते इसलिए भगवान को दोषी ठहराना उन्हें महापाप लगता था। समाज ही बुरा है ऐसा यदि कोई कहे तो वे कहा करते, "अरे भाई, इस समाज के लिए तुमसे कोई काम नहीं होगा। जरा अंतर्मुख होकर देखो।"

एक पत्र में श्री गुरुजी ने लिखा, "अनेक लोगों से मिलते समय हमें समाज की बुराईयाँ दिखाई देंगी। कुछ अच्छी बातों का भी दर्शन होगा। किन्तु बुरी बातों के कारण समाज से घृणा करनेवाला क्या सोच पाएगा कि वह इसी समाज का एक अंग है, घटक है? इस वास्तविकता को भूलने पर भला समाज बंधुओं के लिए हृदय में अपनत्व की भावना कैसे रह पाएगी? साथ ही समाज की कमियों और दोषों का अमुभव करते समय भगवान को दोष देना कहाँ तक उचित है? इसका विचार हमें करना होगा। इस प्रवृत्ति को त्याग कर हम ईश्वर पर भरोसा रखें क्योंकि वही हमें समाज सेवा की प्रेरणा देता है। संपूर्ण श्रद्धा से यह भाव दृदय में रखने पर ही हम निर्दोष काम कर सकेंगे।"

श्री गुरुजी की जीवनदृष्टि संपूर्णतः आध्यात्मिक थी। चारों ओर की सृष्टि में चैतन्य का दर्शन करनेवाली थी। उनकी दृष्टि में क्षुद्र या तुच्छ कुछ भी नहीं था। जिन-जिन बातों से अपना जीवन खड़ा होता है, उन-उन बातों के प्रति कृतज्ञता की भावना उनमें थी और यह कृतज्ञता उनकी कृति में व्यक्त हुआ करती थी। एक बार वे पंजाब के दौरे पर थे, तब की घटना है। एक दिन प्रातः बाहर जाने के लिए वे अपने कमरे से निकले। स्वयंसेवक उनकी प्रतीक्षा में खड़े थे। श्री गुरुजी की चप्पलें दरवाजे के बाहर थी। उन्होंने चप्पल पैर में डालने के पहिले उन चप्पलों को दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। स्वयंसेवक आश्चर्य से देखने लगे। तब श्री गुरुजी ही बोले, “अरे, ये चप्पलें क्या मेरी रक्षा नहीं करती हैं? बेचारी स्वयं घिसती हैं और मेरी सेवा करती हैं। मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ। इसीलिए चप्पल पैरों में डालने के पूर्व मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।” वस्तुएँ छोटी लगती हों, परन्तु उनका भी महत्व होता हैं। जहाँ मामुली पादत्राणों के संबंध में श्री गुरुजी इतने कृतज्ञ थे, वहाँ अपना सारा जीवन चलानेवाले परमेश्वर के आगे वह संपूर्ण शरणागत हुए हों तो उसमें आश्चर्य क्या? प्रत्येक घटना में वे ईश्वर की इच्छा देखते थे। वह बात अप्रिय हो तो भी परमेश्वर की इच्छा अपने कल्याण की ही होनी चाहिए, इस श्रद्धा में कभी भी दरार नहीं पड़ी। इसका एक अत्यन्त उद्-बोधक उदाहरण यहाँ उद्-घृत करने योग्य है।

२३.५ आत्मविश्लेषण की दृष्टि

चेन्नई की एक संस्था का कुछ काम विशिष्ट अवधि में संपन्न करने का दायित्व श्री गुरुजी ने स्वीकार किया था। श्री गुरुजी ने स्थानीय कार्यकर्ता ओं को उस काम के संबंध में आवश्यक सूचनाएँ दीं और वे आगे के प्रवास के लिए चल पड़े। आगे इस संस्था की ओर से श्री गुरुजी को पत्र भेजा गया कि अवधि समाप्त हो चुकि है परन्तु काम कुछ नहीं हुआ है। श्री गुरुजी अपने वचन के पक्के थे। इसलिए उनकी एक संपूर्णतः विश्वासार्ह प्रतिमा सर्वत्र निर्माण हुई थी। लोगों का अनुभव था कि श्री गुरुजी दिये हुए वचन का पालन करते हैं। उनके प्रवास, बैठकें, सभाएँ, मेल-निलाप आदि कार्यक्रम नियोजित स्थानों पर और समय पर होते थे। श्री गुरुजी समय पर पहुँचेंगे या नहीं, कार्यक्रम होगा कि नहीं, ऐसी शंका भी किसी के मन में नहीं आती थी। यह साध्य करने के लिए कई प्रसंगों पर श्री गुरुजी को कितनी दौड़धूप करनी पड़ती थी इसके कई उदाहरण स्थान-स्थान के कार्यकर्ता बतला सकेंगे। कभी-कभी तो अत्यन्त प्रतिकूल वातावरण में कितने ही मील संकटापन्न मार्ग से पैदल चलने का विक्रम उन्होंने किया है। चारों ओर प्रक्षोभ भड़क रहा हो या प्रकृति ने रौद्र रूप धारण किया हो, अतिशय शांति से वे बोले हैं और निर्भयता से आगे बढ़े हैं।

इसलिए निश्चित किया हुआ काम नहीं हुआ इसका श्री गुरुजी को दुःख होना बिलकुल स्वाभाविक था। उन्होंने पूछताछ, जाँच पड़ताल की और उनके ध्यान में आया कि स्थानीय कार्यकर्ताओं ने इस काम के बारे में कुछ टालमटोल की है परन्तु उन्होंने इस संस्था के प्रमुख को जो पत्र लिखा उसमें कार्यकर्ताओं पर दोषारोपण कर स्वयं का बचाव नहीं किया। उनका यह पत्र उनके चरित्र की श्रेष्ठता दर्शानेवाला है। उन्होंने लिखा कि यह सच है कि समय पर काम नहीं हुआ। इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। यह तो औपचारिकता हुई। परन्तु उन्होंने और लिखा कि "मेरा वचन सच नहीं हुआ, इसमें भी कोई ईश्वरी योजना रही होगी। शायद मैं कथनानुसार करता हूँ, ऐसा अहंकार मेरे मन में निर्माण होने की संभावना परमेश्वर को प्रतीत हुई होगी। इसलिए वह संभावना निर्मूल करने के लिए यह लांछन परमेश्वर द्वारा मुझे दिया गया होगा।" अपने किसी अपयश की ओर इस दृष्टि से कितने नेता देख सकेंगे? जिसे एक महान् ध्येय की साधना करनी होती है उसको स्वार्थ और अहंकार आदि अवगुणों के शिकार होने से अत्यन्त सावधान रहना चाहिए। वैसे श्री गुरुजी स्वयं सावधान थे और कार्यकर्ताओं को-विशेषतः प्रचारकों को सावधान रखने का प्रयत्न बैठकों, चर्चाओं और प्रश्नोत्तरों द्वारा किया करते थे। पत्र व्यवहार का भी उपयोग इस दृष्टि से उन्होंने किया था।

२३.६ संघ नेतृत्व की अभंग धारा

यह सच है कि श्री गुरुजी द्वारा संघ के व्यासपीठ पर से ध्यान-धारणा, व्यक्तिगत उपासना या धार्मिक कर्मकाण्ड की बड़ाई नहीं की गई। परन्तु यह भी सच है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्य को उन्होंने एक ऐसी श्रेष्ठ और परिपूर्ण साधना के रूप में देखा जो मनुष्य अपने को अपने व्यक्तिगत जीवन में भी सफलता की अंतिम सीढ़ी तक पहुँचा सकती है। उनका विश्वास था कि जो शाखा का काम तन-मन-धनपूर्वक, स्वतः को भूलकर करेगा उसे और अलग साधना करने की आवश्यकता नहीं है। उनके मुख से सहज स्फूर्त उद्-गार कि "शाखा ही मेरा भगवान है" देवता के नाते मातृभूमि का उन्होंने किया हुआ भावपूर्ण वर्णन या समष्टिरूप परमेश्वर की निष्काम और निःस्वार्थ भक्ति की उनके द्वारा वर्णित महिमा श्रवण करने पर तो यह कल्पना सहज होती है कि संघकार्य और अध्यात्म को उन्होंने किस प्रकार एकरूप माना था।

तृतीय सरसंघचालक श्री बालासाहब देवरस के तिरोधान के पश्चात् विचारवान कहलानेवाले कुछ लोगों ने यह मत प्रदर्शन किया कि संघ संस्थापक डॉ. हेडगेवार, द्वितीय सरसंघचालक श्री गुरुजी और तृतीय सरसंघचालक श्री बालासाहब देवरस की भूमिकाओं में अंतर था। डॉक्टर जी का बल राजनीतिक जागृति पर था तो श्री गुरुजी

द्वारा संघ के विचारों को आध्यात्मिक रंग देने का प्रयत्न किया गया। श्री बालासाहब ने सामाजिक एकता, समरसता का आग्रह ऐहिक भूमिका पर से किया और उस दिशा की ओर संगठन को मोड़ना चाहा। परन्तु थोड़ा विचार किया तो दिखाई देगा कि इस प्रकार का प्रतिपादन वस्तुस्थिति के संपूर्णतः विपरीत है। वस्तुस्थिति यह है कि संघकार्य के राजनीतिक, अध्यात्मिस और सामाजिक आयाम संघ के बिल्कुल प्रारंभ से ही अभिप्रेत थे और विगत ७४ वर्षों में संघ उससे कभी भी विचलित नहीं हुआ है।

श्री गुरुजी के बारे में विचार करने पर ऐसा दिखाई देता है कि उनमें से किसी भी अंग की उन्होंने उपेक्षा नहीं की। १९४७ के पूर्व और बाद में भी श्री गुरुजी के सार्वजनिक भाषणों में राष्ट्रीय नेताओं की राजनीतिक नीतियों की चर्चा हमेशा दिखाई देती है। मुस्लिम तुष्टीकरण, कश्मीर का प्रश्न, ईशान्य भारत का ईसाईकरण के प्रयत्न, राज्यकर्ताओं द्वारा फूट डालने के प्रयासों का पोषण, विस्थापितों की उपेक्षा, युद्धकाल की नीतियाँ, संधियाँ और समझौते, मातृभूमि के प्रति भक्तिभाव का अभाव, चारित्र्य भ्रष्टता, राजनीति की मूल्यहीनता और असंस्कृतता आदि की उन्होंने हमेशा आलोचना की है। राष्ट्रीय एकता और एकात्मता पुष्ट करने का 'हिन्दू' विचार उन्होंने अत्यन्त स्पष्टता से प्रतिपादित किया। राष्ट्रीय स्वत्व याने हिन्दुत्व और स्वतंत्रता और राष्ट्र निर्माण का मेल उन्हें अत्यन्त प्राणप्रिय लगता था। समय-समय पर उनके पत्रकारों या संघ के बाहर के नेताओं और कार्यकर्ताओं से हुए प्रश्नोत्तर पढ़ें तो दिखाई देता है कि उन्होंने कितने ही राजनीतिक प्रश्नों के निर्भीक उत्तर दिये हैं। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति या आर्थिक समस्याओं के बारे में भी उन्होंने भाष्य किया है।

विशेषतः डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने संघानुकूल विचारों के राजनीतिक पक्ष 'भारतीय जनसंघ' को स्थापित करने का जब निश्चय किया तब संघ के कुछ अत्यन्त गुणवान कार्यकर्ता उन्होंने डॉ. श्यामाप्रसाद को दिये। राजनीतिक क्षेत्र में भी राष्ट्रवादी संघ विचारों का प्रभाव निर्णायक स्थिति तक पहुँचना चाहिए, यह उनकी इच्छा उन्होंने छिपाकर नहीं रखी थी। परन्तु उनका ऐसा निश्चित मत था कि केवल राजनीति के माध्यम से देश खड़ा नहीं किया जा सकता। हिन्दू राष्ट्र को अपने सांस्कृतिक वैभव के साथ पुनः जगत् के गुरुस्थान पर आरूढ़ होना हो तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को हिन्दू जीवनमूल्यों का आविष्कारक बनना होगा। सारी नीतियों और व्यवहार का समान मूल्यों के अधिष्ठान पर पुनर्निर्धारण होना चाहिए। संघ की शाखाओं में जो संस्कार दिये जाते हैं, उन्हीं संस्कारों से संपूर्ण समाजजीवन प्रभावित होना चाहिए।

सामाजिक और सेवाकार्य के अंग की उपेक्षा श्री गुरुजी ने बिल्कुल नहीं की। कितने ही सामाजिक विचारों और कार्यों को उन्होंने प्रेरणा दी। आज संघ की प्रेरणा से जो अनेक सेवाकार्य चलते हैं, उनमें से अधिकांश श्री गुरुजी के समय में ही उनकी प्रेरणा से ही प्रारंभ हुए हैं। हम यह जानते हैं कि श्री गुरुजी ने विश्व हिन्दू परिषद्, विद्यार्थि परिषद्, भारतीय मजदूर संघ, वनवासी कल्याणाश्रम, कुष्ठ रोग निवारण आदि कितनी ही संस्थाओं को प्रेरणा दी और उनका मार्गदर्शन किया। ये सारे काम आज बहुत बढ़ गये हैं। उनका विस्तार भी हो रहा है।

अध्यात्म, धर्म और संस्कृति तो संघकार्य के ध्येय का एक आवश्यक अंग बिल्कुल प्रथम दिन से ही रहा है। संघ की प्रतिज्ञा और प्रार्थना दोनों में ही इन उद्दिष्टों का स्पष्ट प्रतिबिंब अपने को दिखाई देता है। 'विधायास्य धर्मस्य संरक्षणम्', 'समुत्कर्ष निःश्रेयस्यैकमुग्रम्' ये प्रार्थना की ही पंक्तियाँ हैं। प्रतिज्ञा में भी 'हिंदू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दु समाज की रक्षा कर हिन्दू राष्ट्र को स्वातन्त्र्य प्राप्त करा देने का संकल्प प्रथम था जिसके स्थान पर 'हिंदु राष्ट्र का सर्वांगीण विकास' ये शब्द बाद में आये। यह बात सबको विदित है। इन सब शब्द प्रयोगों का आशय है कि संघ को देश का राष्ट्रीय स्वातंत्र्य तो अभिप्रेत था ही परन्तु वह धर्म और संस्कृति की रक्षा सहित हो और स्वतंत्र देश 'परम वैभवशाली' हो यह उसे अभीष्ट था। सुसंगठित, समर्थ, स्नेहपूर्ण और परिश्रमशील समाजजीवन ही देश को परम लैभवशाली बना सकता है। उसके लिए राष्ट्रभक्ति की प्रबल प्रेरणा जागृत रहनी चाहिए।

तात्पर्य यह है कि अमुक सरसंघचालक द्वारा अमुक बात गौण मानी गयीं और अमुक बातों को आगे बढ़या गया यह सोचने की पद्धति ही समीचीन नहीं। राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक तीनों अंगों से राष्ट्रजीवन पुष्ट करनेवाला संघ-कार्य प्रारंभ से ही रहा है और आज भी वैसा ही है।

२३.७ कार्यमग्नता ही जीवन

श्री गुरुजी की अखंड कार्यमग्नता, उनकी प्रसन्नता, चैतन्य और हिन्दू समाज के प्रति अथाह प्रेम बहुत बार चमत्कारिक लगता है। इस चमत्कार का थोड़ा सा स्पष्टीकरण एक बार श्री गुरुजी ने ही दिया। काशी की घटना है। वहाँ डॉ. पी. के. बैनर्जी से श्री गुरुजी ने दाँत निकलवाए थे। उसके बाद डॉ. बैनर्जी ने श्री गुरुजी को कुछ दिनों तक संपूर्ण विश्राम करने को कहा। श्री गुरुजी की देखभाल कर रहे कार्यकर्ताओं को भी उन्होंने सूचना दी कि श्री गुरुजी को पूर्ण विश्रान्ति मिले, इस ओर वे विशेष ध्यान दें।

कार्यकर्ताओं की भी मन से यही इच्छा थी कि श्री गुरुजी को पूर्ण विश्राम मिले। इसलिए उन्होंने दूसरे दिन से उनके सभी कार्यक्रम-बैठकें, मेल-मिलाप, वार्तालाप आदि- बंद कर दिये। कार्यकर्ताओं ने श्री गुरुजी के पूर्ण विश्राम की पक्की व्यवस्था की, परन्तु उसका परिणाम उल्टा ही हुआ। दिनभर के विश्राम से श्री गुरुजी को रात्रि को आराम आना तो दूर रहा, जोर की खाँसी आने लगी और खाँसते-खाँसते रात्रि बीती। भोर होते-होते तो यह पीड़ा बहुत बढ़ गयी। आसपास के कार्यकर्ता गण चिंतित हो उठे। खांसी की पीड़ा रोकने के लिए क्या उपाय किया जाय यह उन्हें सूझ नहीं रहा था। होनेवाले कष्ट भी उनसे देखे नहीं जा रहे थे।

उनकी अवस्था असहाय होकर देखनेवाले कार्यकर्ताओं को श्री गुरुजी ने कहा, "तुम सब लोगों की जो इच्छा है उसका पालन मैं कर रहा हूँ।" स्वयंसेवक कुछ समझ नहीं पाये। उन्हें रुआँसी आ गयी। तब श्री गुरुजी ने ही कहा, "आपको मालूम नहीं, यह शरीर तो कभी का समाप्त हो चुका है। इस स्थूल शरीर में रोग के अलावा अन्य कुछ भी नहीं है। संघकार्य बढ़ने की तीव्र इच्छा और कार्य का संकल्प, रात-दिन स्वयंसेवकों से और कार्यकर्ताओं से कार्य के विषय में बातचीत व कार्यक्रमों में सहभागी होना ही मेरा जीवन है। कार्यक्रम ही जीवन हो गया है। इस प्रकार की दिनचर्या ने ही मेरा यह पार्थिव शरीर एकत्र बांध रखा है। परन्तु चूँकि अब आपने मेरे प्रति अपने प्रेम के खातिर क्यों न हो- सब कार्यक्रम बंद कर दिये हैं, कार्यकर्ताओं से भेंट और उनसे वार्तालाप रोक दिया है तो शरीर अपनी स्वाभाविक रोगजर्जर अवस्था की और लौट रहा है। यदि मेरा स्वास्थ्य आप चाहते हों तो ऐसी व्यवस्था करें कि मेरी स्वाभाविक दिनचर्या पुनश्च शुरु हो जाय।"

सब लोग स्तब्ध होकर सुन रहे थे। श्री गुरुजी द्वारा किया गया यह रहस्योद्-घाटन सब के हृदय को छू गया। श्री गुरुजी को आराम देने के लिए क्या करना चाहिए यह ज्ञात हो गया था। तुरन्त सब निर्बन्ध दूर कर दिये गये। स्वयंसेवक और कार्यकर्ता पहले जैसे मिलने के लिए आने लगे। बैठकों में रंग भरने लगा। श्री गुरुजी स्वयं हंसने लगे और दूसरों को हँसाने लगे। खाँसी कहाँ गायब हो गयी इसका पता भी नहीं चला।

२३.८वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि

तुकाराम महाराज ने विष्णुदास का याने ईश्वरचरणों में संपूर्णतः शरणागत हुए भक्तों का एक विशेष गुण बतलाते हुए कहा है, "मोम से मुलायम हम विष्णुदास कठिन वज्र

को भेद सकें।" श्री गुरुजी के जीवन में यह गुण सदैव प्रगट हुआ है। श्री गुरुजी की माताजी ताई बतलाती थीं, "मधु प्राथमिक चौथी कक्षा में पढ़ता था तब "केवढ़े क्रौर्य हे।" (कितनी क्रूरता है यह) कविता उसके पढ़ने में आयी। शिकारी द्वारा विद्ध की हुई पक्षिणी का, "क्षणोक्षणी उठे परि पड़े बापुडी" (बार-बार उठती है परन्तु बेचारी गिर पड़ती है) इस प्रकार अत्यन्त करुणाजनक वर्णन किया गया था वह पढ़ते समय मधु के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगती। इतना कोमल उसका अंतःकरण था।" परन्तु १९४२ में उन्होंने गुहार लगायी कि संघ के काम के लिए घर-बार छोड़कर प्रचारक के नाते बाहर निकल पड़ो। उसी वर्ष संघ शिक्षा वर्ग में बोलते समय श्री गुरुजी भी अत्यंत कठोरता से बोले कि "आय हॅव कम टु टेक चिल्ड्रेन फ्रॉम दि लॅप्स ऑफ देअर मदर्स।" उसका आशय यह था कि माता-पिता का मोह त्याग कर पुत्रों को संघकार्य में अपने आपको झोंक देना चाहिए। वे घर-द्वार छोड़ कर देश के विभिन्न भागों में जायें इसके लिए मैं उन्हें प्रवृत्त करता हूँ। इस प्रकार बाहर निकले हुए कुछ पुत्रों की माताएँ रोयीं, श्री गुरुजी के पास अपने पुत्रों की आंचल फैलाकर भीख माँगी। परन्तु, "बाबा रे घर लौट जाओ" ऐसा उन्होंने किसी को नहीं कहा। अपने बारे में भी वे ऐसे ही कठोर थे। वे अपना मन दृढ़ कर रुग्णशय्याग्रस्त माता को छोड़कर संघकार्य के लिए प्रवास पर जाते थे। ईश्वर पर उन्होंने सब कुछ सौंप दिया था। परन्तु अंतःकरण का कोमल भाव अन्यों के कष्ट देखकर जागृत हो जाता था।

राष्ट्रनिर्माण का काम मूलतः मनुष्यों को जुटाने, उन्हें अनुशासित करने, संस्कारों के साँचे में ढ़ालने तथा राष्ट्रहित के लिए उन्हें प्रवृत्त करने का काम है। इस कार्य को करते समय तात्कालिक लाभ तथा सस्ती या सामान्य लोकेषणा के पीछे भागम्-भाग करने का मोह हमें टालना पड़ता है। संघ एकाग्रता से ध्येय साधना कर सके इसी कारण श्री गुरुजी ने उसे सत्ता की राजनीति से दूर रखा। उसी तरह प्रलोभनकारी आंदोलनों की राजनीति से भी अलिप्त रखा। श्री गुरुजी के जीवन-काल में संघ के द्वारा दो ही आंदोलन छेड़े गये थे। प्रतिबंध के काल में सत्याग्रह का और १९५२ में गोहत्या निरोध का। इनके अतिरिक्त बाकी कार्यों में स्वयंसेवकों ने समाज के नागरिक के नाते भाग लिया था। वैसा करते समय न तो उन्होंने संस्था का अभिनिवेश रखा और न ही किसी श्रेय की कामना की।

२३.९ नित्य-नियमित संस्कार पर जोर

तात्कालिक उत्तेजना से संगठनात्मक कार्य सफल नहीं हो सकता क्योंकि उत्तेजना के समाप्त होते ही कार्य के प्रयत्नों में शिथिलता पहले से कहीं अधिक आ जाती है। कार्य

की ओर से ध्यान उचट जाता है और मन में विकल्प आने लगते हैं। इसलिए जो राष्ट्रनिर्माता या 'नेशन बिल्डर' होता है उसे दूरदृष्टि से सोचने की आवश्यकता होती है। नैमित्तिक काम के कारण नित्य के काम को हानि न पहुँचे, उसका महत्व गौण न हो, इसके लिए सतर्कता बरतना आवश्यक रहता है। संघ का पोषण और संवर्धन करते समय डॉक्टर जी ने यह सावधानी बरती थी और श्री गुरुजी ने उन्हीं पदचिन्हों पर चलते हुए संघ के पौधे को वटवृक्ष की महानता प्रदान की। मनुष्य को ढालते समय उसमें मिहित क्षमता को धीरे-धीरे बढ़ना पड़ता है इसे वे जानते थे। वे स्वयंसेवकों को बताया करते थे कि उत्साह व जोश में एकदम बहुत बड़े कार्य कर दिखाने की भाषा व्यर्थ है। उसी प्रकार समय आने पर हम यह कर दिखाएंगे यह उक्ति भी खोखली ही होती है।

सर्वप्रथम हम छोटी-छोटी और साधारण बातों को ठीक ढंग से करने की आदत डालें। शारीरिक शिक्षा देनेवाले कार्यकर्ताओं से श्री गुरुजी ने कहा था कि प्रत्येक स्वयंसेवक 'दक्ष', 'आरम' और 'स्वस्थ' इन आज्ञाओं का सही ढंग से पालन कर रहा हैस ऐसी स्थिति यदि वर्षभर में निर्माण हो सकी तो उनके लिए बड़ी उपलब्धि होगी। श्री गुरुजी हर बात की ओर बहुत बारीकी से ध्यान देते थे। समय का बंधन, भोजन करते समय थाली में शेष कुछ न रहे, साफ सुथरा भारतीय पोशाक, प्रति दिन संघ की प्रार्थना करना, नियोजित समय पर भाषण समाप्त करना, सत्पुरुष और बुजुर्गों को चरण स्पर्श कर प्रणाम करना, प्राप्त पत्रों के उत्तर अविलंब देना आदि नित्यजीवन की साधारण दिखनेवाली बातें .दि हम सुचारु रूप से, निष्ठा से आचरण में लावें तो इन्हीं छोटी बातों में भविष्य के बड़े कार्यों की सफलता के बीज हमें दिखाई देंगे, ऐसा उनका मानना था।

इन्हीं नियमों के पोषण से आदर भाव तथा शब्दों में प्रभाव उत्पन्न हो सकता है। श्री गुरुजी ने इन सभी नियमों का दृढ़ता से पालन कर अपने व्यक्तित्व को उन्नत बनाया था यह हम जानते हैं। बड़ी जिम्मेदारियाँ हमेशा नहीं निभानी पड़तीं। कभी कभार ऐसे प्रसंग आते हैं। किन्तु उन्हें ठीक ढंग से निभाने की तैयारी नित्यकार्यों की आदत या अभ्यास से होती रहती है। नित्य के अभ्यास से प्राप्त क्षमता और शक्ति अचानक बड़ा कार्य सामने आने पर कम नहीं पड़ती। श्री गुरुजी इस आचार-संहिता के बारे में बहुत आग्रही भूमिका रखा करते थे। उनका व्यक्तिगत जीवन इस आदर्श का दर्पण है, ऐसा कहना ही उचित होगा ! समर्थ रामदास स्वामी ने, जो छत्रपति शिवाजी महाराज के गुरु थे, कहा है, 'जो जैसा बोलता है वैसा ही यदि आचरण करता है तो उसी के शब्दों को समाज में मान्यता प्राप्त होती है'। अर्थात् 'कथनी और करनी' में जब एकरूपता

प्रगट होती है, उनमें अंतर दर्शानेवाली रेखा भी दिखाई नहीं देती तब समाज के लिए वह व्यक्ति आदरणीय बन जाती है।

२३.१० जगन्मित्र

श्री गुरुजी की इस तरह की निर्मल, स्नेहभरी विशाल जीवनदृष्टि होने से चारों ओर की परिस्थिति और मनुष्यमात्र में जो कुछ उन्हें समाजहित की दृष्टि से अच्छा लगा उसे आत्मसात् करते गए। इसके लिए वे सदा ही तत्पर रहा करते थे। किसी विशिष्ट मनुष्य के गुणों के बारे में उनका भाष्य बहुत ही मर्मग्राही रहा करता था। आश्चर्य की बात यह है कि किसी महापुरुष के अनुयायी भी इतनी मार्मिकता से अपने मार्गदर्शक के गुणों को नहीं जानते होंगे। महात्मा गांधी जी का ही उदाहरण लीजिए। गांधीजी से श्री गुरुजी अनेक बार मिले थे। देश विभाजन के भयानक वातावरण में स्वयंसेवकों के सामने महात्मा गांधीजी का भाषण भी हुआ था। एक बार प्रार्थना समाप्त होने के पश्चात गांधीजी ने श्री गुरुजी का सराहना करनेवाले शब्दों में उल्लेख किया था। श्री गुरुजी को गांधीजी के गुणों की अच्छी जानकारी थी। राजनीति के मंच से प्रचार करनेवाले रहा करते थे कि संघ गांधीजी का द्वेष करता है। १९४८ में तो गांधीजी हत्या के षड्यंत्र में संघ के शामिल होने के आरोप में श्री गुरुजी को बंदी बना लिया गया था। अन्त में सरकार को यह आरोप वापस लेना पड़ा था। आद्य सरसंघचालक डॉ. हेडगेवार जी के मन में गांधीजी के प्रति कोई प्रतिकूल या द्वेष भाव नहीं था महात्मा गांधी द्वारा प्रेरित आंदोलनों में वे दो बार भाग ले चुके थे।खिलाफत आंदोलन के संबंध में मतभेद अवश्य थे। महात्मा गांधी तथा पं. नेहरु के मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति श्री गुरुजी को भी पसंद नहीं थी। श्री गुरुजी ने इन गलत नीतियों का प्रगट रूप से कड़ा विरोध अवश्य किया किन्तु महात्मा गांधी में निहित लोकोत्तर गुणों की प्रशंसा भी की।

२३.११ गांधी जी का श्रद्धापूर्वक स्मरण

गांधी जी के जन्मशताब्दी वर्ष १९६९ में श्री गुरुजी ने राष्ट्रनिर्माण एवं स्वातंत्र्य आन्दोलन में गांधी जी के महती योगदान का श्रद्धापूर्वक स्मरण किया। नागपुर से प्रकाशित होने वाली 'युगवाणी' नाम की मराठी मासिक पत्रिका के अक्टूबर १९६९ के संक में श्री गुरुजी ने लिखा, 'इन पचास पचहत्तर वर्षों में अपने देश में जो श्रेष्ठ विभूतियाँ हुई हैं और जिनका व्यावाहारिक राजनीतिक क्षेत्र में जनमानस पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है उनमें महात्मा गांधी अग्रणी थे, इस सत्य को कोई अस्वीकार

नहीं कर सकता। उनका बहुविध व्यक्तित्व था। उनके जीवन के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक आदि विभिन्न पहलू उनके असाधारणत्व को स्पष्ट रूप से प्रकट करते हैं। साधारण जनमानस पर उनके समान किसी अन्य की पकड़ नहीं थी।' इसी लेख में श्री गुरुजी ने आगे कहा, 'उनकी हिन्दू धर्म पर श्रद्धा थी। हिन्दू जीवन में मानबिन्दु रूप गोवंश का संरक्षण तथा उसकी हत्या सर्वथा बन्द हो, इसलिए अपना शासन प्रभावी कानून बनाए, इसके लिए उन्होंने प्रयास किया। अपने अस्पृश्य रहे गए उपेक्षित बांधवों को सम्मान का स्थान दिलाने के लिए उनकी आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक आदि सब दृष्टि से उन्नति करने का उन्होंने प्रयत्न किया। अशिक्षित, सरल और आर्थिक कठिनाइयों में जीवन बितानेवाले वनवासी, दलित बांधवों को परधर्मियों द्वारा धर्मभ्रष्ट किये जाने के कार्य का तीव्र निषेध किया समाज को सुव्यवस्थित, संयमित और सुसंस्कृत जीवन से विमुख कर समाजवाद, साम्यवाद औदि नामों से केवल भौतिकता का प्रचार करनेवाले विचारों एवं कार्यपद्धतियों का उन्होंने स्पष्ट विरोध प्रकट किया। उनके इन गुणों के कारण जनमानस में उनके सम्बन्ध में अपार प्रीति व श्रद्धा बनी रहेगी व रहनी चाहिए।'

इसी अवसर पर ८ नवम्बर १९५९ को बंगलूर की राष्ट्रोत्थान साहित्य द्वारा पुस्तिका के रूप में प्रकाशित एक अंग्रेजी लेख में श्री गुरुजी ने गांधीजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि वे एक सामान्य मनुष्य की तरह धरती पर जन्मे पर अपनी कठोर जीवन साधना एवं सबके प्रति असीम प्रेम भाव के कारण महानता के शिखर पर पहुँच गये। सही अर्थों में महात्मा बन गये।... निर्धनों और दलितों के प्रति करुणा भाव का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने स्वयं खादी का एक वस्त्र ही अपने शरीर पर पहना।... नैतिक मूल्यों और श्रेष्ठ चरित्र के वे मूर्ति मंत प्रतीक थे। ... उन्होंने हिन्दू दर्शन के आत्मसंयम तत्व का स्वयं आचरण किया और अन्यों को भी उस रास्ते पर चलाने की कोशिस की। ... सम्पूर्ण मानवता के लिए प्रेमभाव रखते हुए भी उन्होंने मातृभूमि ती स्वतंत्रता के लिए संघर्ष और त्याग की भावना जगाई, देशवासियों को आत्मविश्वास और स्वाभिमान का मंत्र सिखाया।

महाराष्ट्र में सांगली जिला महात्मा गांधी जन्मशताब्दी समिति के मंच से कांग्रेसी कार्यकर्ता श्री घोंडें रामन्ना पाटिल की अध्यक्षता में आयोजित समारोह में गांधीजी की प्रतिमा को पुष्पमाला और प्रणाम अर्पित करने के बाद श्री गुरुजी ने कहा, 'हमारे यहाँ लम्बे समय से प्रातःस्मरण करने की प्रथा चली आ रही है। इसमें हम नित्य प्रातःकाल अपने देश के पवित्र स्थलों और महापुरुषों का स्मरण करते हैं। प्रातःस्मरण में नये नामों का समावेश करने का कार्य शताब्दियों से बन्द पड़ा हुआ था। संघ ने इस कार्य को फिर से शुरु करने का बीड़ा उठाया और आज पर्यन्तसभी महान् व्यक्तियों

का समावेश कर 'भारत भक्ति स्तोत्र' तैयार किया है। इसमें प्रातःस्मरणीय वन्दनीय व्यक्तियों की सूची में गांधीजी का नाम भी आदरपुर्वक सम्मिलित किया गया है।'

न केवल गांधीजी अपितु अपने समकालीन नेताओं के बारे में श्री गुरुजी ने प्रसंगोचित गौरवपूर्ण उल्लेख किया है। श्रद्धांजलि सभाओं में मृत नेता के बारे में भाषण देते हुए या लेख लिखते समय स्वर्गस्थ नेता में निहित गुणों की सराहना करने का उनका स्वाभाविक धर्म था। उदाहरण के तौर पर कुछ नामों का उल्लेख किया जा सकता है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल, पं. नेहरु, स्वा. सावरकर, डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, पं. दीनदयाल उपाध्याय, पं. सातवलेकर, श्री लालबहादुर शास्त्री, श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी आदि। इन नेताओं और संघ के दिवंगत कार्यकर्ताओं के बारे में श्री गुरुजी ने अपने हृदय की भावनाएँ व्यक्त की हैं। उनके कथन और पत्र या लेख के सृजन में मूलाग्राही गुणान्वेषण का ही परिचय मिलता है। श्री गुरुजी अपने स्वतः की योग्यता के संबंध में सदा ही मौन रहते किन्तु अन्यों के गुणों का बखान करने में वे मुखर रहा करते। इसी में उनकी महानता थी। संघकार्य का श्रेय वे अपने कार्यकर्ताओं की झोली में डाल देते थे। 'मैं नहीं, तू ही' का भाव वे जीते थे। स्वयंसेवकत्व ही उनका भूषण था। अपने सहकारियों के साथ वे प्रेम और आदर की भावना रखते थे। देश भर में फैले कार्यकर्ताओं, संघसंचालकों, प्रचारकों, स्वयंसेवकों को एक टीम के रूप में सम्हालना कोई सामान्य बात नहीं है। अपने स्नेहभरे व्यक्तित्व और संपर्क से श्री गुरुजी ने इस असामान्य कार्य को कर दिखाया। इतना अनुपमेय गुण-सम्मुच्चय होते हिए भी न कोई अहंकार, न आसक्ति।

२३.१२ बहुमुखी प्रतिभा

श्री गुरुजी की बुद्धिमत्ता का उल्लेख इसके पूर्व आ चुका है। उनका अथाह ज्ञान सबको अचंभित करनेवाला था। अनन्त विषयों का अत्याधुनिक ज्ञान उन्हें था। श्री गुरुजी शास्त्रीय संगीत के अच्छे जानकार था। घोष (बैन्ड) विभाग के वाद्यवृंद के लिए शास्त्रीय संगीत की रागदारी पर विभिन्न रचनाओं का सृजन हुआ तब श्री गुरुजी ने बहुत बारीकी से जो सुझाव दिये उन्हें सुनकर तो सभी दंग रह गए थे। ग्रंथों का ज्ञान ठीक है किन्तु संगीत में भी श्री गुरुजी की प्रतिभा का आविष्कार देखकर आश्चर्यविभोर होना स्वाभाविक ही था। उनके पत्रलेखन में बहुमुखी प्रतिभा और बुद्धिमत्ता का हमें परिचय मिलता है। किसी भी विषय पर जब वे अपना मत प्रदर्शन करते तब वह मौलिक रहा करता। बिना शास्त्रीय आधार के वे किसी बात को मान्यता भी नहीं देते। श्री गुरुजी की स्मरण शक्ति, प्राप्त तथ्यों को हृदयंगम करने की क्षमता, प्रतिपादन करते समय

अनेकानेक ग्रंथों से उद्-घृत करने की प्रतिभा तथा शैली बहुत ही प्रभावशाली थी। प्रजनन शास्त्र और 'सायबरनैटिक्स', ज्योतिष और खगोल शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र और पर्यावरण शास्त्र (इकालाजी), अंतराल तथा अणु विज्ञान, आयुर्वेद, होमिओपैथी तथा एलोपैथी इन विविध विषयों के साथ योगादि शास्त्रों में तो वे पारंगत थे ही। शायद ही एकाध विषय अछूता रह गया हो, किन्तु मानव जीवन से संबंधित लगभग सभी विषयों में उनकी गति थी। कुछ लोगों की यह धारणा थी कि श्री गुरुजी को केवल संघ, धर्म तथा संस्कृति का ही ज्ञान है। किन्तु चर्चा के समय जब वे विज्ञान और समाज-शास्त्र के ज्ञान का साक्षात्कार कराते तब इन विषयों के ज्ञानी पंडित भी भौंचक्के रह जाते थे। किन्तु विनोद में श्री गुरुजी कहा करते- आखिर मैं एक वकील हूँ। जैसे वकील किसी भी विषय पर उसका पूरा ज्ञान न होते हुए भी तर्क दे सकता है वैसा ही मैं भी करता हूँ।

विभिन्न शास्त्रीय शाखाओं के बारे में उनका ज्ञान कितना अथाह और अद्यावत था यह दर्शानेवाला जो संस्मरण वर्तमान सरसंघचालक मा. रज्जू भय्या ने बताया, वह बहुत उद्-बोधक है। एक बार इलाहाबाद विश्वविद्यालय में श्री गुरुजी के एक कार्यक्रम के लिए विभिन्न ज्ञान शाखाओं के विद्वान् प्राध्यापकों को निमंत्रित किया गया था। एक-एक टेबिल को घेरकर एक-एक फेकल्टी के प्राध्यापक बैठकर थोड़ा समय श्री गुरुजी से बातचीत करें ऐसी योजना थी। उसके अनुसार कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। उसके पश्चात् श्री गुरुजी ने एम.एस.सी. उपाधि किस ज्ञान शाखा में प्राप्त की होगी इस विषय में सब प्राध्यापकों में चर्चा शुरु हो गयी। प्रत्येक ज्ञान शाखा के प्राध्यापक कहने लगे कि वे उनके ही 'फेकल्टी' के होने चाहिए क्योंकि चर्चा में प्रत्येक शास्त्र में श्री गुरुजी की अभिज्ञता दिखाई दी थी। बिल्कुल आधुनिकतम ग्रन्थ और सिद्धान्त के संबंध में उन्होंने चर्चा की थी। अंत में जब उन्हें अधिकृत रूप से बताया गया कि प्राणिशास्त्र उनका विषय था तब सबको बहुत अचंभा हुआ। इसी तरह का अनुभव कितने ही विषयों के संबंधों में उनसे बातचीत करते समय अनेकों को आता था। फिर चर्चा चिकित्सा शास्त्र की हो, वंश शास्त्र की हो या मंत्र शास्त्र की।

वैज्ञानिक प्रगति की महत्ता और आवश्यकता का सम्यक् ज्ञान होते हिए भी श्री गुरुजी का मानना था कि विज्ञान को धर्मानुकुल ही होना चाहिए. धर्म से स्वतः को समायोजित कर लेना चाहिए क्योंकि धर्म के आधारभूत सिद्धांत ही शाश्वत होते हैं। वैज्ञानिक अनुसंधानों के नियम-निष्कर्ष बदलते रहते हैं। विज्ञान मानव को भौतिक सुख साधन प्रदान कर सकता है। मनुष्य उनका उपयोग सुख प्राप्ति के लिए अवश्य करे किन्तु विज्ञान के साथ धर्म भी बदलना चाहिए यह अपेक्षा गलत है। धर्मप्रवण जीवन ही वास्तविक मनुष्य जीवन है। धर्म और मोक्ष की मर्यादाओं में अर्थ और काम

के पुरुषार्थ तृप्त होने पर ही समाज सुस्थिर, संपन्न और सुखी होता है। चतुर्विध पुरुषार्थ पर आधारित 'संपूर्ण मानव' का विचार ही इस आधुनिक जगत् को भारत की मौलिक देन है। वर्तमान समस्याग्रस्त संसार में यह विचार प्रस्तुत करने की क्षमता प्रथम संपादन करें। इस तरह एक भव्य ध्येयदर्शन श्री गुरुजी ने लक्ष्य के नाते अपने सामने रखा था। श्री गुरुजी के सर्वस्पर्शी, सर्वगामी, बहुमुखी, अथाह और असीम अध्ययन और ईश्वरदत्त प्रतिभा का समस्त विलास भौतिक सुखवाद के लिए नहीं अपितु हिन्दू जीवनादर्श की व्यावहारिक पुष्टि के लिए था।

इस दृष्टि से समाज में वातावरण निर्मित करने के उद्देश्य से श्री गुरुजी अनेक मनुष्यों और संस्थाओं को संपर्क द्वारा निकट लाए। अनेकों को उनके गुण और पात्रता की परखकर समाजकार्य के लिए प्रवृत्त किया। स्व. महामहोपाध्याय बालशास्त्री हरदास, जो रामायण, महाभारत और अन्य पौराणिक ग्रंथों के प्रकांड पंडित और महान् वक्ता था, की व्याख्यान माला, पुणे के श्री विश्वनाथ नरवणे का कोष कार्य, डॉ. श्री. भा. वर्णेकर का संस्कृत भाषा प्रचार का उपक्रम, श्री. हनुमान प्रसाद जी पोद्दार की 'गीता प्रेस' द्वारा धर्मसेवा, श्री. सुधीर फडके. एक विख्यात संगीतकार और गीतरामायण के गायक की संगीत साधना, श्री. गो नी. दांडेकर का ललित साहित्य लेखन, श्री अमरेन्द्र गाडगील का सांस्कृतिक प्रकाशन कार्य, चाँपा के महारोग कुष्ठधाम की रुग्ण सेवा, स्थान-स्थान पर कार्यरत संस्कारक्षम शिक्षा संस्थाएँ इन सब की यशस्विता की जड़ में श्री गुरुजी का प्रोत्साहन, मार्गदर्शन और दिशादर्शन तथा संपूर्ण सहायता का हाथ था। संघकार्य करते-करते उसकी समांतर रेखा में संघ के लिए पोषक व्यक्ति-संग्रह और क्षमता प्राप्त लोगों को बढ़वा देने का कार्य, जो श्री गुरुजी ने कर दिखाया, उसे असाधारण ही मानना होगा।

दिल्ली के दीनदयाल शोध संस्थान का कार्य, प्राकृतिक और मानव निर्मित आपदाओं के समय सहायतार्थ स्थापित विविध संस्थाएं, समितियाँ और प्रतिष्ठान, उसी तरह योगी अरविंद तथा स्वामी विवेकानंद की जन्मशताब्दियों के कामों की प्रेरक शक्ति श्री गुरुजी ही थे। डॉ. मुंजे स्मारक समिति का काम तो उन्हीं के नेतृत्व में हुआ था। सांस्कृतिक पुनरुत्थान का विचार और उसका प्रसार- इनका लाभकारी मेल उन्होंने बैठाया था।

२३.१३ मूल कार्य पर एकाग्र दृष्टि

संघ का कार्य राष्ट्रवृक्ष की जड़ों को पानी से सिंचित करने का मौलिक कार्य है। संस्थात्मक या आंदोलनात्मक कामों के कारण संघकार्य की उपेक्षा हो, यह बात उन्हें पसंद नहीं थी। एक-एक विषय लेकर काम करनेवालों को श्री गुरुजी ने अवश्य प्रोत्साहन दिया, परंतु समाज में उपस्थित अनेकविध समस्याओं का निराकरण करने की उनकी भूमिका क्या थी यह एक संस्कृत प्रेमी कार्यकर्ता को लिखे पत्र में स्पष्ट होती है। श्री गुरुजी लिखते हैं, "आज के वातावरण में आधुनिकता और प्रगतिशीलता की मृग मारीचिका में पड़कर यहाँ की पवित्र भावनाओं का निर्मूलन करने में सब नेतागण परमपुरुषार्थ का अनुभव करते हैं। ऐसे समय पढ़ने-पढ़ाने के संबंध में जो शासकीय नीति दिखाई देती है वह तो अपेक्षित ही है। इसमें यदि परिवर्तन लाना हो तो एक-एक विषय लेकर आंदोलन करने से वह संभव होगा या नहीं इसका विचार करना होगा। सत्य तो यह है कि, 'मूले कुठारः' न्याय के अनुसार जीवन में व्यापक रूप से फैले हुए अराष्ट्रीय, परमुखापेक्षी प्रवृत्ति को जड़मूल समेत नष्टकर, जनसाधारण की विशुद्ध, राष्ट्रभक्तिपूर्ण सुसंगठित शक्ति खड़ी करना, और उसके द्वारा जीवन के सब प्रवाह शुद्ध करने की ओर ध्यान देना आवश्यक है। जड़-मूल को सिंचित करने से शाखा-पल्लव की रक्षा होती है, उनका भरण-पोषण होता है। जन सामान्यों की भावनाशुद्धि तथा संगठित, परिणामकारक स्थिति सब समस्याओं का समाधान करने में समर्थ हो सकेगी। तब तक पृथक् रूप से प्रयत्न होते रहना आवश्यक है। किन्तु हमारा लक्ष्य मूल प्रेरणा स्त्रोत, शक्ति के मूल अधिष्ठान की ओर ही रहे।" इस पत्र में श्री गुरुजी ने जीवन भर किए गए भगीरथ प्रयत्नों के संबंध में दिशा दर्शन ही किया है। यही उनका जीवनसंदेश है।

परिवर्तन के प्रसादचिन्ह दृष्टिगोचर हो रहे हैं। आज नहीं तो कल इष्ट परिवर्तन होता हुआ अवश्य दिखाई देगा। इस परिवर्तन के लिए प्रेरक हुई एक अदम्य ऋषिशक्ति के नाते श्री गुरुजी की योग्यता, महानता कृतज्ञतापूर्वक सर्व मान्य होगी।

*

परम पूजनीय श्री गुरुजी का जीवनपट

१९०६	दि.१९ फरवरी (सोमवार माघ वद्य ११ शक १८२७) प्रातः ४-३४ को नागपुर में जन्म।
१९१५	प्राथमिक चौथी की परीक्षा उत्तीर्ण। नर्मदा विभाग से (स्वातंत्र्यपूर्व मध्य प्रदेश) प्रथम क्रमांक। छात्रवृत्ति संपादन।
१९२४	इंटरमिजिएट परीक्षा उत्तीर्ण। अंग्रेजी विषय में प्रथम पारितोषिक। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश।
१९२६	बी.एस-सी. उत्तिर्ण।
१९२८	एम.एस-सी. उत्तिर्ण।
१९२९	मद्रास के मत्स्यालय में अनुसंधान।
१९३१	संघ प्रवेश।
१९३०-३३	बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक।
१९३३	जून नागपुर में कानून की अध्ययन।
१९३४	नागपुर की तुलसीबाग संघशाखा के कार्यवाह पद पर नियुक्ति। संघ कार्य के लिए कुछ समय मुंबई में वास्तव्य। अकोला (विदर्भ) संघ शिक्षा वर्ग में सर्वाधिकारी।
१९३५	एल.एल.बी. उत्तीर्ण।
१९३६	दिवाली के पूर्व सारगाछी (बंगाल) को प्रस्थान। रामकृष्ण संघ के अध्यक्ष श्री अखण्डानंद के सान्निध्य में।
१९३७	दि. १३ जनवरी मकर संक्रमण पर्व के दिन दीक्षा-ग्रहण।
	दि. ७ फरवरी को श्री अखंडानंद जी का महानिर्वाण।
	मार्च के अंत में नागपुर पुनरागमन।
१९३८	नागपुर के संघ शिक्षा वर्ग के सर्वाधिकारी।
१९३९	फरवरी के अंत में सिंदी (वर्धा जिला विदर्भ प्रदेश) में कार्यकर्ताओं के बैठक में उपस्थित।
	दि. २२ मार्च को संघकार्य के लिए कलकत्ता प्रस्थान।
	वर्षप्रतिपदा पर संघशाखा का शुभारम्भ।

	नागपुर संघ शिक्षा वर्ग के सर्वाधिकारी।
	दि. १३ अगस्त को रक्षाबन्धन पर सरकार्यवाह पद पर नियुक्ति।
१९४०	दि. २१ जन. पू. डॉक्टर हेडगेवार जी की मृत्यु।
	दि. ३ जुलाई सरसंघचालक पद पर नियुक्ति।
	दि. २१ जुलाई मासिक श्राद्ध दिन पर अखिल भारतीय कार्यकर्ता सम्मेलन।
	दि. ४ अगस्त संघ के गणवेष, संचालन आदि कार्यक्रमों पर शासकीय आदेश से प्रतिबंध।
१९४२-४७	संघकार्य की व्यापक वृद्धि।
१९४६	रावलपिंडी, झेलम (पंजाब) तथा पेशावर (सीमा प्रांत) में भव्य सार्वजनिक कार्यक्रम।
१९४७	मार्च में पंजाब प्रांत में विस्तृत प्रवास।
	'पंजाब रिलीफ कमेटी' की स्थापना। तीन हजार सहायता शिविरों का व्यवस्थापन।
	दि. ५-८ अगस्त हैदराबाद तथा करांची (सिंध प्रांत) में भव्य कार्यक्रम।
	दि. १५ अगस्त स्वातंत्र्य प्राप्ति।
	दि. १२ सितंबर गृहमंत्री सरदार पटेल और महात्मा गांधी से भेंट।
	दि. १७-१९ अक्टूबर श्रीनगर (कश्मीर) में महाराजा हरिसिंह से भेंट।
	प्रधानमंत्री नेहरु से भेंट।
१९४८	दि. १ फरवरी को नागपुर में गिरफ्तारी।
	दि. ४ फरवरी शासन द्वारा संघ पर प्रतिबंध।
	दि. ५ फरवरी संघ का विसर्जन। हजारों कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी।
	दि. ६ अगस्त कारागृह से मुक्ति।
	दि. १७ अक्टूबर दिल्ली को प्रयाण।
	दि. १२ नवम्बर को सरकार्यवाह मा. भय्याजी दाणी के आदेश

	से संघकार्य प्रारंभ करने की दृष्टि से लिखित आह्-वान, दिल्ली में पुनः गिरफ्तारी।
	दि. १४ नवम्बर को दिल्ली से नागपुर कारागृह में लाया गया। बाद में सिवनी कारागृह में रखा गया।
	दि. ९ दिसम्बर मा. भय्याजी दाणी के नेतृत्व में संघ-शाखा प्रारंभ कर देशभर में सत्याग्रह।
१९४९	दि. २१ जनवरी सत्याग्रह स्थगित। श्री ग.वि. केतकर और टी.आर.वी. शास्त्री द्वारा मध्यस्थता।
	दि. १२ जुलाई संघ पर से प्रतिबंध हटा।
	दि. १३ जुलाई बैतूल कारागृह से बिना शर्त मुक्ति, नागपुर आगमन।
	दि. १९ जुलाई श्री टी.आर.वी. शास्त्री से भेंट करने मद्रास को प्रस्थान। देशव्यापी प्रवास प्रारंभ। बंबई में सरदार पटेल से भेंट।
	दि. २१ अगस्त दिल्ली में अभूतपूर्व स्वागत।
१९५०	दि. ८ फरवरी कलकत्ता में 'वास्तुहारा समिति' की स्थापना।
	दि. ११ अगस्त असम के भूकंप पीड़ितों की सहायार्थ सेवाकार्य का प्रारंभ।
१९५१	बिहार में 'अकालग्रस्त सहायता समिति' की स्थापना।
१९५२	गोहत्या निरोध आन्दोलन।
	दि. ७ दिसम्बर लगभग २ करोड़ हस्ताक्षरों का निवेदन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को समर्पित।
१९५४	मार्च-अप्रैल सिंदी (वर्धा जिले) में लगऊग २५० प्रमुख प्रचारकों की प्रदीर्घ बैठक।
	दि. २१ जुलाई पिताजी का निधन।
१९५६	इक्यावनवीं वर्षगांठ, देशभर में समारोह।
१९६०	मार्च इंदौर में अखिल भारतीय कार्यकर्ताओं की बैठक।
१९६२	दि. ९ अप्रैल वर्ष प्रतिपदा पर नागपुर में रेशीमबाग में स्मृति मंदिर का उद्-घाटन, स्वयंसेवकों का अखिल भारतीय भव्य सम्मेलन।

१९६२	दि. १२ अगस्त माता की मृत्यु।
	विवेकानंद जन्मशताब्दी समारोह। विवेकानंद शिला स्मारक समिति की स्थापना।
१९६४	कृष्ण जन्माष्टमी पर मुंबई के सांदीपनी आश्रम में 'विश्व हिन्दू परिषद्' की स्थापना।
१९६५	दि. ६ सितम्बर भारत-पाक युद्ध। प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा आमंत्रित राष्ट्रीय नेताओं की बैठक में योगदान।
१९६६	दि. २२, २३, २४ जनवरी प्रयाग में विश्व हिन्दू परिषद् का जागतिक सम्मेलन।
१९६७	सितम्बर ब्रह्मकपाल में पूर्वजों तथा स्व श्राद्ध विधि।
१९७०	दि. १ जुलाई मुंबई में कैंसर का ऑपरेशन।
	दि. २२ जुलाई को अस्पताल से वापिस।
१९७१	दि. २९ अक्टूबर से २ नवम्बर तक ठाणे में भारत के लगभग ४५० कार्यकर्ताओं की बैठक।
	दि. १९ दिसम्बर जनरल करिअप्पा द्वारा नागपुर में डॉ. मुञ्जे की प्रतिमा का अनावरण।
१९७२	दि. २० अगस्त को दिल्ली में "दीनदयाल शोध संस्थान" का उद्-घाटन।
१९७३	दि. ४ फरवरी बंगलौर में अंतिम सार्वजनिक कार्यक्रम।
	दि. १४ मार्च प्रवास पूर्ण कर नागपुर वापिस।
	दि. २४-२५ मार्च नागपुर में अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा की बैठक। 'विजय ही विजय है' यह अंतिम भाषण।
	दि. २ अप्रैल आगामी व्यवस्था के संबंध में तीन पत्र लिखकर सीलबंद कर रखे।
	दि. १९ से ३१ मई तक संघ शिक्षा वर्ग के शिक्षार्थियों के साथ गटशः वार्तालाप।
	दि. ५ जून रात्रि ९.०५ पर महानिर्वाण।
	दि. ६ जून सायंकाल रेशीमबाग में अन्त्य संस्कार।

श्री गुरुजी की जन्मपत्रिका

जन्म दि. १९-२-१९०६ प्रातः ४-३४ नागपुर।

दशमीसह एकादशी, माघ व. ११ शक १८२७

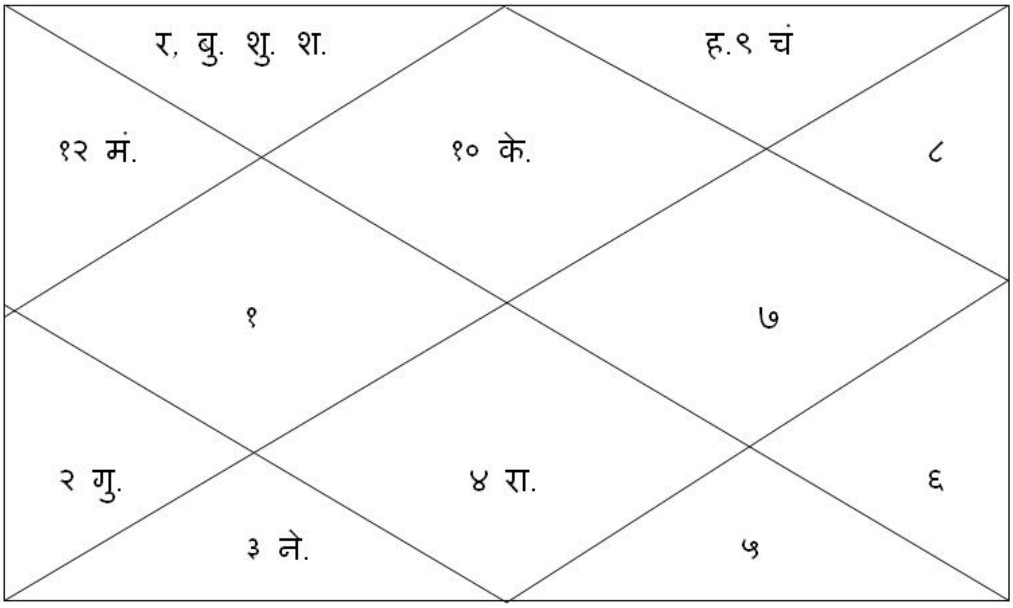

२४ परिशिष्ट-१

प.पू. श्री गुरुजी का संघ कार्य हेतु समर्पण और तदनुरूप समाज के व्यक्ति-व्यक्ति अथवा व्यक्ति-समूहों के प्रति अपार स्नेह सहित तादात्म्य इतना परिपूर्ण था कि "ब्रह्मरूप देख फिरहिं, केहि सन करहिं विरोध" वाली उक्ति पूर्णतः चरितार्थ होती थी। इस श्रेष्ठ दार्शनिक धरातल की शिक्षा हर छोटे-बड़े प्रसंग में उनसे मिलती रहती थी। ऐसा ही एक सुअवसर आर्गेनाइजर के यशस्वी सम्पादक श्री केवलरामानी मलकानी को प्राप्त हुआ। श्री गुरुजी को कुछ मुस्लिम समाचारपत्रों ने "काला नाग" कहकर चित्रित किया था। श्री मलकानी ने इस पर रोषपूर्ण टिप्पणी लिखि थी। आर्गेनाइजर में छपी वह टिप्पणी श्री गुरुजी ने पढ़ी और पूरे दार्शनिक सन्दर्भ में नाग महात्म्य ही बताते हुए उन्होंने मुस्लिम समाचारपत्रों पर स्नेह की वर्षा की और उन्हें भारत की सनातन एकता के पूजक के रूप में विकसित होने का मार्ग निम्नलिखित पत्र में दिखाया है।

दिनांक १८-११-१९६९

प्रिय मलकानी जी,

आपके "आर्गेनाइजर" के नवीनतम अंक (१६ नवम्बर, १९६९) में यह पढ़कर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ कि कुछ मुस्लिम समाचार पत्रों ने मुझे "काले नाग" की संज्ञा से विभूषित किया है। लगता है कि आप मेरे लिए प्रयुक्त इस विशेषण के कारण दुःखी हैं। इसका कोई कारण नहीं दिखता।

हमारे दर्शन और धर्म में नाग को अत्यन्त पूज्य माना गया है। भगवान शिव अत्यन्त विषधर नागों से अपने आपको विभूषित किये हुए हैं। जगज्जननी माँ भगवती नाग को जनेऊ के रूप में धारण की हुई हैं और इस कारण उनका एक नाम "नागयज्ञोपवीतिनी" भी है। ज्ञान और विवेक के दाता भगवान गणेश का तो उसके बिना काम ही नहीं चलता और जगत् के पालनहार भगवान विष्णु तो आदिशेष की गोदी में ही विश्राम पाते हैं। योग में कुण्डलिनी को, जो प्रत्येक व्यक्ति में विराट् शक्ति के रूप में सुप्त पड़ी रहती है, कुण्डली सारे नाग की ही उपमा दी गई है जो यम-नियम और योग्य साधना के द्वारा जागृत होकर मेरुदण्ड के मार्ग से ऊपर उठती हुई, एक-एक चक्र को सक्रिय करती हुई तथा योगशक्ति और ज्ञान के द्वार खोलती हुई अन्त में मस्तिष्क के उस अन्तिम कमल सहस्रार तक पहुँच कर अपना गन्तव्य प्राप्त करती है और परब्रह्म के साथ एकाकार हो जाती है। जो व्यक्ति उस स्थिति को प्राप्त

करता है उसे परमानन्द की प्राप्ति होती है और वह जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो मोक्ष को प्राप्त करता है, जो मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य है।

हिन्दुओं में नाग के प्रति विद्यमान श्रद्धा अकारण नहीं है। उसे वनवासियों, गिरिवासियों तथा पुरे हिन्दू समाज में, विशेष कर नागपंचमी के दिन, पूजा जाता है। दक्षिण में भगवान सुब्रह्मण्यम के रूप में नाग देवता शक्ति, समृद्धि तथा चिदानन्द के दाता बन जाते है।

वास्तव में तो नाग समस्त सृष्टि की एकता का प्रतीक है। उसकी पूँछ का कुंडली मारते हुए फन तक पहुँचने का प्रयास करना यही दर्शाता है कि समग्र सृष्टि उस परब्रह्म से ही पैदा होकर उसी में विलीन हो जाती है।

नागपूजा की सर्वव्यापकता उसे समस्त हिन्दुओं की, अपनी राष्ट्रीय अस्तित्व की मूलभूत एकता का प्रतीक बना देती है।

मुस्लिम पत्रकारिता ने मुझे यह विशेषण देकर, अनजाने ही क्यों न हो, मुझे ऐसा सम्मान दे दिया है जिसका मैं पात्र नहीं हूँ। उन्होंने मुझे भारत और दुनिया के सामने राष्ट्रीय एकता के प्रतीक, उसकी अभिव्यक्ति तथा उसके उद्-गाता के रूप में प्रस्तुत किया। मैं माँ भगवती से प्रार्थना करता हूँ कि वह मेरे इन प्रशंसक मित्रों की अपेक्षा को पूर्ण करने की शक्ति मुझे दे।

मैं उनका बड़ा कृतज्ञ हूँ कि जिन्होंने इतना बड़ा सम्मान मुझे प्रदान किया और आशा करता हूँ कि वे भी शीघ्रातिशीघ्र भारत की सनातन एकता के इस प्रतीक के पूजक के रूप में विकसित होंगे।

कृपया मेरा विनम्र धन्यवाद उन तक पहुँचाएँ।

(ह.) मा. स. गोलवलकर

*

२५ परिशिष्ट-२

श्री गुरुजी अपने सम्पर्क में आनेवाले व्यक्ति पर किस प्रकार की छाप छोड़ जाते थे इसके उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में उनके शल्य चिकित्सक डॉ. प्रफुल्ल देसाई का अंग्रेजी साप्ताहिक 'ऑर्गनायजर' में छपा यह लेख है जो श्री गुरुजी के देहावसान के बाद छपा था। प्रस्तुत है उसका हिन्दी रुपान्तर-

२५.१ गुरुजी मेरे मरीज थे

आज की तारीख के ठीक तीन वर्ष पूर्व एक रात जब तूफानी वर्षा हो रही थी, मेरे एक व्यवसायिक सहकर्मी ने मुझसे सम्पर्क कर जानना चाहा कि क्या मैं गुरुजी गोलवलकर से उनका कष्ट दे रही स्वास्थ्य सम्बन्धी एक समस्या के सन्दर्भ में मिल सकता हूँ?

दूसरे दिन प्रातः मैं कार में बैठा उन्हें देखने के लिए जा रहा था। मेरे मस्तिष्क में विचार उतनी ही गति से दौड़ रहे थे जितनी गति से कार। मैं सदा गोलवलकर जी के विषय में सुनता और पढ़ता रहता था। हम जानते थे कि वे अपने विचारों के बड़े पक्के हैं और हिन्दुत्व और हिन्दु राज्य के सम्बन्ध में उनकी धारणाएँ कट्टर अपरिवर्तनीय हैं। (अन्तिम मुद्दे पर मैं कितना गलत सोचता था।) इन्हीं सब कारणों से मैं उनसे मिलने के लिए बड़ा उत्सुक था। मेरी धारणा थी कि चिकित्सकीय मामलों में रोग की गम्भीरता को समझाने की दृष्टि से मेरा एक कठिन व्यक्तित्व से पाला पड़ने जा रहा है।

उनके कृश और कोमल शरीर को देखने के बाद मुझे लगा कि अब तक उनके बारे में मैं जो कुछ जानता, सुनता या समझता था उससे वे बिल्कुल विपरीत हैं। उनसे हुई अपनी पहली भेंट में ही मुझे विश्वास हो गया कि मैं एक अत्यन्त वेधक दृष्टिवाले जिज्ञासु व्यक्ति से मिल रहा हूँ जिनके व्यक्तित्व में एक स्वाभाविक लचीलापन है। किसी भी विषय पर तर्कपूर्ण ढंग से विचार करने के लिए वे सदैव अपना द्वार खुला रखते हैं। उनके साथ अपने प्रथम वार्तालाप में ही मैंने उनको अच्छी तरह नाप लिया था।

२५.२ उत्कृष्ट हिन्दी

“अच्छा डॉक्टर! आप मेरी शारीरिक अस्वस्थता के विषय में आप क्या सोचते हैं?” उन्होंने विशुद्ध हिन्दी में पूछा। गुरुजी जैसी शुद्ध हिन्दी में वार्तालाप की निपुणता न होने के कारण मैंने कामचलाऊ किन्तु चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से सही उत्तर देते हुए कहा- “जी, मैं सोचता हूँ हम ऐसी स्थिति का सामना कर रहे हैं जिसमें कैंसर की अत्याधिक सम्भावना लग रही है। अतः परीक्षा करने और आवश्यक हुआ तो उसे दूर करने के लिए शल्यक्रिया करने की आवश्यकता प्रतीत हो रही है।” मेरे निदान ने उन्हें जरा भी विचलित नहीं किया जैसा सामान्यतः साधारण व्यक्तियों के साथ होता है। क्षण भर विचार करने के बाद उन्होंने उत्तर दिया, “अच्छा! अगर यह कैंसर ही है तो मेरे मतानुसार उसे वैसे ही क्यों न छोड़ दिया जाय? और डॉक्टर, क्या आपको जरा भी आशा है कि आप उसको ठीक कर सकेंगे?”

स्पष्ट था कि वे इस बीमारी के विषय में पर्याप्त ज्ञान रखते थे और जानते थे उसका मनुष्य के शरीर पर क्या-क्या दुष्प्रभाव पड़ता है। “क्या वह शरीर में कहीं आगे भी फैल चुका है?” यह था उस मनस्वी का दूसरा प्रश्न जिसका मुझे तत्काल ऐसा तर्कपूर्ण उत्तर देना था जो उस कुशाग्र मस्तिष्क का समाधान कर सके। अतः उनका प्रश्न समाप्त होने के पूर्व ही मैंने उत्तर दिया- “यह तो अपने-अपने मत की बात है, सामान्य लोगों का मत और मैं इस बात से सहमत नहीं हो सकता कि इसे यूँ ही छोड़ दिया जाय। रोग के ठीक होने न होने की बात तो तभी बतायी जा सकती हो जब पता चले कि रोग शरीर में कितना फैल चुका है और इसका सही अनुमान तो शल्यक्रिया के बाद ही हो सकता है। उसी पर अनुवर्ती चिकित्सा भी निर्भर करेगी। उसे खाली छोड़ देने का अर्थ होगा हिमखण्डों से भरे समुद्र में किसी जहाज को खुला छोड़ देना। आपकी चिकित्सा करने का अर्थ होगा परिस्थिति को नियन्त्रण में लेना और कम से कम जो दृश्यमान खतरे हैं उनसे बचना। वह अन्य क्षेत्रों में नहीं फैला है किन्तु जिस स्थान पर वह है वहाँ भी उसका व्याप कितना है यह तो शल्यक्रिया के बाद ही जाना जा सकेगा।”

गुरुजी ने स्थिति की गम्भीरता को भाँप लिया और थोड़ी देर के लिए गहन मौन में चले गये, शायद आत्मविश्लेषण कर रहे हों। बाद में शान्त स्वर में बोले, “अच्छा! तो मुझे यह (शल्यक्रिया) करानी ही पड़ेगी।” परन्तु दूसरे ही क्षण वे अपने पूर्व निर्धारित भेंट, प्रवासादि कार्यक्रमों का हिसाब लगाने लगे। तुरन्त उन्होंने निर्णय लिया और संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट आदेश अपने सचिव एवं समस्त सहायकों को दिये। ३० जून

१९७० को गुरुजी अस्पताल में भर्ती हुए तथा १ जुलाई १९७० को शल्यक्रिया हुई जो सफल रही।

२५.३ दैदीप्यमान गुणावली

इस प्राथमिक घटनाक्रम में ही उनकी अनेक उज्ज्वल विशेषताएँ परिलक्षित हुईं जैसे, उनका गहरा ज्ञान और विज्ञान सम्मत निर्देशों का अनुपालन करने की सिद्धता, अपने स्वास्थ्य से सम्बन्धित उनके कतिपय किन्तु तथ्यवेधक प्रश्न जो उनकी जिज्ञासु मेधा का परिचय कराते थे, विपरीत परिस्थितियों का साहस, शान्ति और दूरदर्शिता से सामना करने की क्षमता और अंगीकृत कार्य के प्रति निष्ठा और उसके समुचित निर्वाह की तत्परता। मुझे लगा कि जिस एक तर्क ने उन्हें सर्वाधिक प्रभावित किया। वह था मेरे द्वारा यह कहा जाना कि “आपको शल्यक्रिया करवा ही लेनी चाहिए जिससे आप अपने स्वीकृत कार्य में पुनः जुट सकें।” इसके बाद और कोई बहस नहीं हुई।

ऐसी बड़ी शल्यक्रिया को उन जैसे ६५ वर्षीय वयोवृद्ध ने आश्चर्यजनक रीति से सहन कर लिया। दूसरे दिन तो वे उठकर चलने भी लगे। अस्पताल में उनके तीन सप्ताह के वास्तव्य में मुझे उनके मन-मस्तिष्क का अध्ययन करने का पर्याप्त अवसर मिला। उनके साथ हुए वार्तालापों से मुझ जैसे सामान्य व्यक्ति को बहुत कुछ सीखने को मिला। यहाँ मैं कुछ उदाहरण देना चाहता हूँ जो उनके आन्तरिक चरित्र को प्रकर्ष से प्रगट करते हैं।

वे अपने रोग के फैलाव के बारे में पूरी सच्चाई जानना चाहते थे और यह भी कि उनके लिए कितनी आशा बची है। इस पर मैंने स्थिति की यथावत् जानकारी देते हुए जब उन्हें बताया कि उनके लिए कितना समय बचा है तो उनकी प्रतिक्रिया थी- “वाह! अति उत्तम ! पर्याप्त लम्बा समय है और मेरे पास निपटाने के लिए अभी बहुत से कार्य शेष हैं।” उन्होंने एक कार्यक्रम में भाग लेने के लिए डॉक्टरी अनुमति माँगी। उस समय तक शल्यक्रिया होकर केवल सात दिन ही हुए थे। मैंने कहा कि “मैं आपको एक ही शर्त पर अनुमति दूँगा कि आप अस्पताल से गायब न हो जायें।” अपनी सहज विनोदबुद्धि से उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया- “क्या मैं आपको डाकू लगता हूँ?” अस्पताल में वे जब तक रहे तब तक वातावरण हास्य, विनोद और आनन्द से परिपूर्ण रहा।

२५.४ राजनैतिक दर्शनकार

ऐसा कोई विशेषण, जो उनके व्यक्तित्व को पूरी तरह अभिव्यक्त कर सके, खोज पाना अत्यन्त कठिन है। वे एक राजनैतिक दर्शनकार, प्रगाढ़ अध्येता और मनुष्यों, घटनाओं व विषयों के सम्बन्ध में जानकारी देनेवाले चलते-फिरते शब्दकोश थे। उनके विचारों में विज्ञान, धर्म और संस्कृति का एक सुन्दर सम्मिश्रण था। उन्होंने एक बार मुझसे कहा कि "विज्ञान के विकास पर ही मानव की प्रगति निर्भर है।" एक गहरी धार्मिक निष्ठावाले व्यक्ति के मुँह से यह सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। वे उन लोगों में से नहीं थे जो अपना दर्शन और अपने विचार दूसरों पर थोपते हैं। किन्तु जो कुछ वे कहते थे या जिस पर चर्चा करते थे उस पर पूरी निष्ठा रखते थे। उनका यह कथन कि "जिसको मैं सही समझता हूँ उस पर पूरी तरह दृढ़ रहता हूँ," उनकी आन्तरिक शक्ति और साहस का परिचायक है और यह भी बताता है कि उनका अनुयायी वर्ग इतना विशाल क्यों है।

अस्पताल में जितने थोड़े समय वे रहे अपनी गतिविधियाँ चलाते रहे। अनुवर्ती चिकित्सा को भी उन्होंने अच्छी तरह सहन किया। चिकित्सा पूरी हो जाने के बाद अस्पताल से विदा लेते समय उनके उद्-गार थे- "मरणधर्मा मनुष्य को मृत्यु की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। सभी जीवित व्यक्तियों को एक न एक दिन मौत के मुँह में जाना ही है। वह कितने दिन जिया इससे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि उसने उन्हें कैसे जिया? मेरा एक जीवन लक्ष्य है और मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझे अन्तिम क्षण तक कार्यशील रखे।" मुझे अनुभव हुआ कि उन्हें अपना जीवनोद्देश्य पूरा करने की जल्दी है।

तत्पश्चात दो वर्षों तक मैंने उनको अत्यन्त सक्रिय व स्वस्थ देखा। मेरी अपेक्षा से कहीं अधिक वे सक्रिय थे। पहली शल्यक्रिया के बाद ही रोग के विस्तार को देखकर मैं होनी के बारे में आशंकित था। वे एक आदर्श रोगी थे जो चिकित्सक को सब प्रकार का सहयोग देते थे। जब कभी वे मुम्बई आते थे तो अनुवर्ती जाँच व निष्कर्ष के लिए मिलने आया करते थे। ऐसी ही एक नियमित यात्रा में मैंने उनसे पूछा, "हमारे तरुण का क्या हालचाल है?" उत्तर था, "और अधिक तरुण बन रहा है।"

काल तो किसी को छोड़ता नहीं सो वह गुरुजी के पीछे भी लगा। इसी वर्ष फरवरी या मार्च से वे पुनः अस्वस्थता का अनुभव करने लगे। यद्यपि वे अपने कार्य में सक्रिय रहे परन्तु काल की काली परछाइयाँ उनको घेरने लगी थीं। अप्रैल में उनका जो एक्स-

रे लिया गया उसमें अनिष्टसूचक चिह्न दिखायी दिये। बाद की घटनाएँ इतनी ताजी हैं कि उनका विवरण देने की आवश्यकता नहीं है।

अपने जीवनकाल में वे जैसे थे मरणोपरान्त उन्हें उससे अधिक बढ़ा-चढ़ाकर या आदर्शवान दिखाना इस लेख का हेतु नहीं है। पर वे ऐसे व्यक्ति अवश्य थे जिन्होंने एक निर्मम रोग के कारण उत्पन्न शारीरिक और मानसिक तनाव को साहस और सन्तुलित भाव से सहा, जिनके अपने देश के बारे में दृढ़ निष्ठाएँ थीं और जो सदा उन पर डटे रहे, सुकोमल और कृशगात्र होते हुए भी वे असीमित ऊर्जा, गतिशीलता और अनुशासन के धनी थे और अनुचित को पहचानकर उसे ठीक करने का प्रयत्न करते थे।

यह अत्यन्त दुःख की बात है कि अब वे नहीं रहे किन्तु मुझे इस बात का गर्व है कि थोड़े समय के लिए ही क्यों न हो, मैं उन्हें जान सका और मुझे इस बात का आनन्द है कि वे इस प्यारी मातृभूमि में जिए और इस पर विचरे।

* * *